प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद
पटना – ३

प्रथम संस्करण, ज्येष्ठ, शकाब्द १८७९ विक्रमाब्द २०१४, ख्रीष्टाब्द १९५७

मूल्य—नव रुपये सजिल्द—दस रुपये पचीस नये पैसे

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

वक्तव्य

मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम्।
धनुर्द्धरं पद्मविशाललोचनं भजामि नित्यं न परान्भजिष्ये ॥[1]

'रामभक्ति-साहित्य मे मधुर उपासना'—हिन्दी में अपने विषय का सर्वथा नवीन एव अत्यन्त सरस ग्रन्थ है। ग्रन्थकार स्वय इस उपासना-पद्धति के भावुक साधक है। आपकी भूमिका से पाठको को मालूम होगा कि इसके निर्माण मे आपको कितना अध्यवसायशील होकर परिश्रम करना पडा है। ग्रन्थानुशीलन से यह भी विदित होगा कि आपको अपने अधिकृत विषय के विवेचन एव प्रतिपादन मे कहाँ तक सफलता मिल सकी है। हमारा अनुमान है कि आपके स्वाध्याय की गहनता और आपकी मननशीलता एव रसानुभूति की गम्भीरता इसके अनेक स्थलो के निरीक्षण से प्रकट होगी।

कृष्णभक्ति-साहित्य में मधुर उपासना काफी है। अब इस ग्रन्थ से यह ज्ञात हो जायगा कि रामभक्ति-साहित्य मे भी मधुर उपासना का टोटा नही है।

हमारे ईश्वरावतारो में राम और कृष्ण ही सबसे सुन्दर है। मधुर-उपासना इन्ही दोनो अवतारो की होती है। पर दोनो की सुन्दरता मे कुछ अन्तर है। राम की सुन्दरता पर सौम्य शील का आवरण है। कृष्ण की सुन्दरता मे लीला-विलास का बाँकपन है। राम लोकाभिराम है—कृष्ण लोक-ललाम। राम की मुखाम्बुजश्री में जो प्रसन्नता की कान्ति है, वह शीतल है। कृष्ण के मनमोहन मुखडे पर जो आनन्दोल्लास की कमनीय किरणें किलोलती हैं, वे दीप्तिमन्त है। राम केवल अधरो और नेत्रो मे ही हँसते है, कृष्ण अधरो और आँखो के अतिरिक्त भौहो में भी हँसते है, बल्कि उनका अग-अग रोम-रोम हँसता रहता है। इसीलिए, उपासक भक्त की मधुर भावना को जितना कृष्ण उकसाते है उतना राम नही, क्योकि राम के रमणीय रूप मे जो सुहावना भोलापन है उसमें भक्त की मधुर भावना को छेडने की शोखी नही है; किन्तु कृष्ण की चञ्चल-चटुल और मञ्जुल-मृदुल मूर्त्ति तो उपासक की मधुर भावना को बरबस गलबहियाँ में समेट ले जाती है। अरे, आकर्षण तो भोलापन और बाँकपन दोनो में है, जिसका रहस्योद्घाटन करके यह ग्रन्थ राम-भक्तो की मधुर उपासना को प्रोत्साहन देगा।

---

१ अध्यात्मरामायण, बालकाण्ड, सर्ग ५, श्लोक ४६

घनश्याम राम श्यामसुन्दर हैं। रसराज शृंगार भी श्यामसुन्दर हैं। दोनो का वर्ण समान है। आदिरस के अधिष्ठाता देवता भी रमा-रमण राम हैं। अत शृंगार के आधार राम की भक्ति में मधुर उपासना की सार्थकता समीचीन है। यह समीचीनता इस ग्रन्थ से समर्थित है।

प्रियदर्शन राम, अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता के साथ, मधुर भाव के उपासको के प्राणाधार हैं। 'गिरा अर्थ जल बीचि सम' अभिन्न दोनो की छवि-छटा में जो सुषमा-सुधा-माधुरी है, वही भक्तो की मधुर उपासना के लिए सञ्जीवनी है। इस ग्रन्थ का यही शुभ सन्देश है।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र शील-शक्ति-सौन्दर्य-निधान हैं। यद्यपि उनके शील से भक्तो ने काफी लाभ उठाया है तथापि उसके कारण उनकी ओर भक्त उतनी मात्रा मे आकृष्ट नही हुए हैं, जितनी मात्रा में उनके अविरल सौन्दर्य के कारण। उनकी शक्ति के प्रताप से भक्तो को निर्भयता तो प्राप्त हुई है, पर उसके कारण उनमें भक्तो की आसक्ति-अनुरक्ति नही हुई है। भक्तो के मन में मधुर भाव की उपासना का स्रोत बहानेवाला उनका अलौकिक सौन्दर्य ही है।

केवल शील और शक्ति के लिए मधुर भाव की उपासना हो भी नही सकती। मधुर भाव की उपासना तो केवल अनुपम सौन्दर्य के निमित्त ही सम्भव है। राम यदि रूपवान न होकर केवल शीलवान और शक्तिमान ही होते, तो अपने दर्शन मात्र से भक्तो को कदापि मुग्ध न कर सकते। शील और शक्ति तो सौन्दर्य के ही शोभावर्द्धक हैं।

सौन्दर्य के अतिरिक्त उपास्य के अन्यान्य गुण उपासक के लिए चित्ताकर्षक भले ही बन जायँ, चितचोर नही बन सकते। चितचोर तो केवल अनवद्य सौन्दर्य ही हो सकता है। वास्तव में चितचोर सौन्दर्य ही दूसरो से अपनी उपासना करा सकता है। वह भी मधुर भाव की उपासना तो एकमात्र सर्वाङ्गसुन्दर की ही हो सकती है। इसीलिए, भगवदैश्वर्य में भी सौन्दर्य ही सर्वोपरि है।

भक्तजन प्राय कहा भी करते हैं—किशोर राम का चितचोर रूप जनकपुर की युवतियो के नयन-मन में घर कर गया था, इसीलिए वे व्रजमण्डल की गोपियाँ होकर अवतरी और उनका मनोरथ सफल करने के लिए राम स्वय ही गोपिकावल्लभ कृष्ण हुए। यह रहस्य तो तत्त्वज्ञ ही जानें, पर इसमें रञ्चमात्र सन्देह नही कि राम के अनिन्द्य-अमन्द रूप ने जड-चेतन पर जादू डालने में विस्मयविवर्धक सफलता पाई। जहाँ कही राम गये, चराचर पर मोहिनी डाल दी।

जनकपुर मे तो राम सर्वालङ्कारभूषित दुल्लह बने थे। अत वहाँ राजर्षि जनक-जैसे विदेह योगी का भी मन मुट्ठी में कर लिया था, फिर औरो की तो बात ही क्या। उसके बाद तो जगल के रास्ते में ग्रामीण नर-नारियो पर, तपोवनो में ऋषि-मुनियो पर, चित्रकूट में कोल-भिल्लो पर, रणभूमि में शत्रु राक्षसो पर, यहाँ तक कि जगली और समुद्री जन्तुओ पर भी राम के रुचिर रूप का जादू चल गया। उनके 'निज इच्छा निर्मित तनु' में कैसा अद्भुत सौन्दर्य भरा था, यह सीता-सखी की उक्ति से ही ज्ञातव्य है—'गिरा अनयन नयन बिनु बानी।'[1] ऐसे अनिर्वचनीय दिव्य

१ प्रभु सोभा सुख जानहिं नयना, कहि नहिं सकहिं तिनहिं नहिं बयना। –(तुलसी)

रूप का रस पीने के लिए निर्विकार दृष्टि चाहिए। वैसी निष्कलक दृष्टि भक्तो अथवा सन्तो की ही हो सकती है। इस ग्रन्थ मे उस कोटि के सन्त भक्तो की उपासना-प्रणाली का वर्णन अतिशय हृदयग्राहिणी शैली मे किया गया है। जहाँ-कही उपासना-परक ग्रन्थों की चर्चा है, वहाँ ऐसा अनुभव होता है कि मधुर भाव का असली भक्ति-साहित्य जब प्रकाशित हो जायगा, तब भगवान् राम का सौन्दर्य-माधुर्य उन मर्यादादर्शवादी भक्तो को भी लुभावेगा, जो 'जटिलस्तपस्वी' रण-रंगधीर महारथी राम के उपासक है।

ग्रन्थकर्त्ता इस समय बिहार-राज्य के शिक्षा-विभाग में उपनिर्देशक हैं। आप इस परिषद् के और हिन्दू विश्वविद्यालय-कोर्ट के भी सदस्य हैं। पहले आप औरगाबाद (गया) के सच्चिदानन्दसिंह-डिग्री कालेज के प्रिन्सिपल थे। उससे भी पहले आप प्रयाग के प्रसिद्ध मासिक 'चाँद' और साप्ताहिक 'भविष्य' तथा काशी के साप्ताहिक 'सनातनधर्म' के प्रधान सम्पादक रह चुके थे। आप दस वर्षो (सन् १९३२-४२ ई०) तक गीता प्रेस (गोरखपुर) के हिन्दी मासिक 'कल्याण' और अँगरेजी-मासिक 'कल्याण-कल्पतरु' के सयुक्त सम्पादक रह चुके है। आप शाहाबाद जिले के निवासी हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय (काशी) से आपने सन् १९३० ई० में हिन्दी और अँगरेजी में एम्० ए० पास किया। हिन्दी के आध्यात्मिक साहित्य को आपकी देन उल्लेखनीय है। भक्ति-साहित्य की रचना में ही आपकी विशेष अभिरुचि एव प्रवृत्ति है। आपकी प्रकाशित पुस्तको से आपकी परिष्कृत रुचि का परिचय मिलता है—'मीरा की प्रेम-साधना', 'धूपदीप', 'सन्त-साहित्य', 'मेरे जीवन-मरण के साथी'। प्रथम और अन्तिम पुस्तक में सहृदय लेखक के जो मनोभाव व्यक्त हुए है, उनका विकसित रूप इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होगा।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् से विशेषत साहित्यिक शोध के योग्य ग्रन्थ प्रकाशित होते है। आशा है कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से शोधकर्त्ता सज्जनो को इस दिशा में अग्रसर होने की पर्याप्ति प्रेरणा मिलेगी।

चैत्र पूर्णिमा, शकाब्द १८७९
विक्रमाब्द २०१४, खीष्टाब्द १९५७

शिवपूजन सहाय
(सञ्चालक)

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

परम गुरुदेव

पुण्यश्लोक

महामहोपाध्याय पंडित श्री गोपीनाथ जी

की

पुनीत सेवा

में

सादर सभक्ति सप्रीति

समर्पित

'माधव'



महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

परम गुरुदेव

पुण्यश्लोक

महामहोपाध्याय पंडित श्री गोपीनाथ जी कविराज

की

पुनीत सेवा

में

सादर सभक्ति सप्रीति

समर्पित

'माधव'

निवेदन

भगवान् की कृपा और सन्त-महात्माओ के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ पूरा हुआ और इसे आज पाठको के हाथ मे देते हुए मुझे अपूर्व प्रसाद की अनुभूति हो रही है। अवश्य ही इस ग्रन्थ में सन्त-महात्माओ का अनुभव है और मैंने यथासम्भव उसे एक ढग से सजाकर प्रस्तुत कर दिया है। सन्त तुकाराम के शब्दो मे मैं कह सकता हूँ—"सन्तो की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी वाणी। जाऩू उसका भेद भला मैं क्या अज्ञानी।"

रामभक्ति-साहित्य मे मधुर उपासना-सम्बन्धी जो कुछ भी काव्य है, वह अब तक प्राय: उपेक्षित रहा है। इसके कई कारण हो सकते है। परन्तु, मेरी दृष्टि मे इसका मुख्य कारण यह है कि रामभक्ति-साहित्य की धारा मर्यादावादिनी रही है और इसलिए प्राय. ऐसा मान लिया जाता रहा है कि उसमे शृगारोपासना के विकास के लिए कम अवकाश है या है ही नही। विद्वानो ने इस रसिकोपासना के साहित्य को बडी ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा। इस साहित्य के सम्बन्ध में आचार्य शुक्लजी ने अपने इतिहास मे जो कुछ लिख दिया, उससे भी बहुत भ्रम फैला है। आचार्य शुक्लजी स्वय विशुद्ध मर्यादावादी थे। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि वे रामभक्ति के रसिकोपासना-सम्बन्धी साहित्य को देखने का अवसर न पा सके। यहाँ तक कि गोस्वामी तुलसीदास जी की गीतावली के उत्तरकाण्ड मे आये हुए कुछ शृगारिक पदो में शुक्ल जी ने सूरदासजी की शृंगारिक रचना का अनुकरण माना और इस प्रकार लगभग चार सौ वर्ष के इस सुविकसित साहित्य के सम्बन्ध में अपने स्वच्छन्द दृष्टिकोण का परिचय दिया। इस सम्पूर्ण साहित्य को अमर्यादित बताकर अलग कर देना साहित्य के अध्येता के लिए शोभा नही देता। भगवान् राम के दिव्य पुनीत चरित को और उनकी दिव्य लीलाओ को एक सीमा मे बाँधना उचित नही प्रतीत होता। निश्चय ही यदि शुक्ल जी यह सारा साहित्य देखने का अवसर पा सके होते, तो इसके सम्बन्ध में उन्होने जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्हे सम्भवत बदलना पडता।

स्वामी मधुराचार्य से लेकर श्री रूपकला जी तक अनेक सन्त-महात्माओ और अनुभवी साधको ने रसिकोपासना मे अपने अनुभव को बडी ही भव्य सुन्दर शैली में व्यक्त किया है और हजारो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमे यह उपासना-साहित्य विद्यमान है और जिसका अध्येता कभी घाटे में नही रहेगा। साहित्य के अध्ययन के लिए अपनी मान्यताओ और निजी राग-द्वेष से मुक्त हो जाना अनिवार्यत आवश्यक है। साहित्य का इतिहास लिखने के लिए तो तटस्थता और राग-

'रामभक्ति-साहित्य मे मधुर उपासना'



ग्रंथकार

निवेदन

भगवान् की कृपा और सन्त-महात्माओ के आशीर्वाद से यह ग्रन्थ पूरा हुआ और इसे आज पाठको के हाथ मे देते हुए मुझे अपूर्व प्रसाद की अनुभूति हो रही है। अवश्य ही इस ग्रन्थ में सन्त-महात्माओ का अनुभव है और मैंने यथासम्भव उसे एक ढग से सजाकर प्रस्तुत कर दिया है। सन्त तुकाराम के शब्दो मे मैं कह सकता हूँ—"सन्तो की उच्छिष्ट उक्ति है मेरी वाणी। जानूं उसका भेद भला मैं क्या अज्ञानी।"

रामभक्ति-साहित्य मे मधुर उपासना-सम्बन्धी जो कुछ भी काव्य है, वह अब तक प्राय उपेक्षित रहा है। इसके कई कारण हो सकते हैं। परन्तु, मेरी दृष्टि मे इसका मुख्य कारण यह है कि रामभक्ति-साहित्य की धारा मर्यादावादिनी रही है और इसलिए प्राय. ऐसा मान लिया जाता रहा है कि उसमे शृगारोपासना के विकास के लिए कम अवकाश है या है ही नही। विद्वानो ने इस रसिकोपासना के साहित्य को बडी ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा। इस साहित्य के सम्बन्ध में आचार्य शुक्लजी ने अपने इतिहास मे जो कुछ लिख दिया, उससे भी बहुत भ्रम फैला है। आचार्य शुक्लजी स्वयं विशुद्ध मर्यादावादी थे। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि वे रामभक्ति के रसिकोपासना-सम्बन्धी साहित्य को देखने का अवसर न पा सके। यहाँ तक कि गोस्वामी तुलसीदास जी की गीतावली के उत्तरकाण्ड में आये हुए कुछ शृगारिक पदो मे शुक्ल जी ने सूरदासजी की शृगारिक रचना का अनुकरण माना और इस प्रकार लगभग चार सौ वर्ष के इस सुविकसित साहित्य के सम्बन्ध में अपने स्वच्छन्द दृष्टिकोण का परिचय दिया। इस सम्पूर्ण साहित्य को अमर्यादित बताकर अलग कर देना साहित्य के अध्येता के लिए शोभा नही देता। भगवान् राम के दिव्य पुनीत चरित को और उनकी दिव्य लीलाओ को एक सीमा मे बाँधना उचित नही प्रतीत होता। निश्चय ही यदि शुक्ल जी यह सारा साहित्य देखने का अवसर पा सके होते, तो इसके सम्बन्ध में उन्होने जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्हे सम्भवत बदलना पडता।

स्वामी मधुराचार्य से लेकर श्री रूपकला जी तक अनेक सन्त-महात्माओ और अनुभवी साधको ने रसिकोपासना मे अपने अनुभव को बडी ही भव्य सुन्दर शैली में व्यक्त किया है और हजारो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें यह उपासना-साहित्य विद्यमान है और जिसका अध्येता कभी घाटे में नही रहेगा। साहित्य के अध्ययन के लिए अपनी मान्यताओ और निजी राग-द्वेष से मुक्त हो जाना अनिवार्यत आवश्यक है। साहित्य का इतिहास लिखने के लिए तो तटस्थता और राग-

द्वेपशून्यता एक अत्यन्त आवश्यक गुण माना जाना चाहिए। अपनी निजी मान्यताओ की दृष्टि से देखने पर साहित्य का स्वस्थ और स्वच्छ रूप हमारे सामने नही आ सकता। अस्तु,

लगभग वीस-बाईस वर्ष पूर्व मुझे एक हस्तलिखित पोथी अपने प्रिय सुहृद् डा० राजवली पाण्डेय (प्रिन्सिपल, कालेज ऑव इण्डालॉजी, काशी-हिन्दूविश्वविद्यालय) से मिली, जिसका नाम है 'भक्तिरसामृतार्णव'। वह पत्राकार लगभग छ सौ पृष्ठो मे है और जो १७ वी शती के अन्तिम भाग में लिखी गई है। उसमे रामभक्ति और कृष्णभक्ति की अष्टयाम-उपासना पर अलग-अलग पदो का सकलन किसी भक्त ने किया है, जिसने अपना नाम देना उचित नही समझा। इस पोथी को लिपि की कठिनाई से पढे जाने मे लगभग छ महीने लगे। परन्तु, यह परिश्रम व्यर्थ नही गया। क्योकि, एक बात बहुत स्पष्ट रूप से सामने आई कि कृष्णभक्ति की तरह रामभक्ति की भी अष्टयाम-उपासना का एक सुव्यवस्थित रूप रखा जा सकता है। परन्तु, काल-प्रवाह में वह विचार जैसे खो-सा गया और इस सम्बन्ध में कुछ आगे करने की रुचि न रही। परन्तु, भक्तिरसामृतार्णव मेरे पीछे पडी रही। मैने उसका साथ छोड दिया, परन्तु वह मेरे साथ लगी रही। और जहाँ भी जाता था, मेरी पेटी मे मेरे साथ-साथ घूमती रही।

लगभग चार वर्ष पूर्व काशी मे स्वनामधन्य महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ जी कविराज के दर्शनो के लिए गया। पूज्य श्री कविराज जी महोदय से कुछ लिखने का आदेश माँगा, परन्तु क्या विषय हो, इसका निर्णय न हो सका। बात वही समाप्त हो गई होती, यदि उसी दिन मेरे बाल्यबन्धु और हिन्दी-साहित्य के गौरवस्तम्भ प० हजारीप्रसाद द्विवेदी के दर्शन न हुए होते। आचार्य द्विवेदीजी ने यह राय दी कि रामभक्ति साहित्य की मधुर उपासना पर अभी तक ठीक से विचार नही किया गया है और यह साहित्य बहुत कुछ तिरस्कृत और उपेक्षित पडा है। इसीलिए, इसी पर कुछ लिखा जाना चाहिए। हम दोनो महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज जी के यहाँ गये। उन्होने कृपापूर्वक स्वीकृति प्रदान कर दी।

आरम्भ मे तो इस कार्य को बहुत सुगम और सरल समझा था, पर जैसे-जैसे मै गहराई में उतरता गया, मेरी कठिनाइयाँ बढती गई। इसमे सन्देह नही कि श्री कविराज जी का वरद हस्त मेरे मस्तक पर था, और भाई हजारीप्रसाद जी का हाथ मेरी पीठ पर था। जहाँ कही भी भटक या भरम गया, वही उन दोनो की सहायता सदा मेरे साथ रही। यह निस्सकोच स्वीकार करना चाहिए कि जो कुछ विचार इस ग्रन्थ मे किये गये है, उन पर यहाँ से वहाँ तक श्री कविराज जी की छाप है। उन्ही से सुनी बातो का आधार लेकर यथाश्रुत और यथागृहीत मैने अपने विचार प्रकट किये है। इस ग्रन्थ के प्रणयन मे आदि से अन्त तक श्री कविराज जी और श्री द्विवेदीजी का हाथ रहा है। परन्तु, मेरा काम बहुत कठिन हो गया होता और शायद मै इसे बीच में ही छोडकर भाग गया होता, यदि श्री हनुमत्-निवास के महात्मा रामकिशोर शरण जी और श्री प्रमोद रहस्यवन (अयोध्या) के स्वामी परमानन्द जी का सहारा न मिला होता। इन दोनो कृपालु महात्माओ ने उन्मुक्त

रूप से इस कार्य मे मेरी सहायता की। और, इनके यहाँ प्राचीन हस्तलिखित अत्यन्त दुर्लभ ग्रन्थो का जो सग्रह है, उसे देखने और नोट लेने की स्वतन्त्रता प्रदान कर मेरा अनन्त उपकार इन दोनो ने किया है। अयोध्या मे मणिपर्वत पर श्री रामकुमार दास जी के पास ऐसे ग्रन्थो का एक खासा अच्छा सग्रह है। उनके पुस्तकालय से भी मुझे लाभ हुआ। परन्तु, स्वामी परमानन्द जी और महात्मा रामकिशोरशरण जी की सहायता के बिना मेरा काम कभी पूरा नही हो पाता। आरम्भ मे श्री रूपकलाकुञ्ज के श्री जनकदुलारीशरण जी ने भी इस कार्य मे मेरी वडी सहायता की थी। मुझे दु ख है कि इस ग्रन्थ के पूरा होने के पहले ही उनका साकेतवास हो गया। इस ग्रन्थ के सम्वन्ध मे गालवाश्रम (जयपुर), चित्रकूट, काशी, अयोध्या, जनकपुर (मिथिला) आदि कई स्थानो मे भ्रमण करने का अवसर मिला। अनेक महात्माओ ने अनेक प्रकार से मेरी इसमे सहायता की। काशी के सकटमोचन के महात्मा इस रस के उपासक है। और, उनसे इस उपासना की परम्परा को प्राप्त करने मे वडी सहायता मिली। निश्चय ही सवके मूल मे भगवान् की कृपा रही है जिसके कारण ही अत्यन्त गुप्त और दुर्लभ हस्तलिखित साहित्य के अवलोकन-अनुशीलन का अवसर मिला। श्रावणकुञ्ज (अयोध्या) से भुशुण्डी रामायण की मूल हस्तलिखित प्रति, जिसमे ६०००० अनुष्टुप् श्लोक के छन्द है, प्राप्त करने मे वडी कठिनाई हुई। उस समय यदि 'कल्याण'-सम्पादक स्वनामवन्य पूज्य श्री भाई जी श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार ने मेरी सहायता नही की होती, तो इस ग्रन्थ के देखने से मैं वञ्चित रह जाता। अन्त मे गीता प्रेस ने इस पूरी पोथी का फोटो-स्क्रिप्ट तैयार कर लिया और अव सम्भवत वह अनमोल ग्रन्थ सवके लिए उपलब्ध हो सकेगा। सैकडो ऐसी पुस्तके, जो सैकडो वर्षो से वेठन मे वँधी चली आ रही है और जिनका एक मात्र उपयोग धूप, दीप और आरती दिखलाकर पूजन के सिवा और कुछ नही है मैने देखी, पढी और नोट लिये। पूजा की पुस्तको से नोट लेना साधु-महात्माओ की दृष्टि मे एक वडी अटपटी-सी वात थी। परन्तु, भगवान् की कृपा-शक्ति से यह कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। अवश्य ही, चित्रकूट और अयोध्या मे, गलतागद्दी (जयपुर) और जनकपुर मे अभी ऐसे अनेक ग्रन्थ होगे जो रसिकोपासना साहित्य के हृदयगम के लिए अनिवार्यत आवश्यक होगे। जिज्ञासुओ को इनका पता लगाना चाहिए।

रामभक्ति के रसिकोपासना के सतो का एक विशेष अभिज्ञान यह है कि वे तिलक मे श्री के नीचे बिन्दी लगाते है। प्राय रामरज मे रँगे वस्त्र धारण करते है, गले में नाना प्रकार के तुलसी के आभूषण पहनते है। हल्दी का तिलक लगाते है और मस्तक को श्री युगलनाम से अकित करते है। लीला-विहार में मिथिला भाव, अवध भाव और चित्रकूट भाव मुख्य है और इसीके आधार पर 'स्वसुखी', 'तत्सुखी' और 'चित्सुखी' उपासना का क्रम चलता है। जैसे भक्तो ने भगवान् श्री-कृष्ण को मथुरा में पूर्ण, द्वारिका मे पूर्णतर और वृन्दावन मे पूर्णतम माना है उसी प्रकार यहाँ भी भगवान् राम को अवध मे पूर्ण, मिथिला में पूर्णतर और चित्रकूट मे पूर्णतम माना गया है।

रसिकोपासना के अधिकाश उपासक चित्रकूट भाव से अष्टयाम भजन करते है, जहाँ परकीया रति की पराकाष्ठा है अवश्य ही यह स्वीकार करना होगा कि इस उपासना के साहित्य में कुछ अनधिकारियो द्वारा विकृति आई है, पर उससे विचक कर यदि हम आगे खडे हुए और इसके स्वस्थ साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन से वचित रह गये तो यह हमारा दुर्भाग्य होगा । प्राय इसी कारण इस साहित्य के प्रति घोर अन्याय हुआ है । परन्तु देखता हूँ, अव इधर इस ओर विद्वानो का ध्यान जाने लगा है और इस साहित्य का अनुशीलन अपेक्षाकृत विशेष अभिरुचि और सहानुभूति के साथ होने लगा है। यह शुभ लक्षण है।

लगभग डेढ वर्ष सामग्री-सकलन करने मे लग गये। जिसमे हजारो मील की यात्रा और हजारो रुपयो का व्यय हुआ। परन्तु, मै हरि-कृपा से सकल्प बाँधे हुए था कि इस कार्य को पूरा करके ही दम लूँगा। भगवान् भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु है और मेरी चाह को उन्होने अपनी प्रीति से अभिसिंचित कर दिया। लगभग डेढ वर्ष तक काशी मे रहकर, गगाजल का सेवन कर, इस ग्रन्थ को मैने पूरा किया। जैसे-जैसे अध्याय लिखकर टाइप होते गये, वैसे-वैसे श्री कविराज जी और श्री द्विवेदी जी को इसे दिखाता गया। दोनो महानुभावो ने बडे स्नेह और सहानुभूति से इसमें मेरा पथ-प्रदर्शन किया। प्रेस-कॉपी तैयार होने के पूर्व मै इसे कुछ और अनुभवी सन्तो तथा रसिकोपासको को दिखला लेना चाहता था। मेरे सामने स्वामी श्री शरणानन्द जी महाराज, श्री अखण्डानन्द जी महाराज और स्वामी श्री चक्रधर जी थे। पाण्डुलिपि की एक प्रति श्री कविराज जी के पास देखने को भेजी। स्वामी चक्रधर जी महाराज ने वडे प्रेम से आरम्भ के दो अध्याय देखे और उनके आदेश के अनुसार उसमे आवश्यक सशोधन के साथ आवश्यक परिवर्त्तन और परिवर्द्धन भी किये। श्री कविराज जी तो आदि से अन्त तक सूत्रधार ही रहे। अत्यन्त समयाभाव होने पर भी भाई श्री द्विवेदीजी समय-समय पर अपने अमूल्य सुझावो से मेरा पथ प्रकाशित करते रहे। इस तीन वर्ष की अवधि को जब मै पीछे मुड कर देखता हूँ, तब पग-पग पर भगवान् की कृपा और सन्तो के आशीर्वाद के चमत्कारिक प्रभाव के दर्शन होते है। ऐसा लगता है कि प्रभु ने मुझ जैसे अपात्र और अज्ञ को निमित्त बनाकर अपना कार्य स्वय अपने ही सम्पन्न किया।

इस ग्रन्थ को लेकर कई बातें मन की मन में ही रह गईं। मै चाहता था कि इस सम्पूर्ण साहित्य का रस, छन्द, अलकार आदि की दृष्टि से एक विधिवत् साहित्यिक मूल्याकन किया जाता। मैने यह भी सोचा था कि कृष्णभक्ति की मधुर उपासना के साथ-साथ सूफी मधुरोपासना और ईसाई मधुरोपासना की एक तुलनात्मक समीक्षा रामभक्ति की मधुर उपासना के साथ की जाय। मेरे मन में एक यह भी वासना थी कि इस सम्पूर्ण साहित्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय। परन्तु, समय के सकोच से और जीवन की घोर कार्य-व्यस्तता के कारण ये अरमान मेरे मन में ही रह गये। भगवान् की इच्छा हुई, तो दूसरे सस्करण में इन प्रसगो का सन्निवेश हो सकेगा। लगभग तीन वर्ष तक ग्रीष्मावकाश और पूजावकाश में, डा० वी० एल्० आत्रेय (काशी) के 'आत्रेय-निवास'

मे विल्ववृक्ष के नीचे उस एकान्त कमरे मे रहकर इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। डा० आत्रेय ने जिस स्नेह के साथ मुझे अपने सत्सग का लाभ दिया, वह आजीवन चिरस्मरणीय रहेगा। बन्धुवर डा० राजवली पाण्डेय और डा० रामअवध द्विवेदी ये दोनो ही मेरे सतीर्थ है और इन दोनो का स्नेह और सहयोग सदा मुझे प्राप्त रहा।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने जिस स्नेह और सौहार्द का परिचय दिया है, उसे मैं कभी भूल नही सकूँगा। यह ग्रन्थ इतना शीघ्र और इतनी सुन्दरता से प्रकाशित हो सका, इसका सारा श्रेय परिषद् को है। गीता प्रेस (गोरखपुर) ने चित्र छापकर बहुत ही थोड़े समय में दे दिया, यह उसकी कृपा और मेरे प्रति अपनापन है।

इस ग्रन्थ को पूरा कर चुकने पर मुझे गगा-स्नान का आनन्द मिला है। मुझे इस वात की वडी प्रसन्नता है कि 'कल्याण'-सम्पादक पूज्य भाई जी श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार की दृष्टि से यह ग्रन्थ पूत हो चुका है और परमगुरुदेव ऋषिकल्प महामहोपाध्याय प० श्री गोपीनाथ कविराज जी ने इसका समर्पण स्वीकार किया है। मेरा इतना समय भगवान् की लीलाओ के रसास्वादन मे, सन्तो के सत्सग मे, और उनके अनुभवपूर्ण ग्रन्थो के अनुशीलन मे बीता, इसे मैं अपना परम-सौभाग्य मानता हूँ। सन्त महात्माओ से मैं यह भीख माँगता हूँ कि भगवान् के चरणो मे सदा मेरी प्रीति वढती रहे।

रसिक सम्प्रदाय की उपासना तथा उसके साहित्य पर हिन्दी मे यह प्रथम प्रयास है। निश्चय ही, अनजान में इसमें अनेक भूलें रह गई होगी। सन्त महात्माओ, विद्वान् समालोचको तथा साहित्यिक बधुओ से मेरा नम्र निवेदन है कि मेरी भूलों को वतलाने की कृपा करें, ताकि मैं अगले सस्करण में उनका परिमार्जन कर सकूँ।

हरि ओ तत्सत् श्रीकृष्णार्पणमस्तु

सचिवालय
पटना, जानकी-नवमी
संवत् २०१४ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

विषय-विवरण

पहला अध्याय

रागमयी भक्ति और उसकी वैष्णव-परम्परा

दूसरा अध्याय

मधुर रस का स्वरूप और उसकी व्यापकता

जड जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन, चिज्जगत् के रस और जड जगत् के व्यापार, मधुर रस के आश्रय और विषय, मधुर रस की आत्मा, स्वकीया, परकीया, परकीयाभाव की रसात्मक उत्कृष्टता, नित्यगोलोक और नित्यचिन्मयी लीला, ज्योतिर्मय ब्रह्मधाम, व्रज-सुन्दरियो के प्रकार-भेद, सखी-भेद, व्रजरस, नायक भेद, सहायक भेद, परकीया में रस की उत्कृष्टता क्यो ? कृष्ण रति के उद्दीपन विभाव, व्रजवासी भाव, प्रसाधन, अन्यान्य, रति के अनुभाव, स्थायीभाव, ३३ व्यभिचारी भाव, मुख्य भक्ति रस के रग आदि, गौण भक्ति-रस, उद्दीपन-विभाव की विशेषता, अनुभावो की विशेषता, मधुरा रति के भेद (नायिका की दृष्टि से), मधुरा रति के भेद (भावो के अनुसार), घृतस्नेह और मधुस्नेह, मान, प्रणय, प्रणय के भेद तथा विकासक्रम, राग और उसके भेद, भाव या महाभाव, अधिरूढ, पुनर्मादन, समजस पूर्वराग की दस दशाएँ, साधारण पूर्वराग की छह दशाएँ, नित्य लीला मे नित्यसयोग, सयोग शृगार के दो भेद, सयोग शृगार के भेद-उपभेद, लीला के भेद, मूल में एक आनन्द के लिए दो, मधुररस की उपासना की व्यापकता, सहजसाधनाओ की पृष्ठभूमि, समरस की अवस्था, गुह्य साधना की मान्यताएँ, पुरुषतव, नारीतत्व, सुषुम्ना-साधना, शिवतत्त्व, शक्तितत्त्व, बौद्धो का 'सहज' वैष्णव सहजिया में राधाकृष्ण-तत्त्व, नाथपथ की उपासना सूर्यचन्द्रतत्त्व।

(पृ० स० २२–३७)

तीसरा अध्याय

भारतीय अंतरंग (एसाटरिक) धर्मसाधनाओ में मधुर भाव

(क) बौद्धसहजिया

बौद्धधर्म की लोकप्रियता, बौद्धयोगाचार में अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मजुश्री, दो शाखाएँ हीनयान तथा वज्रयान 'सगीति', भगवान् बुद्ध का 'मानुसीतनु', गुह्य साधना का प्रवेश क्यो और कैसे ? महायान, मत्रयान, वज्रयान, मनोवैज्ञानिक कारण, आदि बुद्ध के धर्मकाय, सभोगकाय, निर्माणकाय, सहजकाय, असग और नागार्जुन, तत्र की प्राचीनता, तीन भाव और सात आचार,—पशुभाव, वीरभाव और दिव्य भाव—वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार तथा कौलाचार, 'धारिणी' और उसके भेद, बौद्ध साधना में मिथुन योग का प्रवेश क्यो और कैसे ? पचमकार का रहस्य, सहजावस्था ही महा-सुख, सुखराज-महामुद्रा की अवस्था है, गुरु कृपा का स्वरूप-वैशिष्ट्य, 'धर्ममेघ' की स्थिति,

शून्यता और करुणा, प्रज्ञा और उपाय, अवधूतिका, युगनद्धतत्त्व, शून्यता और करुणा, 'समरस' का वास्तविक अर्थ, 'सुखावती', सहज विलास की स्थिति।

(ख) सिद्ध-सम्प्रदाय और रसेश्वर-दर्शन में मधुर भाव

रसायन, सूर्य-चन्द्र सिद्धान्त, गीता का मत, बृहज्जाबालोपनिषद् में सूर्यचद्र तत्त्व; शिव-शक्ति सामरस्य, अमृतरसपान, खेचरी मुद्रा, सूर्यचन्द्र—स्त्री-पुरुष भाव; नाथ सिद्ध और बौद्ध सिद्धाचार्य, सिद्ध देह-दिव्य देह, वैदव देह--शाक्त देह।

(ग) कापालिक, नाथ तथा संत-साधना में मधुर भाव

'सहज' की परम्परा, 'सहज' का सर्वमान्य अर्थ, पिण्ड ही ब्रह्माण्ड है, कौलमत मे सहज साधना, बौद्ध सिद्ध और कौलाचार, कुल और अकुल, शिवशक्ति अविच्छेद्य, योग और मोक्ष, जीव के पाँच बन्धन, कुण्डलिनी योग की साधना, चक्र-भेदन की प्रक्रिया, पशुभाव, वीरभाव, दिव्यभाव, सात प्रकार के आचार, कापालिक मत में सहज साधना, वज्रयान मे और कापालिक मत में सहजानद या महासुख, बौद्धमत में सहज साधना का प्रवेश, कामोपभोग का साधना-क्षेत्र में प्रवेश, ललना-रसना-अवधूती, उष्णीप-कमल, सहजानन्द, सहज साधनाओ का मूल अर्थ, श्री सुन्दरी साधना, कबीर का 'सहज', भक्त और पतिव्रता सती, दादू की मधुर साधना, नीलाम्बर-सम्प्रदाय।

(घ) वैष्णव सहजिया

प्रेम की परकीया रति, 'आनन्द भैरव' मे सहज-साधना का उल्लेख, परकीयारति मे सहज उपासना, रस और रति मदन और मादन, ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्, सत् चित् आनन्द, सधिनी, सवित्, ह्लादिनी, भोक्ता भोग्या, लीला के तीन प्रकार, वन वृन्दावन, मन-वृन्दावन, नित्य वृन्दावन, स्वरूप लीला और रूपलीला, 'सहज', आरोप-साधना, आरोप-तत्त्व, रति और रस, रति के तीन भेद समर्था, समञ्जसा, साधारणी, प्रेम-सिद्धि, साधक की तीन कोटियाँ—प्रवर्त्त, साधक, सिद्ध, प्रेम साधना की आनन्दमयी स्थिति।

चौथा अध्याय

सिद्धदेह और लीला-प्रवेश

रागानुगाभक्ति मे प्रवेशाधिकार, लीलाविलास का आस्वादन, भावभक्ति, प्रेमाभक्ति; प्रेम ही परम पुरुषार्थ, सखी भाव में प्रवेश, संबध-भाव, वयस, नाम, रूप, वास, सेवा;

सिद्ध-देह क्या है ? अष्ट सखी अष्टमजरी के नाम, वर्ण, वस्त्र, वय, दिशा, सेवा, साधक-देह और सिद्ध-देह अथवा भाव-देह और सिद्ध-देह, प्राकृत देह और उसके भेद स्थूलदेह, सूक्ष्म देह, कारण देह महाकारण देह, 'स्वभाव', भाव-देह, स्वभाव-देह, स्वरूप-देह, 'स्वभाव' भाव और प्रेम, रस और ज्योति, भावदेह, प्रेमदेह, सिद्धदेह, नित्यलीला, चिन्मय राज्य।

(पृ० स० ७८–८८)

पाँचवाँ अध्याय

अवतारतत्त्व तथा रामोपासना

सभी धर्म साधनाओ में अवतार-तत्त्व, भगवत्स्वरूप के तीन प्रकार, अवतार के भेद पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार, स्वयरूप, तदेकात्म रूप, आवेश, अवतार के सामान्य और विशेष हेतु, अवतारो के भेद-प्रभेद, प्रथम पुरुप, द्वितीय पुरुष, तृतीय पुरुष, गुणावतार, लीलावतार, मन्वन्तर अवतार, युगावतार, पूर्णावतार, अवतार-तत्त्व का मूल सिद्धात, मानवीय रस, अवतारवाद में वैज्ञानिक विकासवाद, भागवत-धर्म का क्रम-विकास, रामभक्ति की ऐतिहासिकता, रामोपासना का क्रम विकास, हस परम-हस, उपासना-तत्त्व का आदिहेतु, ऋग्वेद का विराट् पुरुष, महाभारत का नारायणीय उपाख्यान, भागवतधर्म, सात्त्वत धर्म, रामोपासना के आदि प्रवर्त्तक शिव, रामोपासना वैदिकीया तान्त्रिकी ? 'सहस्रगीति' में मधुरभाव, भगवान् राम की मधुरमूर्त्ति, रामभक्ति धारा में मर्यादा की मुख्यता शरणागति एकमात्र साधन, वैष्णवो का पचकाल, दास्यभाव और शरणागति, दास्य और मधुर का सन्निवेश, भागवत पुराण का प्रभाव।

(१) **शिवसंहिता : एक विहगम दृष्टि**—ऐश्वर्य और माधुर्य, माधुर्य अधिकार, भाव-प्रकाशन, भगवान् का सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, रस के मूर्त्तिमान् विग्रह, स्वरूप-प्रकाशन, 'रसो वै स', शृगार-साधना का स्वरूप-प्रकाश, भगवान् की प्रेमपिपासा, 'राम' शब्द का अर्थ, पारमार्थिक तत्त्व, अयोध्या नित्य रासस्थली।

(२) **लोमश-सहिता की दृष्टि में**—शृगार-राज्य मे प्रवेश, चार मुख्य सखियाँ, चन्द्रकला रासरस की आचार्या।

(३) **श्री हनुमत्सहिता : एक विहगम दृष्टि**—प्रेमामृत रसावेश, रास-रचना, अर्थ-पचक, उज्ज्वल भक्ति-रस, उज्ज्वलभक्ति-रस का आश्रय, आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव, सात्त्विकभाव, स्थायीभाव, लीलाविलास, शृगारी रामभक्ति का आधार ग्रथ बृहत् कौशल खण्ड, गोस्वामी जी में माधुर्य भाव की झलक, गीतावली में केलिगृह का वर्णन, गीतावली में केलिगृह का दर्शन, 'लता, प्रिया, अलि, सखी'– मर्यादा में शृगार, शृगार में मर्यादा।

(पृ० स० ८९–११८)

छठा अध्याय

रामोपासना की रसिक-परम्परा

श्रीप्रेमलता जी की जीवनी में रसिक-परम्परा, रसिक-साधना का नाम, निजगुरु की परम्परा, ग्रियर्सन की सूची, तपसीजी की छावनी में हस्तलिखित ग्रथ में प्राप्त परम्परा, 'रहस्य-मय' में प्राप्त रसिक-परम्परा, 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' मे प्राप्त परपरा, 'मत्रराज-परपरा' में प्राप्त परम्परा, मौलाना रशीद की तजकी रतुलफ्क्रा, श्रीसम्प्रदाय की दो शाखाएँ, 'महा रामायण' में प्राप्त परम्परा, श्री विश्वभरोपनिषद् की टीका मे प्राप्त परपरा, श्री सीतोपनिषद् में प्राप्त परम्परा, श्री रामनवरत्न सार सग्रह में प्राप्त परम्परा, 'कल्याण कल्पद्रुम' में प्राप्त परम्परा, 'प्रपत्ति रहस्य' में प्राप्त परम्परा, श्रीरूपकला जी के 'भक्ति सुधास्वादतिलक' में प्राप्त परपरा, जयपुर गालवाश्रम की परम्परा, मधुराचार्य, श्रीसुन्दरमणि सन्दर्भ, श्रीमधु-राचार्य जी की परम्परा, रसिक प्रकाश भक्तमाल, श्रीअग्रदास स्वामी, रसिक-सम्प्रदाय के मूल तत्त्व। (पृ० स० ११९–१४०)

सातवाँ अध्याय

रसिक-परम्परा का साहित्य

उपनिषद्-ग्रन्थ संस्कृत में

रसिकोपासना का साहित्य उपेक्षित क्यो? श्रीरामतापनीयोपनिषद्, श्री विश्वम्भ-रोपनिषद्, श्रीसीतोपनिषद्, सीता का स्वरूप एव प्रभाव, सीता की इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति, श्रीमैथिलीमहोपनिषद्, श्री रामरहस्योपनिषद्।

संहिता-ग्रन्थ—श्रीहनुमत्सहिता, श्रीशिवसहिता, श्री लोमश सहिता, श्रीवृहद्ब्रह्म-सहिता, श्री अगस्त्य-सहिता, श्री वाल्मीकि-सहिता, श्रीशुक-सहिता, दिव्य-चित्रकूट, गोलोक अयोध्या का प्रतिविम्व, श्रीवसिष्ठ सहिता, दिव्य अयोध्या, दिव्य अयोध्या के वारह वन चार पर्वत, सदाशिव सहिता, सप्तावरण, श्रीमहाशभु-सहिता, हिरण्यगर्भ-सहिता, महासदाशिव-सहिता, ब्रह्मसहिता।

स्तवराज और गीति—श्रीरामस्तवराज, श्री जानकीस्तवराज, श्री जानकी गीत, श्रीसहस्रगीति।

रामायण—श्रीवाल्मीकीय रामायण, आनन्दरामायण, महारामायण, आदि रामायण; रामायण-मणिरत्न, मैन्द रामायण, मजुलरामायण, भुशुडी रामायण।

नाटक, उपाख्यान, लीला-चरितकाव्य—महानाटक अथवा हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघवम्, मैथिली-कल्याण, उदार राघव, जानकी हरण, सत्योपाख्यान, बृहत् कौशल-खण्ड, माधुर्य केलिकादम्बिनी, राम लिंगामृत।

प्रमाण अथवा सिद्धान्त-ग्रन्थ—श्रीसुदरमणि सदर्भ, श्रीरामतत्त्व प्रकाश, श्री राम-नवरत्नसार सग्रह, श्रीसीतारामनाम प्रताप-प्रकाश, श्रीरामतत्त्वभास्कर, उपासनात्रय सिद्धान्त, श्रीरामपटल, शृगारिक खण्ड काव्य, मेघदूत-काव्य के अनुकरण पर लिखित छह दूतकाव्य–हस-सदेश अथवा हसदूत, भ्रमरदूत, भ्रमर सदेश, कपिदूत, कोकिलसदेश और चन्द्रदूत, गीत-गोविन्द के अनुकरण पर लिखित रामसीता सबधी-काव्य—रामगीतगोविन्द, गीताराघव, जानकी गीता, रामविलास, सगीत रघुनन्दन १८ वी शताब्दी, राघवविलास, रामशतक, समार्या-शतक, आर्यारामायण। (पृ० स० १४१–१८६)

आठवाँ अध्याय

रसिक-परम्परा का साहित्य

(हिन्दी में)

अष्टयाम, श्रीअदग्रस्वामीकृत 'भगवान् राम के सखा और सखी'—ध्यान, सखियो की सेवा का वर्णन, सोलह शृगार, ध्यान मजरी—(श्री अग्रस्वामी या अग्रदासजी)—श्रीरामका ध्यान, श्रीसीताजी का ध्यान, पार्षदो का ध्यान, रामाष्टयाम (श्रीनाभादासजी)—द्वादश-वन-वर्णन, महल की शोभा, अन्त पुर का वर्णन, अन्त पुरमे सखियो की सेवा, भोजन के समय नृत्य सगीत, शयन, नेह प्रकाश (महात्मा बाल अली जी)—सखियन की नामावली और सेवा, सखी और दासी में भेद, श्रीरामजी के वचन सीताजी के प्रति, रस-विलास, प्रेम-विलास, रूप-विलास, सखियो के वचन जानकी के प्रति, सखी-वचन राम के प्रति, सीता की छवि, प्रभाव-वर्णन, ध्यान मजरी (बाल अलीजी), लगन पचीसी (श्रीकृपानिवासजी), अनन्य चिता-मणि (श्रीकृपा निवासजी), रामरसामृत सिन्धु, रासपद्धति (महाराज कृपा निवासजी), भावनापचीसी (कृपानिवासजी)—श्री जानकी जी की सखियाँ और उनकी सेवा, श्रीरामजी की सखियाँ और सेवा, पदावली (श्रीकृपानिवास), श्रीस्वामी जनकराज किशोरी शरण 'श्री रसिक अली'—लिखित—सिद्धान्त मुक्तावली, सिद्धान्तानन्यतरगिणी, अमररामायण (सस्कृत), रहस्य रत्नमाला, सिद्धान्त चौतीसी, होलिका-विनोद, कवितावली, श्रीजानकी करुणा भरण, अध्यायत्रयी, दोहावली, आन्दोलन रहस्य दीपिका (श्रीरसिकअली), पञ्चशतक (श्रीरामचरणदास 'करुणा सिंधु'), विवेकशतक—रामरसामृतखण्ड—शोभा-वर्णन, रसमालिका

(श्रीरामचरणदास जी)—सिद्धान्त, वन-विहार, वसन्त-विहार, सखियो का नृत्य, शृगार, नृत्यविहार, जल-क्रीडा, हिंडोला; अष्टयाम पूजाविधि (श्रीरामचरण जी),—सखियो और सीता का शृगार, श्रीरामजी का शृगार, सखियो द्वारा सीता और राम का शृगार, युगल प्रिया पदावली, शृंगार रहस्यदीपिका, अष्टयाम (श्री जीवाराम 'जुगलप्रिया' जी), उज्ज्वल उत्कण्ठा-विलास (श्रीयुगलानन्यशरण 'हेमलता' जी), अर्थपञ्चक (श्रीयुगलानन्यशरण जी), श्री-जानकी सनेहहुलास शतक (श्रीयुगलानन्यशरण जी), सतसुख प्रकाशिका पदावली (स्वामी युगलानन्य शरण जी), श्रीसीतारामनाम परत्व पदावली (स्वामी युगलानन्यशरण जी), श्रीप्रेमपरत्वप्रभा दोहावली (श्रीयुगलानन्यशरणजी), श्रीलवकुशशरण लीलाविहारी जी—विरह-ज्वर, अष्टयाम-भावना, रूप-सुषमा, श्रीयुगलविनोद विलास—युगलविहार, उभय प्रवोधक रामायण (श्री बनादास), श्रीसीताराम झूलाविलास (श्रीरसरगमणि जी), श्रीराम-नामयशविलास, श्रीरामरूपयश विलास, श्रीसरयू रसरग-लहरी तथा अवधपञ्चक (श्रीरस-रगमणि), श्रीसीताराम शोभावली प्रेमपदावली (श्रीसीताराम शरण रामरसरग मणि)—अग-प्रत्यग-वर्णन, वसन-आभूषण वर्णन, ऋतुवर्णन आदि, श्रीरामशतवदना (श्री सीताराम शरण रामरसरगमणि), श्रीरामरसरगविलास (श्रीरामरसरगमणि),—श्रीराम का ध्यान वर्णन, श्रीसीताजी का ध्यान-वर्णन, श्रीसीताजी का प्रभाव-वर्णन, कनक भवन में प्रिया-प्रियतम की झाँकी, रामझाँकी विलास (श्रीरामरसरगमणि), सियवरकेलि-पदावली (श्री ज्ञानाअली सहचरि जी),—आत्म-परिचय, राम-जन्म की बधाई, जानकी जन्म की बधाई, लगन, जानकी नौरत्न माणिक्य (रामसखेविरचित), रामसखेकृत पदावली, नृत्यराघव मिलन (श्रीराम सखेजी),—रसिक लक्षण, नर्म सखा, श्रीसीतायन (श्रीरामप्रियाशरण प्रेमकली), बाल-विहार, अयोध्यावर्णन, श्रीकाष्ठजिह्वास्वामी के कुछ लीथो में छपे ग्रन्थ—श्रीजानकी मगल, श्रीराममगल, भूषण रहस्य, अश्विनीकुमार विन्दु, हनुमत विन्दु, श्यामलगन, श्यामसुधा, जानकी-विंदु, कृष्णसहस्र परिचर्या, गयाविन्दु, शिसा-व्याख्या (सस्कृत) साख्यतरग और वैराग्य प्रदीप; बृहद् उपासना रहस्य (श्रीप्रेमलता जी),—नाम प्रसग, रूप प्रसंग, धाम प्रसग, उपासक प्रसग—युगलोपासक, उपासना, पञ्चसस्कार प्रसग, अष्टयाम-भावना प्रसग, सवध का महत्त्व, रासकुञ्ज, गुह्य, रघुराजविलास (श्रीरघुराज सिंहजी)—महाराज, भजनरत्नावली (श्रीरामनारायण-दास)—भजन रत्नावली, सीता का रूप, राम का रूप, शृगारप्रदीप (श्रीहरिहर प्रसाद), सियारामचरण चन्द्रिका (कविराज लछिमन), श्रीरामचन्द्र विलास (श्रीनवलसिंह 'श्री शरण' युगल अलि), भावनामृत कादम्बिनी (श्रीयुगलमञ्जरीजी), समय रस वर्द्धिनी (श्रीसिया अली), नित्य रासलीला (श्रीसियाअली), श्यामसखे की पदावली, श्रीसीताराम शृगाररस (श्रीमहाराजदास जी)—दिव्य अयोध्या, श्रीरामप्रेमामजरी—प्रेममजरी विलास, युगलो-त्कठ-प्रकाशिका (जयपुर चन्देली के श्रीसीतारामशरण 'शुभलीला' जी) वैष्णवविनोद (श्री-

परिशिष्ट (क)

रामभक्ति-साहित्य में मधुर

पहला अध्याय

रागमयी भक्ति और उसकी वैष्णवपरंपरा

एक अनिर्वचनीय सच्चिदानन्द स्वरूप शाश्वत सत्ता विभु रूप मे व्याप्त है। उसके दो रूप है—एक निर्गुण निराकार निर्विकार स्वरूप और दूसरा निखिल ऐश्वर्य, माधुर्य, आनन्द, सौन्दर्य, अचिन्त्य अनन्त सद्गुणो का परम धाम स्वरूप। एक के ही ये सगुण स्वरूप अनेक है। उनके नित्य चिन्मय दिव्य धाम अनेक है, उनकी नित्य चिन्मय अगजगमोहिनी दिव्य लीला अनन्त है। उन दिव्य धामो मे वही व्यापक निर्गुण ब्रह्म सगुण हो कर नाना रूपो में नित्य क्रीडा किया करता है। जैसे निर्गुण स्वरूप विभु है वैसे ही सगुण स्वरूप भी सर्वगत है। सभी सगुण स्वरूप, उनकी सभी लीलाए सदा सर्वत्र व्याप्त है। देश-काल की कल्पना वहा नही जाती।

वह पूर्ण वस्तु अनन्त ऐश्वर्य-माधुर्यमय है। कारण कि उपास्य मे दो मुख्य गुण होते है–१—परत्व, २—सौलभ्य। परत्व है ऐश्वर्य और माधुर्य है सौलभ्य[1]। कही-कही ऐश्वर्य के तेज का विशेप प्रकाश है, कही-कही माधुर्य के सौन्दर्य की कमनीय कान्ति का। ऐश्वर्य में वे अपनी महामहिमा मे विराजमान है और जीव अपनी लघुता में घिरा हुआ। वे विभु है, जीव अणु। परन्तु दोनो में सबध है—स्वामी सेवक का। जीव का नित्य कैंकर्य, नित्य प्रपत्ति और अखण्ड शरणागति ही है इस सम्वन्ध का मूलाधार। इसमे वैधी भक्ति ही चलती है और वेदशास्त्रादि के निर्देश के आधार पर श्रवण कीर्तनादि से लेकर आत्मनिवेदन तक उसका क्रम-विकास होता है[2]। भाव के उदय होने तक यह 'विधि भक्ति' चलती है।

परन्तु भगवान् का माधुर्य जहा प्रधान है वहा 'रुचि भक्ति' अथवा रागमयी भक्ति का आविर्भाव होता है। रागमूला प्रवृत्ति के साधको के लिए रागमयी भक्ति है और विधिमूला प्रवृत्ति के साधनो के लिए वैधी भक्ति है। वैधी मे विधि निषेध का विशेष ध्यान और षोडशोपचार पूजा की वडी महिमा है। वैधी भक्ति का आचरण शास्त्र-निर्देश के अनुसार होता है। इसमें वैदिक क्रियाकलाप, वर्णाश्रमधर्म के नियमादि का पालन करते हुए प्रभु के प्रति कुछ भय, श्रद्धा तथा सभ्रम (Awe) का भाव-विशेष रहता है। यह ऐश्वर्य प्रधान भक्ति है। इसमें कर्म, धर्म पर

---

१ श्री मधुराचार्य का सुन्दरमणि संदर्भ पृ० ६।

२ श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चन वन्दन दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।

श्रीमद्भागवत ७. ५. २३।

विशेष आग्रह रखते हुए भजन की ओर भी मन रहता है। रागमयी भक्ति में विधि या विधान का सर्वथा परित्याग हो जाता है। ध्यान रहे रागभक्ति में विधि निषेध का परित्याग किया नही जाता, अपितु स्वत सहज ही हो जाता है। यहा भक्त अपने आन्तरिक भाव से ही प्रेरित होकर भगवान के साथ अपने सम्बन्ध के अनुसार अपने प्राणसखा परम प्रियतम को लाड लडाता है—कभी उसका सखा होकर, कभी प्राणप्रिया प्रियतमा होकर। वस्तुत यह रागमयी भक्ति हृदय की साधना है। यहा हृदय में ही हृदय के द्वारा हृदयेश्वर की रागमयी उपासना होती है। स्पष्ट शब्दो में यो कह सकते हैं कि भक्त के हृदय में भगवान् के लिए और भगवान् के हृदय में भक्त के लिए जो स्वाभाविक गाढ तृष्णा होती है वही है रागमयी भक्ति।

समस्त वैष्णव साहित्य में इस रागमयी भक्ति का सविशेष महत्ववर्णित है, कही प्रच्छन्न गुह्य रूप में, कही प्रकट व्यक्त रूप में। इस रागमयी भक्ति को 'परम गोपनीय' रहस्य कहा गया है[1]। यह गोपनीय क्यो है इसे यहा थोडे मे समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

वह शाश्वत तत्व शक्ति एव शक्तिमान् परस्पर अभिन्न होकर भिन्न और भिन्न होकर भी अभिन्न है। वस्तुत वे अभिन्न ही है। क्रीडा के लिए उनका भेद है। इसी भेद से व्यापक निर्गुण तत्त्व में सत् चित् आनन्द का भाव है और सगुण के साथ वही शक्ति सधिनी,सवित् और ह्लादिनी शक्ति के त्रिविध रूप में उपस्थित होती है। सगुण रूप की भाति ही ये शक्तिया भी नित्य, परस्पर अभिन्न तथा शक्तिमान् से अभिन्न है। नित्य अभेद और नित्य भेद तथा अभेद मे भेद और भेद में अभेद का यह शास्त्रीय ज्ञान ईश्वरीय वरदान है। अपौरुषेय रूप मे ही यह मनुष्य को प्राप्त हुआ है।

सैकडो जन्मो के जब दान, पूजनादि शुभ कर्मो का जब पुण्य उदय होता है तब विशुद्धान्त - करणवाले मनुष्य के हृदय में कृपापरवश प्रभु अपनी असीम करुणा में भक्ति का दान देते हैं। ध्यान रहे कि भक्ति में अपने पुरुषार्थ की अपेक्षा उनकी करुणा ही मुख्य कारण है। इसमें वैधी भक्ति तो ज्ञान का साधन है परन्तु रागानुगा भक्ति का उदय ज्ञान तथा विज्ञान के अनन्तर होता है। रागानुगा भक्ति साधन नही अपितु साध्य है। इस महा आनन्दप्रदायिनी स्वरूपा भक्ति का विषयालम्बन है स्वय आत्मास्वरूप भगवान्।

आत्यन्तिक स्नेह ही रागानुगा का स्वरूप है। निर्मल चित्त में पूर्ण वैराग्य का उदय होने पर तथा शुद्ध विज्ञान के अनन्तर रागानुगा भक्ति का आविर्भाव होता है। पाप रहित शुद्ध अन्त करण में भागवत धर्म के अनुष्ठान से भगवत्कृपा द्वारा सासारिक सभी वस्तुओ के प्रति तीव्र वैराग्य, सत् असत् पदार्थो का एव निज स्वरूप पर स्वरूपादिक 'अर्थ पचक' का यथार्थ ज्ञान प्रकट होता है, तत्पश्चात् भगवच्चरणारविन्दो में अनन्य अविचल अनुरागपूर्वक परम स्नेह स्वरूपा भक्ति

---

१ गोपनीय गोपनीय गोपनीय च सर्वदा

—श्री हनुमत्सहिता ७. ५

राजविद्याराजगुह्य पवित्रमिदमुत्तमम्
प्रत्यक्षावगम धर्म सुसुख कर्तमव्ययम। गीता

का स्वत अन्त करण में जो उदय होता है वही भक्ति रागानुगा या प्रेमाभक्ति के नाम से पुकारी जाती है। यह सर्वश्रेष्ठ अ श्च परम दुर्लभ है।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृगार भेद से रागानुगा के पाच प्रकार है। भाव का जैसे-जैसे विकास एव प्रगाढता होती जाती है वैसे-वैसे शान्त दास्य में, दास्य सख्य में, सख्य वात्सल्य में और वात्सल्य माधुर्य मे परिणत होता जाता है।परन्तु यह ध्यान रहे कि जैसे पृथ्वी जल अग्नि आदि पच तत्त्वो के क्रम विकास में हम जैसे जैसे आगे बढते है पिछले वाला तत्व भी उसमें सन्निहित रहता है उसी प्रकार भावोके विकास में जैसे जैसे हम आगे बढते है पिछले वाले भाव या भावो का अग भी सार रूप में बना रहता है—जैसे दास्य में दास्य है शान्त भी, वात्सल्य में वात्सल्य की मुख्यता है परन्तु है उसमें दास्य भाव भी इसी प्रकार शृगार में दास्य,सख्य, भाव ही है, प्रधानता है माधुर्य की। रस के विशेषज्ञो ने रस की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए बतलाया है कि शान्त और दास्य की परस्पर मैत्री है और सख्य वात्सल्य की इनसे तटस्थता है तथा उज्ज्वल रस से शत्रुता है। सख्य और उज्ज्वल की परस्पर मैत्री है। उज्ज्वल का शान्त और वात्सल्य से शत्रुता है सख्य से तटस्थता है। वात्सल्य का उज्ज्वल तथा दास्य रस से शत्रुता है।

रागानुगा भक्ति के और भी तीन अवान्तर भेद है— प्रेमा, परा, प्रौढा।

प्रेमा—श्रवण कीर्तनादि नवधा भक्ति का सम्यक् प्रकारेण, विधिपूर्वक, सन्त भक्त तथा सद्गुरु के शुभ सान्निध्य में रह कर सेवन करने से प्रभु के प्रति स्नेह-वृत्ति का उदय होता है जिसे 'प्रेमाभक्ति' कहते है। इसका इतना प्रभाव है कि भक्त के समस्त दोष-विकार और पाप-ताप दग्ध हो जाते है। वर्षा ऋतु में उमडी हुई नदी की तरह जो समुद्र की ओर प्रखर वेग में भागी जा रही है जब हृदय में प्रभु के प्रति भाव का प्रवाह उमडे तो उसे 'प्रेमा' कहते है।

परा—भगवान् के साथ किसी सबध विशेष में दृढतापूर्वक बध जाने पर जब भाव में पूर्ण परिपक्वता आ जाती है, भावना में स्थिरता आ जाती है और साधक उसी भावना में सर्वथैवतल्लीन हो जाता है और अन्य समस्त भावो एव व्यापारो का विस्मरण हो जाता है तो इस अनुभवात्मिका भक्ति को 'परा' कहते है। इसमें रति स्थिर हो जाती है।

प्रौढा—प्रौढा भक्ति परमात्मा की साक्षात्कारात्मक होती है। सबसे पहले रसराज का महामधुर रसास्वादन करने पर जब अपने दिव्य स्वरूप का क्रमश पूर्ण आवेश आ जाता है उसके पश्चात तीव्र विरहानल का उदय होता है। अन्त में सब वृत्तियो का एकान्त निरोध हो जाता है। निरोध के अनन्तर जो परमात्मा का साक्षात्कार होता है वही 'प्रौढा भक्ति' है। प्रेमा और परा भक्ति का दर्शन तो दास्य, सख्य, वात्सल्यादि रसो में होता है परन्तु प्रौढा भक्ति विशेषत एकमात्र शृगार रस में ही दृष्टिगोचर होती है। यह प्रौढा भक्ति ही वस्तुत परम पुरुषार्थ स्वरूपा साध्या भक्ति है। 'रस' शब्द का व्यवहार यद्यपि सब रसो में होता है परन्तु वास्तव में शृगार ही मुख्य रस है। और रसो में रसत्व गौण है। शृगार ही रसस्वरूप रसराज है[1]।

---

१ शृगारमेव रसनाद ररमामनाम — श्री मधुराचार्य

दिव्य साकेत धाम में युगल प्रभु के श्री अगो से कोटि-कोटि सखियो का आविर्भाव होता है। इन सखियो की कृपादृष्टि से ही प्रीतिरूपा भक्ति का उदय होता है तथा रसराज के उपासन में अधिकार लाभ होता है। साधना अथवा सुकृत तो उनकी शुभ दृष्टि को आकर्षित करने के लिए होता है। यथार्थ लाभ उनकी कृपा से ही होता है। वास्तविक लाभ का अर्थ है रसराज में प्रवेश का अधिकार, प्रिया प्रियतम का चिद्विलास तथा पुण्य विहार का परात्परतम दर्शन। इसे ही पाकर जीव कृतकृत्य हो जाता है, पूर्णकाम हो जाता है। यही वह स्थिति है जिसे उपनिषदें आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन, आत्मरमण, आत्माराम की स्थिति कहती है। अस्तु

परन्तु यहा प्रश्न उठता है कि जब उस परम प्रियतम के रूपरस या लीलारस या सेवारस का आस्वादन नारी-भाव या सखी-भाव से ही हो सकता है तो विचारा पुरुष क्या करे ? इस प्रश्न पर विचार कुछ विस्तार से हम अगले अध्याय में करेंगे। यहा इतना सकेत रूप में कह देना अभीष्ट है कि जीव न तो स्त्री है, न पुरुष, न नपुसक। जो-जो शरीर धारण करता है वह शरीर धर्मानुसार उसका अभिमानी होता है[1]। और इसी प्रकार परमात्मा भी न स्त्री है न पुरुष, न कुमार, न कुमारी। विश्व का सब कुछ वही है[2]। अतएव भक्त और भगवान् के बीच कोई भी और सभी प्रकार का सम्बन्ध सभव है—स्वामी सेवक का, सखा सखा का, पिता पुत्र या पुत्र माता का, पति पत्नी या पत्नी पति का। आगे हम यह दिखायेंगे कि जीवमात्र भगवान का भोग्य है, भोक्ता है एकमात्र प्रभु ही। जीव भोक्ता हो नही सकता, भोक्ता होने की उसमें सामर्थ्य नही है। वह प्रभु के कृपा-प्रसाद से ही प्रभु का दिव्य भोग्य है। भोक्ता, भोग्य और प्रेरिता का सम्यक् ज्ञान ही परम ज्ञान है[3]। वास्तव में भोक्ता भोग्य का विषय बडा ही गभीर एव गोपनीय है। इसकी थोडी बहुत चर्चा हम अगले अध्याय में सकेत रूप से प्रस्तुत करेंगे। अस्तु

रागमयी भक्ति के क्रम-विकास के अध्ययन में हम दक्षिण भारत के सबसे प्राचीन आलवार वैष्णव भक्तो के साहित्य में स्पष्ट देखते है कि रागमयी भक्ति का स्वर ही मुख्य है। 'आलवार' शब्द का अर्थ है आत्मज्ञानी भक्त जो भगवान् के प्रेम में सदा डूबा रहता है। आलवारो में १२ मुख्य है उनमें गोरा अन्दाल ठीक मीरा की तरह प्रेम पुजारिन हुई। ईसवी सन् की सातवी से नवी शती में ये आलवार भक्त हुए। 'आत्मनिवेदन' भक्ति के ये साकार विग्रह थे। वे भागवत के इस वचन को मानते थे कि प्रेमस्वरूप हरि भक्ति से ही प्रसन्न होता है, शेष सब

---

१ नैव स्त्री न पुमानेषु न चैवाय नपुंसक ।
यद्यच्छरीरमाधत्ते तेन तेन स रक्ष्यते ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् ५।१०

२ त्व स्त्री त्व पुमानसि त्व कुमार उत वा कुमारी त्व जीर्णो दण्डेन वचयसि त्व जातो भवसि विश्वतो मुख ।

३ भोक्ता भोग्य प्रेरितार च मत्वा सर्व प्रोक्त त्रिविध ब्रह्म एतत् ।

—श्वेताश्वतरोपनिषद् १।१२

विडम्वना है[1]। आलवारो की भक्ति प्रभु में उतनी ही दृढ है जितनी विषयी पुरुषो की विषयो मे होती है और यह इतनी प्रगाढ है कि उसकी समता का कोई उदाहरण नही[2]। श्री जे०एस० एम० हूपर ने आलवारो के पदो का तमिल से अग्रेजी मे अनुवाद किया है जो अपने ढग का अद्वितीय है।[3] अभिप्राय यह कि आलवारो की भक्ति सर्वथा रागमयी, प्रीतिमयी भक्ति है और उसमें प्रेम की ही प्रधानता है। प्रीतिपूर्वक आत्मदान, प्रणय का आत्मसमर्पण ही उनके गीतो का मुख्य स्वर है। गोदा अन्दाल आलवारो में प्रसिद्ध भक्तिन हुई। उसने कहा है कि मै अव पूर्ण यौवन को प्राप्त हो गई हू और अपना सपूर्ण यौवन मै श्री हरि के चरणो मे समर्पित कर दूगी, उनके सिवा इसका उपभोग करने का अधिकारी और है भी कौन? इन्ही आलवारो की परम्परा में श्री स्वामी रामानुजाचार्य आते है। इनके प्रपत्तिवाद मे सर्वथा आत्मसमर्पण का स्वर मुख्य है। शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियो से, वुद्धि से, आत्मा से या स्वभाव का अनुसरण करते हुए जो कुछ भी कार्य होता है सब कुछ नारायण को समर्पित है[4]। न तो मुझमे धर्म की निष्ठा है, न आत्मविद् हू, न तुम्हारे चरणारविन्द में भक्ति ही है। हे नाथ, मै सब प्रकार अकिचन हू, तुम्हारे चरणो की शरण में हू[5]। सहस्र-सहस्र अपराधो से भरा हुआ मै तुम्हारे चरणो में प्रपन्न हू, नाथ!

---

१ प्रीयतेऽमलया भक्तया हरिरन्यद् विडम्बनम्।

२ या प्रीतिरस्ति विषयेष्वविवेकभाजां सेवाऽच्युते भवति भक्तिपदाभिधेया।
भक्तिस्तु काम इह तत्कमनीय रूपे, तस्मान् मुनेरजनिकामुकवाक्यभंगी।

—दमिडोपनिषद् संगतिः

३ Day and night she knows not sleep
In floods of tears her eyes do swim
Lotus like eyes, She weeps and reels.
No kinship with the world have I
Which takes for true the life that is not true,
For Thee alone my passion burns,
I cry Rangam, my Lord I!

Hooper–Hymns of the Alwars

४ कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धात्मना वानुसृतः स्वभावात्।
करोमि यत् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पये तत्।

५ न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमान्स्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिंचनः नान्यगतिः शरण्य! त्वत्पादमूल शरण प्रपद्ये॥

—स्तोत्र रत्न २२

मुझे स्वीकार करो'। रामानुज के श्री सप्रदाय मे आत्मनिवेदन की पूर्ण विवृति है और शरणागति या 'प्रपत्ति' ही उसमें एकान्तत विकसित हुई है। रागमयी भक्ति का विशेष विकास क्रमश मध्व, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभीय और हितहरिवश में ही हुआ, जिसका अनुशीलन हम बहुत सक्षेप में प्रस्तुत कर रहे है।

यहा लक्ष्य करने योग्य एक बात है वह यह कि स्वामी रामानुजाचार्य के पूर्ववर्ती आलवार भक्तो मे रागमयी भक्ति विशेप निष्पन्न हुई है तथा इन्ही स्वामी रामानुज की परपरा में आगे चलकर स्वामी रामानन्द तथा परवर्ती सत भक्तो में भी इसी रागमयी भक्ति का विशेप विकास एव शृगार हुआ है। अयोध्या के रसिक भक्तो की परपरा परम प्राचीन होती हुई भी स्वामी रामानन्द से स्पष्ट रूप में पकड में आती है। आलवार भक्तो से लेकर स्वामी रामानन्द तक की रसिक परपरा, लगता है कि योग, सहज और अन्य गुह्य साधनाओ के अतराल में गुप्त रूप में प्रवाहित होने लगी थी, गुप्त गोदावरी की तरह और पुन स्वामी रामानद के परवर्ती भक्तो मे रसिकता की वह बाढ आई, जिससे सतरहवी शती के बाद हमारा अधिकाश रामसाहित्य ओतप्रोत है। मर्यादा के कठोर आवेष्ठन में शृगार का ऐसा मधुर विन्यास विश्व-साहित्य में दुर्लभ है। अवश्य ही गोस्वामी जी ने अपने चारो ओर फैले हुए इस साहित्य को देखा था और वे स्वय मर्यादावादी तथा लोकमगल और व्यक्तिगत सावना में सामजस्य के प्रबल पोषक होने के कारण भक्ति के शृगार पक्ष पर वल न दे सके, परन्तु यदा-कदा इतस्तत. उनके अदर की भावधारा फूट पडी है जैसा हम गीतावली के कुछ पदो का उद्धरण देकर आगे बतायेंगे। स्वामी रामानन्द से लेकर श्री 'रूपकला' तक रामोपासना में शृगार-भावना का जो अखण्ड प्रवाह विद्यमान है और अब भी वह अवध की मुख्य एव परम गुह्य साधना के रूप में चल रहा है, उसी का विवरण अपना अभीष्ट है। परन्तु यह भूल न जाना होगा कि भक्ति के अन्यान्य सप्रदायो में भी इस भाव की उपासना विशेष व्यक्त एव उन्मुक्त रूप में हुई है उनका भी दिग्दर्शन प्रसगत आवश्यक है। अस्तु, यहा हम सक्षेप में पहले उन भक्ति सप्रदायो का एक सामान्य परिचय प्रस्तुत करना चाहेंगे जहा रागमयी साधना का ही स्वर मुख्य है और तभी यह सभव होगा कि हम तुलनात्मक दृष्टि से यह देख सकेंगे कि उनमें और रामोपासना की शृगारी साधना मे क्या और कितना भेद है और यदि है तो क्यो है। रामावत सप्रदाय की मधुर उपासना के अनुशीलन-परिशीलन मे एक बात का ध्यान सदा रखना होगा कि इसमें यहा से वहा तक मर्यादा का भाव अक्षुण्ण रूप मे बना हुआ है। भीतर-भीतर शृगार-उपासना और बाहर-बाहर मर्यादा-भावना। यही कारण है कि रामावत सप्रदाय की मधुर उपासना का विषय अबतक सर्वथा उपेक्षित रहा है और उसे वह महत्त्व न मिल पाया जो कृष्णावत मधुर उपासना को प्राप्त है। फिर भी इस परम

---

१ अपराध सहस्र भाजन पतित भीम भवार्णवोदरे।
अगति शरणागत हरे! कृपया केवल आत्मसात्कुरु।

—आलवन्दार स्तोत्र ५१

गुह्यतम साधना का साहित्य अपने-आपमे इतना सुपुष्ट, आकर्षक एव प्रभावशाली है कि इसका अध्येता किसी प्रकार घाटे मे नही रहेगा और हमारे साहित्य के इस उपेक्षित अग पर प्रकाश डालने के लिए अधिक-से-अधिक विद्वानो को इस ओर प्रवृत्त होना चाहिए। अस्तु

अब हम रागमयी भक्ति की जो विवृत्ति विविध भक्ति सप्रदायो मे हुई है, उसका एक सामान्य परिचय प्रस्तुत करेंगे।

इष्टे स्वारसिकोराग परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद्भक्ति साऽत्र रागात्मिकोदिता॥
विराजन्तीमभिव्यक्त व्रजवासिजनादिपु।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥
—हरिभक्तिरसामृतसिन्धु पूर्व, द्वि लहरी ६०,६२

भक्ति के लक्षण—गौड़ीय मत

इष्ट वस्तु में गाढ तृष्णा—बलवती लालसा। यही है राग का स्वरूप लक्षण और इष्ट मे परम आविष्टता—यह है तटस्थ लक्षण। श्रीजीव गोस्वामी अपने 'भक्ति-सदर्भ' में इसकी यो व्याख्या करते हैं—'तत्र विषयिण स्वाभाविको विषयससर्गेच्छामय प्रेमा राग यथा चक्षुरादीना सौन्दर्यादौ तादृश एवात्र भक्तस्य श्रीभगवत्यपि राग इत्युच्यते।'

अर्थात् जैसे विपयी पुरुषो का स्वभावत ही विपयो के प्रति विषय-ससर्ग की इच्छा से युक्त आकर्षण होता है—जैसे आखो का सौन्दर्य के प्रति एव कानो का मधुर स्वर के प्रति, उसी प्रकार भक्त का जब श्रीभगवान् के प्रति आकर्षण या तृष्णा उत्पन्न हो जाती है, तब उसे 'राग' कहते हैं।

श्रीकृष्णदास कविराज ने 'श्री चैतन्याचरितामृत' में इसी विषय की व्याख्या की है, जो श्रीरूपगोस्वामी कृत 'हरिभक्तिरसामतसिन्धु' की व्याख्या से बहुत मिलती-जुलती है—

इष्टे गाढ तृष्णा राग एइ स्वरूप-लक्षण।
इष्ट आविष्टता एइ तटस्थ लक्षण॥—मध्य २२।८६

राग का जो स्वरूप ऊपर बताया गया है,उससे युक्त भक्ति को 'रागात्मिका भक्ति' कहते हैं और उसी का अनुसरण करती हुई भक्ति की जो धारा प्रसरित होती है, उसे 'रागानुगा' कहते हैं।

रागमयी भक्तिर हय रागात्मिका नाम॥ मध्य० २२।८६

मूल कारण

व्रज के भक्तो की प्रेम-सेवा की चर्चा सुनकर किसी भाग्यवान् के चित्त में जो तदनुरूप सेवा पाने का लोभ उत्पन्न होता है और जिससे प्रेरित होकर व्रज-वासियो के भावो का आनुगत्य स्वीकार कर के भजन की प्रवृत्ति होती है, वह लोभ ही इस रागानुगा का मूल कारण है। श्री जीव गोस्वामी कहते हैं—

'यस्य पूर्वोक्तरागविशेषे रुचिरेव जातास्ति न तु रागविशेष एव स्वय तस्य तादृश राग-सुधाकरकराभाससमुल्लसितहृदयस्फटिकमणे शास्त्रादिषु तासु तादृश्या रागात्मिकाया भक्ते परिपाटीष्वपि रुचिर्जायते।'

श्री गोविन्द भाष्य में श्री बलदेव विद्याभूषण इसी को 'रुचि भक्ति'' कहते हैं—

'रुचिभक्तिर्माधुर्यज्ञानप्रवृत्ता, विधिभक्तिरैश्वर्यज्ञानप्रवृत्ता। रुचिरत्र राग। तदनुगता भक्ति रुचिभक्ति। अथवा रुचिपूर्णा भक्ति रुचिभक्ति इयमेव 'रागानुगा' इति गदिता।'

रागानुगा पुष्टि-मार्ग में

इसी रागानुगा भक्ति को पुष्टि मार्ग मे पुष्टि-भक्ति या 'अविहिता भक्ति' कहते हैं—

'माहात्म्यज्ञानयुते वरत्वेन प्रभोर्भक्तिर्विहिता, अन्यत प्राप्तत्वात् कामाद्युपाधिजा त्वविहिता।'

—अणुभाष्य

श्री निम्बार्क-सम्प्रदायमें श्री हरिव्यास जी ने अपनी 'सिद्धान्त-रत्नाजलि' टीका में अविहिता भक्ति का उल्लेख किया है। 'महावाणी' में उन्होने सखी-भाव से नित्य वृन्दावन में श्री राधा-गोविन्द की युगल सेवा-प्राप्ति की साधना बताई है।

श्रीनिम्बार्क-मत मे

उक्त साधना में दास्य, सख्य अथवा वात्सल्य के लिए स्थान नही है। इस प्रकार गौडीय वैष्णवो की रागानुगा भक्ति के साथ श्री हरिव्यासजी की साधना का भेद सुस्पष्ट है। क्योकि महाप्रभु के सम्प्रदाय में सभी भावो का समावेश हो जाता है —'कुत्रापि तद्रहिता न कल्पनीया।' श्री हरिव्यासजी में श्रीकृष्ण की देवलीला-परायणता है, परन्तु गौडीय वैष्णव केवल भगवान् की नरलीला में माधुर्योपासना का पथ अपनाते हैं।

स्मरणकी मुख्यता

रागानुगा भक्ति में स्मरण की प्रधानता[२] है। श्री सनातन गोस्वामी ने वृहद्-भागवतामृत में इसका विस्तार से वर्णन किया है। इस साधन में मानसिक सेवा और तदनुकूल सकल्प ही मुख्य है। रघुनाथदास गोस्वामी के 'विलाप-कुसुमाजलि' और श्री जीव गोस्वामी के 'सकल्प-कल्पद्रुम' में रागानुगा भक्ति अनुकूल सकल्प और मानसी सेवा के क्रम का बहुत सुन्दर वर्णन मिलता है।[२]

सेवा साधक रूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारत॥

---

१ गौडीय आचार्य श्री जीव गोस्वामी 'अविहिता' का निर्णय यो करते हैं—'अविहिता रुचिमात्रप्रवृत्या विधिप्रयुक्तत्वेनाप्रवृत्तत्वात्' रुचिमात्र से प्रवृत्ति होने के कारण ही इस प्रकार की भक्ति को 'अविहिता' कहते हैं।

२ रागानुगायां स्मरणस्य मुख्यता

अर्थात् व्रजवासी जनो के भाव से लुब्ध हुए व्यक्ति को इस रागानुगामार्ग में साधक रूप से अर्थात् यथावस्थित देह के द्वारा तथा सिद्ध रूप से—अन्तर्चिन्तित सिद्ध देह से व्रजवासियो के आनुगत्य स्वीकार करते हुए सेवा करनी चाहिए।

साधना का क्रम

माता-पिता से उत्पन्न हुआ मात्र भौतिक शरीर ही साधक-देह है और अन्तर में अभीष्ट श्री राधा-गोविन्द की साक्षात् सेवा के उपयुक्त अपने जिस देह की भावना की जाती है, वह सिद्ध-देह है। सिद्ध-देह से ही व्रज भाव प्राप्त होता है। माधुर्योपासना के अन्तर्गत सिद्ध देह की भावना के सम्वन्ध में 'सनत्कुमार-तंत्र' में कहा गया है—

आत्मान चिन्तयेत्तत्र तासा मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्ना किशोरी प्रमदाकृतिम्॥

अर्थात् गोपी भाव मे अपने को रूप यौवन-सम्पन्न परम मनोहर किशोरी के रूप में सिद्ध देह से भावना करनी चाहिए।

सखी की आज्ञा के अनुसार सदा सेवा के लिए उत्सुक रहते हुए श्री राधाजी के निर्माल्य स्वरूप अलकारो से विभूपित, साधनो की सिद्धि रूप इस मजरी-देह की भावना निरन्तर की जाती है। मजरी स्वरूप मे तनिक भी सभोग के लिए अवकाश नही। इसमें केवल सेवा-वासना है। पद्म पुराण, पाताल खड मे इसी प्रसग पर कहा गया है—

आत्मान चिन्तयेत् तत्र तासा मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवनसम्पन्ना किशोरी प्रमदाकृतिम्॥
नानाशिल्पकलाभिज्ञा कृष्णभोगानुरूपिणीम्।
प्रार्थितामपि कृष्णेन तत्र भोगपराड् मुखीम्॥
राधिकानुचरी नित्य तत्सेवनपरायणाम्।
कृष्णादप्यधिक प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम्॥
प्रीत्यानुदिवस यत्नसेत् तयो सगमकारिणीम्॥
तत्सेवनसुखाह्लादभावेनातिसुनिर्वृताम्॥
इत्यात्मान विचिन्त्यैव तत्र सेवा समाचरेत्।
ब्राह्म मुहूर्तमारभ्य यावत् स्यात् तु महानिशा॥५२।७-११

गोपीभाव की उपासना करनेवाले को चाहिए कि वह अपने-आपकी भी प्रिया-प्रियतम की सेवा में लगी हुई उन सखियो से ही एक अत्यन्त मनोरम, रूपयौवन-सपन्न किशोर अवस्था की रमणी के रूप मे भावना करे, जो विविध शिल्पो एव कलाओ में प्रवीण तथा श्रीकृष्ण के द्वारा उपभोग के योग्य हो, किन्तु श्रीकृष्ण के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी जो उनके साथ दिव्य सभोग के प्रतिसर्वथा पराङ् मुख हो, जो श्री राधाकिशोरी की सेवा मे सदा परायण रहने वाली उनकी अनुचरी हो, जो श्रीकृष्ण की अपेक्षा राधाकिशोरी से ही अधिक प्रेम करती हो और प्रति

दिन बड़े ही प्रेम एव तत्परता से उन दोनो का मिलन कराना ही अपना एकमात्र कर्तव्य समझती हो और उन्ही के सेवा-सुख को परम आह्लाद का कारण मान कर अत्यन्त सुखी रहती हो। अपने विषय में इस प्रकार की भावना कर के ब्राह्म मुहूर्त से ले कर रात्रि के शेष भाग तक दोनो की मानसी-सेवा में रत रहना चाहिए।

रागानुगा-साधन में जो 'अजात रति' साधक है—अर्थात् जिन्हे रति की प्राप्ति नही हुई है, उनको अपने लिए गुरुदेव के उपदेशानुसार किसी सखी की सगिनी के भाव से मनोहर वेशभूषा से युक्त किशोरी रमणी के रूप में भावना करनी चाहिए। जो जात-रति है, अर्थात् जिनको रति प्राप्त हो गई है, उनमें इस सिद्ध स्वरूप की स्फूर्ति अपने-आप हो जाती है। प्राचीन आलवार भक्त शठारि मुनि के साधक देह मे ही सिद्ध देह का भाव उतर आया था। उन्होने अनुभव किया कि श्री भगवान् ही पुरुषोत्तम है और अखिल जगत् स्त्री-स्वभाव है। इस विषय में उनका 'तिरुविरुत्तम' नामक ग्रन्थ देखना चाहिए। कहते है शठारि में सचमुच कामिनी भाव का आविर्भाव हो गया था—

जात रति

पुस्त्व नियम्य पुरुषोत्तमताविशिष्टे
स्त्रीप्रायभावकथनाज्जगतोऽखिलस्य।
पुसा च रञ्जकवपुर्गुणवन्तयापि
शौरे शठारियमिनोऽजनि कामिनीत्वम्॥

—वैष्णव धर्म

गौडीय वैष्णव साधकगण 'गोविन्द लीलामृत' और 'कृष्णभावनामृत' आदि ग्रन्थो के क्रमानुसार गुरु गौरागदेव के अनुगत भाव से श्री राधागोविन्द की अष्टकालीन लीला का स्मरण करते है। इस लीला के ध्यान मे ही मानसोपचार से इच्छित सेवा होती रहती है। श्री वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में भी अष्टयाम की लीलाओ का स्मरण मुख्य साधना है।

'कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।'

—आचार्य कृत सिद्धान्त-मुक्तावली

श्री हरिरायजी की 'सहस्रश्लोकी सेवा-भावना' इस विषय का देखने योग्य ग्रन्थ है। इसमें गोपागनाओ की सेवा-भावनाओ का विस्तार से वर्णन है। इसके अतिरिक्त प्रात काल की मगला-आरती से लेकर रात के शयन तक भिन्न-भिन्न समयो की भिन्न-भिन्न लीलाओ के लिए भिन्न-भिन्न राग-रागिनियो में उसी सम्प्रदाय के महानुभावो द्वारा रचित अनेकानेक पद उपलब्ध है एव भक्तो के द्वारा गाये जाते है। जिनसे सहज ही भगवान् की विविध लीलाओ का स्मरण, चिन्तन एव ध्यान होता है और भक्त शरीर से चाहे जहा हो, भाव-देह से निरन्तर भगवान् की सन्निधि में रहते हुए अमृतोपम सुख लूटता है।

साधक-देह में ही सिद्ध-देह की स्फूर्ति किस प्रकार होती है—इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें बगाल के वैष्णव-इतिहास में इस प्रकार मिलता है। बगाल के साधक **श्रीनिवास आचार्य** किसी

समय मजरी-देह से श्रीराधाकृष्ण का ध्यान कर रहे थे। उन्होने देखा श्री गोपीजनो के साथ श्रीकृष्ण यमुना में जलक्रीडा कर रहे हैं। श्रीराधाजी के कान का एक कुण्डल जल में गिर गया। सखिया खोजने लगी। भावना-देह से इस कुण्डल की खोज करने में श्रीनिवासजी को वाह्य दृष्टि से एक सप्ताह का समय लग गया। साधक देह निस्पन्द आसन पर विराजमान था। रामचन्द्र कविराज आये तो वे भी सिद्ध-देह से श्रीनिवास की सङ्गिनी के रूप में उनके साथ हो लिये और रामचन्द्र को एक कमलपत्र के नीचे राधाजी का कुण्डल दिखलाई पडा। उसी क्षण उन्होने उसे श्रीनिवासजी के उस भावना-देह के हाथ में दे दिया। सखी-मजरियो में आनन्द की तरगें उछलने लगी। श्रीराधारानी ने प्रसन्न होकर अपना चवाया हुआ पान इन्हें पुरस्कार-रूप में दिया। रामचन्द्र और श्रीनिवास दोनो ही सोकर उठनेवालो की तरह साधक देह में लौट आये। देखा गया कि सचमुच श्रीराधाजी का दिया हुआ पान-पुरस्कार उनके मुख में था।

भाव-देह

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की तरह एक भावशरीर या सिद्ध-देह भी होता है साधक इसी भाव-देह से भगवान् की लीलाओ का रसास्वादन करता है। भाव-देह और सिद्ध-देह की चर्चा हम विस्तार से यथास्थान करेंगे।

उपर्युक्त पुष्टि भक्ति की कुछ ज्ञातव्य बातें

भगवान् के अनुग्रह को ही 'पुष्टि' कहते हैं—'पोषण तदनुग्रह'। उस अनुग्रहसे जो भक्ति या भगवत्प्रेम होता है, उसे 'पुष्टि भक्ति' कहते हैं। यह भक्ति स्वरूप से रागमयी हैं। शाण्डिल्य ने इसकी परिभाषा 'सा परानुरक्ति रीश्वरे' इस प्रकार की है। नारद इसी को 'सा त्वस्मिन्परमप्रेमरूपा' कहते हैं तथा 'पाञ्चरात्र' में उसकी परिभाषा इस प्रकार है—

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक ।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा ।।

अर्थात् माहात्म्यज्ञानपूर्वक जो भगवान् के प्रति गाढ एव सर्वोपरि स्नेह होता है, उसी को भक्ति कहा गया है और उसी से मुक्ति होती है, अन्य किसी प्रकार नही।

यहाँ असाधना ही साधन है

यह स्नेहमयी रागात्मिका भक्ति भगवान् के अनुग्रह से प्राप्त होती है। भगवान् का अनुग्रह साधन-साध्य नही, वह साधन से प्राप्त होनेवाली वस्तु नही है, वह किसी साधन के परतत्र नही है। भगवान् भक्त-परतत्र हैं, भक्त-पराधीन है। अत यहा असाधना ही साधन है।

भक्ति भी भगवान की एक लीला ही है

जैसे सर्ग-विसर्ग आदि श्री पुरुपोत्तम की लीलाए है, यह भक्ति, अनुग्रह या पुष्टि भी भगवान् की लीला ही है। वह 'लीला' क्या है, 'सुवोधिनी' भा० ३, स्कन्ध में वर्णित है—"'लीला' नाम विलासेच्छा। कार्यव्यतिरेकेण कृतिमात्रम्। न तया कृत्या वहि कार्य जन्यते। जनितमपि कार्य नाभिप्रेतम्। नापि कर्तरि प्रयास जनयति। किन्त्वन्त करणे पूर्णे आनन्दे तदुल्लासेन कार्य जननसदृशी क्रिया क्वाचिदुत्पद्यते।"

दिन बडे ही प्रेम एव तत्परता से उन दोनो का मिलन कराना ही अपना एकमात्र कर्तव्य समझती हो और उन्ही के सेवा-सुख को परम आह्लाद का कारण मान कर अत्यन्त सुखी रहती हो। अपने विषय में इस प्रकार की भावना कर के ब्राह्म मुहूर्त से ले कर रात्रि के शेष भाग तक दोनो की मानसी-सेवा में रत रहना चाहिए।

रागानुगा-साधन मे जो 'अजात रति' साधक है—अर्थात् जिन्हें रति की प्राप्ति नही हुई है, उनको अपने लिए गुरुदेव के उपदेशानुसार किसी सखी की सगिनी के भाव से मनोहर वेशभूषा से युक्त किशोरी रमणी के रूप मे भावना करनी चाहिए। जो जात-रति है, अर्थात् जिनको रति प्राप्त हो गई है, उनमें इस सिद्ध स्वरूप की स्फूर्ति अपने-आप हो जाती है। प्राचीन आलवार भक्त शठारि मुनि के साधक देह में ही सिद्ध देह का भाव उतर आया था। उन्होने अनुभव किया कि श्री भगवान् ही पुरुषोत्तम हैं और अखिल जगत् स्त्री-स्वभाव है। इस विषय में उनका 'तिरुविरुत्तम' नामक ग्रन्थ देखना चाहिए। कहते हैं शठारि में सचमुच कामिनी भाव का आविर्भाव हो गया था—

जात रति

पुस्त्व नियम्य पुरुषोत्तमताविशिष्टे
स्त्रीप्रायभावकथनाज्जगतोऽखिलस्य।
पुसा च रञ्जकवपुर्गुणवत्तयापि
शौरे शठारियमिनोऽजनि कामिनीत्वम्॥

—वैष्णव धर्म

गौडीय वैष्णव साधकगण 'गोविन्द लीलामृत' और 'कृष्णभावनामृत' आदि ग्रन्थो के क्रमानुसार गुरु गौरागदेव के अनुगत भाव से श्री राधागोविन्द की अष्टकालीन लीला का स्मरण करते हैं। इस लीला के ध्यान में ही मानसोपचार से इच्छित सेवा होती रहती है। श्री वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग में भी अष्टयाम की लीलाओ का स्मरण मुख्य साधना है।

'कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।'

—आचार्य कृत सिद्धान्त-मुक्तावली

श्री हरिरायजी की 'सहस्रश्लोकी सेवा-भावना' इस विषय का देखने योग्य ग्रन्थ है। इसमें गोपागनाओ की सेवा-भावनाओ का विस्तार से वर्णन है। इसके अतिरिक्त प्रात काल की मगला-आरती से लेकर रात के शयन तक भिन्न-भिन्न समयो की भिन्न-भिन्न लीलाओ के लिए भिन्न-भिन्न राग-रागिनियो में उसी सम्प्रदाय के महानुभावो द्वारा रचित अनेकानेक पद उपलब्ध है एव भक्तो के द्वारा गाये जाते है। जिनसे सहज ही भगवान् की विविध लीलाओ का स्मरण, चिन्तन एव ध्यान होता है और भक्त शरीर से चाहे जहा हो, भाव-देह से निरन्तर भगवान् की सन्निधि में रहते हुए अमृतोपम सुख लूटता है।

साधक-देह मे ही सिद्ध-देह की स्फूर्ति किस प्रकार होती है—इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें बगाल के वैष्णव-इतिहास में इस प्रकार मिलता है। बगाल के साधक **श्रीनिवास आचार्य** किसी

समय मजरी-देह से श्रीराधाकृष्ण का ध्यान कर रहे थे। उन्होने देखा श्री गोपीजनो के साथ श्रीकृष्ण यमुना में जलक्रीडा कर रहे हैं। श्रीराधाजी के कान का एक कुण्डल जल में गिर गया। सखिया खोजने लगी। भावना-देह से इस कुण्डल की खोज करने में श्रीनिवासजी को बाह्य दृष्टि से एक सप्ताह का समय लग गया। साधक देह निस्पन्द आसन पर विराजमान था। रामचन्द्र कविराज आये तो वे भी सिद्ध-देह से श्रीनिवास की सङ्गिनी के रूप मे उनके साथ हो लिये और रामचन्द्र को एक कमलपत्र के नीचे राधाजी का कुण्डल दिखलाई पडा। उसी क्षण उन्होने उसे श्रीनिवासजी के उस भावना-देह के हाथ में दे दिया। सखी-मजरियो मे आनन्द की तरगे उछलने लगी। श्रीराधारानी ने प्रसन्न होकर अपना चबाया हुआ पान इन्हें पुरस्कार-रूप मे दिया। रामचन्द्र और श्रीनिवास दोनो ही सोकर उठनेवालो की तरह साधक देह में लौट आये। देखा गया कि सचमुच श्रीराधाजी का दिया हुआ पान-पुरस्कार उनके मुख में था।

भाव-देह

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की तरह एक भावशरीर या सिद्ध-देह भी होता है साधक इसी भाव-देह से भगवान् की लीलाओ का रसास्वादन करता है। भाव-देह और सिद्ध-देह की चर्चा हम विस्तार से यथास्थान करेंगे।

उपर्युक्त पुष्टि भक्ति की कुछ ज्ञातव्य बातें

भगवान् के अनुग्रह को ही 'पुष्टि' कहते हैं—'पोषण तदनुग्रह'। उस अनुग्रहसे जो भक्ति या भगवत्प्रेम होता है, उसे 'पुष्टि भक्ति' कहते है। यह भक्ति स्वरूप से रागमयी हैं। शाण्डिल्य ने इसकी परिभाषा 'सा परानुरक्ति रीश्वरे' इस प्रकार की हैं। नारद इसी को 'सा त्वस्मिन्परमप्रेमरूपा' कहते है तथा 'पाञ्चरात्र' में उसकी परिभाषा इस प्रकार है—

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक ।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा ॥

अर्थात् माहात्म्यज्ञानपूर्वक जो भगवान् के प्रति गाढ एव सर्वोपरि स्नेह होता है, उसी को भक्ति कहा गया है और उसी से मुक्ति होती है, अन्य किसी प्रकार नही।

यहाँ असाधना ही साधन है

यह स्नेहमयी रागात्मिका भक्ति भगवान् के अनुग्रह से प्राप्त होती है। भगवान् का अनुग्रह साधन-साध्य नही, वह साधन से प्राप्त होनेवाली वस्तु नही है, वह किसी साधन के परतत्र नही है। भगवान् भक्त-परतत्र है, भक्त-पराधीन है। अत यहा असाधना ही साधन है।

भक्ति भी भगवान की एक लीला ही है

जैसे सर्ग-विसर्ग आदि श्री पुरुषोत्तम की लीलाए है, यह भक्ति, अनुग्रह या पुष्टि भी भगवान् की लीला ही है। वह 'लीला' क्या है, 'सुबोधिनी' भा० ३, स्कन्ध मे वर्णित है—"'लीला' नाम विलासेच्छा। कार्यव्यतिरेकेण कृतिमात्रम्। न तया कृत्या वहि कार्य जन्यते। जनितमपि कार्य नाभिप्रेतम्। नापि कर्तरि प्रयास जनयति। किन्त्वन्त करणे पूर्णे आनन्दे तदुल्लासेन कार्य जननसदृशी क्रिया क्वाचिदुत्पद्यते।"

अर्थात् लीला नाम है विलास की इच्छा का। किसी प्रयोजन से रहित क्रिया को ही लीला कहते हैं। उस क्रिया से बाहर किसी कार्य की सृष्टि नही होती। और उत्पन्न हुआ कार्य भी अभीष्ट नही होता और न वह क्रिया कर्ता में रंचमात्र भी प्रयास की सृष्टि करती है। अपितु अन्त करण में पूर्ण आनन्द भर जाने से उस आनन्द के उल्लास में कार्योत्पादन के समान एक क्रिया उत्पन्न होती है, उसी का नाम 'लीला' है।

लीला ही प्रयोजन

भगवान् स्वत परिपूर्ण हैं, तृप्त है, अतएव विना प्रयोजन के ही, एकमात्र लीला-रस का आस्वादन करने और कराने के लिए हैं। तत्र नहि किञ्चित् प्रयोजनमस्ति 'लीला—एव प्रयोजनत्वात्' (अणुभाष्य) लीला करते रहते है। भगवान् स्वत तृप्त होते हुए भी चिर अतृप्त है, निष्काम होते हुए भी विलासेच्छु है। अद्वितीय होते हुए भी भक्त के प्रेम-पराधीन है। रसस्वरूप होते हुए भी रस के पिपासु है।

ब्रह्मसबन्ध तथा ताप

गुरु शिष्य के हृदय में भगवान् की प्रीति का दान देकर उसका भगवान् से सम्वन्ध करा देता है, जिसे पुष्टि मार्ग में 'ब्रह्म सम्बन्ध' कहते हैं। और इसी ब्रह्म-सम्वन्ध के बाद शिष्य के हृदय में मिलन की लालसा होती है, जिसे 'ताप' कहते है। यह 'ताप' ही पुष्टि मार्ग की साधना का प्राण है। 'पञ्चतापा सदा यत्र'।'

---

१ इस सम्बन्ध में श्री हरिदासजी कृत 'पुष्टिमार्गलक्षणानि' उल्लेनीय है—

सर्वसाधनराहित्य फलाप्तौ यत्र साधनम्।
फल वा साधन यत्र पुष्टिमार्ग. स कथ्यते ॥१॥
अनुग्रहेणैव सिद्धिर्लौकिकी यत्र वैदिकी।
न यत्नादन्यथा विद्धि पुष्टिमार्ग. स कथ्यते ॥२॥
स्वरूपमात्रपरता तात्पर्यज्ञानपूर्वकम्।
धर्मनिष्ठा यत्र नैव पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥३॥
यत्रागीकरणे नैव योग्यतादिविचारणम्।
अवलम्ब प्रभुकृत. पुष्टिमार्ग. स कथ्यते ॥४॥
यत्र प्रभुकृत नैव गूढदोषविचारणम्।
तत्कृतावुत्तमज्ञान पुष्टिमार्ग. स कथ्यते ॥५॥
न लोकवेदसापेक्ष्य सर्वथा यत्र वर्तते।
सापेक्षता स्वामिसुखे पुष्टिमार्ग स कथ्यते ॥६॥
वरणे दृश्यते यत्र हेतुर्नाणुरपि स्वत ।
वरण च निजेच्छात पुष्टिमार्ग. स कथ्यते ॥७॥

रागानुगा के मूलस्वरूप उत्तमा या शुद्ध भक्ति का लक्षण श्री रूपगोस्वामी ने अपने हरिभक्तिरसामृतसिन्धु नामक ग्रन्थ में इस प्रकार किया है—

अन्याभिलापिताशून्य ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्तिरुत्तमा।।पूर्व प्रथम. ११

अर्थात् अन्य अभिलापा से शून्य, एकमात्र भक्ति की अभिलाषा से युक्त, ज्ञान-कर्म आदि से सर्वथा रहित, भगवान् की प्रीति-सम्पादन के उद्देश्य से की जाने वाली भगवदविपयक सम्पूर्ण चेष्टा का नाम ही उत्तमा भक्ति है।

यत्र स्वतन्त्रता भक्तेराविर्भावानपेक्षणात्।
सानुभावस्वरूपत्वं पुष्टिमार्ग. स कथ्यते।।८।।
लोकवेदभयाभावो यत्र भावातिरेकतः।
सर्वबाधकतास्फूर्तिः पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।९।।
संबंधः साधनं यत्र फलं संबंध एव हि।
सोऽपि कृष्णेच्छया जातः पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१०।।
तत्संबंधिषु तद्भावस्तद्भिन्नेषु विरोधितः।
उदासीनेषु समता पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।११।।
विद्यमानस्य देहादेर्न स्वीयत्वेन भावनम्।
परोक्षेऽपि तदर्थित्व पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१२।।
भजने यत्र सेव्यस्य नोपकारकृतिः क्वचित्।
पोषण भावमात्रस्य पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१३।।
भजनस्यापवादो न क्रियते फलदानतः।
प्रभुणा यत्र तद्भावात्पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१४।।
यत्र वा सुखसम्बंधो वियोगे संगमादपि।
सर्वलीलानुभावेन पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१५।।
फले च साधने चैव सर्वत्र विपरीतता।
फलभावः साधनस्य पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१६।।
पश्चात्तापः सदा यत्र तत्संबंधिकृतावपि।
दैन्योद्भावाय सतत पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१७।।
आविर्भावाय सापेक्षं दैन्यं यत्र हि साधनम्।
फलं वियोगजं दैन्य पुष्टिमार्गः स कथ्यते।।१८।।
विषयत्वेन तत्त्यागः स्वस्मिन् विषयतास्मृतेः।
यत्र वै सर्वभावेन पुष्टिमागः स कथ्यते।।१९।।
एव विधैर्विशेषेण प्रकारैस्तु सदाश्रितः।
हृदि धृत्वा निजाचार्यान् पुष्टिमार्गो हि बुध्यताम्।।२०।।

'नारद पाञ्चरात्र' में भी यह बात इस रूप में कही गई है—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्त तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेशसेवन भक्तिरुच्यते॥

इन्द्रियो के द्वारा सब प्रकार की उपाधियो से शून्य, एकमात्र सेवा के उद्देश्य से किया जाने वाला जो निर्मल भगवत्सेवन है, उसे भक्ति कहते है।

श्रीमद्भागवत मे उत्तमा भक्ति का वर्णन इस प्रकार है—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ
लक्षण भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे॥
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमान न गृह्णन्ति विना मत्सेवन जना ॥
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृत ।
येनातिव्रज्य त्रिगुण मद्भावायोपपद्यते॥

जिस प्रकार गगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार भगवान् के गुणो के श्रवणमात्र से मन की गति का तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से भगवान् के प्रति हो जाना तथा उस पुरुपोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम हो जाना यह निर्गुण भक्तियोग का लक्षण कहा गया है। ऐसे निष्काम भक्त दिये जाने पर भी भगवान् की सेवा को छोड कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नही लेते। भगवत्सेवा के लिए मुक्ति का तिरस्कार करनेवाला यह भक्ति योग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनो गुणो को लाँघ कर भगवद् भाव को—भगवान् के प्रेम रूप अप्राकृत स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

रागानुगा का मूलस्वरूप-उत्तमा भक्ति

इस भक्ति में दो उपाधियाँ है—१ अन्याभिलाषिता २ ज्ञान, कर्म, योगादि का मिश्रण। अन्याभिलाषिता में भोग कामना और मोक्ष-कामना दोनो ही सम्मिलित है। सच्चा भक्त भुक्ति और मुक्ति दोनो को हेय समझ कर छोड देता है। ज्ञान, कर्म एव योग आदि भी उपाधियाँ है, यहा ज्ञान का अर्थ है—अभेद ज्ञान, भगवान् ही भजनीय है—इस अनुसधान से तात्पर्य नही है। कर्म का अर्थ है—स्मृति-प्रतिपादित नित्य-नैमित्तिक आदि कर्म, भगवान् की परिचर्या रूप कर्म अभिप्रेत नही है। जिस ज्ञान के द्वारा भगवान् के स्वरूप और भजन का रहस्य जाना जाता है, जिस कर्म के द्वारा भगवान् की सेवा बनती है तथा जिस ध्यानादि योग से चित्त भगवान् के गुण, लीला आदि में लगता है, वे ज्ञान, कर्म, योग बाधक न बन कर भक्ति के साधक ही होते है।

उत्तमा भक्ति अथवा शुद्धभक्ति के तीन भेद हैं—साधन भक्ति, भाव भक्ति, प्रेमा भक्ति। उत्तमा भक्ति में निम्नलिखित गुण होते हैं[1]—

उत्तमा भक्ति

१ क्लेशघ्नी, २ शुभदायिनी, ३ मोक्षलघुताकृत्, ४ सुदुर्लभा, ५ सान्द्रानन्द विशेषात्मा और ६ भगवदाकर्षिणी।

क्लेशघ्नी—क्लेश तीन प्रकार के है—पाप[2], वासना, अविद्या। पाप का वीज है वासना, वासना का कारण है अविद्या। इन सब क्लेशो का मूल कारण है भगवद्विमुखता[3]। भक्तो की सगति में भगवान् की सम्मुखता प्राप्त होती है[4]। फिर उपर्युक्त क्लेशो के सारे कारण अपने-आप नष्ट हो जाते है। इसी से उत्तमा भक्ति में 'सर्वदु खनाशकत्व' गुण आ जाता है।

शुभदायिनी—'शुभ' शब्द का अर्थ है साधक के द्वारा समस्त जगत् के प्रति प्रीतिविधान और सारे जगत् का साधक के प्रति अनुराग, समस्त सद्‌गुणो का विकास तथा त्रिविध सुख। सुख के तीन भेद है—विषय-सुख, ऐश्वर्य-सुख, (विविध सिद्धियाँ) एव ब्राह्म सुख (मोक्ष)। ये सभी 'शुभ' उत्तमा भक्ति से प्राप्त होते है।

'मोक्ष लघुताकृत्'—यह भक्ति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य इन पाचो प्रकार की मुक्ति) इन सब में तुच्छ-बुद्धि पैदा कर के सबसे चित्त को हटा देती है।

सुदुर्लभा—अनासक्त पुरुपो के द्वारा अनेकानेक साधनो का चिरकाल तक अनुष्ठान होने पर भी यह भक्ति प्राप्त नही होती, स्वय भगवान् भी साम्राज्य, सिद्धि, स्वर्ग, ज्ञान आदि तो सहज ही दे देते है, पर अपनी उत्तमा भक्ति नही देते।

सान्द्रानन्द विशेपात्मा—ब्रह्मानन्द को परार्द्ध की सख्या से गुणित करने पर भी वह इस भवित सुखसागर के एक परमाणु की भी तुलना मे भी नही आ सकता।

भगवदाकर्पिणी—यह उत्तमा भक्ति भगवान् को भक्त के वश में कर देती है।

साधन भक्ति के भेद—इस उत्तमा भक्ति के जो तीन भेद ऊपर बताये गये है, उनमे प्रथम साधन-भक्ति के दो भेद है—वैधी और रागानुगा। जहा राग तो हो नही, केवल शास्त्राज्ञा से भजन में प्रवृत्ति हो, उसे वैधी भक्ति कहते है। रागानुगा की परिभाषा ऊपर की जा चुकी है।

रागात्मिका की तरह ही रागानुगा के भी दो भेद बन जाते है—कामानुगा और सम्बन्धानुगा। रागात्मिका के दो भेद है—कामरूपा और सम्बन्ध रूपा।

---

१ देखिये भक्तिरसामृतसिंधु पूर्व० १–लहरी १३

२ पाप भी दो प्रकार के होते हैं—अप्रारब्धसचित और प्रारब्ध

३ देखिये श्रीमद्‌भागवत ११।२।३७

४ देखिये श्रीमद्‌भागवत १०।५१।५४

मैं भगवान् का पिता हूँ, माता हूँ, सखा हूँ, दास हूँ, आदि-आदि भावनाओ से भावित होकर जो यथोचित रूप से रागमयी सेवा करते है, उनकी उस रागमयी भक्ति को सम्बन्ध रूपा रागात्मिका भक्ति कहते है। तथा रागात्मिका कामरूपा भक्ति वह है, जिसमें उपर्युक्त प्रकार का कोई सम्बन्ध नही रहता। केवल मात्र भगवान् की सेवा कर के उन्हें सुखी बनाने की वासना ही समस्त चेष्टाओ को प्रेरित करती है और उस वासना से भावित होकर रागमयी सेवा निरन्तर अनुष्ठित होती रहती है। यहा ध्यान रखने की बात है कि कामरूपा एव सम्बन्ध रूपा दोनो में ही राग तो अवश्य है, किन्तु सम्बन्ध रूपा भक्ति मे सम्बन्ध-विशेष का अभिमान ही भगवत्सेवा का प्रयोजक है और कामरूपा में ऐसा कोई अभिमान हेतु नही है, केवल काम-प्रेममयी सेवा के द्वारा भगवान् को सुखी करने की वासना ही प्रवर्तक है। व्रजलीला में सम्बन्ध रूपा रागात्मिका के पात्र है—श्री नन्द-यशोदादि पितृ-मातृवर्ग, सुबल-मधुमगलादि सखावर्ग एव रक्तक एव पत्रक आदि दासवर्ग, तथा कामरूपा रागात्मिका के पात्र हैं—मधुर भावभावित श्री व्रज सुन्दरिया। उपर्युक्त व्रज सुन्दरियो में ऐसा कोई सम्बन्ध नही है, जो उन्हे भगवत्सेवा के लिए प्रेरित करे—जिसके कारण वे सेवा के लिए लालायित हो। भगवान् को अपनी सेवा समर्पित कर उन्हें सुखी बनाने की ऐकान्तिक वासना-प्रेम ही उनकी भक्ति का प्रवर्तक है। इस वासना को ही भक्तिशास्त्र में 'काम' कहा गया है—'प्रेमैव गोपरामाणा काम इत्यगमत् प्रथाम्' (गौतमीय तन्त्र)। ठीक इसी के अनुगामी रागानुगा के भी दो ऐसे ही उपर्युक्त भेद बन जाते है—कामानुगा एव सम्बन्धानुगा।

सम्बन्ध रूपा भक्ति का स्वरूप

कामानुगा के दो भेद है—सभोगेच्छामयी और तत्तद्भावेच्छामयी। केलि-सम्बन्धी अभिलाषा से युक्त भक्ति का नाम सभोगेच्छामयी और यूथेश्वरी व्रज देवियो के भाव और माधुर्य प्राप्ति विषयक वासनामयी भक्ति का नाम तत्तद्भावावेच्छामयी है।

'भावभक्ति'—भाव शुद्ध, सत्य, विशेष स्वरूप है—यह भाव का स्वरूप-लक्षण है।

भगवान् की सर्व प्रकाशिका स्वरूपशक्ति के वृत्तिविशेष को शुद्ध सत्व कहते है। भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा, भगवदनुकूलता की अभिलाषा और उनके प्रति सौहार्द आदि की अभिलाषा—इनके द्वारा चित्त की जो स्निग्धता सम्पादित होती है, वह है 'भाव' का तटस्थ लक्षण। भाव का ही दूसरा नाम रति या प्रेमाकुर या प्रीत्यकुर है। प्रेम की पहली अवस्था को ही भाव कहते हैं। प्रेम के परिणत हो जाने के अनन्तर वृद्धि-क्रम से यही स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव के रूप में व्यक्त होता है। साथ ही यही प्रेम की पहली अवस्था 'रति' भक्तो की भावना के भेद से पाँच प्रकार की बन जाती है—शान्तरति, दास्यरति, सख्यरति, वात्सल्यरति और मधुर रति। रति-भेद से भगवद्भक्ति-रस भी पाच प्रकार का बन जाता है—शान्तरस, दास्य-रस, सख्य-रस, वात्सल्य-रस और मधुर-रस।

भाव अथवा रति

जातरति भक्त के लक्षण

१. क्षान्ति—धन, पुत्र, मान आदि का नाश, असफलता निन्दा, व्याधि आदि क्षोभ के कारण उपस्थित होने पर भी चित्त का जरा भी चचल न होना।

२ अव्यर्थकालत्व—क्षणमात्र का भी समय सासारिक कार्यो में वृथा न विता कर मन, वाणी, शरीर से निरन्तर भगवत्सेवा-सम्बन्धी कार्यो में जीवन भर लगे रहना।

३ विरक्ति—इस लोक और परलोक के समस्त भोगो से स्वाभाविक अरुचि।

४ मानशून्यता—स्वय उत्तम आचरण, विचार और स्थिति से सम्पन्न होने पर भी मान-सम्मान से सर्वथा दूर रह कर अधम का भी सम्मान करना।

५ आशाबन्ध—भगवान् के और भगवत्प्रेम के प्राप्त होने की चित्त मे दृढ आशा।

६ समुत्कठा—अपने अभीष्ट भगवान् की प्राप्ति के लिए अत्यन्त प्रवल और अनन्य लालसा।

७ नाम-गान में सदा रुचि—भगवान् के मधुर और पवित्र नाम का गान करने की ऐसी स्वाभाविक कामना, जिसके कारण नाम-गान कभी रुकता ही नही और एक-एक नाम मे अपार आनन्द का वोध होता है।

८ भगवान् के गुण-कथन में आसक्ति—दिन-रात भगवान् के गुणगान—भगवान् की प्रेममयी लीलाओ का कथन करते रहना और कदाचित् किसी अनिवार्य कारण से ऐसा न होने पर वेचैन हो जाना।

९ भगवान् के निवास स्थान में प्रीति—भगवान् ने जहाँ-जहाँ मनोहर लीलाएँ की है, जो भूमि भगवान् के चरण-स्पर्श से पवित्र हो चुकी है—मिथिला, अवध, वृन्दावनादि—उन्ही स्थानो में रहने की उत्कट इच्छा।

प्रेम

भाव की गाढता का नाम 'प्रेम' है। यह प्रेम-नाश का हेतु उपस्थित हो जाने पर भी सर्वदा और सर्वथा अक्षुण्ण वना रहता है—'सर्वथा ध्वसरहित सत्यपि ध्वसकारणे' (उज्ज्वलनीलमणि, स्थायि० ५७)। यह प्रेम दो प्रकार का होता है।

महिमा-ज्ञान युक्त और केवल विधिमार्ग से चलनेवाले भक्त का प्रेम महिमा ज्ञानयुक्त है और रागमार्ग से चलनेवाले भक्त का प्रेम प्राय केवल अर्थात् ऐश्वर्य ज्ञानशून्य होता है। यही

प्रेम का प्रकार भेद

प्रेम क्रमश अपने माधुर्य का प्रकाश करते हुए, सूर्य की भाँति चित-रूपी नवनीत को अपने प्रभाव से द्रवित करते हुए स्नेह के रूप मे परिणत होता है। प्रेम की परिणति का नाम ही है स्नेह। यह स्नेह प्रेमविषयक अनुभूति को उसी प्रकार उद्दीप्त कर देता है, जैसे तेल दीपक की ऊष्मा एव प्रकाश को वढा देता है। इस मनोद्रव को कनिष्ठ, मध्यम और श्रेष्ठ—इस तरह तीन प्रकार का माना जाता है। स्नेह को भी स्वरूपत **घृतस्नेह** एव **मधुस्नेह**—दो प्रकार का रसशास्त्रियो ने माना है। स्नेह की उत्कृष्ट परिणति का नाम है **मान**, जिसमे अपने स्वरूप को ढँकने के लिए वाक्य का विकास हो

जाता है। इस मान को भी रसमर्मज्ञोने उदात्त एव ललित—दो रूपो में वर्णन किया है। इसी मान में जव विश्रम्भ की—अपने प्राण, मन, देह आदि से प्रेमास्पद के साथ अभेद की भावना जाग्रत हो जाती है, तब उसे **प्रणय** कहते है। यह विश्रम्भ भी मैत्र और सख्य—दो प्रकार का माना गया है। किसी-किसी स्थल-विशेष में स्नेह से प्रणय का उद्भव होकर उस प्रणय की परिणति मान में होती है और कही-कही स्नेह से मान का आविर्भाव होकर वह मान प्रणय के रूप में परिणत होता है। प्रणय की उत्कृष्टता के कारण जहाँ वडे दु ख का हेतु भी भगवत्प्राप्ति की सम्भावना से सुख के कारण—जैसा प्रतीत होने लगता है, वहाँ प्रणय का नाम **राग** हो जाता है। इस राग के भी दो विभाग माने गये है—१ नीलिमा और २ रक्तिमा। इनके भी अवान्तर भेद है। विस्तार-भय से उनका उल्लेख नही किया गया है। उन्हे रस-ग्रन्थो में देखना चाहिए। अपने इष्ट में अनुभव किये हुए सौन्दर्य, गुण, माधुर्य को जो नित्य नवीन रूप में आस्वादनीय बनाने लग जाय, और स्वय भी नित्य नवीन बनता चला जाय, वह राग **अनुराग** के नाम से कहा जाता है। इसके आगे **भाव** की अवस्था आती है। अनुराग प्रतिक्षण वढता चला जाता है। जव इसकी सम्पूर्ण पराकाष्ठा की दशा आ जाती है और इस प्रकार यह स्वयवेद्य रूप में परिणत हो जाता है, तब इसे 'भाव' कहते है। जिस प्रकार समुद्र का जल क्रमश तरगो में वढता हुआ ज्वार के समय तट को प्लावित कर देता है, साथ ही तट पर जितनी वस्तुएँ होती है, वे सभी निमग्न हो जाती है, अव आगे वढने के लिए मानो उसे स्थान नही रह जाता, उसी प्रकार अनुराग भी क्रमश हृदय में बढता हुआ सम्पूर्ण हृदय को परिपूर्ण कर देता है तथा उसके विकास के समय सिद्ध भक्त या साधक भक्त, जो कोई भी पास में हो, उन्हें प्रभावित कर देता है और अन्त में अपने-आपमें ही उसकी बाढ केन्द्रित हो जाती है। कई रसशास्त्रकार **भाव एव महाभाव** को एक ही वस्तु समझते है और कई इनमे कुछ भेद की कल्पना करते है। जो भेद करनेवाले है, उनकी दृष्टि में भाव एव महाभाव मे उतना ही अन्तर है, जितना अन्तर मिश्री और शुद्ध (उज्ज्वल) मिश्री में होता है। महाभाव की अवस्था व्यक्त होने पर जिसमें यह भाव व्यक्त होता है और उसके मन में कोई अन्तर नही रह जाता।

रति के प्रकार

भगवद्रति विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव और व्यभिचारी भाव के साथ मिल कर चमत्कृतिजनक आस्वादन के योग्य वनती है और उस समय उसका नाम भक्ति रस होता है। यो तो यह रस बारह प्रकार का है, उनमें सात गौण और पाँच मुख्य है। वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, रौद्र और वीभत्स—ये सात गौण है, तथा शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच मुख्य है। जिसमें, जिसके द्वारा रति आदि का आस्वादन किया जाता है, उसको 'विभाव' कहते है। विभाव दो प्रकार के होते है—इनमें से जिसमें रति विभावित होती है, उसका नाम है 'आलम्बन-विभाव', जिसके द्वारा रति उद्दीपित होती है, उमका नाम है 'उद्दीपन-विभाव'। आलम्बन-विभाव भी दो प्रकार का होता है—विषयालम्वन, आश्रयालम्बन। इस भगवद्रति के विषयालम्वन है भगवान् और आश्रयालम्वन है उनके भक्तगण। जिनके द्वारा रति का उद्दीपन होता है, वे क्रिया, मुद्रा, रूप, वस्त्रालकारादि एव देश-कालादि वस्तुएँ है 'उद्दीपन-विभाव।'

नाचना, भूमि पर लोटना, गाना, जोर से पुकारना, अग मोडना, हुकार करना, जँभाई लेना, लबे श्वास छोडना, लोकानपेक्षता, लालास्रव, अट्टहास, घूर्णा, हिक्का आदि। जिन लक्षणो के द्वारा चित्त के भाव बाहर प्रकाशित होते है, उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभाव भी दो प्रकार के होते है—'शीत और क्षेपण'। गाना, जँभाई लेना आदि को 'शीत' और नृत्यादि को 'क्षेपण' कहते है।

अनुभाव

भगवान् से साक्षात् अथवा व्यवहित सम्बन्ध रखनेवाले भावो से जो आक्रान्त हो जाता है, उस चित् को 'सत्व' कहते हैं तथा उस 'सत्व' से उत्पन्न हुए को 'सात्विक' कहते हैं। सात्विक भाव आठ हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमाच, स्वरभग, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय (मूर्च्छा)। ये सात्विक भाव 'स्निग्ध', 'दिग्ध' और 'रूक्ष'–भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इनमें स्निग्ध सात्विक के दो भेद होते हैं—मुख्य और गौण। साक्षात् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला स्निग्ध सात्विक भाव मुख्य है और किंचित् व्यवधानपूर्वक श्रीकृष्ण के सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला स्निग्ध सात्विक भाव गौण है।

सात्विक भाव के प्रकार-भेद

जात-रति भक्तो के सात्विक भाव को 'दिग्ध' भाव कहते है और रति शून्य किन्तु भक्त से प्रतीत होनेवाले मनुष्य में कही-कही भगवच्चरित्र के श्रवणादिजन्य आनन्द-विस्मयादि के द्वारा उत्पन्न होने वाले भाव को 'रूक्ष' भाव कहते हैं।

दिग्ध, रूक्ष

ये सब सात्विक भाव पुन चार प्रकार के होते हैं—धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त। कही-कही इनके अतिरिक्त सूद्दीप्त नाम का एक पाँचवाँ भेद भी माना जाता है। जो सात्विक भाव अकेले या अन्य सात्विक भावो के साथ किंचित् व्यक्त हो तथा जिनका गोपन सम्भव हो, वे 'धूमायित' कहलाते हैं। एक ही साथ भलीभाँति व्यक्त हुए और कठिनता से गोपन-योग्य दो तीन भावो का नाम 'ज्वलित' है। वढे हुए और एक ही साथ व्यक्त होनेवाले तीन, चार या पाँच सात्विक भावो को 'दीप्त' कहते है। इन 'दीप्त' भावो को छिपा कर नही रखा जा सकता। परमोत्कर्ष को प्राप्त एव एक ही साथ उदय होनेवाले पाँच, छह या सभी सात्विक भावो का नाम 'उद्दीप्त' है। ये उद्दीप्त भाव ही महाभाव मे सूद्दीप्त हो जाते हैं। उस समय इन सबकी पराकाष्ठा हो जाती है।

सात्विक भावों के पुनः चार भेद

इसके अतिरिक्त सात्विकाभास भी होते है। उनके चार प्रकार है—रत्याभासज, सत्वाभासज, नि सत्व और प्रतीप। मुमुक्षु आदि में उत्पन्न सात्विकाभास का नाम 'रत्याभासज' है। स्वभाव से ही शिथिल हृदय में आनन्द, विस्मय आदि का आभास जब वढ जाता है, तब उसे सत्वाभास कहते है। और उससे उत्पन्न सात्विकाभास का नाम 'सत्वाभासज' है। जो स्वभावत ऊपर से शिथिल और भीतर से कठिन है, ऐसे चित्त में तथा भगवद्भजन में परायण अन्त करण

सात्विकाभास

में सत्वाभास के विना भी कही-कही जो अश्रु-पुलकादि होते है, उन्हें 'नि सत्व' कहते है। भगवान् से विद्वेष रखनेवाले जीवो मे क्रोध, भय, आदि से उत्पन्न सात्विकभाव को 'प्रतीप' कहते हैं। यहाँ स्मरण रखने की बात है कि ये सात्विकाभास ऐसे लोगो मे ही प्रकट होते है, जिनका मन स्वभाव से शिथिल अथवा ऊपर से शिथिल, किन्तु भीतर से कठिन होता है।

जो भाव विशेष रूप से अभिमुख हो कर स्थायी भाव के प्रति सचरित होते हैं, उन्हें 'व्यभिचारी' कहते है। इनका ज्ञान वाणी, भ्रू-नेत्र आदि अगो तथा सत्व से उत्पन्न अनुभावो के

व्यभिचारी या सचारी भाव

द्वारा होता है। ये व्यभिचारी भाव तैंतीस हैं—निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मरण, आलस्य, जाड्य, व्रीडा, अवहित्था (भाव-गोपन), स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, उत्सुकता, उग्रता, अमर्ष, असूया, चपलता, निद्रा, सुप्ति और बोध। इन तैंतीस व्यभिचारी भावो को 'सचारी' भी कहते है, क्योकि इन्ही के द्वारा भाव की गति का सचालन होता है।

हासादि अविरुद्ध एव क्रोधादि विरुद्ध भावो को दबा कर जो महाराजा की भाँति प्रतिष्ठित होता है, उसे 'स्थायी भाव' कहते है। इस भक्तिशास्त्र में भगवद्‌विषयिणी रति ही 'स्थायी भाव'

स्थायी भाव

कहलाती है। इस रति के 'मुख्या' और 'गौणी' दो भेद माने गये हैं। 'मुख्या' को भी स्वार्था और परार्था—दो प्रकार की माना गया है। पुन यह 'स्वार्था' और 'परार्था'—रूप मुख्या रति पञ्चविध मानी गई है—'शुद्धा', 'प्रीति', 'सख्य', 'वात्सल्य' और 'प्रियता'। 'शुद्धा' के तीन भेद माने गये है—'सामान्या', 'स्वच्छा', और 'शान्ति'। साधारण पुरुषो की जो रति उन-उन प्रीति आदि विशेष अवस्थाओं को नही प्राप्त होती, उसे 'सामान्या' कहते है। साधको की जो रति नानाविध भक्तो के सग से उन-उन साधनो के कारण विविध रूप धारण कर लेती है, वह 'स्वच्छा' कहलाती है। जब जिस प्रकार के भक्त का सग होता है, स्फटिक मणि की भाँति उस समय वैसा ही रूप धारण कर लेने के कारण इसे 'स्वच्छा' कहते है। प्राय जिनमें 'शम' (मन की निर्विकल्पता) का बाहुल्य हो, वैसे व्यक्तियो की भगवान् में ममता-गन्ध-शून्य तथा परमात्म बुद्धि से उत्पन्न जो रति होती है, वह 'शान्ति' रति कहलाती है।

अपने से जो न्यूनजन है, वे भगवान् के लिए अनुग्रह के पात्र है—इस भावना से भगवान् के प्रति आराध्य-बुद्धि लेकर जिनकी रति प्रसरित होती है, उनकी उस रति को 'प्रीति' कहते है। भगवान् के प्रति यह आसक्ति भगवान् के अतिरिक्त अन्य समस्त वस्तुओ में लगी हुई प्रीति को नष्ट कर देने वाली होती है।

भगवान् के प्रति तुल्यत्व (समकक्षता) का अभिमान पोषण करनेवाले जो व्यक्ति हैं, वे भगवान् के सखा कहे जाते है। इस तुल्यता के कारण इन लोगो की विश्रम्भ-रूप जो रति होती है, उसे 'सख्य' कहते है। यह विश्रम्भ परिहास, प्रहास आदि का कारण होता है, फिर भी इस रति में खेद के लिए अवसर नही होता।

भगवान् के जो गुरुजन हैं, वे पूज्य कहे जाते हैं। उनकी जो भगवान् के प्रति अनुग्रहमयी रति होती है, उसे 'वात्सल्य' कहते हैं। यह वात्सल्य लालन, शुभकामना, चिबुकस्पर्श आदि का प्रयोजक होता है।

भगवान् एव उनकी प्रियतमाओ का परस्पर मिलन आदि करानेवाली जो रति है, उसे 'प्रियता' कहते हैं। इसी का दूसरा नाम 'मधुरा' है। इसमें कटाक्ष, भ्रूक्षेप, प्रियवाणी, स्मित आदि को स्थान मिलता है।

इनके अतिरिक्त गौणी रति के भी सात प्रकार माने गये हैं—हास्य, विस्मय, उत्साह, शोक, क्रोध, भय तथा जुगुप्सा। इनका विस्तृत विवरण विभिन्न रसग्रन्थो में देखना चाहिए।

साधना के आरम्भ में भी भक्ति है और अत मे भी भक्ति है। भक्ति ही साधना का प्राण है। जीव की आत्मा शिव-स्वरूप है। मोह और अज्ञान से आच्छन्न होने के कारण वह मूर्च्छित पडी रहती है। यह शिवरूपी आत्मा व्योम-तत्त्व में अर्थात् विशुद्ध चक्र में शवरूप में अवस्थित रहती है। यह बडी ही गम्भीर प्रसुप्ति है। इस सुप्त आत्मा को अर्थात् शवरूप शिव को जगाये विना आत्मज्ञान के पथ पर अग्रसर होना कठिन क्या, असम्भव है। परन्तु इस सोयी हुई आत्मा को जगानेवाली है एकमात्र शक्ति। शक्ति के विना शिव को कोई जगा ही नही सकता। अथच, स्वय शक्ति भी निद्रा से अभिभूत होकर आधार-चक्र में जड पिण्ड की भाँति पडी रहती है। इसलिए साधक का सर्वप्रधान एव सर्वप्रथम कर्तव्य यह है कि इस सुप्त शक्ति को जाग्रत कर उसकी सहायता से शवरूपी शिव को प्रबुद्ध करे। मूलाधार से विशुद्ध-चक्र तक पाँच चक्र पाँच भौतिक तत्त्वो के केन्द्र हैं। शक्ति व्यापक-भाव से सर्वत्र ही सुप्त रहती है। शक्ति है एक और अभिन्न, तथापि चक्र-भेद से उसकी स्थिति पृथक्-पृथक् है। मूलाधार में शक्ति जाग्रत होने से उसके प्रभाव से स्वाधिष्ठान में स्थित शक्ति भी जाग्रत हो जाती है और इसी प्रकार क्रमश पाँचो चक्रो में शक्ति जाग्रत हो जाती है। जैसे-जैसे शक्ति जाग्रत हो कर ऊपर की ओर उठती है, वैसे-वैसे उसका जागरण क्रमश. अधिक उज्ज्वल और स्पष्ट होता जाता है और चरमावस्था में जब शक्ति पूर्णत जाग्रत हो जाती, तब पाँचो चक्र खुल जाते हैं और तब लेशमात्र को भी जडत्व का आभास कही रह नही जाता। इस अवस्था में, अर्थात् आकाश-तत्त्व में शक्ति के पूर्ण जागरण का फल यह होता है कि शवरूपी शिव जाग्रत हो जाते हैं, आत्मा की अनादि निद्रा भग हो जाती है और तभी सिद्ध होता है शिव-शक्ति-सामरस्य।

भक्ति और शक्ति

दूसरा अध्याय

मधुर रस का स्वरूप और उसकी व्यापकता

मधुर रस के सम्बन्ध में उपनिषदो में यत्र-तत्र सकेत रूप में उल्लेख मिलता है। पुराणो में श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त्त में इसका बडा ही भव्य एव दिव्य वर्णन है। यहाँ नि:सकोच स्वीकार करना होगा कि श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त्त ही मधुर रस के आकर-ग्रन्थो में मुख्य एव शिरोमणि है। वृहद् गौतमीय तत्र, ब्रह्म सहिता, समोहन तत्र आदि ग्रन्थो मे भी इस तत्त्व की विशद व्याख्या है। कतिपय अन्य सहिताओ में भी मधुर रस की विवृति है, परन्तु भक्ति का जैसा सागोपाग मार्मिक, वैज्ञानिक, सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन गौडीय वैष्णव-सप्रदाय में हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। गौडीय वैष्णवो ने इसका पुखानुपुख विचार किया है। अस्तु, यहाँ श्री रूप गोस्वामी के 'भक्ति-रसामृत-सिधु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' के आधार पर मधुर रस के तात्त्विक स्वरूप एव रहस्य का आकलन प्रस्तुत किया जा रहा है। तदनन्तर हम दिखायेंगे कि रामावत-सम्प्रदाय की मधुर उपासना पर इसका क्या प्रभाव है।

जड जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन

यह जड जगत् चिज्जगत् का प्रतिफलन है। इसमें गूढ तत्त्व यह है कि प्रतिफलित प्रतीति स्वभावत विपर्यय धर्म को प्राप्त कर लेती है, अर्थात् आदर्श जहाँ सर्वोत्तम होता है, प्रतिफलन सर्वाधम, आदर्श जहाँ अत्यन्त निम्न कोटि का होता है प्रतिफलन अत्यन्त उच्च कोटि का। दर्पण में का परम दिव्य अपूर्व रस जड जैसे प्रतिविम्ब उलटा पडता है वही दशा यहाँ भी है। चिज्जगत् जगत् में विपर्यस्त होकर जड जगत् में स्थूल रूप धारण कर लेता है। वस्तुत परम वस्तु रस-रूप-तत्त्व है। उसकी अद्भुत विचित्रता है। इस जगत् में उसकी जो परछाईं पडती है उसी का अवलम्बन करके आगे वढा जाय तो उस अतीन्द्रिय रस का अनुभव हो सकता है।[1]

चिज्जगत् के रस और जड जगत् के व्यापार

चिज्जगत् के अत्यन्त निम्न भाग मे है शान्त रस, उसके ऊपर दास्य रस, उसके ऊपर सख्य रस, उसके ऊपर वात्सल्य रस और सबसे ऊपर मधुर रस। इस जड जगत् में विपर्यस्त प्रतिफलन के द्वारा मधुर रस सब से नीचे है। उसके ऊपर है वात्सल्य रस, उसके ऊपर सख्य रस, उसके ऊपर दास्य रस और सबसे ऊपर शान्त रस। दिव्य मधुर रस की जो स्थिति और क्रिया है, वह इस जड जगत् में नितान्त तुच्छ और लज्जास्पद है।

---

१ द्रष्टव्य--जैव धर्म, अध्याय ३१।

चिज्जगत् में पुरुष और प्रकृति का सम्मिलन अत्यन्त पवित्र एव तत्त्वमूलक है। चिज्जगत् मे एक मात्र भगवान् ही भोक्ता है। शेष समस्त चित्सत्त्वगण प्रकृति-रूप में उसकी भोग्या है। इस जड जगत् में कोई जीव भोक्ता है और कोई भोग्या—इस प्रकार मूलतत्त्व के विरोध मे यह सारा व्यापार लज्जाजनक एव घृणास्पद हो जाता है। तत्त्वत जीव जीव का भोक्ता हो नही सकता। सकल जीव भोग्या हैं, एकमात्र श्रीकृष्ण ही भोक्ता हैं। कहाँ जीव जीव का उपभोग और कहाँ कृष्ण और जीव का उपभोग! परन्तु इस हेय के भीतर से भी एक अत्यन्त उपादेय तत्त्व उपलब्ध हो जाता है। कैसे, इसका विवेचन आगे करेंगे।

कृष्ण ही मधुर रस के विषय है और उनकी वल्लभाएँ इस रस का आश्रय है। दोनो मिल कर रस के आलम्बन है। मधुर रस के विषय श्रीकृष्ण है परम सुन्दर, परम मधुर, नवजलधर वर्ण, सर्व सल्लक्षणयुक्त, बलिष्ठ, नवयौवनशाली, प्रियभाषी, विदग्ध, कृतज्ञ, प्रेमवश्य, रमणीजनमनोहारी, नित्य नूतन, अतुल्य-केलि, सौन्दर्यशाली, प्रियतम, वशीवादनशील। उनके चरणो की नखद्युति कोटि-कोटि कदर्पों का दर्प चूर्ण कर देती है और उनके कटाक्ष से सबका चित्त विमोहित हो जाता है।

मधुर रस के आश्रय और विषय

नायकचूडामणि श्रीकृष्ण का गोपियो के साथ जो लीला-विलास है वही है मधुर रस की आत्मा। इसका स्थायी भाव है दोनो की प्रियता या मधुरा रति[1] जो दोनो को दोनो से सयोग की प्रेरणा देती रहती है। युक्त विभावो-अनुभावो के द्वारा जब यह रति भक्तो के हृदय मे रसास्वादन की स्थिति तक पहुँचती है, तब इसे भक्ति-रस-राज 'मधुर रस' कहते है।[2] कृष्ण का कान्तत्वेन स्फुरण ही मुख्यत इस रस का आधार है पर कान्त को दोनो ही भाव में लिया जा सकता है। पतिरूप में, उपपति रूप मे। शृगार रस का तो उपपति रूप में ही परमोत्कर्ष माना जाता है। शृगार का चिद् व्यापार एक रहस्यमणि की माला की तरह है तो उसमें परकीय मधुर रस को उस मणिमाला मे कौस्तुभ विशेष मानना चाहिए। जैसे शान्त से दास्य में, दास्य से सख्य मे, सख्य से वात्सल्य में और वात्सल्य से मधुर में इसका अधिकाधिक उत्कर्ष होता चला जाता है, उसी प्रकार स्वकीय की अपेक्षा परकीय में रस अपने चरमोत्कर्ष पर आ जाता है।[3]

---

१ मिथो हरेर्मृगाक्ष्यश्च सभोगस्यादिकारणम्।
मधुरापरपर्या प्रियताख्योदिता रतिः॥—उज्ज्वल नीलमणि

श्रीकृष्ण की द्विविध लीलाओ में ऐश्वर्य की अपेक्षा माधुर्य की लीला श्रेष्ठ है।
—दे० जीवगोस्वामी का प्रीति-सदर्भः पृ० ७०४-७१५।

२ स्वाद्यता हृदि भक्ताना अनीता।—उ० नी० म०

३ अत्रैव परमोत्कर्ष. शृंगारस्य प्रतिष्ठितः।—उ० नी० म०

श्रीकृष्ण का अवतार ही रसास्वादन के लिए हुआ।[1] परकीया या तो कल्पका हो सकती है या प्रौढा। लोकदृष्ट्या, यह भाव गर्हित हो सकता है, पर यह परकीया-भाव ही वैष्णवो का परमादर्श हुआ और इसी का आधार लेकर आत्माएँ अपने-आपको सर्वभावेन श्रीकृष्ण को समर्पित करती रही है।[2] श्रीकृष्ण के इसी भाव को लेकर वैष्णव शास्त्रो ने द्वारकामें उन्हें पूर्ण, मथुरा मे पूर्णतर तथा व्रज में पूर्णतम माना है। नायक नायिका परस्पर अत्यन्त 'पर' होकर जब राग की तीव्रता द्वारा मिलते है, तब एक अद्भुत आनन्द रस का सचार होता है। यही है परकीय रस। गोपियो और श्रीकृष्ण का प्रेम अपनी सघनता, प्रच्छन्न कामना तथा विवाह के अव्यक्तत्व के कारण ही परकीया-भाव की उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हुआ।

परकीया-भाव की रसात्मक उत्कृष्टता

यह लक्ष करने की बात है कि श्रीकृष्ण की चिन्मयी लीला नित्य है। उस नित्य गोलोक की नित्य चिन्मयी लीला में कृष्ण-कृपा से दिव्य देह से प्रवेश का विषय आगे यथास्थान आयेगा। यहाँ इतना निवेदन करना अपेक्षित है कि श्रीकृष्ण त्रिपाद विभूति चिज्जगत् में है और जड जगत् मे एक पाद विभूति है। एक पाद विभूति चौदहो लोकात्मक मायिक विश्व है। मायिक विश्व एव चिज्जगत् के बीच 'विरजा' नदी है और विरजा के पार है

नित्य गोलोक और नित्य चिन्मयी लीला

परकीया-भाव के सम्बन्ध में विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते है कि 'यन्त गोकुले स्वीयाऽपि पित्रादिशकया परकीया इव।' जीव गोस्वामी ने अपने 'प्रीति-सदर्भ (पृ० ६७६–६८६) में विस्तार से इस विषय पर प्रकाश डाला है। वे कहते है कि श्रीकृष्ण का गोपियो के साथ विहार 'प्राकृत काम' नहीं है, प्रत्युत् 'शुद्ध प्रेमन्' है और प्रकट लीला में ही स्वकीय-परकीय का प्रश्न उठता है। 'वस्तुत परमस्वीयाऽपि प्रकटलीलाया परकीयामाना श्री व्रजदेव्य.।'

१ रसनिर्यासस्वयं अवताराणि।—उ० नी० म० (पृ० ५४७)

श्रीकृष्ण सदर्भ में जीव गोस्वामी ने व्रजलीला की रहस्यपरक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका कहना है कि मथुरा और द्वारका की गोपियाँ श्रीकृष्ण की 'स्वरूपा शक्ति' है। गोपियो का परकीया-भाव वस्तुत है नहीं, वह प्रकट वृन्दावन लीला में आभास मात्र है। इतना ही नहीं, उनका कहना है कि व्रजसुन्दरियो का कभी अपने पतियों के साथ सगम हुआ ही नहीं—'न जातु व्रजदेवीना पतिभि सह सगम।'

२ Even if orthodox poetics deprecates love to a married woman she is according to Vaisnav's idea, the highest type of heroine and forms the central theme of the later parakiya doctrine of the school in which the love of the mistress for her lover becomes the universally accepted symbol of the soul's passionate devotion to God

—S K De Vaisnava Faiths & Movement P 54

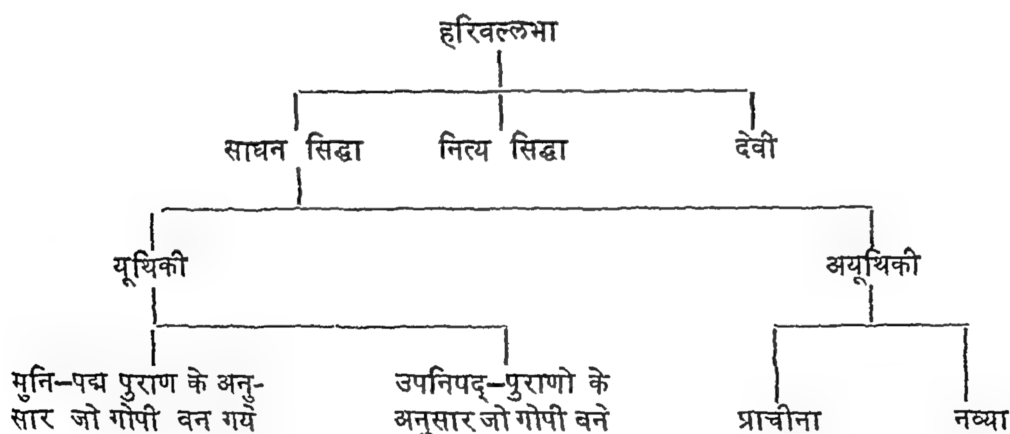
चिज्जगत्। इस चिज्जगत् को वेष्टन-प्राकार की तरह घेरे हुए है ज्योतिर्मय ब्रह्मधाम। उसे भेद करने पर परव्योम रूप वैकुण्ठ दिखता है। वैकुण्ठ प्रवल है। यहाँ के राजराजेश्वर है अनन्त चिद्विभूतिपरिसेवित नारायण। वैकुण्ठ है भगवान् का स्वकीय रस। श्री, भू आदि शक्तिगण स्वकीय स्त्री रूप में उनकी सेवा उस लोक में करती रहती है। वैकुण्ठ के ऊपर है गोलोक। वैकुण्ठ में स्वकीया पुरवनितागण यथास्थान सेवा में तत्पर रहती है और गोलोक मे व्रज-वनितागण निज रस में कृष्ण-सेवा करती रहती हैं।

व्रज सुन्दरियों के प्रकार-भेद

इन व्रजवनिताओ के कई भेद है और इनका प्रकार-भेद काव्यशास्त्र के अनुसार किया गया है—स्वकीया, और परकीया। इनके तीन भेद—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। इसमे 'मान' के आधार पर मध्या और प्रगल्भा के भेद है—धीरा, अधीरा, धीराधीरा। नायक के साथ इनके सम्बन्ध के आधार पर पुन इनके आठ भेद हैं—१—अभिसारिका, २—वासकसज्जा ३—उत्कठिता, ४—विप्रलब्धा, ५—खडिता, ६—कलहान्तरिता, ७—प्रोषितभर्तृका, और ८—स्वाधीनभर्तृका। नायक के प्रेम के आधार पर पुन उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा ये तीन भेद है।

सखी भेद

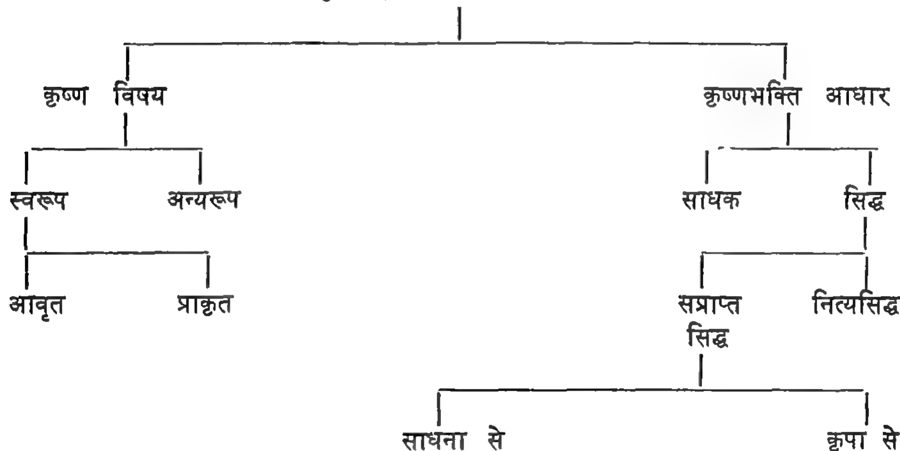
यह तो हुआ सामान्य शास्त्र के आधार पर किया हुआ विभाजन, परन्तु धर्मशास्त्र के आधार पर किया हुआ विभाजन सर्वथैव नूतन है और भक्ति रसराज मधुर रस में वही गृहीत है—



इनमे राधा वृन्दावनेश्वरी, कृष्ण की नित्य सहचरी, परम प्रियतमा ह्लादिनी महाशक्ति है। राधा की सखियाँ पाँच प्रकार की है—सखी, नित्य सखी, प्राण सखी, प्रिया सखी और परम प्रेष्ठा सखी।

यह एक बात ध्यान में रहे कि कोटि-कोटि मुक्त पुरुषो में एक भगवद्भक्त दुर्लभ है। जो लोग अष्टाग योग या ब्रह्मज्ञान के द्वारा मुक्ति पा जाते हैं, वे ब्रह्मधाम में ही आत्म-विस्मृति का आनन्द लेते रहते है। जो भगवान् के ऐश्वर्यपरायण भक्त है वे लोग भी गोलोक में नही जाते। वे वैकुण्ठ में अपने भावानुसार भगवान् की ऐश्वर्य-मूर्त्ति की सेवा करते रहते हैं। जो लोग व्रजरस से भगवान् का भजन करते है वे ही गोलोक देख पाते है। गोलोक में शुद्ध चित्प्रतीति है। गोलोक स्वप्रकाश वस्तु है। भक्तो के हृदय में गोलोक प्रकाशित होता है।

व्रजरस



नायक भेद

नायक के चार भेद—(१)अनुकूल, (२)दक्षिण, (३)शठ और (४) धृष्ट। इनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद—धीरोदात्त, धीर ललित, धीरोद्धत और धीरशात।

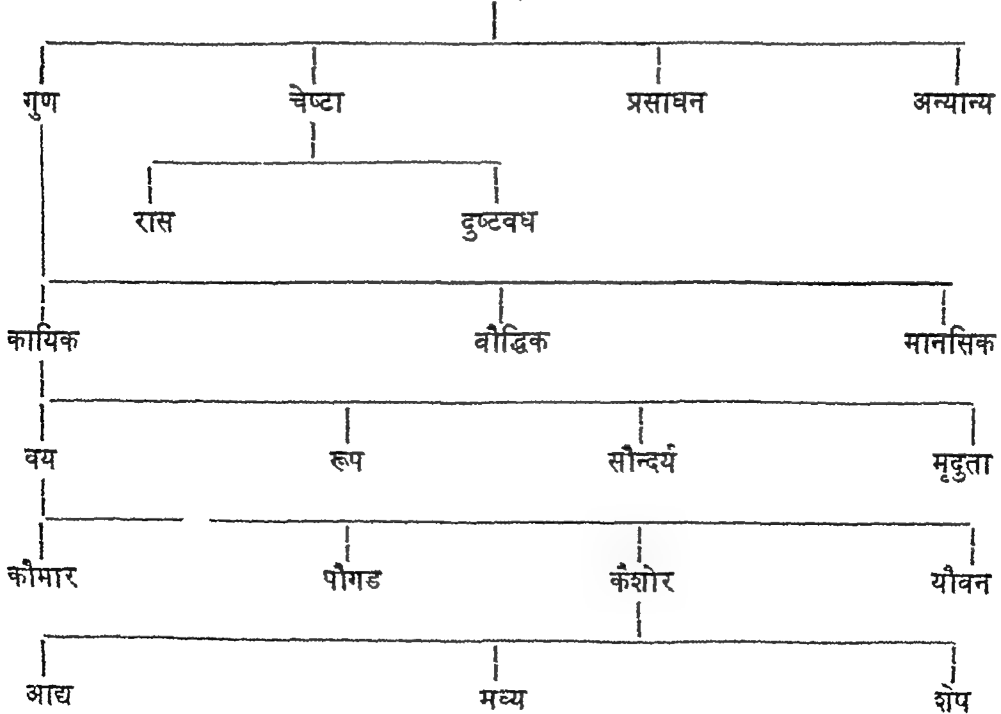
नायक के सहायको के पाँच भेद है—चेट, विट, विदूषक, पीठमर्दक और प्रियनर्मसखा। दूती के दो प्रकार—स्वय और आप्त। विभिन्न चेष्टाओ और सकेतो से, जैसे भ्रूविलास, अधरदशन आदि द्वारा जो नायक को नायिका की ओर आकृष्ट करती है वही स्वय दूती है। आप्त दूती वह है जो नायक का पत्र आदि ले जाती है। उनके तीन भेद है—अमितार्था, विसृष्टार्था और पत्रहारिका। इनमें शिल्पकारी, दैवज्ञ, लिंगिनी, परिचारिका, धात्रेयी, सखी, वनदेवी आदि कई भेद है। सकेत वाच्य भी हो सकता है, व्यग्य भी। साक्षात् भी हो सकता है अथवा व्यपदेशन भी।

सहायक भेद

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीकृष्ण द्वारकापुरी मे पति भाव से और व्रजपुरी में उपपत्ति भाव से लीला करते हैं। सकल व्रजवासिनी ललना व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की परकीया है।

परकीया में रस की उत्कृष्टता क्यों ?

कारण कि परकीया के अतिरिक्त मधुर रस का अत्यन्त उत्कृष्ट विकास हो नही सकता। थोडा इसे विस्तार से समझना आवश्यक प्रतीत होता है। स्त्रियो में जो वामता, दुर्लभता, निवन्धन-निवारणादि प्रतिवधकता है, वही है कदर्प का परम आयुध। जहाँ निषेध विशेष है और ललना दुर्लभ है, वही नागर का हृदय अतिशय आसक्त होता है। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण गोप हैं। वे गोपी के सिवा किसी से रमण करते नही। गोपियाँ जिस भाव से श्रीकृष्ण की भजन-सेवा करती थी, शृंगार रसाधिकारी साधक भी उसी भाव से कृष्ण का भजन करते है। भावनामार्ग से अपने को व्रजवासी मान कर किसी सौभाग्यवती व्रजवासिनी के परिचारिका-भाव से उसके निर्देश पर राधा-कृष्ण की सेवा करे। अपने को प्रौढा जाने विना रसोदय होगा नही। यह प्रौढाभिमान ही व्रजगोपीत्व धर्म है।[1]



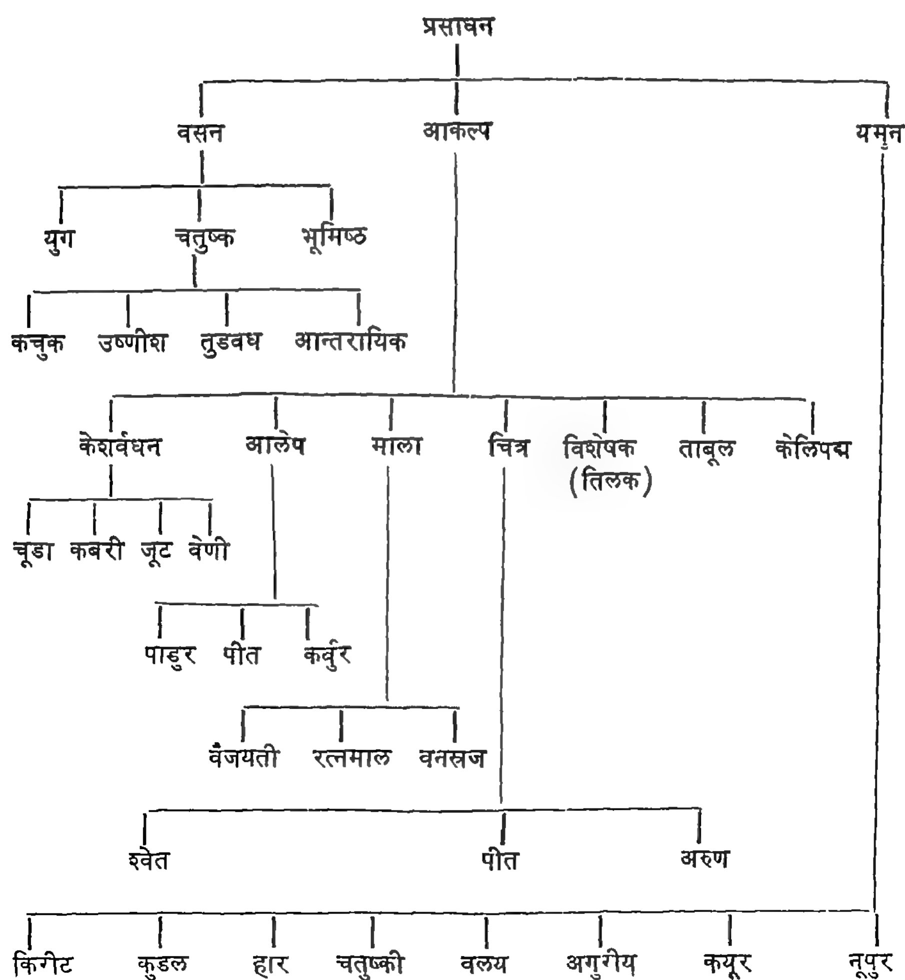
---

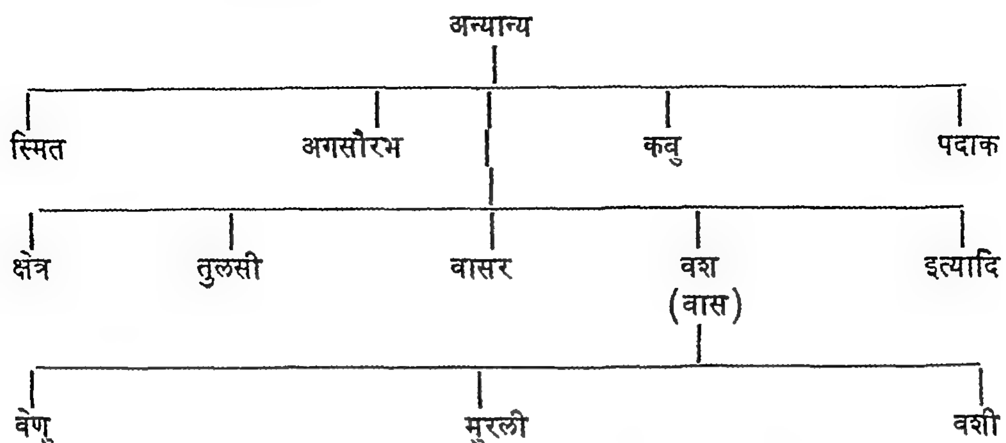
१ श्री रूपगोस्वामी लिखते है—

मायाकल्पितता दृक्-स्त्री-शीलनेनानसुयिभिः।
न जातु व्रजदेवीना पतिभि सह सगमः॥

परन्तु यह प्रश्न उठता है कि पुरुष साधक अपने को 'प्रौढा' किस प्रकार माने ? पुरुष इस 'प्रौढाभिमान' को कैसे सिद्ध कर सकेगा ? उत्तर यह है कि पुरुष मायिक स्वभाववश ही ससार में अपने को पुरुष समझता है। शुद्ध चित्स्वभाव में कृष्ण के अतिरिक्त यावत्जीवमात्र स्त्री है। चिद्गठन में वस्तुत स्त्री पुरुप चिह्न है नही, इसलिए जो कोई भी व्रजवासिनी होने का अधिकार लाभ कर सकते है। जिन्हें मधुर रस की स्पृहा है उन्हें तो व्रजवासिनी होना ही पडेगा। स्पृहा के अनुरूप साधना करते-करते सिद्धि का उदय होता है।

व्रजवासी भाव





रति के अनुभाव कृष्ण-रति के अनुभाव हैं—नृत्य, विलुठित, गीत, क्रोशन, तनु-मोटन, हुकार, जृभन, श्वाससूयन, लोकानपेक्षिता, लालास्रव, अट्टहास, घूर्णा, हिक्का।

अष्ट सात्विक भाव स्तभ, स्वेद, रोमाच, स्वरभग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय।

स्थायी भाव काव्य-शास्त्र के अनुसार रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद, परन्तु भक्ति-शास्त्र के अनुसार शृगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

व्यभिचारी भाव ३३ निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीडा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, उग्रता, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति, बोध।

मुख्य भक्ति-रस के रग आदि

मुख्य भक्ति रस

रस—	शान्त	प्रीत	प्रेयस्	वात्सल्य	मधुर प्रिया प्रीतम्
भाव—	शान्त	विश्वस्त	मित्रता	स्नेह	श्याम
रङ्ग—	श्वेत	चित्र	अरुण	शोण	उज्ज्वल
देवता—	कपिल	माधव	उपेन्द्र	नृसिह	कृष्ण

आर्त्ति-शका के कारण खिन्नता और (ङ) मोह, मूर्च्छा आदि के अभाव में भी पूर्ण आत्म-विस्मरण।[1]

(२) अधिरूढ—उपर्युक्त रूढ भाव की विशेष उत्कर्ष दशा। इसके दो प्रकार—(क) मोदन—सात्विको का अत्यन्त उद्दीप्त सौष्ठव—जो केवल राधा-वर्ग में मिलता है। इसीका और विकसित रूप है (ख) मादन सात्विको का सूद्दीप्त सौष्ठव—प्रिया के आलिङ्गन में होते हुए भी प्रिय का मूर्च्छित होना[2]—तथा स्वय असह्य दु ख स्वीकार करके भी प्रिय के सुख की कामना[3]—तथा सारे ससार को दु खी कर डालने की प्रवृत्ति[4]—पशुलोक का रोदन[5]—मृत्यु का वरण करके भी प्रियतम के साथ अङ्ग-सङ्ग की अभिलाषा—और अन्त में है दिव्योन्माद। दिव्योन्माद की अवस्था में नाना प्रकार की अवश क्रियाएँ तथा चेष्टाएँ हो सकती है जिसे 'उद्घूर्ण' कहते है। प्रियतम के किसी मित्र से मिलने पर नाना प्रकार की वातचीत हो सकती है जिसे 'चित्रजल्प' कहते है। इस चित्र-जल्प की दस अवस्थाएँ होती है—प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, सजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प और सुजल्प।

'मादन' का अर्थ है समस्त भावो का अकुरित हो जाना। यह केवल राधा में मिलता है।

पुन: मादन	इसका लक्षण यह है—मान के कारण न होने पर भी मान करना और प्रियतम के साथ सम्भोग की अवस्था में भी विरहाशका या नायक के सम्बन्ध की विविध बातो का चिन्तन-स्मरण।

मधुरा रति का स्थायी भाव ही मधुर रस या शृङ्गार रस हो जाता है। इसके दो भेद है—सम्भोग और विप्रलम्भ। विप्रलम्भ के अनेक अवान्तर भेद है।[7]

---

१ पचत्व तनुरेतु भूतनिवहा स्वाशे विशांतु स्फुटम्।
धातार प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम्॥
तद्वापीषु पयस्तवीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयागने।
व्योम्नि व्योम तवीयवर्त्मनि धरा तत्तालवन्तेऽनिला॥

—श्री जीव गोस्वामी

२ 'कान्ताश्लिष्टेऽपि मूर्छना।'
३ 'असह्यदु खस्वीकरादपि तत्सुखकामिता।'
४ ब्रह्माण्डक्षोभकारित्वम्।'
५ 'तिरश्चामपि रोदनम्।'
६ 'मृत्युस्वीकारात् स्वभूतैरपि तत्सगतृष्णा।'
७ 'रसार्णव-सुधाकर' में विप्रलभ के चार प्रकार है—पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुणा।

१ पूर्वराग—प्रसुप्त प्रेम, मिलन के पूर्व का प्रेम। प्रियतम के प्रथम दर्शन, श्रवण, स्वप्नदर्शन, चित्रदर्शन से उद्भूत प्रणय-पिपासा। यह 'प्रौढ', 'समञ्जस' या 'साधारण' भेद से तीन प्रकार का होता है। प्रौढ पूर्वराग की दस दशाएँ है—

लालसा, उद्वेग, जागरण, तानव (दुर्बलता), जडिमा (शरीर का सुन्न पड जाना), वैवग्र्य (व्यग्रता), व्याधि (पीला पड जाना), उल्लास, मोह (मूर्च्छा) और मृत्यु।

समजस पूर्वराग की दस दशाएँ

समञ्जस पूर्वराग की दस दशाएँ है—अभिलाप, चिन्ता, स्मृति, गुण-कीर्त्तन, उद्वेग, विलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मृति।

साधारण पूर्वराग की छह दशाएँ

साधारण पूर्वराग की छह दशाएँ है जो समञ्जस पूर्वराग की प्रथम छह के समान ज्यो-की-त्यो अभिलाप से आरम्भ होकर विलाप पर समाप्त हो जाती है।

२ मान[1] —प्रेम की परिणति मे बाधा डालने वाला तथा प्रणयोल्लास को उभारने वाला क्रोधाभास। प्रेमास्पद की कोई चेष्टा या 'हरकत' देखकर, सुनकर या अनुमान कर जो मान होता है वह 'सहेतुक' है। मान का दूसरा भेद है निर्हेतुक या कारणाभाससहित। मधुर शब्द से, उपहार आदि से, आत्म-प्रशसा से अथवा उपेक्षा से मान का उपशमन हो जाता है।

३ प्रेमवैचित्र्य—अर्थात् प्रेमास्पद की उपस्थिति में भी विरह की आशका।

४ प्रवास—प्रिय के वियोग में मानसिक क्षोभ। प्रवासजन्य क्लेश की दस दशाएँ है—चिन्ता, जागरण, उद्वेग, तानव, मलिनाङ्गता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु।

नित्य लीला में कृष्ण का व्रजदेवियो से कथमपि वियोग नही होता, क्योकि इनका मिलन नित्य है। प्रकट लीला मे ही श्रीकृष्ण के मथुरा जाने पर गोपियो को प्रवासजन्य क्लेश होता है।

नित्य लीला में नित्य संयोग

अर्थात् प्रकट लीला मे बाहर-बाहर से देखने भर को ही श्रीकृष्ण का मथुरागमन होता है, वास्तव में तो सच यह है कि 'वृन्दावन परित्यज्य पादमेक न गच्छति।'

सयोग-शृङ्गार के दो भेद (१) मुख्य और (२) गौण। मुख्य सयोग है साक्षात् प्रकट मिलन और गौण है स्वप्नादि में मिलन। इन दोनो के पुन चार भेद है[2] —(१) सक्षिप्त, (२)

---

१ 'मान' शब्द भी 'रस' की भाँति बडा ही व्यापक और गभीर अर्थ वाला है। हर्ष, विषाद, भय, आशा, अहकार और क्रोध, प्रेम और वितृष्णा आदि का सम्मिलित रूप 'मान' अपने-आपमें कितना रहस्यमय शब्द है, बाहर-बाहर से उदासीनता और भीतर-भीतर से प्रबल आसक्ति। इसके व्यक्त रूप की कल्पना ही की जा सकती है, चित्रण नहीं।

२ 'रसार्णव-सुधाकर' ने भी संयोग के चार उपर्युक्त भेद माने है। जीव गोस्वामी ने पूर्वराग के बाद सभोग के चार भेद माने हैं और उनके नाम हैं—संदर्शन, सस्पर्श, संजल्प, सप्रयोग।

सकीर्ण, (३) सम्पन्न और (४) समृद्धिमत्। इसके अनेक प्रकार हैं—दर्शन, स्पर्श, मन्द-मन्द वार्तालाप, राह रोकना, रास, जलक्रीडा, वृन्दावन-क्रीडा, यमुना

सयोग-शृगार के भेद उपभेद

जल-केलि, नौका-विहार, चीर-हरण, वशी-चोरी, पुष्पचौर्य, दान-लीला, कुञ्जो में आँख-मिचौनी, मधुपान, कृष्ण का स्त्रीवेश धारण, कपट-निद्रा, द्यूत-क्रीडा, वस्त्राकर्षण, नखार्पण, बिम्बाधरसुधापान, निधुवनरमणादि सप्रयोग, चुम्बन, आलिङ्गन आदि-आदि और अन्त में सम्भोग। सम्प्रयोग की अपेक्षा लीला विलास में अधिक सुख है।

लीला के दो भेद—प्रकट लीला और अप्रकट लीला। वन-वृन्दावन में प्रकट लीला, मन-वृन्दावन में अप्रकट लीला और नित्य-वृन्दावन में नित्य लीला। परन्तु प्रकट व्रज-लीला के भी दो भेद हैं—नित्य और नैमित्तिक। व्रज में जो अष्टकालीन

लीला के भेद

लीला है वही नित्य है और पूतना-वधादि दूरप्रवासादि नैमित्तिक लीला है। निशान्त, प्रात , पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, साय, प्रदोष और रात्रि-भेद से अष्टकालीन लीला।[1]

ऊपर बहुत सक्षेप मे हमने गौडीय मतानुसार मधुर रस के स्वरूप की चर्चा प्रस्तुत की है। मधुर रस का द्विविध रूप है—सामान्य रूप में वह सर्वगत व्यापक है परन्तु विशेष रूप में वह परिच्छिन्न है। सामान्य रूप में वह उपनिषदादि में विद्यमान है। मूल में एक अद्वय वस्तु, परन्तु आनन्द के लिए दो, स्त्री-पुरुष अथवा प्रकृति-पुरुष। ये दोनो परस्पर पूरक हैं और एक दूसरे को पाकर पूर्ण होना चाहता है।[2] इसी प्रकार ज्ञाता और ज्ञेय की एकता त्रिपुरी-भङ्ग द्वारा होती है। मिलन की पूर्णता के आधार पर ही भाव का विकास होता है। पूर्ण मिलन—नि सकोच और निरावरण मिलन-मधुर में ही होता है।

मधुर रस की उपासना ससार की प्राय सभी साधनाओ मे प्रकट या गुप्त रूप में विद्यमान है। ईसाई सन्तो और सूफी फकीरो की अनुभूतियो में मधुर रस की ही धारा है। समस्त सगुण उपासना में मधुर भाव की स्वत स्फूर्त्ति है, क्योकि जीव अपने-आप को पूर्णत देकर अपने प्राणाराम को पूर्णत पा लेना चाहता है। जीव-जीवन की यह एक परम सामान्य, परन्तु साथ ही परम विलक्षण विशेषता है कि वह अपने प्यारे का प्रियतम बनना चाहता है, जिसे प्यार करता है उसके प्यार पर अपना एकाधिकार या इजारा चाहता है।[3] सगुण साधना में यह चाह सहज

---

१ निशान्त प्रात पूर्वाह्णो मध्याह्न् नश्चापराह्णोक । साय प्रदोषरात्रिश्च कालाष्टौच यथाक्रमम् ।।

२ One longs for another for perfection —*M M G N Kaiiaj*
इसी को प्रो० रायस (Royce) 'Man's homing instinct' कहते हैं।

३ इश्क अल्लाह महज़ुब अल्लाह ।—अल बस्तामी
The lover of God is the beloved of God
He who chooses the Divine has been chosen by the Divine
—*Sri Aurobindo*

रूप में बलवती एव फलवती होती है, परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि जो अत्यन्त गुह्य अर्थात् 'एसाटरिक' साधनाएँ हैं उनमें भी किसी-न-किसी रूप मे मधुर भाव की उपासना बनी हुई है। ईसाई तथा सूफी साधना में मधुर भाव का प्रसङ्ग हम यथास्थान कुछ विस्तार से प्रस्तुत करेंगे। यहाँ हम इतना ही देखना चाहते हैं कि भारतीय गुह्य सहज साधनाओ में मधुर भाव का क्या स्वरूप है और उसकी पूर्ण निष्पत्ति का क्रम क्या है। क्योंकि बौद्ध धर्म में भी प्रज्ञापारमिता तथा आदि बुद्ध के सम्मिलन से 'महासुख' की उपलब्धि होती है। तन्त्रादि में भी इसकी विशेष व्याख्या है। नाथ, सिद्धो और सन्तो मे भी इस उपासना का विशेष उल्लेख है। वैष्णव-सहजिया-सम्प्रदाय में इसका साङ्गोपाङ्ग विवरण है। इस प्रकार ऐतिहासिक क्रम से देखने पर ही मधुर रस की साधना हमारे देश की परम प्राचीन साधना है, इसमें सन्देह नही किया जा सकता।

भारतवर्ष की समस्त गुह्य (एसाटरिक) धर्म-साधनाओ की पृष्ठभूमि तथा लक्ष्य एक है। वासना के विवर्जन या तिरस्करण के स्थान पर वासना के शोधन एव उन्नयन द्वारा मानव-मन के अन्दर सोये हुए दिव्य आनन्द को उद्‌बुद्ध एव उल्लसित करना ही इसका लक्ष्य है। इसके लिए शरीर की दृढता, मन की निर्मलता, बुद्धि की तीक्ष्णता एव आत्मा की विजयोत्कण्ठा अनिवार्यत आवश्यक है। समस्त सहज साधनाओ में वाणी, मन, श्वास, वीर्य और प्राण पर सहज रूप से नियन्त्रण स्थापित कर इनका ऊर्ध्व दिशा में उन्नयन आवश्यक माना गया है। लक्ष्य इनका है समरस की स्थिति में प्रवेश करना। यह स्थिति योग से प्राप्त हो या प्रेम से प्राप्त हो— साधन-भेद या प्रस्थान-भेद जो भी हो—लक्ष्य में कोई भेद नही है।

सहज साधनाओ की पृष्ठभूमि

समरस की अवस्था दिव्य आनन्द की वह अवस्था है जिसमें दो का एकीकरण होता है। सहजिया यह मानते है कि मनुष्य समस्त जीवन पर्यन्त सघर्ष झेलकर भी काम को सर्वथा निर्मूल या उच्छिन्न नही कर सकता। अतएव इसका उन्नयन (सब्लीमेशन) कर इसे ही दिव्य प्रेम और दिव्य आनन्द अर्थात् महासुख और महानुभव का निर्मल एव अमोघ साधन बनाया जा सकता है। उनकी मान्यता है कि मनुष्य राग द्वारा ही बँधता और राग द्वारा ही मुक्त होता है— 'रागेन बध्यते जीवो रागेनैव प्रमुच्यते।'

समरस की अवस्था

समस्त गुह्य साधनाओ की एक सामान्य मान्यता यह भी है कि एक से दो हुआ और दो से अनेक। इसीलिए एक वचन, द्विवचन तब बहुवचन। 'स एकाकी ना रमतएकोऽह बहु स्या प्रजायेम' का भाव यही है। एक से ही यह अनेक है, परन्तु इस अनेक के प्राण में पुन उसी 'एक' में लौट आने की प्रबल वासना है जिसमें से वह निकला है। इसीलिए इन आन्तर गुह्य साधनाओ का चरम और परम लक्ष्य है द्वैत का सर्वथा निरसन और अद्वय स्थिति की उपलब्धि। इस अद्वय स्थिति में दो का एकीकरण हो जाता है अथवा एक ही में दोनो समाविष्ट होते है जिसे उनकी भाषा में अद्वय, मिथुन, युगनद्ध, यामल, युगल, समरस, सहज आदि नामो से अभिहित किया गया है। हिन्दू-तन्त्रो ने परात्पर तत्त्व के द्विधात्मक रूप को शिव और शक्ति अथवा पुरुष और प्रकृति के

रूप मे स्वीकार किया हे। और, इन अन्तरङ्ग गुह्य साधनाओ ने ब्रह्माण्ड और पिण्ड की एकता को स्वीकार करते हुए यह माना है कि मूल तत्त्व मे, जो कुछ भी ब्रह्माण्ड मे है, वह पिण्ड मे भी है। शिवका निवास सहस्रदल कमल —सहस्रार मे है और शक्ति का मूलाधार मे। शक्ति मूलाधार मे सर्प की तरह गेंडुर मारे बैठी रहती है। साधना के द्वारा इसे जगाकर मूलाधार से उठाकर सहस्रार मे शिव के साथ इसका सम्मिलन कराया जाता है। शिव शक्ति का यह सम्मिलन ही आनन्द का आदि विलास है।

इसी सन्दर्भ मे यह भी लक्ष्य करने योग्य है कि प्रत्येक पुरुष-शरीर के वाम भाग मे नारी और दक्षिण भाग मे पुरुष तत्त्व विद्यमान रहता है, इसी से सदाशिव के अर्धनारीश्वर रूप मे वामार्ध मे उमा और दक्षिणार्ध मे महेश्वर है। इसी प्रकार वैष्णव सहजिया मे रसिक साधक वामार्ध मे राधा, दक्षिणार्ध मे कृष्ण, बाई ऑख मे राधा और दाहिनी ऑख मे कृष्ण है—ऐसा मानते है।[1] अस्तु, प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक नारी मे पुरुष तत्त्व और नारी तत्त्व विद्यमान है—पुरुष मे पुरुष-तत्त्व की प्रधानता है नारी मे नारी-तत्त्व की, परन्तु है दोनो मे दोनो ही। ठीक जैसे वाम और दक्षिण का अर्थ है नारी और पुरुष वैसे ही वाम का अर्थ है इडा और दक्षिण का पिङ्गला, वाम का अर्थ है प्राण और दक्षिण का अर्थ है अपान। साधना के द्वारा इन्हे 'सम' करके प्राण-प्रवाह को सुषुम्ना मे प्रवाहित किया जाता है। यही 'सुषुम्ना-साधना' है।

इस दृश्य जगत् मे पुरुष और नारी का जो भेद हम देखते है वह भेद परात्पर तत्त्व मे भी ज्यो-का-त्यो विद्यमान है—शिवशक्ति रूप मे। शिवशक्ति का सामरस्य ही परात्पर सत्य है। अस्तु, प्रत्येक पुरुष और नारी शरीर मे शिव और शक्ति विद्यमान है। अस्तु, परम सत्य के साक्षात्कार के लिए यह अनिवार्यत आवश्यक है कि प्रत्येक पुरुष अपनेको शिव रूप मे और प्रत्येक स्त्री अपने को शक्ति रूप मे अनुभव करे और तब परस्पर शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक सम्मिलन द्वारा परम आनन्द की उपलब्धि करे। समस्त अन्तरङ्ग गुह्य साधनाओ की यही चरम परिणति है। समस्त गुह्य साधनाओ के अन्दर यही है परम रहस्य, जिसका सन्धान साधक और साधिका करते है।

बौद्ध सहजिया साधना मे, जिसका हम कुछ विस्तार से विवेचन आगे करेंगे, परात्पर तत्त्व 'सहज' है—वह आत्म-अनात्म-निरपेक्ष है। शून्यता और करुणा—दूसरे शब्दो मे 'प्रज्ञा' और 'उपाय' उस सहज के प्रधान लक्षण है। यह 'प्रज्ञा' और 'उपाय' और कुछ नही है बल्कि हिन्दू-तन्त्रो के शिव और शक्ति है। 'प्रज्ञा' (नारी-तत्त्व) और 'उपाय' (पुरुष-तत्त्व) का सम्मिलन ही बौद्ध सहजिया साधना का लक्ष्य है। प्रज्ञा और उपाय का एक और भी अर्थ है और वह है प्रज्ञा इडा, उपाय पिङ्गला। इन दोनो का सम करने पर प्राण-प्रवाह सुषुम्ना से होकर ऊपर

बौद्धो का 'सहज'

---

१ वामे राधा दाहिने कृष्ण देखे रसिक जन।
दुई नेत्रे विराजमान राधा कुड श्याम कुड दुई नेत्रे हम।
सजल नयन द्वारे भावप्रेमे आस्वादय।

की ओर उठता है। इस प्रकार प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन से योगी 'अन्त सम्मिलन' की साधना में प्रवेश पाता है। उपाय ही है वज्रसत्व जिसका सहस्रार मे निवास है और प्रज्ञा है शक्ति जो मूलाधार में रहती है। अन्तर्मिलन का अर्थ है नाभिदेश से शक्ति को उद्‌बुद्ध कर सहस्रार में शिव के साथ युगनद्ध करना।

वैष्णव सहजिया साधना में चिर भोक्ता और चिर भोग्या के रूप में क्रमश कृष्ण और राधा की उपासना चलती है और इस साधना विशेष मे यह मानकर चलना होता है कि प्रत्येक पुरुष कृष्ण और प्रत्येक स्त्री राधा है। 'आरोप' के द्वारा जब पुरुष अपनेको कृष्ण और स्त्री अपनेको राधा रूप में अनुभव करने लगती है तब पुरुष और स्त्री का सम्मिलन तत्त्वत पुरुष स्त्री का सम्मिलन न होकर कृष्ण और राधा का सम्मिलन हो जाता है। बौद्ध सहजिया में योगसाधना की मुख्यता है, पर वैष्णव सहजिया में प्रेमसाधना या रस-साधना की।

वैष्णव सहजिया में राधाकृष्ण तत्त्व

नाथपन्थ मे युगलोपासना एक और ही रूप में व्यक्त हुई। यहाँ सूर्य और चन्द्र प्रतीक रूप में लिये गये—सूर्य कालाग्नि रूप में और चन्द्र अमृत रूप में। नाथ सिद्धो का लक्ष्य रहा है दिव्य शरीर में अमृतत्व की उपलब्धि। हठयोग की नाना क्रियाओ, वन्ध, मुद्रा आदि द्वारा तथा रसायन द्वारा काया-शोधन और काय-सिद्धि की प्रणाली सिद्धो में विशेष रूप मे पाई जाती है। नाथ सिद्धो की काय-सिद्धि और रस-सिद्धि की यह साधना रसायन-सम्प्रदाय से वहुत मिलती-जुलती है, भेद इतना ही है कि रसायनियो मे रससिद्धि की ही प्रधानता रही जहाँ नाथ पन्थ में यौगिक क्रियाओ की। साथ ही वैष्णव सहजियो की भाँति नाथ पन्थियो ने भी अन्तरङ्ग साधना के लिए प्रेम को ही सर्वोपरि मान्यता प्रदान की। सहज उपासना में बौद्ध सहजियो का लक्ष्य 'महासुख' और वैष्णव सहजियो का लक्ष्य 'परम प्रेम' रहा, पर दोनो ही प्रकार के लक्ष्य की सिद्धि के लिए यह अनिवार्यत स्वीकार किया गया कि सबल और निर्मल शरीर के विना यह साधना हो नही सकती, इसीलिए सभी प्रकार की अन्तरङ्ग साधनाओ में किसी-न-किसी रूप में हठयोग की प्रधानता वनी रही।

नाथ पंथ की उपासना सूर्य चंद्रतत्त्व

इन साधनाओ की चर्चा कुछ विस्तार में करके हम यह देखेंगे कि प्रकट या अप्रकट रूप में, कियदश मे ही सही, इन्होने रामावत-सम्प्रदाय की मधुर उपासना को प्रभावित किया है।

तीसरा अध्याय

भारतीय अंतरंग (एसाटरिक) धर्म-साधनाओं में मधुर भाव

(क) बौद्ध सहजिया

महाराजा चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय इस देश में चीनी यात्री फाहियान आया था और उसने बौद्ध धर्म के सूत्रो की प्रतिलिपि की। उसके लेखो से प्रकट है कि बौद्ध धर्म जनसाधारण में अतिशय लोकप्रिय हो गया था और स्थान-स्थान पर बौद्ध संघारामो की भरमार थी, जहाँ बौद्ध साधक रहते थे। फाहियान के बाद हुएनसग इस देश में महाराजा हर्षवर्धन के शासनकाल में आया था, ईसवी सन् की सातवी शताब्दी में। उसने भी सैंकडो सघारामो का विवरण दिया है जिनमें सहस्र-सहस्र बौद्ध साधक निवास करते थे। शीलभद्र के प्रति हुएनसग की वडी श्रद्धा थी। यह शीलभद्र नालन्दा केआचार्य धर्मपाल के शिष्य थे और बाद में उस विश्वविद्यालय में प्राचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। शीलभद्र के शिष्य और भतीजे बुद्धभद्र भी नालन्दा के एक प्रख्यात पडित और अध्यापक थे और बौद्ध योगाचार के मर्मज्ञ थे।

बौद्धधर्म की लोकप्रियता

कहते है, इन्होने अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मजुश्री से प्रेरणा पाई थी। अस्तु, बौद्ध धर्म की दो प्रधान शाखाएँ है—हीनयान तथा बज्रयान। हीनयान त्रिपितको के आधार पर व्यवस्थित अपरिवर्त्तनवादी शाखा है। इसमें आचार विचार, सयम का कसाव खूब तगडा है। यह बौद्ध धर्म का 'आर्थोडक्स स्कूल' कहा जा सकता है। ये लोग अपने को 'थेरवादी' (स्थविरवादी) कहते है।

बौद्ध योगाचार में अवलोकितेश्वर मैत्रेय और मजुश्री

दूसरी शाखा जिसे 'महायान' कहते है सुधारवादी (रिफार्मर स्कूल) है। हीनयान है अपरिवर्त्तनवादी (नो चेंजर) और महायान है परिवर्त्तनवादी (चेंजर)। हीनयान समय के साथ चलना नही चाहता था। वह रूढियो को पकडे रहा, परन्तु महायान समय के साथ चलनेवाला आवश्यक सुधार,सशोधन और उदारता के भाव को लेकर आगे बढा और यह स्वाभाविक ही था कि इसका अधिक-से-अधिक लोगो पर प्रभाव पडता। परिणामत, इस शाखा के अनुयायियो की सख्या बेतरह बढी।

दो शाखाएँ हीनयान तथा बज्रयान

भगवान् वुद्ध के निर्वाण के अनन्तर अनुयायियो में घोर विवाद चला कि तथागत के वचनो का वास्तविक अभिप्राय क्या है। इसी के लिए वौद्ध धर्मानुयायियो के सम्मेलन या 'संगीति' होने लगी पहली। सगीति मगध की राजधानी राजगृह में हुई, परन्तु लोगो को इससे सतोप नही हुआ, अस्तु पुन कौशाम्वी मे दूसरी सगीति हुई जिसमें वौद्ध सघ मे दो प्रवान भेद हो गये—(१) स्थविरवादी और (२) महासघिक। 'विनय' मे किसी प्रकार का भी परिवर्त्तन स्वीकार न करनेवाले कट्टर अपरिवर्त्तनवादी भिक्षु स्थविरवादी (थेरवादी) हुए और उसमें आवश्यक परिवर्त्तन, सशोधन, सुधार आदि स्वीकार कर चलनेवाले तथा सख्या में अधिक होने के कारण दूसरा दल 'महासधिक' कहलाया। इस प्रकार शनै -शनै वौद्ध धर्म में शाखाएँ-प्रशाखाएँ होने लगी और उनके अलग-अलग 'कैंप' हो गय।[1]

'संगीति'

'यान' का अर्थ है रथ, सवारी। साधना के ये मार्ग अपनी-अपनी सवारियो की प्रशसा मे और अन्तिम लक्ष्य की ससिद्धि मे अपनी विशिष्टता एव अजेय अमोघता का डका पीट रहे थे।

महासघिको ने भगवान् वुद्ध के 'मानुसी तनु' की अवहेलना कर उन्हें मानव-लोक से ऊपर उठाकर दिव्यलोक में पहुँचा दिया। इतना ही नही, आगे चलकर वेतुल्लवादियो ने यह स्पष्ट स्वीकार किया कि भगवान् वुद्ध कभी इस धराधाम पर आये ही नही और न कभी उपदेश दिया। वात यही रुक जाती तो कोई विशेष अनर्थ न होता। इन्होने यह भी माना कि एकाभिप्रायेण मैथुन का सेवन किया जा सकता है। इसी से तान्त्रिक वौद्धधर्म या वज्रयान का आविर्भाव हुआ, ऐसा नि सन्देह मानना पडता है।

भगवान् बुद्ध का 'मानुसी तनु'

परन्तु, इस विषय पर थोडा जम कर विचार करना होगा कि वौद्ध धर्म में गुह्य साधना का प्रवेश क्यो और कैसे हुआ और वज्रयानी शाखा के आविर्भाव तथा विकास का हेतु क्या है, कहाँ है।

त्रिपिटको के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भगवान् वुद्ध की मूल शिक्षा में ही तत्र-मत्र के वीज सन्निहित थे। स्थविरवादियो ने भी इसे स्वीकार किया है कि तथागत में अनेक अलौकिक सिद्धियाँ थी। वे यह मानते है कि वौद्ध धर्म में लौकिक कल्याण तथा पारलौकिक कल्याण का समान रूप से विधान है। इस लोक में प्रज्ञा, आरोग्य, वैभव आदि की उपलव्धि के लिए स्वय वुद्ध ने 'मत्रधारिणी' आदि तात्रिक विषयो की शिक्षा दी, ऐसा विचार शान्तरक्षित का हे।[2] 'गुह्य समाज तत्र' मे भी यह उल्लेख है कि तथागत ने अपने अनुयायियो

गुह्य साधना का प्रवेश क्यो और कैसे?

---

१ देखिये डा० चन्द्रधर शर्मा : इंडियन फिलॉसफी, पृ० ८६।

२ तदुक्तमन्त्रयोगादिनियमाय विधिवत् कृतात्।
प्रज्ञारोग्यविभुत्वादिदृष्टधर्मोऽपि जायते॥—तत्व-सग्रह, श्लोक ३४८६

को शिक्षा देते समय कहा कि जब मैं दीपकर बुद्ध और कश्यपबुद्ध के रूप में प्रकट हुआ था तब मैंने तान्त्रिक शिक्षा इसलिए नही दी कि मेरे श्रोताओ में उन शिक्षाओ को ग्रहण करने की क्षमता न थी। 'विनय-पिटक' की दो कथाओ में अलौकिक सिद्धियो का विवरण है। अभिप्राय यह है कि वौद्धधर्म में तत्र-मत्र का प्रवाह-क्रम स्वय भगवान् बुद्ध से ही चला, परवर्ती क्षेपक नही है।[1]

महायान, मत्रयान वज्रयान

महायान उदारतावादी परिवर्त्तनवादी एव क्रान्तिवादी शाखा के रूप में प्रकट हुआ। इसी का विकास 'मत्रयान' और पुन वज्रयान के रूप मे हुआ। मत्रयान सौम्यावस्था हैं और उसी का उग्ररूप है वज्रयान। पालवशीय राजा रामपाल ने जगद्दल के महाविहार में आलोकितेश्वर और महातारा की मूर्तियो की प्रस्थापना की। जगद्दल विहार मे मोक्षकार गुप्त एक सुप्रसिद्ध तर्कशास्त्री थे और उनका लिखा 'तर्कशास्त्र' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। उन्ही के भाई शुभकर गुप्त ने 'सिद्धैकवीर तत्र' नामक एक तत्र ग्रथ पर भाष्य लिखा और उसी विहार में रहनेवाले धर्मकर ने कृष्ण की 'सवर व्याख्या' का अनुवाद किया। अभिप्राय यह कि धीरे-धीरे बौद्ध धर्म में तत्र-साधना की ओर साधको और विद्वानो का ध्यान विशेष रूप में आकृष्ट होने लगा।

मनोवैज्ञानिक कारण

इसका मनोवैज्ञानिक कारण भी ढूंढने के लिए कोई विशेष तूल नही करना होगा। योगाचार से जनसाधारण की कुतूहल-वृत्ति को कुछ समय तक तो परितोष मिला अवश्य, परन्तु विज्ञानवाद की गूढ गुत्थियो एव गहन सिद्धान्तो ने मानव मन को बेतरह थका दिया और लोग इससे ऊबने लगे और भागने लगे। वे कुछ ऐसी चीज चाह रहे थे जिसके द्वारा सुखोपलब्धि अधिक-से-अधिक मात्रा में और कम-से-कम समय में हो सके। इसी प्रवृत्ति विशेष ने वज्रयान को जन्म दिया। इसमें बौद्ध देवो और देवियो की विशेषत वज्र सत्त्व और महातारा की मूर्त्तियाँ युगनद्ध रूप में मिलती है। इसे वौद्ध धर्म पर शाक्त प्रभाव भी कहा जा सकता है।

ऊपर हम कह आये है कि महायान शाखा में धर्म का लोकप्रिय रूप खूब खिला। सामान्य जनता धर्म की गूढ गुत्थियो, सिद्धान्त या रहस्य में रस नही ले सकती। उसे तो एक ठोस आधार चाहिए, धर्माचरण की एक विधि या प्रणाली मिलनी चाहिए, जिसे वह सहज रूप में चरितार्थ करती रहे और विकास की ओर उन्मुख रहे। महायान ने धर्म और साधना के 'साधारणीकरण' पर विशेष लक्ष्य रखा और फलस्वरूप असख्य देवी-देवताओ की परिकल्पना, मत्र, जप, पूजा, अर्चा आदि का सन्निवेश सहज रूप में हो गया और महायान की एक स्वतन्त्र शाखा मत्रनय अथवा मत्रयान बन गई। इस प्रकार महायान की दो शाखाएँ हुई—(१) पारमितानय और (२) मत्रनय।

---

१ प० बलदेव उपाध्याय—'बौद्ध दर्शन', पृ० ४२५-३०।

आदि वुद्ध के धर्मकाय, संभोग- काय, निर्माणकाय, सहजकाय

महायान ने भगवान् वुद्ध को मानव से उठाकर दिव्य रूप में प्रतिष्ठित किया। परमतत्व ही हुए आदि वुद्ध और उनके चार काय माने गये —(१) धर्मकाय, (२) सभोग काय, (३) निर्माण काय और (४) सहज काय। इसमें मात्र निर्माण काय ऐतिहासिक है। धर्मकाय, सभोग काय और सहज काय ऐतिहासिक नही है। महायान का लक्ष्य रहा—(क) दु ख निवृत्ति, (ख) निर्वाण, (ग) वुद्धत्वलाभ। आदि वुद्ध का सहज काय ही परमार्थत सत्य है। शुचिता के ज्ञान होने से यह विशुद्ध है। वास्तव 'करुणा' का उदय इसी काय में होता है। अत यह 'ज्ञानवज्र' है। धर्मकाय निर्विकल्पक चित्त की भूमि होने से इसे 'चित्तवज्र' या 'धर्म योग' कहा जाता है। सभोगकाय में मत्र का उदय होता है। इसे 'वाग्वज्र' या मत्रयोग' कहते हैं। 'निर्माणकाय' का सवध जाग्रत दशा से है। इसी के द्वारा, भगवान वुद्ध क्लेश का नाश करते है। यही कायवज्र तथा 'सस्थान योग' कहलाता है।[1]

असंग और नागार्जुन

'असग' योगाचार सम्प्रदाय का प्रवल समर्थक था। वौद्ध धर्म में तन्त्रवाद के प्रवेश का कारण भी वही माना जाता है। कहते है मैत्रेय ने उसे इस पथ में दीक्षित किया था। कुछ लोगो का कहना है कि माघ्यमिक सम्प्रदाय के नागार्जुन ने गुह्य साधना की ओर प्रवृत्ति का सूत्रपात किया। नागार्जुन के गुरु वुद्ध वैरोचन और वुद्ध वैरोचन के गुरु दिव्य वोधिसत्व वज्रसत्व थे। कुछ विद्वानो के मत में असग के 'महायान सूत्रालकार' में वौद्ध धर्म के मिथुन भाग के अभ्यास के स्पष्ट सकेत है। उक्त 'सूत्रालंकार' में भगवान् वुद्ध के दिव्य गुणो में 'प्रवृत्ति' का उल्लेख वार-वार आता है। उसमें एक श्लोक है—

> मैथुनस्य परावृत्तौ विभुत्वं लभ्यते परम्।
> वुद्ध-सौख्यविहारेऽथ दारा-सकेश-दर्शने ॥

इस श्लोक में आए हुए 'मैथुनस्य परावृत्तौ' का अर्थ भिन्न-भिन्न विद्वानो ने भिन्न-भिन्न ढग से किया है। सिलवन लेवी का कथन है कि यहा मैथुन का अर्थ है वुद्ध और वोधिसत्व का सम्मिलन। विंटरनीज का कथन है कि 'परावृत्ति' का अर्थ है—उपेक्षा, विरति। महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज 'परावृत्ति' का अर्थ रूपान्तर, शोधन (ट्रासफारमेशन) करते है। कुछ विद्वानो का मत है कि स्वय वुद्ध ने मुद्राओ, मण्डलो और तन्त्रो का उपदेश अधिकारी विद्वानो को दिया था।

---

१ सेकोदेश टीका—गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, पृ० ५५-५९।

जो हो, पर इतना तो निश्चित है कि तत्र भारतीय साधना की परंपरा मे उतना ही पुरातन है जितना वेद। मनुष्य सदा से ही सिद्धि का सरल मार्ग खोजता आ रहा है। अस्तु तत्र सदा ही ज्ञान-विस्तार का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करता रहा है। जहा कही भी पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र का सन्निवेश है, वही 'तत्र' है। वाद में इसमें पुरश्चरण, वशीकरण, स्तभन, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण-मोहन तथा पचमकार का भी प्रवेश हो गया।

तत्र की प्राचीनता

तत्रो की विशेषता यह रही है कि यहा अधिकार-भेद के अनुसार साधना की शैलिया और विधियो का निर्देश है और इसीलिए यहा पशुभाव, वीर भाव और दिव्य भाग—ये तीन भाव हैं तथा वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार तथा कौलाचार—ये सात आचार हैं। इन भावो और आचारो की चर्चा हम कुछ विस्तार में यथास्थान करेंगे। यहा इतना ही अभीष्ट है कि तत्र-साधना भारत की परम प्राचीन साधना है। प्राचीन वैदिक युग में भी तत्र-मत्र का प्रयोग था, पर परवर्तीकाल में भ्रष्ट हो गया था। गहराई में जाकर देखा जाय तो बौद्ध तत्र और हिन्दू तत्र में मूलत कोई बहुत असामान्य भेद नही है। वे मूलत एक हैं और परस्पर अविरोधी हैं। अस्तु।

तीन भाव और सात आचार

मत्रतत्त्व में महायानी बौद्धो ने 'धारिणी' पर बहुत बल दिया है। धारिणी का अर्थ है 'धार्यते अनया इति' अर्थात् जो चित्त को सम अवस्था में धारण कर सके। उसके मुख्यत चार प्रकार हैं—धर्म धारिणी, अर्थ धारिणी, मत्र धारिणी और धारिणी। धर्म धारिणी की साधना से साधक में स्मृति, प्रज्ञा और बल का सचार होता है। अर्थ धारिणी से धर्म का आन्तरिक और गुह्य अर्थ खुलता है, मत्र धारिणी से पूर्णता की प्राप्ति होती है और धारिणी से शान्ति की उपलब्धि होती है।

'धारिणी' और उसके चार भेद

बौद्ध साधना का मार्ग जब जन-साधारण के लिए उन्मुक्त और प्रशस्त हो गया तब सहज ही लोग अपने-अपने विश्वास, परम्परा, मान्यताए एव सस्कार के कारण देवी देवता में आस्था, भूतप्रेत, पिशाच, हाकिनी, डाकिनी की पूजा, जादू-टोना, मोहिनी, मारिणी, उच्चाटनी आदि विद्याओ में विश्वास आदि लेकर इस पथ में आ गये और साथ ही साधनाक्रम में शनै शनै हठयोग, लययोग, मत्रयोग, राजयोग को भी आदर का स्थान मिलने लगा। आरम्भ में मत्र, मुद्रा, मण्डल, अभिषेक पर विशेष बल था, पर कालान्तर में मिथुन योग का भी सन्निवेश होता गया। तत्र में मुद्रा का अर्थ है—गुह्य साधना के लिए किसी कुमारी का वरण। धीरे-धीरे साधना के अग रूप में मत्स्य, मास, मुद्रा, मदिरा और मैथुन का प्रवेश हो गया और वज्र यानी शाखा में 'पच मकार' की उपासना ही मुख्य वन बैठी। 'पच मकार' शब्द का व्यवहार

बौद्ध साधना में मिथुन-योग का प्रवेश क्यो और कैसे ?

तो इस साधना में नही मिलता, पर प्राय मदिरा, मास और मत्स्य की चर्चा आती है और मुद्रा तथा मिथुन के प्रयोग की चर्चा एक सामान्य बात हो गई थी।

'पचमकार' की उपासना का रहस्य, यहा सक्षेप मे, प्रस्तुत करना अप्रासगिक न होगा। 'पचमकार' में, जैसा ऊपर कह आये है, मद्य, मास, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन है। इनका ठीक-ठीक अर्थ न जानने के कारण ही इस सम्वन्ध में नाना प्रकार की भ्रान्त धारणाएँ फैली हुई है। इन पाचो तत्वो का सम्वन्ध अन्तर्योग से है। ब्रह्मरध्र में स्थित सहस्रदल कमल से स्रवित अमृत ही 'मद्य' है।[1] जो साधक ज्ञानरूपी खड्ग से पुण्य और पाप की बलि देता है, वही 'मास' का सेवन करने वाला है अथवा जो वाणी का सयम करता है, वही मासाहारी है[3]। वाई नाडी है इडा और दाहिनी है पिगला—जिसे क्रमश 'गगा'-'जमुना' भी कहते हैं। इसमें प्रवाहित होने-वाले श्वास-प्रश्वास ही 'मत्स्य' है। श्वास-प्रश्वास कर नियमन का प्राण-वायु को सुषुम्ना में प्रवाहित करना ही 'मत्स्य सेवन' है।[4] असत् सग का त्याग कर सत्सग सेवन ही 'मुद्रा' है[5]। सुषुम्ना और प्राण का सगम ही मैथुन' है।[6] ये शब्द प्रतीकात्मक थे और इनकी साधना अन्तर्योग की थी, परन्तु आगे चलकर अविकारी न होने के कारण और मानव प्रकृति निम्नगामिनी होने के कारण लोग इसे वाह्य और स्थूल रूप में ग्रहण करने लगे।

पंच मकार का रहस्य

---

१ व्योम-पंकज-निस्यन्द-सुधापानरतो नरः।
मधुपायी समः प्रोक्तः इतरे मद्यपायिनः॥ —कुलार्णवतंत्र

कुण्डल्याः मिलनादिन्दोः श्रवते यत् परामृतम्।
पिबेत योगी महेशानि! सत्यं सत्यं वरानने॥ —योगिनी तंत्र

२ पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लव नयेत् चित्तं मांसाशी स निगद्यते॥ —कुलार्णवतंत्र

३ मा शब्दात् रसना ज्ञेया तदंशान् रसनाप्रियान्।
सदा यो भक्षयेत् देवी, स एव मांस-साधकः॥ —आगमसार

४ गंगायमुनोर्मध्ये मत्स्यो द्वौ चरत. सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेत् यस्तु स भवेत् मत्स्यसाधकः॥ —आगमसार

५ सत्संगेन भवेत् मुक्तिरसत्सगेषु बन्धनम्।
असत्संगमुद्रणं यत्तु तन्मुद्रा. परिकीर्तिता.॥ —विजयतंत्र

६ इड़ापिंगलयो. प्राणान् सुषुम्नायो : प्रवर्तयेत्।
सुषुम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवाऽयन्तु परः शिवः॥
तयोस्तु संगमो देवैः सुरत नाम कीर्तितम्॥ —मेरुतंत्र

वज्रयान का ही दूसरा नाम 'सहजयान' है। इसमें एकमात्र सहजावस्था[1] पर ही अधिक बल है। यह सहजावस्था ही बौद्ध सहजियो की साधना एव सिद्धि की चरमावस्था है। इसी को निर्वाण, महासुख, सुखराज, महामुद्रा, साक्षात्कार आदि नामो से अभिहित करते हैं। अर्थात् इस अवस्था में मन और प्राण का सचार नही होता, जहाँ सूर्य और चन्द्र को प्रवेश करने का अधिकार नही है, वही योगी विश्राम लेता है। यह सहजावस्था ही उन्मनी अवस्था है। वही महासुख की अवस्था ह।[2] यह अवस्था न प्रवचन, न मेधा, न बहु श्रवण से प्राप्त होती है। यह प्राप्त होती है—एकमात्र गुरु कृपा से।

सहजावस्था ही महासुख, सुख राज महामुद्रा की अवस्था है

गुरुकृपा का क्या स्वरूप है, इस सम्बन्ध में बौद्ध साधना का अपना वैशिष्ट्य है और वह यह कि गुरु शून्यता और करुणा की युगनद्ध मूर्त्ति है। बोधिचित्त की प्राप्ति के लिए शून्यता और करुणा अनिवार्यत आवश्यक है। चित्त की सम अवस्था और जगत् के प्रति करुणा का भाव है—साधनात्मक बोधिचित्तत्व।

गुरुकृपा का स्वरूप-वैशिष्ट्य

शून्यता और करुणा के सयोग की चरम स्थिति को 'धर्ममेघ' की स्थिति कहते हैं। इसी प्रकार गुरु हैं—प्रज्ञा और उपाय के मिथुनीभूत रूप। न केवल प्रज्ञा से और न केवल उपाय से ही बुद्धत्व की प्राप्ति हो सकती है। दोनो का योग अनिवार्य है तभी बुद्धत्व की उपलब्धि हो सकती है।[3]

'धर्ममेघ' की स्थिति

---

१ यह सहजावस्था सरहपा के शब्दों में ऐसी है—

जन्ह मन पवन न सचरइ रवि ससि नाह प्रवेश।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरहे कहिय उवेश॥

२ जयति सुखराज एक कारणरहित सदोवितो जगताम्।
यस्य च निगदनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञ.॥

अर्थात् इस सुखराज की जय हो जो कारण रहित है और जिसका निर्वचन करते समय स्वय सर्वज्ञ भी वचन से दरिद्र हो गये। सेकोद्देश टीका पृ० ६३ पर, सरहपाद का वचन।

३ न प्रज्ञा केवलमात्रेण बुद्धत्व भवति नाप्युपायमात्रेण।
किन्तु यदि पुन प्रज्ञोपायलक्षणौ समतास्वभावौ भवत एतौ द्वौ अभिन्नरूपौ भवत, तदा भुक्तिर्मुक्तिर्भवति। —ज्ञानसिद्धि १३

यह शून्यता और करुणा तथा प्रज्ञा और उपाय को ही पुरुष तत्त्व और नारी तत्त्व मान लिया गया और इनके अद्वय मिलन को ही साधना की परिणति। उपाय पुरुष तत्त्व है और प्रज्ञा नारी तत्त्व। शून्यता नारी तत्त्व और करुणा पुरुष तत्त्व। अर्थात् शून्यता प्रज्ञा-नारीतत्त्व शक्तितत्त्व, करुणा-उपाय पुरुष तत्त्व-शिवतत्त्व। प्रज्ञा और उपाय का योगिक भाषा में और नाम है। वह है—क्रमश इडा और पिंगला, चन्द्रनाडी और सूर्यनाडी, वाम और दक्षिण, स्वर और व्यजन।

शून्यता और करुणा, प्रज्ञा और उपाय

इडा और पिंगला के बीच जो सुषुम्ना है, उसे ही बौद्ध साधना में 'अवधूतिका' कहते हैं।

अवधूतिका

इस 'अवधूतिका' के मार्ग से ही बोधिचित्त निर्माण-काय या निर्माण चक्र (नाभिदेश-स्थित) से ऊपर चढता है और क्रमश धर्मकाय अथवा धर्मचक्र (हृदयस्थित) पर पहुचकर संभोग-काय या सभोग चक्र (ग्रीवास्थित) पर आता है और अन्तत उष्णीश कमल में पहुँचकर परम आह्लाद को प्राप्त होता है। यही महासुख की अवर्णनीय अवस्था है, जहा प्रज्ञा और उपाय, शून्यता और करुणा का महामिलन सघटित होता है।[1]

'युगनद्ध' पर कुछ और विचार करना चाहिए। क्योकि यही है बौद्ध सहजियो की सहज साधना का प्राण। 'पंचकर्म' के पाचवें अध्याय में युगनद्ध कर्म की बडी ही स्पष्ट और विस्तृत व्याख्या है। वहा यह लिखा है कि 'युगनद्ध' वह स्थिति है, जहा 'सक्लेश' और 'व्यवदान' की अभिज्ञा के द्वारा ससार का सर्वथा निरसन हो जाता है, परम निवृत्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है। यह ग्राहक और ग्राह्य का, सान्त और अनन्त का, प्रज्ञा और उपाय का, शून्यता और करुणा का, पुरुष और नारी का पूर्णत सम्मिलन-सामरस्य है। शरीर, मन और वचन से 'तथता' में स्थित होकर फिर इस दु खपूर्ण ससार की ओर लौटना—केवल इसलिए कि 'सवृत्ति' और 'पर-मार्थ' का सम्यक् ज्ञान हो जाय और फिर इस सवृत्ति और परमार्थ को पूर्णत मिलाकर एक कर देने का नाम 'युगनद्ध' है।[2]

युगनद्ध तत्व

---

१ उभयोर्मिलनं यच्च सलिल क्षीरयोरिव।
अद्वयाकार - योगेन प्रज्ञोपायं तदुच्यते॥
चिन्तामणिरिवाशेषं जगत. सर्वदा स्थितम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं सम्यक् प्रज्ञोपाय स्वभावतः॥

—हेवज्रतंत्र

२ द्रष्टव्य—प्रो० हर्बर्ट वांन गुंथर का 'यगुनद्ध' ग्रन्थ, चौखंभा सिरीज स्टडीज़ अ० ३।

'अद्वयवज्र सग्रह' के 'युगनद्ध प्रकाश' में हम देखते हैं कि शून्यता और करुणा का एकान्त और नितान्त सम्मिलन सर्वथा अनिर्वचनीय है, अचिन्तनीय है। वे चिर सम्मिलन की स्थिति में नित्य विद्यमान हैं। उक्त ग्रन्थ के 'प्रेम पचक' में यह बताया गया है कि शून्यता करुणा की पत्नी है और इनके इसी भाव में अखण्ड मिलन को 'सहज प्रेम' कहा जाता है। युगनद्ध या अद्वय या समरस स्थिति एक ही है। शैव और शाक्त तत्रो मे जिसे 'मैथुन' या 'कामकला' कहा गया है, वह भी यही है।[१] इन तत्रो में परात्पर तत्त्व की दो शक्तिया—चल-अचल, ऋणात्मक और धनात्मक (Static and, Dynamic Positive & Negative) के मिलन और परम सत्य की उपलब्धि का जहा विवरण है, वहा पुरुष-तत्त्व और नारी तत्त्व अथवा बीज और योनि का प्रसग प्रतीकात्मक रूप में आया है। आरभ में तो यह प्रतीकात्मक साधना अपने स्वस्थ गुह्य साधना के रूप में रही, परन्तु बाद में चलकर क्या हिन्दू-तत्र और क्या बौद्ध तत्र ने इनके स्थूल और भ्रष्ट रूप को ही साधना के रूप में स्वीकार कर लिया। मानव-प्रकृति की अधोगामिनी प्रवृत्ति के लिए यह एक सहज आधार मिल गया। परिणाम यह हुआ कि शून्यता और करुणा अथवा प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन को बौद्ध तत्रो ने देवताओ और देवियो के शारीरिक सम्मिलन को आदर्श स्थिति के रूप में अकित किया—चित्रो में भी और मूर्तियो में भी।

शून्यता और करुणा

'समरस का वास्तविक अर्थ है—विश्व की विविधता में एकता की अनुभूति, तथा समस्त विषमताओ के भीतर एक अविच्छिन्न अखण्ड आनन्द -विलास की धारा। 'हेवज्रतत्र' में यह उल्लेख है कि 'सहजावस्था' में न प्रज्ञा का भाव रहता है न उपाय का, द्वैत का किसी प्रकार अनुभव ही नही होता। ऐसी स्थिति में उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ सब समान है।[२] योग साधना के द्वारा साधक एक ऐसी स्थिति में प्रवेश करता है, जहा से सारा ससार आनन्द का एक अपरिमेय पारावार-सा दीखने लगता है, जिसमें सारी द्वैतभावना, विषमता, द्विधा, विरोध या भेद नष्ट हो चुके होते हैं और आनन्द-ही-आनन्द रह जाता है। यही 'महासुख' की सहजावस्था है। महासुख की इस सहजावस्था को बौद्ध तत्र प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा के सम्मिलन से सिद्ध होता मानते है और इसी को हिन्दू-तत्र शिव और शक्ति के 'समरस' होने से उद्भूत मानते है। अत 'महासुख' बौद्धो में साधक की एक विशिष्ट स्थिति का नाम है जो लगभग 'निर्वाण' का पर्याय-वाची है। महासुख भावात्मक या धनात्मक है और निर्वाण है अभावात्मक या ऋणात्मक। परन्तु

'समरस' का वास्तविक अर्थ

---

१ दे० कामकला विलास १२, पद २, ५, ७।

२ हीन मध्योत्कृष्टान्य एव अन्यानि यानि तानि च।
सर्वे तानि समानीति द्रष्टव्य तत्वभावत ॥
—हेवज्रतत्र (ह० लि०) पृ० २२

प्रो० शशिभूषण दास गुप्त के 'आब्सक्योर रिलिजस कल्ट' के पृ० ३४ से उद्धृत।

यह लक्ष्य करने की वात है कि 'निर्वाण' ही वौद्ध साधना का केन्द्र-विन्दु एव परम लक्ष्य है। उसका विवरण 'पर', 'शान्त', 'विशुद्ध', 'पुनीत', 'शान्ति', 'अक्खर', ध्रुव', 'सच्चा', 'अनन्त', 'अजात', 'असखता', 'एकता', 'केवल', 'शिव' आदि शब्दो में किया गया है।[१]

तन्त्रो ने भी प्राय 'निर्वाण' और 'महासुख' को एक ही अर्थ में व्यवहृत किया है। निर्वाण का अर्थ ही है—सतत् सुखमय स्थिति, आनन्द और मुक्ति का केन्द्र, अखण्ड परमानन्द, समस्त वस्तुओ का वीज, आप्त कामना की पराकाष्ठा, वुद्धो का परम सस्थान—'सुखावती'।

'सुखावती'

मुद्रा—मन स्थिति और आनन्द की साधन-प्रक्रिया यो है—
मुद्रा—कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, महामुद्रा, समयमुद्रा—
मन स्थिति—विचित्र, विपाक विमर्द, विलक्षण
आनन्द, आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द, सहजानन्द

'महासुख' की अवस्था को भी प्राय इन्ही शब्दो में व्यक्त किया गया है। न इसका आदि है, न मध्य और न अन्त। प्रज्ञा और उपाय के सम्मिलन से महासुख की जो स्थिति होती है, वही वज्र सत्त्व की स्थिति है। 'हेवज्र-तन्त्र' में महासुख का एक वडा ही भव्य और उदात्त रूप मिलता है—सुख ही है परात्पर तत्व, यही है धर्मकाय, यह स्वय भगवान् वुद्ध है। सुख का रग काला है, नीला है, रक्त है, श्वेत है, हरा है, यही सारा विश्व ब्रह्माण्ड है, यही प्रज्ञा है, यही उपाय है, यही स्वय युगल-मिलन है, यह सत् है, असत् है, यह स्वय भगवान् वज्रसत्व है।

ऊपर हम कह आये है कि वज्र-यान का ही दूसरा नाम सहजयान है और इसमें 'महासुख' को ही केन्द्र में रखकर समस्त साधना चलती है तथा इस साधना-शैली मे योगाभ्यास के साथ मिथुन योग ऐसा घुला मिला है कि इन्हें पृथक् किया ही नही जा सकता। अस्तु, महासुख ही है समस्त गुह्य (Esoherie) साधनाओ का सार-समुच्चय और यही है समस्त गुह्य धर्म-साधनाओ की 'सहजोवस्था', जिसका भी उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं। 'सहज' शब्द जितना सीधा-सादा देखने में लगता है, उतना यह वास्तव में है नही। यो इसका अर्थ है 'सह जायते इति सहज'।[२]

---

१ Rhys Davids A Dictionary of Pali language में 'निर्वाण' के पर्यायवाची शब्दो में—The harbour of refuge, t he cool cave, the island amidst the floods, the place of bliss, emancipation, libration, safety, tranquillity, the home of ease, the calm, the end of suffering, the medicine for all suffering, the unshaken, the ambrosia, the unmaterial, the imperishable, the abiding, the further shore, the unending, the bliss of effort, the supreme joy, the ineffable, the holy city इत्यादि-इत्यादि दिए हे।

२ तस्मात् सहज जगत्सर्वं सहजं स्वरूपमुच्यते।
स्वरूपमेव निर्वाण विशुद्धाकार—चेतसः॥ पृ० ३९

यद्यपि महासुख की साधना में सहज स्थिति की उपलब्धि होती है, परन्तु यह भूलकर भी नही मानना चाहिए कि यह 'देहज' है—

'देहस्थोऽपि न देहज'। यह सहज स्थिति स्वसवद्य है। वहाँ न ज्ञाता है न ज्ञेय और न ज्ञान।

शक्ति जब वज्र-काय या सहजकाय में पहुचती है तब वह स्वय 'शून्यता' हो जाती है और साधक का शुद्ध बुद्ध-चित्त ही भगवान् वज्रसत्व बन जाता है। इस प्रकार जब वज्रसत्व और शून्यता का पूर्ण सम्मिलन साधक के सहज काय में हो जाता है तब वह 'महासुख' की स्थिति को प्राप्त होता है। चित्त महासुख की मदिरा पीकर मदमत्त हो जाता है, स्वय वज्रसत्व हो जाता है। इस सहज विलास की स्थिति में बोधिचित्त के उदय से अज्ञान वैसे ही भाग जाता है जैसे सूर्य के उदय से अधकार। यही है परम ज्ञान और परम आनन्द की चरम परिणति जो बौद्ध साधना का लक्ष्य है।

सहज विलास की स्थिति

(ख) सिद्ध सम्प्रदाय और रसेश्वर दर्शन में मधुरभाव

सिद्ध सम्प्रदाय अपने देश में गुह्य धर्म साधना का एक परम प्राचीन सम्प्रदाय है जिसमें काय साधना पर विशेष बल है। इस शरीर को ही सुदृढ कर अमरत्व लाभ की साधना ही इस सम्प्रदाय की अपनी निजी विशेषता है। सिद्धो का रसायनियो से घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। 'सर्व-दर्शन-सग्रह' में रसायनियो को भी एक सप्रदाय विशेष के रूप में सायण-माधव ने स्वीकार किया है और रसायन के अनेक प्रामाणिक ग्रन्थो से इस दर्शन की विशेषताओ का निदर्शन किया है। रसायनियों में 'रस' विशेष के द्वारा शरीर को ही अजर-अमर बनाने तथा अमर-सिद्धि लाभ की व्यवस्था है। चीन और तिब्बत में रसायनियो का बहुत पहले बडा ही व्यापक विस्तार था और वहाँ यह अत्यन्त गुह्य परन्तु अत्यन्त लोकप्रिय साधना थी। तिब्बत से ही यह भारत में आई ऐसी मान्यता इतिहासकारो की है। जो हो, परन्तु है यह परम प्राचीन साधना-प्रणाली। महर्षि पतजलि अपने 'योगसूत्र' के कैवल्य पाद में कहते है कि औषधि के द्वारा भी सिद्धि लाभ होता है।[1] इसपर भाष्य करते हुए व्यास और वाचस्पति ने कहा है कि यहा ओषधि का अर्थ 'रस' है और निश्चय ही इसका सकेत उन योगियो की गुह्य साधना से है जो रसायन के द्वारा सिद्धि-लाभ करते थे। नेपाल, तिब्बत तथा हिमालय की उपत्यका में नाथ सिद्धो तथा बौद्ध सिद्धाचार्यो का मिलन हो गया और दोनो सम्प्रदायो की विचारधारा, साधना-शैली, आचार आदि में बहुत अशो में

रसायन

यह जगत् स्वरूपत· सहज है, यह सहज ही जगत् का सार है, विशुद्ध चित्तवालो के लिए यही निर्वाण है। —हेवज्रतत्र सहिता

१ जन्मौषधिमन्त्रतप समाधिजा सिद्धय।

—योगसूत्र कैवल्यपाद ४-१

समानता आ गई। समस्त गुह्य साधनाओ मे एक विचित्र अखण्ड एकरूपता मिलती है और यह दो प्रकार की है (१) आचार की सकुल प्रणाली और (२) योगाभ्यास। किम्वदन्ती और जनश्रुति है कि जव क्षीरोद सागर में देवी को यह रहस्य वतलाया जा रहा था तव मत्स्येन्द्र नाथ ने मत्स्य रूप मे यह रहस्य विद्या पहले पहल पाई। इनके पहले गुरु आदिनाथ हैं जो हिन्दुओ के शिव और वौद्धो के वुद्ध हैं। इन्ही गुरु आदिनाथ से योग साधना की धारा चली। वौद्धो की तरह नाथो के यहा भी सिद्धि की चरमावस्था को सहज समाधि की अवस्था कहते हैं। और 'अकुलवीर तंत्र' में जो मत्स्येन्द्र नाथ का लिखा वताया जाता है उस सहज अवस्था का एक पद है जिसमे यह स्पष्ट उल्लेख है कि सहज समाधि की स्थिति परम शान्ति, परम अद्वय की स्थिति है जिसमें योगी का चित्त तरग-हीन समुद्र की तरह सम और गम्भीर हो जाता है और समस्त जगत उसमें एकाकार हो जाता है। उस समय स्वय साधक ही देवी है, देव है, गुरु है, शिष्य है, ध्यान है, ध्याता है और स्वय सर्वेश्वर देवता है'। नाथो ने शरीर के भीतर ही सभी तीर्थ माने हैं—उनके नाम हैं—पीठ, उपपीठ, क्षेत्र, उपक्षेत्र सन्देह आदि। ८४ सिद्ध और ९ नाथ हैं। सिद्धो में '८४' शव्द ही रहस्यमय ढग से व्यापक पाया जाता है।

सूर्य चन्द्र सिद्धान्त

तत्र और योग की प्रक्रिया में सूर्य और चन्द्र का उल्लेख वार वार आता है और इन दोनो के सम्मिलन को 'योग' कहा गया है। सूर्य और चन्द्र का अर्थ साधारणतया दाहिने और वाये की दो नाडियो से है और इनके मिलन से प्राण और अपान की समता प्राप्त होती है। 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' मे जो गोरख का लिखा वताया जाता है, वह स्पष्ट है कि भौतिक शरीर के पाच तत्त्वो या कारणो के समवय से संगठित किया है और वे पाच तत्त्व हैं—कर्म, काम, चन्द्र, सूर्य और अग्नि[२]। इसमें पहले दो अर्थात् कर्म और काम पिण्ड शरीर के कारण है और दूसरे तीन सूर्य, चन्द्र और अग्नि हैं शरीर के मूल कारण। सूर्य और अग्नि एक ही तत्त्व हैं अस्तु इन तीनो में दो ही प्रधान रूप से है और वे हैं चन्द्र और सूर्य। चन्द्र है रस तत्त्व या सोम तत्व और सूर्य है अग्नि तत्त्व। इस प्रकार यह शरीर सोम अग्नि के संगठन से हुआ। रस या सोम है उपभोग्य और अग्नि है उपभोक्ता। इसी प्रकार इस स्थूल जगत में अग्नि और चन्द्र का प्रकाशन क्रमश पिता के शुक्र और माता की रज के रूप मे हुआ और इन दोनो के सयोग से ही यह शरीर हुआ।[३] 'हठयोग प्रदीपिका' का

---

१ स्वय देवी स्वय देवः स्वय शिष्य. स्वय गुरु.।
स्वय ध्यान स्वयं ध्याता स्वयं सर्वेश्वरो गुरु ॥

—अकुलवीर तंत्र २६

२ कर्मकामाश्चन्द्र· सूर्योअग्निरीति प्रत्यक्ष कारणं पंचकम्।

—१६२

३ किं च सूर्याग्नि-रूपम पितु: शुक्र सोम रूपम च मातरज। उभयो.संयोगे पिण्डोत्पत्तिर्भवति।

यह भी सिद्धान्त है कि हठयोग में ह-सूर्य और ठ-चन्द्र के मिलन से साधना पूरी होती है। सूर्य चन्द्र के सम्बन्ध में स्वय गीता कहती है—

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यऽह ओजसा।
पुष्णाणि चौषधि सर्व सोमो भूत्वा रसात्मक ॥
अह वैश्वानरो भूत्वा प्रणिना देहमाश्रित ।
प्राणोपानसमायुक्त पचाम्यन्न चतुर्विधम् ॥

'बृहज्जावालोपनिपद' के दूसरे ब्राह्मण में सूर्य चन्द्र-तत्त्व की बडी ही मार्मिक व्याख्या है।[1] चन्द्र-सूर्य तत्त्व का एक और भी अर्थ है और वह है शिव शक्ति। चन्द्रमा अमृत है सूर्य कालाग्नि। चन्द्रमा सहस्रार में ठीक सहस्र दल कमल के नीचे स्थित है नीचे की ओर मुह किए और सूर्य है नाभिदेश के मूलाधार मे ऊपर की ओर मुह किए। शरीर में बिन्दु के दो रग है—पाण्डुर बिन्दु और लोहित बिन्दु। पहला है शुक्र और दूसरा महा रजस्। चन्द्रमा में पाण्डुर बिन्दु है, सूर्य में लोहित बिन्दु है। चन्द्रमा ही है शुक्र अर्थात् शिव और सूर्य ही है रजस् अर्थात् शक्ति। बौद्ध तत्रो तथा बौद्ध सहजिया गानो में सूर्य को निर्माण काय मे गौर चन्द्रमा को 'बोधिचित' रूप में उष्णीश कमल में स्थित मानते है। 'गोरक्षविजय'[2] में सूर्य चद्रतत्त्व का अनेक रूपो मे विवरण आया है। चन्द्र सूर्य के मिलने की विविध व्याख्याओ में पहली और मुख्य व्याख्या है शिव शक्ति का सहस्रार में

---

१ अग्निसोमात्मक विश्वमित्यग्निराचक्षते।
रौद्री घोरा या तैजसी तनू सोम शतयमृतमयः शक्तिकरी तनू ।
अमृत यत्प्रतिष्ठा सा तेजो विद्या कला स्वयम्।
स्थूल सूक्ष्मषु भूतेषु स एक रसतेजसी ॥१॥
द्विविधा तेजसो वृत्तिः सूर्यात्मा चानलात्मिका।
तथैव रसशक्तिश्च सोमात्मा चानलात्मिका ॥२॥
वैद्युदादिमय तेजो मधुरादिमयो रस ।
तेजो रस विभेदैस्तु वृत्तमेतच्चराचरम्।
अग्नेरमृत निष्पत्तिरमृतेनाग्निरेधते।
अतएव हवि क्लृप्तमग्नीसोमात्मक जगत् ॥
ऊर्ध्वशक्तिमय सोम अधोशक्तिमयो बल ।
ताभ्यां सपुटितस्तस्माच्छश्वविश्वमिद जगत् ॥
शिवश्चोर्ध्वमयी शक्तिरूर्ध्वशक्तिमय शिवः।
तदित्य शिवशक्तिभ्या नाभ्याप्रतमिह किंचन ॥

—बृहज्जाबोलोपनिषद् २।१-८

२ दे० पृ० १४०

मिलन।[1] दूसरी व्याख्या है योग की एक विशिष्ट प्रक्रिया जिसमे योगी और योगिनी का मिलन होता है और रेतस् और रजस् के सम्मिलित द्रव पदार्थ को वज्रौली मुद्रा द्वारा योगी या योगिनी पान कर जाते हैं। तीसरी व्याख्या है, प्राणायाम द्वारा प्राण और अपान को समकर के इडा और पिंगला नाडियो को वश मे करना। इडा और पिंगला और सुषुम्ना को नाथ पथ में सोम सूर्य और अग्नि नाडी के रूप में भी वर्णन मिलता है। नाथ पथ में सूर्य चन्द्र के सम्मिलन का एक और, और महान रहस्यमय अर्थ है वह यह कि सूर्य को वश में करके चन्द्रमा से झरते हुए अमृतरस से शरीर को नव नवायमान कर दिया जाय। सूर्य का अर्थ है सहार, चन्द्रमा का अर्थ है सृजन। दोनो को वशीभूत करके योगी शरीर में ही अमरत्व लाभ करता है। योग की प्रक्रिया में यह माना जाता है कि शरीर का मूल तत्त्व है सोम या अमृत जो सहस्रार स्थित चन्द्रमा में जमा रहता है। सहस्रार से एक नाडी जिसे 'शखिनी' कहते हैं जिह्वा के मूल तक चली गई है। यही है योगियो का 'वकनाल' जिसके द्वारा सोम रस या महारस का पान होता है। इस शखिनी नाडी का वर्णन 'गोरक्षविजय' में दोनो छोर पर मुंह वाली नागिन के रूप में मिलता है। शखिनी का मुह जिससे चन्द्रमा को अमृत झरता रहता है 'दशम द्वार' कहा जाता है। योगियो की यह मान्यता है कि चन्द्रमा से झरता हुआ अमृत रस या सोम रस सूर्य में गिरने के कारण कालाग्नि में जलकर भस्म होता जाता है और इसी कारण मनुष्य जीवन को मृत्यु में पर्यवसित हो जाना पडता है। यदि किसी प्रकार इस अमृत रस को सूर्य में गिर कर जल जाने से बचाया जा सके, तो मनुष्य काल को जीत कर अमर बन सकता है। इसके लिए यदि दसवें द्वार को वन्द कर दिया जाय और चौकसी रखी जाय, तो अमरत्व की सिद्धि प्राप्त हो सकती है। यदि यह द्वार खुला रहा तो 'महारस' को सूर्य या काल खा जाएगा।[2] इसी दसवें द्वार से योगी अमृत रस का पान करते हैं और अमरत्व लाभ करते हैं।

प्रश्न यह है कि इस महारस को नष्ट होने से बचाया कैसे जाय? इसके लिए योग की अनेक प्रक्रियाए है जिनमें 'खेचरी मुद्रा' वहुत ही प्रभावशालिनी है। जीभ को उलट कर 'राज-दन्त' या शखिनी के द्वार तक पहुचा देते है और दृष्टि को मध्य में स्थित कर योगी उस सोमरस का पान करता है। योग शास्त्र में 'खेचरी' की वडी प्रशसा है और कहा गया है कि खेचरी सिद्ध हो जाने पर किसी रमणी द्वारा आलिंगित होने पर भी 'विन्दु' चचल नही होता।

---

१ विन्दु शिवोरजः शक्ति बिन्दुरिन्दु रजो रविः।
उभयो संगमादेव प्राप्यते परम पदम्॥

—गोरस सिद्धान्त सग्रह पृ० ४१

२ चन्द्रात् सारः स्रवति वपुषः तेन मृत्युर्नराणाम्।
त० बध्नीयात् सुकर्णं अतो नान्यया कार्य-सिद्धिः॥

—गोरक्षपद्धति १५

'गोरक्षपद्धति'[1] तथा 'हठयोग प्रदीपिका' में खेचरी मुद्रा की अत्यधिक प्रशसा है। चन्द्रमा से झडते हुए अमृत रस, सोमरस, महारस को 'अमर वारुणी' भी कहते है। नाथयोगियो में खेचरी मुद्रा के द्वारा जिह्वा को उलट कर ऊपर चढाने का नाम है 'मास भक्षण' और सोमरस के पान का नाम है वारुणीपान[2]।

सूर्य चन्द्र——स्त्री पुरुष भाव

ऊपर हम कह आए है कि सूर्य है रसज् और चन्द्रमा है रेतस्। सूर्य का अर्थ है शक्ति और चन्द्रमा का अर्थ है शिव। चन्द्रमा को सूर्य की वह्नि से बचाना चाहिए। दूसरे शब्दो में पुरुष को स्त्री के स्पर्श से बचना चाहिए। स्त्री को नाथ-पथवाले बाघिन के रूप में रखते है। वह दिन में 'जादूगरनी' और रात में 'बधिनी' है। नाथ सिद्ध सभी के सभी नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे और इस बात पर वे सतत सावधान थे कि बाघिनी के पजे में न पडे।[3] गोरख ने कहा है कि स्त्री के श्वास-मात्र से शरीर सूख जाता है और नष्ट हो जाता है।[4]

---

१ पृ० ३७, ३८ बम्बई सस्करण।
तु० 'हठयोग प्रदीपिका' में चतुर्थोपदेश का श्लोक ४४-४६।

२ गोमास भक्षयेनित्य पिबेत अमरवारुणीम्।
कुलीन तमहमन्ये चेतरे कुलघातका ॥
गोशब्देनोदित जिह्वातत्प्रवेशोहि तालुनि।
गोमास भक्षण ततु महापातक नाशनम् ॥
जिह्वा प्रवेशा सभूता वह्निनोत्पादित खलु।
चन्द्रात् स्रवति य सार सस्यावमरवारुणी ॥ ——गोरक्ष पद्धति ३७-३९

तथा हठयोग प्रदीपिका ३. ४७-४८-४९

३ दिन का मोहिनी रात का बाघिनी पलक पलक लहु चुसे।
दुनिया सब बौरा हो के घर घर बाघिनी पोसे ॥ ——कश्चित्

तुलनीय—— नारी की झाईं परत अधा होत भुजग।
कबिरा तिन की कौन गति, नित नारी के सग ॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखे ही ते विष चढै, मन आवै कछु और ॥
नैनों काजर लाइ कै, गाढ़े बाँधे केस।
हाथो मेंहदी लाइ कै, बाघिनि खाया देस ॥ ——कबीर

४ गुरु जी ऐसा काम ना कीजै।
जामें अमी महारस छीजै ॥

नाथ सिद्धो और बौद्ध सिद्धाचार्यो में कतिपय ऐसे असामान्य भेद है, जो स्पष्टत. परिलक्षित होते है। बौद्ध सहजियो में मिथुन योगाभ्यास का प्रचलन था जो मिथुनानन्द को महासुख में परिवर्तित कर देता है। बौद्ध सहजियो ने स्त्रियो की बडी प्रशसा की और उनके गुण गाये और उन्हे प्रज्ञा, नैरात्मा या शून्यता का अवतार माना और उनके सग को साधना की सिद्धि के लिए आवश्यक जाना। ठीक इसके विपरीत नाथो ने स्त्री मात्र की भर्त्सना की, उन्हें वाघिनी और जादूगरनी कहा। नाथ साधनामें स्त्री-सग सर्वथैव वर्जित माना गया है। पर नाथ सिद्ध भी बज्रौली, अमरौली, सहजौली आदि मुद्राए जानते और इनका प्रयास तथा प्रयोग करते थे।[1] 'रसार्णव' मे रस के सम्वन्ध में विस्तृत व्याख्या है। पार्वती ने शिव से जीवनमुक्ति के सम्वन्ध में पूछा है। शिव ने कहा— मरणान्तर मुक्ति किस काम की? मुक्ति तो वह जो जीवन में ही, जीते-जी प्राप्त कर ली जाय? इस पर उन्होने 'रस' की चर्चा की। 'रस' का अर्थ है 'पारद', क्योकि वह मनुष्य को उस पार पहुचा देता है 'पार ददातीति पारद'। यह 'रस' ही शिव का शुक्र है और अभ्रक है गौरी का रजस्। इन दोनो के सयोग से जो वस्तु तैयार होती है, उसी में मनुष्य को अमरत्व प्रदान करने की क्षमता है।[2] रसायनियो ने सिद्ध देह और दिव्य देह की चर्चा की है। यह वह देह है जो जन्म-जरा-मरण से मुक्त है। नाथ सिद्ध और रस सिद्ध दोनो ने ही शरीर में अमरत्व लाभ को साधना का लक्ष्य माना है। रस सिद्धो ने सिद्ध देह के दो भेद किये हैं—एक है जीवनमुक्त का और दूसरा है परामुक्त का। पहला है शुद्ध माया का शुद्ध शरीर जिसे 'प्रणवतनु' या 'मन्त्र तनु' कहते है। यह जरा-मृत्यु से रहित है, परन्तु जव सिद्ध देह परामुक्ति की चिन्मय अवस्था में प्रवेश करती है तो वहा इसका तिरोधान हो जाता है। तान्त्रिक पारिभाषिक शव्दावली मे इन्हें 'वैंदव देह' और 'शाक्त देह' कहते हैं।

नाथ सिद्ध और बौद्ध सिद्धाचार्य

(ग) कापालिक, नाथ तथा संत-साधना में मधुर भाव

उत्तर मध्यकालीन निर्गुण सन्त यद्यपि अपनेको वैष्णव ही कहते है, परन्तु मूल वैष्णव-साधना से उनकी साधना-पद्धति अनेक वातो में सिर्फ भिन्न ही नही है, विपरीत भी मालूम पडती है। इसका कारण मुस्लिम प्रभाव नही है। सतो के साहित्य में जो वाह्याचार विरोधी स्वर पाया जाता है, उसकी परम्परा वहुत पुरानी है। इस साहित्य में सहज, शून्य, गगन, गगनोपम, खसम, उनमनि, इडा, पिंगला आदि शव्द इतनी अधिक मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं कि इन शव्दो को व्यापक व्यवहार करने वाले कौल, वज्र यानी, कापालिक, शाक्त साधको की वात आये विना

---

१ रसार्णव प्रो० पी० सी० राय द्वारा सम्पादित।

२ अभ्रकः तव बीज तु मम वीजं तु पारद।
अनयोर्मेलनं देवि! मृत्युदारिद्र्यनाशनम्॥

—सर्व दर्शन संग्रह पृ० २०४।

नही रहती। कबीर, दादू आदि ने कभी सहज समाधि लगाने की सलाह दी है, कभी सहज सुख पाने की व्यग्रता प्रकट की है, कभी शून्य सरोवर में स्नान करने का महत्व बताया है, कभी सहज शून्य के द्वार पर खडा होकर मुनियो के भाग्य पर तरस खाई है। कबीर दास ने तो एक स्थान पर बडी व्याकुलता से पुकारा है कि ऐसा कोई सन्त है जो सहज सुख उत्पन्न करा सके ? सिर्फ उसी प्रकार एक बून्द उस राम रस को दे सके, जिस प्रकार कलाली चषक भरकर मादक रस दिया करती है। मैं सारा जप-तप उसे दलाली में देने को प्रस्तुत हू।

है कोउ सत सहज सुख उपजै
जाको जप तप दऊ दलाली।
एक बून्द भरि दइ राम रस
ज्यो भरि देइ कलाली॥

सहज शब्द की दीर्घ परम्परा है। नाना जाति के साधको की चित्त-गगा में स्नान करता हुआ यह शब्द कबीर के हृदय में राम रस के रूप में आविर्भूत हुआ है। इसकी दीर्घ यात्रा की कहानी मनोरजक भी है और सन्त साहित्य के समझने में सहायक भी। भक्तप्रवर, दादूदयाल ने अपने गुरुदेव को सम्बोधन करके प्रश्न किया है—'कौण सहज कहु, कौन समाध, कौण भगति कहु कौण अराध।' और उत्तर दिलाया है—

आपा गर्व गुमान तजि मद मच्छर अहकार।
गहै गरीबी बदगी सेवा सिरजन हार॥

यहा 'सहज' गरीबी गहण करके बदगी करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वैसे तो 'सहज' शब्द का पयोग बहुत पुराना है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते है—

'सहज कर्म कौन्तेय सदोषमति न त्येजत्'

अर्थात् सहज कर्म को सदोष होने पर भी नही छोडना चाहिए। आगे चलकर सातवी शताब्दी के बाद के कौलो, शाक्तो और बौद्धो के साहित्य में इस शब्द का बडा व्यापक प्रभाव दिखाई पडता है। बज्रयानी सिद्धो का 'सहज' बहुत कुछ उपनिषद् के ब्रह्म के समान अनिर्वचनीय और अचिन्त्य गुणरूप बन गया है।[1] सातवी से चौदहवी शताब्दी तक इस शब्द का साधना-जगत् में व्यापक पभाव रहा है।

---

१ तस्मात् सहजं जगत् सर्वं सहजं स्वरूपमुच्यते।
स्वरूपमेव निर्वाणं विशुद्धाकार चेतसः॥

'सहज' शब्द का व्यवहार क्यो होने लगा? जैसे-जैसे धर्म साधना मे आडम्बर प्रधान वाह्याचारो का प्रभाव वढता गया, कृच्छाचार को सिद्धिसोपान समझा जाने लगा, तीर्थ, व्रत, होम, यज्ञ, लुचन, मुचन, तत्र, मत्र का प्रभाव वढने लगा वैसे वैसे भी धर्मो के वास्तविक भक्तो के चित्त में प्रतिक्रिया हुई। इस समूची प्रतिक्रिया को यह 'सहज' शब्द सूचित करता है। परन्तु वाह्याडवर और कृच्छाचार का विरोध इसका अभावात्मक पक्ष है। इसका भावात्मक पक्ष यह है कि भगवान् को प्राप्त करने के लिए उसे तीर्थो में, क्रियाओ में और घटाटोपपूर्ण आचारो मे नही, अपने अन्तर में देखना चाहिए। यह मनुष्य का शरीर ही सव तीर्थो का निवास है। इसी में सव व्रह्माण्ड निहित है, इसी में परम प्राप्तव्य का वास है। इस प्रकार मनुष्य का शरीर ही सव साधनाओ का उत्तम साधन है। फिर एक वार जो इस तथ्य को समझ लेता है, उसके लिए न योग की जरूरत होती है, न वैराग्य की, न प्राणायाम की, न कृच्छ-साधना की। वह सहज भाव में रहकर उस परम तत्त्व को पा लेता है, जो मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है।

'सहज' का सर्वमान्य अर्थ

सहज मत का सवसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि मनुष्य का यह शरीर ही सव कुछ है। 'जोइ जोइ पिंडे सोइ व्रह्माण्डे', 'व्रह्माण्डे प्यस्ति यत् किंचित् तत् पिण्डेऽप्यस्ति सर्वथा'। इस सिद्धान्त को सभीने स्वीकार किया है। परन्तु इसी मूल सिद्धान्त को स्वीकार करने के फलस्वरूप सहज मत की दर्जनो व्याख्याए और कई रूपान्तर हो गए है। सरहपा नामक वौद्ध सिद्ध ने यह वताया है कि इसी शरीर में सरस्वती है, इसी में यमुना है, इसी में गगा है और समुद्र है। इसी में प्रयाग है, इसी में वाराणसी है, इसी मे चन्द्रमा और सूर्य है। इसी मे सव क्षेत्र है, सव सिद्धपीठ है, सारे उपपीठ है, मैं इसी महातीर्थ में घूमता रहता हूँ—मैंने इस देह के समान शुभ-तीर्थ नही देखा।[1]

पिण्ड ही व्रह्माण्ड है

कवीर ने इसी स्वर मे गाया था—

यहि घट अतर वाग वगीचे यहि में सिरजन हारा।
यहि घट अतर सात समुद एही में नौलख तारा।। इत्यादि

ऐसी युक्तिया सतो के साहित्य में भरी पडी है।

इस शरीर की पाच वस्तुए मध्ययुग के साधको को वहुत शक्तिशाली दिखी है—मन, प्राण, वाक, शुक्र और कुण्डलिनी। इन पाच वातो के आश्रय करके मोटे तौर पर (१) राजयोग मूलक साधनाए, (२) हठयोग मूलक साधनाए, (३) मत्र जप, (४) उर्ध्वरेतस् साधना, सहजो-

---

१ एत्थु से सरसुह जमुना एत्थु से गंगा साअरु।
एत्थु पआग वराणसि एत्थु से चंद दिवाअस।।
एत्थु पीठ उपपीठ एत्थु महं भमइ परिट्ठओ।
देह सरिस तिथ्थ महं सुह आराण न दिट्ठयो।।

लिका साधना, सोमसिद्धान्ती साधना, कपालवनिता, युगनद्ध मूर्ति, नीलाम्बरी साधना, रसेश्वर सिद्धान्त, सहजिया वैष्णव साधना इत्यादि तथा (५) कुण्डलिनी योग मूलक साधनाए प्रचलित हुई है।

कौलमत में सहज साधना

बौद्धमत मे सहज साधना का प्रवेश कौल मत के द्वारा ही हुआ। 'कौल ज्ञान निर्णय' के अनुसार मत्स्येंद्रनाथ कौलज्ञान के प्रथम प्रवर्त्तक हैं। 'तन्त्रालोक' की टीका मे सकुल कुल शास्त्र का अवतारक कहा गया है। आदि युग में जो कौल ज्ञान था, वह द्वितीय अर्थात् त्रेता युग में 'महत्कौल' नाम से परिचित हुआ और तृतीय अर्थात् द्वापर में 'सिद्धामृत' नाम से और इस कलिकाल में 'मत्स्योदर कौल' नाम से प्रकट हुआ है। दन्त कथाओ से यह स्पष्ट है कि मत्स्येन्द्रनाथ अपना असली मत छोड़कर कदली देश की स्त्रियो की माया मे फस गये थे। ये कदली स्त्रिया योगिनी थी। *वह शास्त्र कामरूप की योगिनियो के घर-घर मे विद्यमान था।*[1] और मत्स्येन्द्रनाथ उसी कामरूपी स्त्रियो के घर जाकर अनायास लब्ध शास्त्र का सार सकलन कर रहे थे। कामरूप की योगिनियो के माया-जाल से गोरक्षनाथ ने मत्स्येन्द्रनाथ का उद्धार किया था, यह भी दन्तकथाओ से स्पष्ट है। वह सिद्ध मत पूर्ण ब्रह्मचर्य पर आश्रित था, देवी अर्थात् शक्ति उसकी प्रतिद्वद्विनी थी और उसमें स्त्री-सग पूर्णरूपेण वर्जित था। गोरक्षनाथ ने कामरूप से मत्स्येन्द्रनाथ को उद्धार करके इसी मत में प्रतिष्ठित किया था। कौल ज्ञान सिद्धि परक विद्या है और यद्यपि इस शास्त्र में अद्वैत भाव की चर्चा है, पर मुख्यत यह उन अधिकारियो के लिए लिखा गया है जो कुल और अकुल –शक्ति और शिव—के भेद को भूल नही सके है। इसके विपरीत 'अकुल वीर तत्र' का अधिकारी वह है जिसे अद्वैतज्ञान हो गया है और जो अच्छी तरह समझ गया है कि कुल और अकुल में कोई भेद नही है, शक्ति और शिव अविच्छिन्न भाव से विराज रहे है। यह निश्चित है कि 'अकुल वीर तत्र' में प्रतिपादित साधना वास्तविक सहज साधना है। इसी को कभी अवधूत मार्ग कभी सिद्ध मार्ग और कभी सहज मार्ग कहा गया है।

बौद्ध सिद्धो की कई बातो से 'कौलज्ञान निर्णय' की कई बातें मिलती हैं—(१) सहज पर जोर देना, (२) बाह्याचार का विरोध, (३) कुलक्षेत्र और पीठो का वर्णन, (४) वज्रीकरण का प्रयोग, (५) पचपवित्र आदि पारिभाषिक शब्द।[2] पुराना सिद्ध मार्ग मुख्य रूप से योग परक था और पच मकारो या पच पवित्रो की व्याख्या उसमें सदा रूपक में हुआ करती थी। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ ने जिस प्राचीन कौल मार्ग की चर्चा की है, वह निश्चय ही शाक्त मत था, बौद्ध नही।' अकुल वीर तत्र में बौद्धो को स्पष्ट रूप से मिथ्यावादी और मुक्ति का अपात्र बताया

---

१ तस्य मध्ये इम नाथ सारभूत समुद्धृत।
कामरूपे इद शास्त्र योगिनीना गृहे गृहे॥ २२.१०

२ देखिए डा० पी० सी० बागची की 'कौलज्ञान निर्णय' की भूमिका।

गया है।[1] इसी 'अकुल वीर तत्र' से कौल मत की सहज साधना विवृत्त हुई है। इसलिए कौल सहज साधना निश्चित रूप से बौद्ध-साधना से भिन्न है।

कुलतत्र शब्द द्वैत परक है और अकुल तत्र अद्वैत परक और भेद विरोधी सहज परक। कौल लोगो के मत से 'कुल' का अर्थ है शक्ति और अकुल का 'शिव'। कुल से अकुल का सम्बन्ध स्थापन ही कौल मार्ग है।[2] इसलिए कुल और अकुल को मिलाकर

कुल और अकुल

समरस बनाना ही कौल साधना का लक्ष्य है और 'कुल' और 'अकुल' का सामरस (समरस होना) ही कौल ज्ञान है। शिव का नाम अकुल होना उचित ही है,क्योकि उनका कोई कुल गोत्र नही है,आदि-अन्त नही है।[3] शिव की सिस्टक्षा—अर्थात् सृष्टि करने की इच्छा का नाम ही शक्ति है। शक्ति से समस्त पदार्थ उत्पन्न हुए है। शक्ति शिव की क्रिया है। परन्तु शिव और शक्ति में कोई भेद नही है। चन्द्रमा और चन्द्रिका का जो सम्वन्ध है, वही शिव और शक्ति का सम्वन्ध है।[4] 'सिद्ध सिद्धान्त संग्रह' के चतुर्थ उपदेश में कहा गया है कि शिव अनन्य, अखण्ड, अद्वय, अविनश्वर, धर्महीन और निरग है। इसीलिए उन्हें अकुल कहा जाता है। चूकि शक्ति सृष्टि का हेतु है और समस्त जगत् रूपी प्रपच की प्रवर्तिका है, इसलिए उसे 'कुल' (वश) कहते है।[5] शक्ति के विना शिव कुछ भी करने में असमर्थ है।[6] इकार

---

१ विकल्प वहुलाः स मिथ्यावादा निरर्थकः।
न ते मुचन्ति संसारे अकुल वीर विर्वाजतः॥ —अकुल वीर तंत्र।

२ कुल शक्तिरिव प्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुले कुलस्य संबंधः कौलमित्यभिधीयते॥
—सौभरिय भाष्कर पृ० ५३

३ वर्ण गोत्राविराहित्यादेक एवाकुलंमतम्।
अनन्तत्वादखंडत्वादद्वपत्वादनाशनात्॥
निर्धर्मत्वाद् कुलं स्यान्निरंन्तरम्॥ —सिद्ध सिद्धान्त संग्रह पृ० ४।

४ शिवस्यामान्तरे शक्तिः शक्ते रम्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव जानीयात् चन्द्रं चन्द्रिकयोरिव॥

५ कुलस्य सामरस्येति सृष्टि हेतुः प्रकाशम्।
सा चापरंपराशक्ति राज्ञेशस्यापरं कुलम्॥
प्रपंचास्य समस्तस्य जगद्रूपप्रवर्तनात्।
—सिद्ध सिद्धान्त संग्रह, सं० ४-१२-१३।

६ शिवोऽपि शक्ति रहितः कर्तुंशक्तो न किंचन।
शिव स्वशक्तिसहितो सभासाद् भासको भवेद्॥
—सि० सि० सं० ४।१६।

शक्ति का वाचक है और शिव में से इकार निकाल देने से वह 'शव' हो जाता है।[1] इसलिए शक्ति ही उपास्य है। इस शक्ति के उपासक शाक्त ही कौल है। यह मत बौद्धसाधना से मूलत भिन्न है। इस साधना में लक्ष्य है अखण्ड, अद्वय और अविनश्वर शिव और बौद्धसाधना का लक्ष्य है नैरात्म्य भाव। जिस प्रकार वृक्ष के विना छाया नही रह सकती, अग्नि के विना धूम नही रह सकता, उसी प्रकार शिव शक्ति आविच्छेय है, एक के विना दूसरे की कल्पना नही की जा सकती।[2]

कौल मार्ग का अत्यन्त सक्षिप्त परन्तु अत्यन्त शक्तिशाली उपस्थापन 'कौलोपनिषद्' में दिया हुआ है। आरम्भ में कहा गया है कि ब्रह्म का विचार हो जाने के बाद ब्रह्मशक्ति (धर्म) की जिज्ञासा होती है। ज्ञान और बुद्धि ये दोनो ही धर्म (शक्ति) के स्वरूप है, जिनमें एकमात्र ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। योग और मोक्ष दोनो ही ज्ञान हैं। अधर्म का कारण अज्ञान है, पर यह अज्ञान भी ज्ञान से अभिन्न है। प्रपच (शब्द स्पर्श, रस, गन्ध, रूप) ही ईश्वर है और अनित्य भी नित्य है क्योकि वह भी ब्रह्म-शक्ति का रूप ही है। मतलब यह है कि ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति में कोई भेद नही है। जीव के पाच बन्धन है—(१) अनात्मा में आत्मबुद्धि (२) आत्मा में अनात्म बुद्धि (३) जीवो में परस्पर भेद-ज्ञान (४) उपास्य और उपासक में भेद-बुद्धि (५) चैतन्य अर्थात् पर ब्रह्म से आत्मा को पृथक् समझने की बुद्धि।

ये पाचो बन्धन भी ज्ञान रूप ही है, क्योकि ये सभी ब्रह्म-शक्ति के विलास है। इन्ही बन्धनो के कारण मनुष्य जन्म-मरण के चक्रो में पडता है। इसी देह में मोक्ष है। ज्ञान यह है कि समस्त इन्द्रियो में नयन प्रधान है, अर्थात् आत्मा। सभी कुछ शाभवी (शक्ति) का रूप है। इस मार्ग के साधक के लिए वेद नही है। मत्र-सिद्धि के पूर्व वेदादित्याग करना चाहिए। अपना रहस्य शिष्टभिन्न किसीको भी नही बताना चाहिए। भीतर से शाक्त, बाहर से शैव और लोक में वैष्णव होकर रहना चाहिए—यही आचार है।[1] आत्मज्ञान से ही मुक्ति होती है। लोक-निन्दा वर्जनीय है। अध्यात्म यह है—व्रताचरण न करे, नियम पूर्वक न रहे। नियम मोक्ष का बाधक है। किसी कौल सम्प्रदाय की स्थापना नही करनी चाहिए। सबमें समता की बुद्धि रखना ऐसा करनेवाला ही मुक्त होता है, वही मुक्त होता है। सक्षेप में यही सहज साधना है। सब प्रकार के द्वन्द्वो से मुक्त, सब प्रकार के टटे से अलिप्त स्पष्ट ही 'कौलोपनिषद्' और 'अकुल

---

१ शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जित.।

—देवी भागवत का कवच

२ न शिवेन विनाशक्तिर्नशक्तिरहित शिव.।
अन्योन्यं च प्रवर्तन्ते अग्निर्धूमो यथा प्रिय।
न वृक्षरहिता छाया नच्छायारहितो द्रुम·॥ —१७ ८-९

१ अन्त· शाक्ता वहिर्शैवा समामध्ये च वैष्णवा।
नाना रूप धरा कौला विचरन्ति महीतले॥

वीर तत्र' सहज साधना को सब प्रकार के दिखावे से मुक्त और आन्तरिक शक्ति पर आधारित मानते है।

स्पष्ट है कि इस समूचे जगत्-प्रपच का कारण शिव और शक्ति का पृथक्-पृथक् हो जाना ही है और इस प्रपच् की समाप्ति दोनो के मिलन में है। जवतक शिव और शक्ति समरस नही हो जाते, तवतक जीव प्रपचग्रस्त है। इसलिए इनका समरस ही प्रधान लक्ष्य है। इस सामरस्य के अनेक रूप है। विविध सहजमत इसी सामरास्य को प्राप्त करने के उपाय अपने अपने ढग से वताते है।

शाक्ततंत्रो में कुण्डलिनी योग साधना का वहुत उल्लेख है। कौल और नाथ मत में भी कुण्डलिनी-योग की खूब चर्चा है। साधक का प्रधान कर्त्तव्य जीव-शक्ति कुण्डलिनी को उद्‌वुद्ध करना है। शक्ति ही महा कुण्डलिनी रूप से जगत् में व्याप्त है, मनुष्य के शरीर में वह कुण्डलिनी रूप से सस्थित है। कुण्डलिनी और प्राणशक्ति को लेकर ही जीव मातृकुक्षि में प्रवेश करता है। सभी जीव साधारणत तीन अवस्थाओ में रहते है—जाग्रत, सुषुप्ति और स्वप्न। इन तीनो अवस्थाओ में कुण्डलिनी शक्ति निश्चेष्ट रहती है।

कुण्डलिनी योग की साधना

पीठ मे स्थित मेरुदण्ड जहाँ सीधे जाकर पायु और उपस्थ के मध्य भाग में लगता है, वहाँ एक 'स्वयम् लिङ्ग' है, जो एक त्रिकोण चक्र में अवस्थित है। इसे 'अग्निचक्र' कहते है। इसी त्रिकोण या अग्निचक्र में स्थित स्वयम् लिङ्ग को साढे तीन वलयो या वृत्तो में लपेटकर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है। इसके ऊपर चार दलो का एक कमल है, जिसे 'मूलाधार चक्र' कहते है। फिर उसके ऊपर नाभि के पास 'स्वाधिष्ठान चक्र' है, जो छ दलो के कमल के आकार का है और उसके भी ऊपर, हृदय के पास 'अनाहत चक्र' है। ये दोनो क्रमश दश और वारह दलो के पद्म के आकार के हैं। इसके भी ऊपर कण्ठ के पास 'विशुद्धारव्य' चक्र जो सोलह दल के पद्म के आकार का है। और भी ऊपर जाकर भ्रूमध्य में 'आज्ञा' नामक चक्र है जिसके सिर्फ दो ही दल है। ये ही षट्‌चक्र है। इन चक्रो को क्रमश पार करती हुई उद्‌वुद्ध कुण्डलिनी शक्ति सवसे ऊपरवाले सातवे चक्र (सहस्रार) में परम शिव से मिलती है। इस चक्र में सहस्रदल होने के कारण इसे 'सहस्रार' कहते है और परम शिव का निवास होने के कारण 'कैलाश' भी कहते है[1]। इस प्रकार सहस्रार मे परम शिव, हृत्पद्ममें जीवात्मा और मूलाधारमें कुण्डलिनी विराजमान है। जीवात्मा परम शिव से चैतन्य और कुण्डलिनी से शक्ति प्राप्त करता है। इसीलिए

चक्र भेदन की प्रक्रिया

---

१ अत ऊर्ध्वं दिव्य रूप सहस्रारं सरोरुहम्।
ब्रह्माण्ड व्यस्त देहस्य वा तिष्ठति सर्वदा॥
कैलाशोनाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति॥

—शिव संहिता ५, १५१-५२

कुण्डलिनी जीवशक्ति है। साधना के द्वारा निद्रिता कुण्डलिनी को जगाकर मेरुदण्ड की मध्य स्थिता नाडी सुषुम्ना के मार्ग से सहस्रार में स्थित परम शिव तक उत्तोलित करना ही कौल साधक का कर्तव्य है। वही शिव-शक्ति का मिलन होता है। शिव-शक्ति का यह सामरस्य ही परम आनन्द है।[1] जब यह आनन्द प्राप्त हो जाता है, तब साधक के लिए कुछ भी करने को नही रह जाता।[2]

पशुभाव, वीरभाव, दिव्यभाव

प्रत्येक मनुष्य इस साधना के लिए समान भाव से विकसित नही है। कुछ साधक ऐसे होते है, जिनमें सासारिक आसक्ति अधिक होती है। इस प्रकार मोह रूपी पाश या पगहे में बँधे हुए जीवो को 'पशु' कहते हैं। और शास्त्रो में एसे जीवो के लिए अलग ढङ्ग की साधना निर्दिष्ट है। परन्तु कुछ साधक ऐसे होते हैं, जो अद्वैत ज्ञान का एक उथला-सा आभासमात्र पाकर साधनमार्ग में उत्साहित हो जाते हैं। और प्रयत्नपूर्वक मोह-पाश को छिन्न कर डालते है। इन्हें **'वीर'** कहा जाता है। यह साधक क्रमश अद्वैत ज्ञान की ओर अग्रसर होता रहता है और अन्त में उपास्य देवता के साथ अपने-आपकी एकात्मता पहचान जाता है। जो साधक सहज ही अद्वैत ज्ञान को अपना सकता है, वह उत्तम साधक 'दिव्य' कहलाता है। इस प्रकार साधक तीन प्रकार के हुए—पशु, वीर और दिव्य। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते है। दिव्य भाव के साधक की साधना 'सहज' कही जाती है। तन्त्रशास्त्र में दिव्य साधक की साधना का नाम ही 'कौलाचार' है।

सात प्रकार के आचार

तन्त्रशास्त्रो में सात प्रकार क आचार बताये गये हैं—वेदाचार, वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार। इनमें जो वेदाचार है, उसमें वैदिक का कर्म यज्ञयागादि विहित है। तन्त्र के मत से यह सबसे निचली कोटि की उपासना है। (२) वैष्णवाचार में निरामिष भोजन, पवित्र भाव से व्रत उपावास, ब्रह्मचर्य और भजनासक्ति विहित है। (३) शैवाचार में यज्ञ नियम, ध्यान, धारणा, समाधि और शिव शक्ति की उपासना तथा (४) दक्षिणाचार में उपर्युक्त तीनो आचारो के नियमो का पालन करते हुए रात्रि काल में भाग आदि का सेवन करके इस मत्र का जप करना विहित है। परन्तु ये चारो ही आचार पशुभाव के साधक के लिए ही विहित हैं। इसके बाद वाले आचार वीरभाव के साधक के लिए हैं। (५) वामाचार में आत्मा को वामा (शक्ति) रूप में कल्पना करके साधना विहित है। 'सिद्धान्ताचार' में मनको अधिकाधिक शुद्ध करके यह बुद्धि उत्पन्न करने का उपदेश है कि शोधन से ससार की प्रत्येक वस्तु शुद्ध हो जाती हैं। ब्रह्म से लेकर ढेले तक में कुछ भी ऐसा नही है, जो परम शिव से भिन्न हो। इन सब में श्रेष्ठ है कौलाचार इसमें कोई भी नियम नही है। इस आचार के साधक साधना की

---

१ समरसानन्द रूपेण एकाकार चराचरे।
य च तात स्वदेहस्यमकुलवीर महाद्भुतम्॥

—अकुलवीर तन्त्र ११५।

२ देखिये—नाथ सम्प्रदाय पृ० ७३।

सर्वोच्च अवस्था में उपनीत हो गए होते हैं और जैसा कि 'भावचूड़ामणि' मे शिव जी ने कहा है— कर्दम और चन्दन में, पुत्र और शत्रु में, श्मशान और गृह में तथा स्वर्ण और तृण में लेश मात्र भी भेदबुद्धि नही रखते।[१]

इस प्रकार यह साधना भी अन्ततक अकुल वीर तंत्र की सहज साधना के समान वन जाती है।[२]

वौद्ध और नाथ मत मे जालन्धर नाथ और कान्हूपा या कानपा (कृष्णपाद) समान भाव से समादृत सत हैं। कानुपा ने अपनेको कापालिक कहा है और अपने गुरु को जालवर पाद का शिष्य वताया है। कृष्णपाद ने अपने दोहो में महासुख की आवास भूमि ककाल दण्ड रूप मेरुगिरि के शिखर को कहा है और 'मेखला टीका' में इस मेरुगिरि का नाम 'जालधर' वताया गया है। अनुमानतः मेखला टीका कृष्णपाद की शिष्या मेखला योगिनी की लिखी हुई है।

कापालिक मत में सहज साधना

जो हो, कृष्णपाद के मन में जालधर पाद के प्रति कितनी भक्ति थी, वह इस नामकरण से ही स्पष्ट हो जाती है। जिस कापालिक मत को जालधर पाद और कृष्णपाद इतना वहुमान दे गये हैं, वह शैव कापालक मार्ग था या वौद्ध वज्रयानी—यह प्रश्न निरर्थक है। वस्तुत उन दिनो इन तान्त्रिक मार्गो में बहुत नैकटच का भाव था। भवभूति के 'मालती माधव' नामक प्रकरण से मालूम होता है है कि सौदामिनी नामक वौद्ध भिक्षुणी श्री पर्वत पर कापालिक साधना सीखने गई थी। यह कापालिक साधना निश्चित रूप से शैव साधना थी। श्री पर्वत उन दिनो का प्रसिद्ध तान्त्रिक पीठ था, वहा वौद्ध, शैव, शाक्त सभी प्रकार की तान्त्रिक साधनाए एक दूसरी की वगल में पनप रही थी। वाणभट्ट ने कादम्वरी में और हर्षचरित में श्री पर्वत को शाक्त तत्र की सावना के पीठ के रूप में लिखा है। 'चर्याचर्य विनिश्चय' की टीका में दौमोडीपाद का श्लोक उद्धृत है, जिसमें वताया गया है कि 'कापालिक' किसे कहते हैं। प्राणी अर्थात् साधक का शरीर ही वज्रधर है। जगत् की जो कोई भी स्त्री 'कपालवनिता' है और प्राणी के भीतर स्थित 'सोऽहं' रूप आत्मा ही हेरुक भगवान् की मूर्ति है, जो हमसे अभिन्न है। (१) श्री पद्म और (२) इन्द्रिय आदि सूक्ष्म ग्राह्य तत्त्व तथा पृथ्वी प्रभृति स्थूल ग्राह्य तत्त्व को दहन करनेवाला (३) मदन ये ही तीन रत्न हैं। इनको यथा गौरव व्यान करता हुआ योगीश्वर परमसिद्धि को प्राप्त करता है।[३] कपालवनिता रूप स्त्री

---

१ कर्दमे चन्दने भिन्नं पुत्रो शत्रो तथा प्रिये।
श्मशाने भवने देवि! तथा वै कांचने तृणे।
भेदो यस्य लेशोऽपि स कौलः परिकीर्तितः॥

२ दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ४।

३ म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री का पाठ इस प्रकार है—
प्राणी वज्रधरः कपालवनितातुल्योजगत् स्त्रीजनः।
सोऽहं हेरुक मूर्त्तिरेष भगवान् योनः प्रभिन्नांऽपिच॥

जन्म साध्य होने के कारण यह साधना 'कापालिक' कही जाती है और इसी के साधक 'कापालिक' कहे जाते हैं। बज्रयानी लोग बौद्धधर्म के प्रसिद्ध तीन तत्र (बुद्ध, धर्म और सघ) के स्थान में बज्र, पद्म और मदन को तीन रत्न मानते हैं। कापालिक साधना मे स्त्री की सहायता आवश्यक थी। आधुनिक नाथ मार्ग में 'बज्रोली'[1] नामक जो मुद्रा पाई जाती है, उसमें ही स्त्री का होना

श्री पद्मसदन च णेकुदहन कुर्वन, यथागौरवात्।
सतत् सर्वमतीन्दुयेक मनसा योगीश्वर सिद्धयति॥

१ 'बज्रोली', 'अमरोली', और 'सहजोली' मुद्राओं का विवरण 'हठयोग प्रदीपिका' उपदेश ३ में निम्नलिखित प्रकार से है—

बज्रोली

मेहनेन शनै. सम्यगूर्ध्वाकुचनमभ्यसेत्।
पुरुषोऽप्यथवा नारी बज्रोलीसिद्धिमाप्नुयात्॥
चलत. शस्तनालेन फूत्कारं बज्रकदरे।
शनै शनै प्रकुर्वीता वयुसंचारकारणात्॥
नारी भगे पतद्बिन्दुमभ्यासेनोर्ध्वमाहरेत्।
चलित च निज बिंदुमूर्ध्वमाकृष्य रक्षयेत्॥
एव सरसयेद् बिन्दू मृत्युञ्जयति योगवित्॥ —ह० प्र० ३.८५-८८।

सहजोली

सहजोलिश्चामरोलिर्वज्रोल्याभेद एकत.।
जरा सुभस्मनिक्षिप्य दग्धगोमयसंभवम्॥
बज्रोली मैथुनादूर्ध्वं स्त्रीपुंसो स्वागलेपनम्।
आसीनयो सुखेनैव मुक्त व्यापारयो. क्षणाद्॥
सहजोलिरिय प्रोक्ता श्रद्धेया योगिभि सदा।
अय शुभकरो योगो भोगयुक्तोऽपि मुक्तिद.॥ —ह० प्र० ३.९२-९४

अमरोली

पित्तोल्वणत्वात्प्रथमांबुधारा विहाय नि सारतयांत्यधारा।
निष्कल शीतलमध्यधाराकापालिके खण्डमतेऽमरोली॥
अमरी य· पिबेन्नित्यं नस्यं कुर्वन्दिन दिने।
बज्रोलीमभ्यसेतसम्यगमरोलेति कथ्यते॥
अभ्यासानि·सृतां चान्द्रीं विभूत्या सहमिश्रयेत्।
धारयेदुत्तमागेषु दिक दृष्टि प्रजापते॥ —ह० प्र० ३ ९६-९८

परम आवश्यक माना गया है। मालती माधव का कापालिक अघोरघट अपनी शिष्या कपालकुण्डला के साथ योग-साधन करता था। सब मिलाकर ऐसा लगता है कि क्या शैव और क्या बौद्ध दोनो कापालिक साधनाओ में स्त्री की सहायता आवश्यक थी।[1]

'मालती माधव' से इतना स्पष्ट है कि (१) भवभूति का जाना हुआ कापालिक मत परवर्ती नाथ पथियो के समान नाड़ियों और चक्रो में विश्वास करता था, (२) शिव और जीव की अभिन्नता में आस्था रखता था और (३) योग द्वारा चित्त के चाचल्य को रोकने से ही कैवल्य रूप में अवस्थित शिव रूप आत्मा का साक्षात्कार होता है, यह मानता था और (४) शक्ति युक्त शिव की प्रभविष्णुता में विश्वास रखता था। मालती माधव में आये हुए 'पचामृत' का असली अर्थ है—शुक्र, शोणित, मेद, मज्जा और मूत्र। इनको आकर्षण करके ऊपर उठाने की प्रक्रिया से शरीर को वज्रवत् बनाया जा सकता है, अणिमादिक सिद्धिया पाई जा सकती है। वज्रयानी साधको में तथा कौलमार्गी तान्त्रिको में भी यह विधि है। नाथमार्ग में जो वज्रवोली साधना है, उसे इस साधना का भग्नावशेष समझना चाहिए। ऐसा जान पडता है कि अन्यान्य तान्त्रिको की भाति कापालिक लोग भी विश्वास करते थे कि परम शिव ज्ञेय है, उपास्य है, उनकी शक्ति और तद्युक्त ऊपर या सगुण शिव। इसी बात को लक्ष्य करके 'देवी भागवत' में कहा गया है कि कुण्डलिनी अर्थात् शक्ति से रहित शिव भी शव के समान (अर्थात् निष्क्रिय है)—'शिवोऽपिशवता याति कुण्डलिनीविवर्जित.' और इसी भाव को ध्यान में रखकर शंकराचार्य ने 'सौन्दर्य लहरी' में कहा है कि शिव यदि शक्ति से युक्त हो तभी कुछ करने में समर्थ हैं, नही तो वे हिल ही नही सकते।[2] तान्त्रिक लोगो का मत है कि परम शिव के न रूप है, न गुण और इसीलिए उनका स्वरूप-लक्षण नही बतलाया जा सकता। जगत् के जितने भी पदार्थ है, वे उससे भिन्न हैं और केवल 'नेति-नेति' कहा जा सकता है। निर्गुण शिव (पर शिव) केवल जाने जा सकत हैं, उपासना के विषय नहीं

अमरोली आदि मुद्राएं समाधि के सिद्ध होने पर ही सिद्ध होती हैं। जब अन्तःकरण रूप चित्त ध्यान करने योग्य वस्तु के आकारवृत्ति-प्रवाह को प्राप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्माकार हो जाता है और प्राणवायु सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है अर्थात् इस प्रकार जब चित्त सम हो जाता है तभी अमरोली, बज्रोली, सहजोली मुद्राएं भली प्रकार हो जाती हैं। जिसने प्राण और चित्त को नहीं जीता, उसको सिद्ध नहीं होती। इसी पर हठयोग प्रदीपिका उ० ४ श्लो० १४ यों है—

चित्तेसमत्वमापन्ने वायो ब्रजति मध्यमे।
तदामरोली बज्रोली सहजोली प्रजापते॥

१ क्षीरं चैकं द्वितीयं तु नारी च वशवर्तिनी —ह० प्र० ३. ८४

२ शिवः शक्तया युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न च देवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥

हैं। शिव केवल ज्ञेय हैं, उपास्य तो शक्ति है। इस उक्ति की उपासना के बहाने भवभूति ने शक्ति के क्रीडन और ताण्डव का बडा शक्तिशाली वर्णन किया है। शक्तियो से वेष्ठित 'शक्ति-नाथ' की महिमा वर्णन करने के कारण यह अनुमान असगत नही जान पडता कि कापालिक लोग भी परमशिव को निष्क्रिय निरजन होने के कारण केवल ज्ञेय मानते थे।' 'मालती माधव'की टीका में और 'कर्पूर मजरी' में सोमसिद्धान्तियो की चर्चा आती है। ये 'उमयासहितो रुद्र' को 'सोम' कहते और इसी प्रकार की हर-पार्वती के मिथुन रूप की उपासना करते थे। बज्रयानी और शैव-दोनो प्रकार की कापालिक साधना में भोग मूलक योग-साधना की महिमा स्वीकार की गई है। यहा सामरस्य स्त्री-पुरुष के स्थूल शरीर के मिलने से उत्पन्न माना गया है। इस प्रकार सहज मत का सामरस्य इन साधनाओ को स्थूलशरीर-मिलन के रूप में प्रकट हुआ है। परन्तु यह समझना भूल है कि स्थूल मिलन ही इस साधना का यथार्थ रूप है। स्थूल मिलन पच पवित्र के आकर्षण और ऊर्ध्वचालन का साधन है, जिससे शरीर बज्र के समान बन जाता है और मन अचचल हो जाता है।"[1]

वज्रयान में और कापालिक मत में सहजानद या महासुख

महायान बौद्धो की परवर्ती शाखा वाले यान में सबसे बडे सुख को 'सहजानन्द' कहा गया है। इसे ही 'महासुख' भी कहा गया है। एक ऐसा समय गया है जब सहजयानी और वज्रयानी साधकशून्य को निषेधात्मक न मानकर विधात्मक और धनात्मक रूप में समझने लगे थे। इसी भाव के बताने के लिए वे 'सुखराज' या 'महासुख' शब्द का व्यवहार करते थे। ये साधक चार प्रकार के आनन्द मानते थे—प्रथमानन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द। सबसे श्रेष्ठ आनन्द सहजानन्द है यही सुखराज है, यही महासुख है। इसे किसी शब्द से नही समझाया जा सकता। यह अनुभवैकगम्य है। इसमें इन्द्रियबोध लुप्त हो जाता है, आत्मभाव या अस्मिता विलुप्त हो जाती है, 'केवल' रूप में अवस्थिति होती है।[2]

---

१ दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ८६।

२ सरह पाद ने इसी भाव को बताने के लिए कहा है—

इन्द्रिअजस्थ विलअ गउ णङ्घिउ अप्प सहावा।
सो हले सहजन ततु फुड पुच्छहि गुरु पावा॥

सर्वज्ञ भगवान् बुद्ध भी इस सुखराज या महासुख की व्याख्या करते समय मौन रह गये, क्योकि वह वाणी से परे था—

जयति सुखराज एव कारणरहित. सदोवितो नगताम्।
यस्य च निगवनसमये वचनदरिद्रो बभूव सर्वज्ञ ॥
—नउपाद की सेकोदेश की टीका में सरहपाद का वचन

अर्थात् जय हो इस कारणरहित सुखराज की जो जगत् के नाशवान चचल पदार्थो में एक मात्र स्थिर वस्तु है और सर्वज्ञ भगवान् बुद्ध को भी इसकी व्याख्या करते समय वचन-दरिद्र हो जाना पड़ा था।

सो यह 'सुखराज' ही सार है, यही शून्यावस्था है क्योकि इसका न आदि है न अन्त है, न मध्य है, न इसमें अपनेका ज्ञान रहता है, न पराये का। न यह जन्म है न मोक्ष, न भव न निर्माण।[1]

समस्त बौद्ध, वज्रयानी और सहजयानी साधक मानते है कि दो प्रकार के सत्य होते हैं— (१) लोक सवृत्ति सत्य और लौकिक सत्य और (२) पारमार्थिक सत्य अर्थात् वास्तविक सत्य। लोक में बोधि का अर्थ है स्थूल शारीरिक शुक्र जब कि परमार्थिक सत्य में वह ज्ञात रूप चित्त है। इसी प्रकार पद्म और वज्र के सावृत्तिक अर्थ स्त्री और पुरुष के जननेन्द्रिय है परन्तु पारमार्थिक अथवा वास्तविक अर्थ आध्यात्मिक है। जो साधक साधना मार्ग में अग्रसर होने की इच्छा रखता है उसके लिए चित्त को वश में करना परम आवश्यक है। इस चित्त में यदि कामनाओ के उपभोग न करने के कारण क्षोभ हुआ तो साधना मिट्टी में मिल जायगी। यही सोचकर अनग वज्र ने कहा था कि इस प्रकार प्रवृत्त होना चाहिए जिससे चित्त क्षुभित न हो, यदि चित्त रत्न सक्षुव्ध हो गया तो कभी सिद्धि नही मिल सकती[2]। फिर यह विक्षोभ दमन कैसे किया जाय? वासनाओ के दवाने से वे मरती नही, केवल और भी अन्तस्तल मे जाकर छिप जाती है। अवसर पाते ही वे उद्‌बुद्ध हो जाती हैं और साधक को दबोच लेती हैं। इसीलिए उनको दवाना ठीक नही। उचित पथ यह है कि समस्त कामनाओ का उपभोग किया जाय तभी शीघ्र चित का सक्षोभ दूर होगा और सच्ची सिद्धि प्राप्त होगी।[3] इस प्रकार कामोपभोग का साधना-क्षेत्र में प्रवेश हुआ। इस साधना की पृष्ठभूमि शून्यवाद था। शून्यता और समस्त अभावो और अभावो से मुक्त नि स्वभावता ही साधक का चरम लक्ष्य है। कामनाओ के उपभोग के लिए स्त्री की आवश्यकता है, इसलिए वज्रयान में पाच वुद्धो और अनेक वोधिसत्वो की शक्ति की कल्पना की गई है। सिद्धि प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता है इसलिए जो वुद्ध सिद्ध हो गये हैं उनके भी गुरु हैं। यह गुरु शून्यता ही है। जैसे गुड का धर्म माधुर्य है और अग्नि का धर्म है उष्णता, उसी प्रकार समस्त

बौद्ध मत में सहज साधना का प्रवेश

---

१ इसी अपूर्व महासुखराज को सरहपाद ने इस प्रकार कहा है—

आइ ण अन्त ण मज्झ णउ णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परम महासुह, गउ पर णउ अप्पाण॥

—ज० सि० ले० पृ० १३

दे० नाथ सम्प्रदाय पृ० ८९

२ तथा तथा प्रवर्तेत यथा न क्षुभ्यते मन.।
संक्षुब्धे चित्तरत्ने तु सिद्धिर्नैव कदाचन॥

३ दुष्करैर्नियमैस्तीव्रैः सेव्यमानो न सिद्धयति।
सर्व कामोपभोगैस्तु सेव्यंश्याशु सिद्धति॥

धर्मो का धर्म, समस्त स्वभावो का स्वभाव शून्यता है।[1] शून्यता का मूर्त रूप ही वज्रसत्व है। वज्रसत्व, वज्रधर, वज्रपाणि, तथागत इसी शून्य के नाम हैं। यही वज्रधर समस्त बुद्धो के गुरु है।[2] इस मानव शरीर का प्रधान आधार उसकी रीढ या मेरूदण्ड है। सो, इस मेरुदण्ड के भीतर तीन नाडियो से होता हुआ प्राण वायु सचारित होता है। बाईं नासिका से 'ललना' और दाहिनी नासिका से 'रसना' नामक प्राणवायु की वहन करनेवाली नाडियाँ चलती हैं, जिनमें पहली प्रज्ञा-चन्द्र है और दूसरी, उपाय सूर्य। प्रज्ञा और उपाय नाथ पथियो की इच्छा और क्रियाशक्ति की समशील है। मध्यवर्ती नाडी 'अवधूती' है जो नाथ पथियो की सुषुम्ना की समशीला है। इस नाडी से जब प्राणवायु उर्ध्वगति को प्राप्त होता है तब ग्राह्य और ग्राहक का ज्ञान नही रहता। इसीलिए अवधूती नाडी को ग्राह्य-ग्राहक वर्जित कहा जाता है।[3] मेरुगिरि के शिखर पर महासुख का आवास है जहा एक चौसठ दलो का कमल है। यह कमल चार मृणालो पर स्थित है, प्रत्येक मृणाल के चार क्रम हैं और प्रत्येक क्रम के चार-चार दल है। इस प्रकार यह (४ × ४ × ४) चौंसठ दलो का कमल है, जहा वज्रधर योगी इस पद्म का आनन्द उसी प्रकार लेता है जिस प्रकार भ्रमर प्रफुल्ल कुसुम का।[4] इन चार मृणालो के दलो को शून्य, अतिशून्य, महाशून्य और सर्वशून्य का आवास है, उसीका नाम 'उष्णीश कमल' है, यही डाकिनी जालात्मक जालधर गिरि नामक महा मेरुगिरि का शिखर है, यही महासुख का आवास है।[5] इसी गिरि शिखर पर

१ गुडे मधुरता चाग्नेरुष्णत्वप्रकृतिर्यथा।
शून्यता सर्वधर्माणा तथा प्रकृतिरिष्यते॥

२ इस विषय में विशेष विवरण के लिए देखिये 'विश्वभारती पत्रिका', खड ४, अक १ में प्रकाशित भदन्त शान्ति भिक्षु का लेख।

३ हे व्रज में सरोरुह पाद ने कहा है—
ललना प्रज्ञा स्वभावेन रसनोपायसस्थिता।
अवधूती मध्यदेशेतु ग्राहय ग्राहक वर्जिता॥

४ ललना रसना रवि शशि तुडिया वेन विपासे।
चउपमर चउक्रम चउमृणालथिउ महासुहवासे॥५॥
एव काल वीअलउकुसुमिम अरविन्दए।
महुम रुए सुर अवीर जिंघयम अरन्दए॥
—बौद्धगान ओ दोहा पृ० १२४

५ शून्यातिशून्य महाशून्य सर्वशून्यमितिचतु शून्य रूपेण पत्र चतुष्टय चतुरादि स्वरूपेण चतुर्मृणालसस्थिता कुत्रेत्याह। महासुख वसति अस्मिन्निति महासुखवासे उष्णीष कमल तत्र सर्व शून्यालयो डाकिनी जालात्मक जालधराभिधान मेरुगिरि शिखरनिसर्वे.।
—पृ० १२४

पहुचने पर योगी स्वय वज्रधर कहा जाता है, यही वह सहजानन्द रूप महासुख को अनुभव करता है।[1] पहले जो चार प्रकार के आनन्द बताये गये है उनमें प्रथम आनन्द कायात्मक है अर्थात् शारीरिक आनन्द है, दूसरे और तीसरे वाचात्मक और मानसात्मक है। अतिम आनन्द ज्ञानात्मक है और इसी लिए सहजानन्द कहा जाता है। इसी आनन्द से महासुख की अनुभूति होती है। सक्षेप में तात्पर्य यह है कि सहज मत के विभिन्न साधको ने (१) शरीर को सब प्रकार के साधना का साधन माना है। (२) शिव और शक्ति के मिलन या सामरस्य को कभी (क) प्रज्ञा-उपाय के योग से, (ख) कभी स्थूल शरीर मिलन से (ग) कभी कुण्डलिनी रूपी शक्ति के साथ शून्य चक्र या सहस्रसार स्थित शिव के मिलन के रूप में (घ) कभी पच पवित्रो के आकर्षण योग से और (ङ) कभी मत्र-जप आदि से साध्य समझा है।

(३) सबने ऊपरी दिखावे, पूजापाठ, ध्यान-धारणा, और विधि-विधान का विरोध किया है, पर अन्ततक चलकर सब साधनाओ ने बहुत जटिल रूप धारण किया है।

(४) यद्यपि सभी साधनाओ ने शरीर में ही परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने का प्रयास किया है और वैराग्य तथा कृच्छ्राचार की आलोचना की है पर प्रेममूलक साधना उन्हें नही प्राप्त हो सकी। वे सिद्धि, मुक्ति और निर्वाण के चक्कर में ही पडे रहे। प्रेम भक्ति से दूर ही बने रहे।

सातवी से ११वी-१२वी शताब्दी तक के साहित्य में यद्यपि सहज साधना नाना अर्थो में व्यवहृत हुई है, परन्तु उसका मूल अर्थ बराबर याद रखा गया है। वह मूल अर्थ यह है—

(१) बाह्याडबर और कृच्छ्राचार से परम सत्य का साक्षात्कार नही होता।

(२) परम प्राप्तव्य मनुष्य के शरीर में ही है।

(३) परम प्राप्तव्य का स्वरूप अनिर्वचनीय है, केवल गुरु ही उसे बता सकते है।

(४) स्त्री-त्याग, वैराग्य और कृच्छ्रसाधना मुक्ति के लिए आवश्यक नही है।

नाना साधनाओ के ससर्ग से इस मूल अर्थ के कई प्रकार के परिवर्धन हुए है। विशेप रूप से शरीर को ही सिद्ध सोपान मानने के सिद्धान्त ने योगमूलक और भोगपरक साधना पद्धतियो को बल दिया है। ११वी-१२वी शताब्दी के अन्त में इन बाह्याचार और आडम्बर विरोधी साधनाओ ने भी घोर तत्र-मंत्र-अभिचार और रहस्यात्मक जटिलरूपो मे आत्मप्रकाश किया। इसके विरुद्ध भी प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। प्रतिक्रिया का प्रथम तीव्र रूप नाथ साधको में दिखाई देता है। उन्होंने बौद्धो, सौममार्गियों और शाक्त साधको पर कसके प्रहार किया। पुरानी साधनाओ से जो बातें किसी प्रकार सरकती हुई उनके मार्ग में आ गई थी, उनका रूपकात्मक अर्थ किया और दृढता के साथ ब्रह्मचर्य, वाक्सयम और शुद्ध चित्त का समर्थन किया। गोरखनाथ ने कहा है—

---

१ एहु सो गिरिवर कहिअ मनि एहु सो महासुह पाव।
एत्थुरे निरुगा सहज रवगुन हइ महासुह जाव ॥२६॥

इद्री का लडबडा जिह्वा का फूहडा।
गोरख कहे ये परत चूहडा।।
काछ का जती मुष का सती।
सो सत्पुरुष उत्तमो कथी।।

गोरक्ष पूर्व सहज मार्गियो में दोनो ही बातें बढ गई थी। परन्तु गोरखनाथ का हठ योग सहज साधना का सहायक नही था। वह सिद्धि प्राप्त करने का मार्ग मात्र रह गया था। उसमें भी परम प्राप्तव्य की प्राप्ति के प्रयास से विकट साधना उत्तर भारत में व्याप्त हो गई थी। ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो जायगा कि सहज मार्ग की विभिन्न साधना-धाराओ में एक बहुत बडी कमी थी। वे वाह्याचार मूलक धर्म साधना का विरोध अवश्य करते और शरीर में ही परम प्राप्तव्य को प्राप्त करने का प्रयास करते थे, पर इन समूची साधनाओ में प्रेम को कोई स्थान नही है। प्रेम के विना भक्ति हो नही सकती। और मध्ययुग का यह समूचा कायायोग मूलक सहज मार्ग भक्ति से शून्य है। चौदहवी शताब्दी में दक्षिण से भक्ति की प्रेम प्रधान धर्मसाधना उत्तर में पूर्ण रूप से परिचित हो गई थी। इसी समय ईरान के सूफी साधको की मधुर भाव की साधना भी धीरे-धीरे लोकप्रिय होने लगी। नाथ सिद्धो ने सहज साधना को श्री सुन्दरी साधना के दलदल से निकाल लिया था। पारन्तु उसमें वास्तविक प्रेम मूलक सहज साधना का स्वर दक्षिण के आचार्यों और पश्चिम के सूफी साधको के समर्थ के कारण प्रधान हो गया। कबीर ने सहज साधना की जो नई व्याख्या की, उसमें सहज जीवन पर जोर था—

सहज सहज सब कोइ कहै सहज न चीन्है कोइ।
जिन सहजैं विषया तजी सहज कही जै सोइ।।
सहज सहज सब कोइ कहै सहज न जानै कोइ।
जिन सहजैं हरिजू मिलै सहज कहीजै सोई।

उन्होने नाथ पथियो के घटाटोप प्रधान समाधि के स्थान पर सहज समाधि ग्रहण करने की सलाह दी। सहज समाधि—जो अन्तरतर के परम प्रेममय 'आराध्य' को पहचान लेने के बाद अनायास सिद्ध हो गई है, जो अहेतु आत्मसमर्पण का फल है!

साधो सहज समाधि भली।
गुरु प्रताप जा दिन से उपजी दिन दिन अधिक चली।
जह जह डोलौं सोइ परिकरमा जो कुछ करौं से सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत पूजो और न देवा।
कहूँ सो नाम सुनू सो सुमिरन खाव पियो सो पूजा।
गिरह उजार एक सम लेखौं भाव न राखौं दूजा।
आख न मूदो, कान न रूधो तनिक कष्ट नहिं धारो।
खुले नयन पहिचानौं हसि हसि सुन्दर रूप निहारौं।।

सबद निरन्तर से मन लागा मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहू न छूटै ऐसी ताड़ी लागी।
कह कबीर यह उनमनि रहनी सो परगट करि भाई।
दु ख सुख से कोउ परे परम पद ओहि पद रहा समाई।

पूर्ववर्ती सहज साधनाओ में अतरस्थित परम प्राप्तव्य को भाव-निरपेक्ष रूप में ग्रहण करने का प्रयास था, इसीलिए उसमें शुष्कता आ गई और बहक जाने की सम्भावना बनी रही। इस साधना में भावगृहीत मधुर रूप को पाने का प्रयास था इसलिए इसमें स्थिरता और सरसता दोनो बनी रही। इस परम प्रेममय अन्तरस्थित देवता को पाने के बाद मोह, ममता और आसक्ति अन.यास चली जाती हैं, इसीलिए यह सच्ची सहज साधना है। कबीर ने कहा है—

सहजहिं सहजहिं सब गए सुत वित कामिनी काम।
एक्यैक ह्वै रमि रह्या दास कबीरा राम॥

ऐसा भक्त अपनेको पतिव्रता सती से तुलनीय मानने लगता है—सती जो सिन्दूर की महिमा और गौरव ही जानती है। सिन्दूर को काजल से नही बदला जा सकता, राम को भी काम से नही बदला जा सकता—

कबीर रेख सदूर की काजल दिया न जाइ।
नैनू रमिया रमि रह्या दूजा नही समाया॥

यही सच्ची सहज साधना है। इस मार्ग का साधक परिपूर्ण प्रेम का आनन्द पाता है। दादू ने कहा है—

दादू सुमिरण सहज का दीन्हा आप अनन्त।
अरस परस उस एक सो खेलै सदा बसन्त॥

सो, यह प्रेम भक्ति मूलक मार्ग ही सहज मार्ग है। यही मधुर भाव की साधना है। इसमें अखण्डानन्द सन्दोह परम प्रिय का प्रेम सहज ही प्राप्य है, वह अन्तर की स्वाभाविक व्याकुलता के मार्ग से अनायास ही, सहज भाव से आ जाता है। भक्तवर दादू दयाल ने बडी मीठी भाषा में इस तत्त्व को समझाया है—

पीव की प्रीति तो पाइये जो सिर होवे भाग।
यो तो अनत न जाइसी रहसी चरननि लागि।
अनते मन निवारिया रे मोहि एकै सेती काज,
अनत गए दुख उपजै मोहि एकैंहि सेती राज रे॥
साइ सो सहजो रमौ रे और नहि आन देव।
तहा मन विलंबिया जहा अलख अभेव रे॥
चरन कवल चित्त लाइयाँ रे भौंरे ही ले भाव।
दादू जन अचेत है सहजै ही लू आव रे।

इस प्रकार सहजमत की सर्वाधिक हृदयग्राही और सरस परिणति सत साहित्य की सहज भक्ति साधना में हुई है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने अपने 'मध्यकालीन धर्म साधना'[1] में एक ऐसे सम्प्रदाय की चर्चा की है, जिनका साहित्य अब मिलता नही, परन्तु जो कभी बहुत प्रख्यात रहा है, वह है नीलपटो या नीलाम्बरो का सम्प्रदाय। यो लोग अत्यन्त निचली श्रेणी के भोग परक धर्म का प्रचार करते थे। खाओ, पियो, और मौज करो—यही इनका आदर्श था। पुरुष और स्त्री के जोडे नग्न होकर एक ही नीले वस्त्र मे लिपटे रहते थे। द्विवेदी जी ने अपने उसी प्रबध में एक स्थान पर इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए लिखा है—राजा भोज की कन्या ने ऐसे ही एक जोडे से धर्म विपयक प्रश्न किया जिस पर 'दर्शनी' ने उपदेश दिया—

पिव खाव च वामलोचने यदतीत वरगामि तन्नते।
नहि भीरु गत निवर्तते सुमदय मात्रमिद कलेवरम्॥

खाओ, पियो, मौज करो। जो बीत गया सो कभी लौट नही सकता। अगर तुमने तप किया और कष्ट उठाया तो वह तुम्हारे लिए बिल्कुल बेकार है, क्योकि वह जो गया सो गया। असल बात यह है कि यह शरीर सिर्फ जड तत्त्वो का सघातमात्र है, इसके आगे कुछ भी नही है।

राजा भोज को जब यह बात मालूम हुई तब उन्होने इस सप्रदाय का उच्छेद कर दिया। खोज-खोज कर नीलपटो के सभी जोडे समाप्त कर दिये गये। इसमें चार्वाकियो और सहजियो का अपूर्व सम्मिश्रण दीखता है।

(घ) वैष्णव सहजिया

प्रेम की परकीया रति

बौद्ध सहजिया साधना के क्रम-विकास में हम यह देख आये हैं कि किस प्रकार प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा का सम्मिलन ही महासुख की अवस्था है। यह प्रज्ञा और उपाय अथवा शून्यता और करुणा तान्त्रिको का शिवशक्ति ही नामान्तर भेद से है तथा उष्णीश कमल में 'अवधूतिक का' मिलन तत्र के अनुसार सुषुम्ना का सहस्रार में प्रविष्ट होकर शिवशक्ति सामरस्य है। यह प्रज्ञा और उपाय, शिव और शक्ति, राधा और कृष्ण एक ही तत्त्व है, प्रस्थान भेद से, साधना शैली के भेद से तथा अधिकार भेद से एक ही मूलतत्त्व को भिन्न-भिन्न नाम से अभिहित किया गया है। वैष्णव सहजियो ने प्रेम में परकीया भाव ही लक्ष्य माना। मानवप्रेम के द्वारा ही दिव्यप्रेम की परिकल्पना हुई। प्रेम केवल प्रेम के लिए ही जहा लोक और वेद की श्रृंखला को तोडकर अपने प्रेमास्पद का वरण करता है, वही वह आदर्श है। विवाहिता पत्नी के प्रति चिर सहवास, प्रगाढ परिचय के कारण प्रेम का रस-रहस्य बहुत कुछ नष्टप्राय हो जाता है। उसमें

---

१ सहज साधना का यह अश 'नाथ सप्रदाय' के आधार पर लिखा गया है।

उतना तीव्र आकर्षण, रहस्य, उत्कठा, आदि का भाव नही रहता, या जितना परकी प्रेम मे होता है। स्वकीय में प्रेम कर्त्तव्य प्रधान, समाज बन्धन का आश्रित, रग में फीका और रस में उदास हो जाता है। ससार में देखा जाता है कि परकीया में ही प्रेम अपनी तीव्र उत्कठा, रहस्यमयता और प्रखर आकर्षण के कारण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, जो लोकलाज और कुलकानि को तिलाजलि दे देता है। *वैष्णव सहजियो ने प्रेम के इस परकीया भाव की तीव्रता को अपनी प्रेम साधना का आदर्श माना।*[1] किम्वदन्ती है कि स्वयं श्री चैतन्य देव ने सार्वभौम की कन्या 'साठी' के सग सहज साधना की।[2] इतना ही नही, प्राय सभी वैष्णव भक्त कवियो ने किसी-न-किसी कुमारिका के सग में सहज साधना की। जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास को तो छोड ही दीजिये, रूप गोस्वामी ने मीरा के साथ, रघुनाथ भट्ट ने करमा बाई के साथ, सनातन गोस्वामी ने लक्ष्मी हीरा के साथ, लोकनाथ गोस्वामी ने चण्डालिनी कन्या के सग, कृष्णदास गोस्वामी ने ब्रजदेवी पिंगला के साथ, जीव गोस्वामी ने श्यामा नाइन के साथ, रघुनाथ गोस्वामी ने राधाकुण्ड पर मीराबाई के साथ, गोपाल भट्ट गोस्वामी ने गौरीप्रिया के साथ और राय रामानन्द ने देवकन्या के साथ सहज साधना सम्पन्न की।

'आनन्द भैरव' में सहज साधना का उल्लेख

'आनन्द भैरव' में सकेतत यह उल्लेख है कि स्वय शिव विभिन्न शक्तियो के साथ कुचनीस देश में सहज साधना की और बौद्धसहजिया कहते है कि स्वय भगवान् बुद्ध ने अपनी प्रिया गोपा के साथ सहज साधना की। परकीया भाव में यह सहज साधना क्या है, इस पर हम आगे विचार करेंगे।

पालो के पतन के पश्चात् सेनो के शासन-काल में बौद्धधर्म का पतन और वैष्णव का उत्थान हो रहा था। राजा लक्ष्मण सेन के राजकवि थे जयदेव। इनका आविर्भाव बारहवी शताब्दी में उत्तर काल में हुआ। मिथिला कोकिल विद्यापति, जो चण्डीदास के समकालीन थे, राधाकृष्ण के प्रेम पूरक गीतो के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हुए। किम्वदन्ती है कि उन दिनो वैष्णवो की बडी-बडी सभाओ में स्वकीया भाव और परकीया भाव को लेकर प्रचण्ड शास्त्रार्थ हुआ करते थे और अन्तत: स्वकीया पक्ष की ही हरबार हार हो जाती थी। वे अपनी हार को केवल मौखिक रूप में स्वीकार ही नही करते थे, अपितु लिखकर पर पक्ष को दे भी देते थे।

यहा परकीया रति में यह सहज उपासना क्या है, इस पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। यह भूल न जाना चाहिए कि यह साधना का मार्ग है भोग का नही—यहा भोग को भी उन्नीत पर साधना का दिव्य मगलमय रूप देना होता है। सहज साधना में मिथुन सुख को जीतकर उसे अपना वशवर्ती 'दास' बना लेना होता है और फिर उसे दिव्य बनाकर परात्पर प्रेमानन्द विलास

---

१ वंग साहित्य परिचय, खण्ड २, पृ० १६५०।

२ चै० च० मध्यलीला, अ० १५
अकिंचन दास—'विवर्त विलास'

का साधन बना लिया जाता है। कृष्ण ही है रस और राधा है रति, कृष्ण है मदन, राधा है मादन। शिव शक्ति की तरह, प्रज्ञा उपाय की तरह राधा और कृष्ण का लीला विलास एव आनन्दोल्लास ही साधक का चरम लक्ष्य है। इसे चरितार्थ करने के लिए उसे यह साधना द्वारा अनुभव करना होता है कि यावत् पुरुष और स्त्री कृष्ण और राधा के व्यक्त रूप हैं और इनका प्रेम और सम्मिलन ही सहजियो की चरम स्थिति है। प्रेम की यह दिव्यधारा अखण्ड भाव से तैलधारावत् विश्व के कण-कण में प्रवाहित हो रही है और इसे साधना के द्वारा उद्घाटित किया जाता है।

अब प्रस्तुत विषय है कि दिव्य प्रेम की यह अजस्र धारा कैसे उद्घाटित होती है और मानव प्रेम का दिव्यीकरण (Divinisation) किस प्रकार होता है। परात्पर तत्त्व की हम तीन रूपो में भावना कर सकते हैं—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्[1]। भगवान् रूप में कृष्ण की तीन शक्तिया है—स्वरूपा शक्ति, जीव शक्ति या तटस्था शक्ति, और माया शक्ति। भगवान् की स्वरूपा शक्ति में तीन तत्त्व निहित हैं—सत्, चित् और आनन्द। सत्, चित् और आनन्द का ही दूसरा नाम सधिनी शक्ति, सवित शक्ति, और ह्लादिनी शक्ति है। राधा ही यह ह्लादिनी शक्ति है।

ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्

भगवान् में ही भोक्ता और भोग्या दोनो भाव सन्निहित हैं। भोग्या के बिना भोक्ता की स्थिति या आनन्दोल्लास सभव भी कैसे है? राधा चिर भोग्या और कृष्ण चिर भोक्ता है—मूल में एक, पर लीलाविलास के लिए दो। यह लीला भी तीन प्रकार की होती है—प्रातिभासिक, मायिक, व्यावहारिक। इसका यथास्थान हम विवरण प्रस्तुत करेंगे। अभी यह ध्यान रहे कि लीला भोग नही है। विन्दु का जब ऊर्ध्व गमन होता है, तब वह लीला है और अधोगमन होता है, तव वह भोग है। लीला और भोग के बीच का यह असामान्य भेद भूल जाने से ही लीला के हृदयगम में कठिनाई उपस्थित होती है।

भोक्ता भोग्या

यह लीला वन वृन्दावन, मन वृन्दावन और नित्य वृन्दावन में होती रहती है। वन वृन्दावन में होती है लीला की आन्तरिक लीला और नित्य वृन्दावन में जिसे नित्य देश या गुप्त चन्द्रपुर कहते है राधा और कृष्ण की नित्य, दिव्य मनोहारिणी, प्रेम लीला और रास-विलास होता रहता है। यही 'सहज है'। प्रेम साधना से जब प्रेममय प्रभु के प्रेम का एक कण मिल जाता है, तभी साधक इस नित्य लीला में दिव्य भाव में और सिद्ध देह से प्रवेश पा सकता है। भाव देह और सिद्ध देह क्या है, इसकी चर्चा हम यथास्थान आगे करेंगे।

वन वृन्दावन, मन वृन्दावन, नित्य वृन्दावन

---

१ वदन्ति तत् तत्वविद॰ तत्त्व मज् ज्ञानयद्वयम्। ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति उच्यते।
—भागवत—१.२ ११.

वैष्णव सहजियो ने नित्य वृन्दावन की नित्य लीला को माना, पर उनकी मान्यता यह है कि नित्य वृन्दावन की राधा कृष्ण की नित्य लीला केवल वन-वृन्दावन की प्रकट लीला के रूप में ही अवतरित नही होती अपितु प्रत्येक पुरुष में कृष्ण और प्रत्येक स्त्री मे राधा का अवतार होता है और यह स्त्री-पुरुष के मिलन के रूप मे राधा और कृष्ण की लीला चलती रहती है। 'प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो वास्तविक सत्व है वह कृष्ण ही है और यही मनुष्य का वास्तविक 'स्वरूप' है और उसका वहिर्मुखी जीवन तथा उसके शरीरिक स्थूल कार्य-व्यापार उसका 'रूप' है। और ठीक इसी प्रकार प्रत्येक स्त्री आन्तरिक रूपमे वस्तुत राधा ही है जो उसका वास्तविक स्वरूप है और उसा वाह्यत जीवन व्यापार उसका रूप है। परन्तु इस रूप के अन्दर ही वह स्वरूप रहता है, अतएव प्रत्येक पुरुप और प्रत्येक स्त्री के रूपमे और कोई नही केवल कृष्ण और राधा का ही लीला-विलास चल रहा है।'[1] राधा कृष्ण की यह रूप-लीला और स्वरूप-लीला ही क्रमश प्राकृत लीला और अप्राकृत लीला के रूप मे मानी गई है। इस प्रकार प्रत्येक पुरुष को कृष्ण और प्रत्येक स्त्री को राधा रूप मे देखने और अनुभव या भावना करने की यह प्रणाली सहजियो की नई नही है। हम देख आये है कि तत्रो ने प्रत्येक पुरुप को शिव और प्रत्येक स्त्री को शक्ति रूप में तथा वौद्ध दर्शन ने प्रत्येक पुरुष को उपाय और प्रत्येक स्त्री को प्रज्ञा के रूप मे भावना करने का उपदेश किया है।

स्वरूप लीला और रूप लीला

ऊपर हम कह आये हैं कि कृष्ण ही है रस और राधा है रति, कृष्ण ही हैं काम और राधा हैं मादन। कृष्ण काम या कन्दर्प रूप मे जीव-जीव के प्राण को अपनी ओर आकृष्ट करते रहते हैं—'नाम समेत कृतसकेत वादयत मृदु वेणुम्'। राधा है मादन जो भोक्ता को आनन्द विलास की प्रदात्री है। रस और रति, काम और मादन के वीच जो दिव्य प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित हो रही है वही 'सहज' है।

'सहज'

पुरुप का कृष्ण रूप में और स्त्री का राधा रूप मे अनुभव या भावना को आरोप की साधना कहते है। निरन्तर शुद्ध चिन्तन और शुद्ध भावना के द्वारा अपने अन्दर के सारे मल-आवरण आदि विकारो को नष्ट कर अपने अन्दर के पशु का वलि देकर साधक सर्वथा पवित्र हो जाय और पुरुष में कृष्ण की और स्त्री में राधा की भावना दृढ करे। इस प्रकार भावना दृढ होते-होते जव पुरुप को अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् अपने कृष्णत्व का और स्त्री को अपने राधात्व का अनुभव होने लगे, तव उनका प्रेम साधारण स्त्री-पुरुष का पार्थिव प्रेम न होकर राधा-कृष्ण का दिव्य प्रेम हो जाता है। प्रेम की यह दिव्य अनुभूति ही सहज की अनुभूति है।

आरोप साधना

---

१ दे० रति विलास पद्धति—ह० लि० क० वि०, सं० ५६४ पृ० १३ अ।
प्रो० शशिभूषण दास गुप्त के Obscure Religious Cults, से उद्धृत।

ऊपर हम कह आये हैं कि मनुष्य का वाह्य जीवन 'रूप' है और आन्तरिक या आध्यात्मिक जीवन जो शुद्ध 'कृष्णत्व' या 'राधात्व' की स्थिति है 'स्वरूप' है। रूप को इस स्वरूप की प्राप्ति होनी चाहिए तभी हमारे वास्तविक, आध्यात्मिक जीवन का शुभारभ है। स्मरण रखने की बात यह है कि रूप पर स्वरूप के आरोप का अर्थ रूप की सुप्ति नही है, प्रत्युत् रूप के एक-एक कण को स्वरूप के रसबोध से सराबोर करना पडता है। यह मानव शरीर तथा मानव-जीवन व्यर्थ या हेय नही है। सहजियो ने इसे वहुत ही महत्त्वपूर्ण माना है। मानवीय सौन्दर्य की मादकता में ही साधक को दिव्य सौन्दर्य की झलमल ज्योति का प्रतिविंब मिलता है। दिव्य सौन्दर्य तथा दिव्य प्रेम का अर्थ यह कदापि नही है कि मानवी सौन्दर्य और मानवी प्रेम का तिरस्कार किया जाय। मानवी प्रेम और मानवी सौन्दर्य की शृखला को स्वीकार करते हुए, उसके भौतिक आकर्षण और नशा को मानते हुए ही साधक मन का निग्रह सफलता पूर्वक कर सकता है और परम दिव्य आनन्द और दिव्य सौन्दर्य की ओर साधना द्वारा अग्रसर हो सकता है। अभिप्राय यह कि जैसे पारा या गधक शोधा जाता है, उसी प्रकार इस लौकिक मानवी प्रेम और मानवी सौन्दर्य को शोध कर दिव्य प्रेम और सौन्दर्य की ससिद्धि होती है जो अपने-आपमें निरन्तर, अपरिमेय और अनिर्वचनीय है। यह दिव्य प्रेम मानवी प्रेम की परिणति है अथवा यो कहा जाय कि दिव्य प्रेम का जन्म मानवी प्रेम के गर्भ से होता है, ठीक जैसे कीचड से कमल का। जहाँ ठेठ वैष्णवो ने 'निजेन्द्रिय प्रीति इच्छा' को काम और 'कृष्णेन्द्रिय प्रीतिइच्छा' को प्रेम की सज्ञा दी है, वहाँ वैष्णव सहजियो ने इस भेद को मिटा दिया है। वे कहते हैं कि दिव्यीकरण के अनन्तर निजेन्द्रिय प्रीति इच्छा और कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा मे कोई अन्तर नही रहता—निजेन्द्रिय तर्पण और कृष्णेन्द्रिय तर्पण एक ही वस्तु है। स्पष्ट शब्दो में, उनकी मान्यता है कि प्रेम का जन्म काम से होता है। काम के विना प्रेम हो नही सकता, अस्तु, काम को निर्वीज करने की, उच्छिन्न करने की कतई आवश्यकता नही है। सहजियो की दृष्टि में भगवान् के चरणो में भक्त की प्रीति का नाम 'प्रेम' नही है। प्रेम है राधा और कृष्ण की प्रगाढ प्रीति, जो रूप में स्वरूप के आरोप द्वारा प्रत्येक स्त्री और पुरुष में उपलभ्य है। इसी में पुरुष और स्त्री शरीर की चरितार्थता है। इसीलिए यह शरीर और यह जीवन हेय नही है।[1] मनुष्यत्व ही देवत्व की जननी है। प्रेम से ही मनुष्य देवता वन जाता है, इसीलिए मनुष्य

आरोप तत्त्व

---

१ चण्डीदास का एक गीत है—

शुन हे मानुष भाइ
सबेर उपरे मानुष सत्य
ताहार उपरे नय।

तथा च—

मानुष देवेर सार जार प्रेम जगते प्रचा
जगतेर श्रेष्ठ मानुष जार वलि
प्रेम प्रीति रस मानुष करे केलि।। —सहजिया गान २७

ही सर्वश्रेष्ठ हुआ, क्योकि उसी मे परात्पर दिव्य प्रेम का अनन्तरस-सागर लहरें मारता है। इस प्रकार मनुष्य से परे देव अथवा भगवान् की सत्ता को सहजिया नही मानते। राधा और कृष्ण को भी देवी-देवता रूप में ये नही पूजते। इनकी मान्यता यह है कि मानव शरीर में ही राधा और कृष्ण की उपलब्धि हो सकती है। दिव्य दृष्टि से देखने पर रूप और स्वरूप मे ऐसी अभिन्न अविभेद्य एकता और सघनता है कि इन्हे पृथक किया नही जा सकता। ऐसी दृष्टि खुलने पर मानव और देव में कोई भेद नही रह जाता। रूप मे स्वरूप उसी प्रकार परिव्याप्त है जैसे पुष्प मे सुगंधि। स्वरूप की उपलब्धि रूप के द्वारा ही होती है, इसलिए पूज्य हुआ रूप अर्थात् मानव शरीर। मनुष्य सदा किसी प्रेम में तडपता रहता है। यह जलन क्यो है और किसके लिए है, वह समझ नही पाता। यह जलन और यह तडप 'प्रेमा' के लिए है, हृदय की रानी के लिए, प्राणो की प्राण के लिए है। दिव्य प्रेम के द्वारा ही पुरुष और स्त्री दिव्यत्व को प्राप्त होते हैं, परन्तु मानवी प्रेम के द्वारा ही पुरुष-स्त्री में पावन प्रेम का उदय होता हैं, जिसमे वे अपने कृष्णत्व और राधात्व की उपलब्धि करते हैं।

आरोप सहित प्रेम से ही साधक वृन्दावन मे प्रवेश पाता है, स्वरूप का रूप पर आरोप किए विना मात्र रूप की उपासना सीधे नरक को ले जानेवाली है। सहज साधना का साधक सामान्य रस का मनुष्य नही होता, न वह राग मनुष्य होता है, वह तो अयोनि मनुष्य होता है और क्रमश: सहज मनुष्य और नित्य मनुष्य की स्थिति लाभ करता है। इसी प्रकार सामान्य स्त्री इस साधना में प्रवेश नही पा सकती। यह साधना 'विशेष रति' के द्वारा राधात्व प्राप्त करने पर ही सभव है। अभिप्राय यह कि विशुद्ध रस को प्राप्त मनुष्य अपने कृष्णत्व के द्वारा और विशुद्ध रति को प्राप्त स्त्री अपने राधात्व के द्वारा ही सहज साधना मे प्रवेश पाते है। 'उज्ज्वल नीलमणि' में श्री जीव गोस्वामी ने रति के तीन भेद माने हैं— समर्था, समज्जसा और साधारणी। समर्था मे नायिका नायक को सुख प्रदान करने के लिए ही नायक से मिलती है। वह नि शेष आत्मदान के द्वारा अपने प्रियतम को परम आनन्द देना चाहती है। राधा ही समर्था के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। समजसा रति में प्रिया प्रीतम की समान सुख कामना होती है जैसे रुक्मिणी आदि। साधारणी रति में नायिका स्वसुखेच्छया नायक से मिलती है जैसे कुब्जा। सहजियो ने रति के इस वर्गीकरण को स्वीकार किया है और वे मानते हैं कि एकमात्र समर्था रति ही सहज साधना के लिए वरेण्य है।

रति और रस

प्रेमसाधना की सिद्धि के लिए सहजियो में वडे ही कठोर नियम एव कृच्छ साधना की विधि है। वास्तविक प्रेम सपादन के लिए यह आवश्यक है कि साधक शव हो जाय अर्थात् उसके अन्दर की सारी निम्न वृत्तियाँ और पशु भाव समूल नष्ट हो जाय, जिससे उसपर दिव्य वृत्तियाँ और दिव्य भाव अपना पूरा रग डाल सके। उसका रूप स्वरूप की ज्योति और रस से ओतप्रोत हो। साराश यह कि पुरुष अपने पुरुषत्वाभिमान का परित्याग कर जो उसका वास्तविक नारी

प्रेम सिद्धि

स्वभाव है उसे प्राप्त कर ले तब इस साधना मे पैर रखे। इस साधना की कठिनाई को व्यक्त करने के लिए सिद्धो ने कई ऊलटबासियाँ कही हैं—समुद्र में स्नान पर रचमात्र भी भीगता नही, साँप के आगे मेढक का नृत्य, मकरी के तार से हाथी बाँधना इत्यादि। सहजियो ने प्रेमसाधना में साधक की तीन कोटियाँ मानी हैं—प्रवर्त, साधक, और सिद्ध। इनके लिए पचाश्रय है—नाम, मत्र, भाव, प्रेम और रस। प्रवर्त स्थिति के साधक के लिए नाम और मत्र, साधक स्थिति के लिए, भाव और सिद्ध स्थिति के लिए प्रेम तथा रस। अभिप्राय यह कि सिद्ध अवस्था प्राप्त होने पर ही साधक प्रेम और रस की साधना का अधिकारी होता है। सिद्धि के लिए शरीर और मन दोनो का बलवान् होना नितान्त आवश्यक है। सबल शरीर के बिना सहज साधना असभव है। इसलिए प्रेम साधना में कायसाधना भी एक अत्यन्त प्रमुख अग है। वह 'तत्त्व' है इस देह में ही अतएव देह की उपेक्षा कर के उस तत्त्व की प्राप्ति कठिन क्या असभव है। जो इस भाण्ड (शरीर) को जान जाता है वह ब्रह्माड को जान जाता है। चैत्त रूप ही सहज रूप है और वह शरीर के भिन्न कमलो में निवास करता है। राधा और कृष्ण का सारा रहस्य इस शरीर के भीतर ही जाना जा सकता है। प्रेम की साधना में द्वैत का सर्वथा निरसन हो जाता है दो शरीर एक आत्मा—एक शरीर एक आत्मा, दो का एक में सर्वथा विलयन। प्रेमी और प्रेमास्पद प्रेम में जब सर्वथा घुल कर 'एकमेक' हो जाते हैं, तभी इस साधना की सिद्धि मानी जा सकती है। चण्डीदास ने गाया है—

पीरिति उपरे पीरित वइसह
ताहार उपरे भाव
भावरे उपरे भावरे बसति
ताहार उपरे लाभ।।
प्रमेरे माझारे पुलकेर स्थान
पुलक उपरे धारा
धारार ऊपरे धारर वसति
ए सुख बुझाये कारा।।
मृत्तिका उपरे जलेर वसति
ताहार उपरे ढेउ
ताहार उपरे पीरीति बसति
ताहा को जानाय केउ।। —चण्डीदास

जब साधक के हृदय में वास्तविक प्रेम का उदय होता है तब प्रेमास्पद प्रेम का एक प्रतीक मात्र बन जाता है और सारा विश्व अपनी अनन्त गरिमा, रहस्य तथा अपरिमेय सौन्दर्य के साथ प्रेमास्पद के शरीर में ही घनीभूत होकर स्फुटित हो जाता है, इतना ही नही, वह प्रेमास्पद ही परम सत्य परम शिव और परम सुन्दर का प्रतीक हो जाता है। प्रेम के ऐसे दिव्य आवेश में चण्डीदास ने 'रामी' को सबोधित करते हुए गाया है—

तुमि हउ पितृ मातृ, तुमि वेदमाता गायत्री ।
तुमि से मत्र तुमि से तत्र
तुमि से उपासना रस ।

अर्थात् तुम्ही हो मेरी माता, पिता, तुम्ही हो वेदमाता गायत्री
तुम्ही से हैं सारे तत्र-मत्र और तुम्ही हो उपासना रस का मूल उत्स ।

प्रेम साधना में यही है आनन्द की वह स्थिति, जिसे तैत्तिरीयोपनिषद् ने ब्रह्म से अभिन्न कहा है तथा यह माना है कि इसीसे सबकी उत्पत्ति हुई, इसीसे सबका पोषण होता है तथा इमी में सबका अभिसवेश होता है ।[1]

---

१ आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्। आनन्दाद्धेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसविशन्तीति।

—तै० उ० ३.६

चौथा अध्याय

सिद्ध देह और लीला-प्रवेश

यह स्मरण रखना होगा कि इस भौतिक स्थूल देह, विषयासिक्त मन, बहिर्मुखी बुद्धि तथा मलिन अन्त करण से भगवान की मधुर लीला में प्रवेश नही होता। वैधी भक्ति के एकादश अगो—शरणापत्ति, गुरुसेवा, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवा, अर्चना, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन के साधन से जब शरीर, इन्द्रियो और मन के द्वारा पूर्णत एक मात्र प्रभु की उपासना[1] होने लगती है तब वह वैधी साधन भक्ति कहलाती है। वैधी साधना का क्या स्वरूप है इसका प्रकरण यथास्थान आगे आयगा। अभी यहाँ इतना अभीष्ट है कि वैधी साधना को सागोपाग सम्पन्न कर चुकने के अनन्तर ही साधक का रागानुगा भक्ति में प्रवेश होता है। 'रागानुगा' के अनन्तर है रागात्मिका भक्ति जो मधुर रसमयी है और जिसमें केवल ब्रज की गोप-कन्याओ का प्रवेश है। इन ब्रजवासिनी गोप-कन्याओ की प्रीतिमयी भक्ति का जिनके द्वारा अनुगमन होता हो वही है रागानुगा।[2] ब्रजभाव की प्राप्ति के लोभ का ही नाम है 'रागानुगा'। ब्रजभाव की लिप्सा से ब्रजलोकानुसारत ब्रज सेवन से रागानुगा की उपलब्धि होती है। इस प्रकार की साधना में सखी भाव या राधा भाव में स्थित होकर उसी प्रकार की लीला, वेश और स्वभाव का आचरण करते हुए आनन्दोल्लास में मग्न रहना चाहिए। पहले हम कह आये हैं कि रागानुगा में स्मरण ही मुख्य साधन है।[4] स्मरण की प्रगाढता से ही इसमें विशेष सफलता मिलती है।

प्रवेशाधिकार

---

१ 'कायषीकान्तकरणाना उपासना'

२ विराजन्ती अभिव्यक्त ब्रजवासी जनादिषु
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥

—जीव गोस्वामी।

३ विश्वनाथ चक्रवर्ती का कथन है—
व्रजलीला परिकरास्था शृगारादि भावमाधुर्ये श्रुते इद ममापि भूयात्
इति लोभोत्पत्तिकाले शास्त्रयुक्तयापेक्षा न स्यात्॥

४ 'रागानुगाया स्मरणस्य मुख्यताम्।

इसीसे भावयोग द्वारा साधक का भगवान् से मिलन होता है और इसे ही 'आतर मिलन' (Mystic Union with the Beloved) कहा जाता है।' भाव की तीव्रता मे साधक केवल वृन्दावन लीला का साक्षात्कार नही करता, अपितु इसमे सखी भाव से प्रवेश कर इस लीला-विलास का आस्वादन भी करता है। रागानुगा भक्ति का आदर्श है व्रजवासियो की रागात्मिका भक्ति की उपलब्धि। रागात्मिका के कई रूप है—(१) कामजन्य जैसे गोपियो का, (२) द्वेप जन्य जैसे कस का, (३) भयजन्य जैसे शिशुपाल का, (४) स्नेहजन्य जैसे यादवो का। रागात्मिका मे सिद्ध देह से नित्य धाम में लीलास्वादन होता है। दीक्षा मे अष्ट सखियो में से किसी एक की लाइन में मजरी के द्वारा प्रवेश होता है। रागात्मिका में मजरी ही गुरु है। सिद्ध देह की अभिप्राप्ति परे मजरी के द्वारा ही सखी देह प्राप्त होता है। सखी देह का कायव्यूह ही श्री राधा जी है। रागात्मिका के दो भेद है—(१) कामरूपा (२) सवधरूपा। कामरूपा का अर्थ है सभोग-तृष्णा। यह सभोगतृष्णा एक मात्र श्री कृष्ण को सुख पहुँचाने के लिए है—'कृष्ण सौख्यार्थमेव केवल उद्यम' और इसकी परिणति व्रजदेवियो की प्रीति में होती है। 'कामानुगा' का भाव है 'केलितात्पर्यवती सभोगेच्छा' केलि के लिए सभोगेच्छा। कुब्जा की रति कामप्राया है, कामरूप नही।

---

१ As the little water drop poured into a large measure of wine seems to lose its own nature entirely and to take on both these taste and colour of the wine, or as the iron heated red-hot loses its own appearance and glows like fire, or as air filled with sunlight is transformed with the same brightness so that it does not so much apear to be illuminated as to be itself light, so must all human feeling towards the Holy one be self dissolved in unspeakable wise and wholly transfused into the will of God.—D. Diligendo Deo C. 10

२ विश्वनाथ चक्रवर्ती ने अपने 'रागवर्त्मचन्द्रिका' में रागानुगा का बड़े विस्तार से वर्णन किया है और उदाहरण स्वरूप यह बतलाया है कि महाप्रभु श्री चैतन्य देव का जब अवतार हुआ तब उनके साथ ही कई गोपियाँ उनके सखा के रूप में अवतीर्ण हुई, उदाहरणार्थ—

रूप मंजरी	—	रूपगोस्वामी के रूप में
लावण्य मंजरी	—	सनातन गोस्वामी के रूप में
रति मंजरी	—	रघुनाथदास के रूप में
गुण मंजरी	—	गोपाल भट्ट के रूप में
विलास मंजरी	—	जीव गोस्वामी के रूप में
रस मजरी	—	रघुनाथ भटट के रूप में

सबंध रूपा रति में माता, पिता या मित्र के रूप में श्रीकृष्ण से संबंध होता है—जैसे नन्द, यशोदा, गोप।

भावभक्ति की प्राप्ति साधन भक्ति के परिपाक से होती है। यह कृष्ण-कृपा वा कृष्ण-भक्त कृपा से प्राप्त होती है। इसीलिए इसके तीन भेद किये गये हैं—साधनाभिनिवेशजा, (२) कृष्णप्रसादजा (३) कृष्णभक्तप्रसादजा। भाव भक्ति में अभी भाव रसदशा तक नहीं पहुँचा है। परन्तु भावभक्ति किसी वाह्य प्रयत्न से साधित नहीं होती। शुद्ध सत्व विशेष से ही इसकी स्फूर्ति होती है और प्रेम की प्रथम छवि है—'प्रेम्ण प्रथम छविरूप'। भावभक्ति से 'रुचि' के द्वारा चित्त मसृण हो जाता है। यह 'रुचि' ही भगवत्प्राप्ति की अभिलाषा जगाती है और परिणाम यह होता है कि अनुभावो का स्फुरण होने लगता है—जैसे शान्ति, अव्यर्थकालता, विरक्ति, मान-शून्यता, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, नामगान में रुचि, भगवद्गुण-व्याख्या मे आसक्ति, भगवान् के वासस्थल में प्रीति।

भावभक्ति

भावभक्ति के परिपाक से उत्पन्न होती है प्रेमाभक्ति। भाव जब मान्द्रात्मा-प्रेम की स्थिति में पहुँच जाता है तब प्रेमाभक्ति का उदय होता है। इसमें हृदय सर्वथैव सम्यक् प्रकारेण मसृण हो जाता है और अनन्य ममता का आविर्भाव होता है। यह साधना भक्ति से हो, रागानुगा से हो या भावभक्ति से हो, परन्तु होता है भगवत्प्रसाद से ही। यह प्रसाद 'केवल' निर्हेतुक हो सकता है या माहात्म्य ज्ञान से हो सकता है। इसमें 'केवल' प्रसाद रागानुगा से प्राप्त होता है और माहात्म्य ज्ञानजन्य प्रसाद वैधी मार्ग से होता है। इसका क्रमविकास यो होता है—श्रद्धा, साधुसंग, भजन क्रिया, अनर्थनिवृत्ति, निष्ठा रुचि, आसक्ति, भाव और अन्त में प्रेम।'

प्रेमाभक्ति

प्रेम के मूल में है 'इच्छा'—भक्त की इच्छा भगवान् से मिलने की ओर उधर भगवान् की इच्छा भक्त से मिलने की। भक्त के मन में मिलन की इच्छा उठते ही भगवान् के मन में भी मिलन की इच्छा जाग्रत हो जाती है। उनकी इच्छा सर्वसमर्थ है और उसी के द्वारा मिलन संभव होता है। इसीलिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से परे यह प्रेम ही पंचम पुरुषार्थ माना गया है। कारण यह है कि मधुर भाव के विना अखण्ड और संकोचहीन मिलन असंभव है।

प्रेम ही परम पुरुषार्थ

---

१ आदौ श्रद्धा ततः संगस्ततोऽथभजन क्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्ति स्यात्ततो निष्ठारुचि स्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्ण प्रादुर्भावे भवेत् क्रम॥

—भक्तिरसामृत सिन्धु

व्रजभाव अथवा सखी भाव मे प्रवेश करने के पूर्व दो बाते आवश्यक है—उपासक परि-स्मृति और उपास्य परिस्मृति। उपासक परिस्मृति मे ग्यारह भाव है। (१) सबध, (२) वयस, (३) नाम, (४) रूप, (५) यूथ, (६) वेश, (७) आज्ञा, (८) वास, (९) सेवा, (१०) पराकाष्ठा श्वास एव (११) पाल्यदासी भाव। इनमें सबध-भाव ही प्राप्ति की आधारशिला है। सम्बन्धकाल मे श्रीकृष्ण के प्रति जिसका जो भाव होता है तदनुरूप ही उसका चरम लाभ होता है।

सखी भाव में प्रवेश

कृष्ण से प्रभु भाव से सबध करने पर साधक उनका दास हो जाता है, सखा भाव से सम्बन्ध करने पर उनका सखा, पुत्रभाव से सबध करने पर उनका पिता-माता, स्वकीय पति भाव से सम्बन्ध करने पर वनिता हो जाता है। व्रज मे शान्त रस तो है नही, दास्य भी सकुचित है। उपासक की स्वाभाविक रुचि के अनुसार ही सम्बन्ध स्थापित होता है जिनका श्रीकृष्ण के प्रति स्त्रीत्व भाव से परकीया रस में रुचि है वे व्रजवनेश्वरी के अनुगत होकर रसास्वादन करते है। वह ऐसा मानते है कि मैं श्री राधिका की परिचारिका हूँ और श्रीराधारानी मेरी जीवनेश्वरी है। सुतरा राधावल्लभ ही हमारे प्राणेश्वर है। यह तो सम्बन्ध भाव के सबध मे हुआ।

संबंध-भाव

अब 'वयस' के सबध मे यह निवेदन है कि श्रीकृष्ण के साथ हमारा जो भी सम्बन्ध है उससे एक अपूर्व स्वरूप का उदय होगा—यह स्वरूप है व्रजललना-स्वरूप। उसमे सेवा के उपयुक्त स्वरूप की अत्यन्त आवश्यकता है। अस्तु, किशोरवयस् ही वास्त-विक वयस है। दस वर्ष से सोलह वर्ष तक 'किशोर' है। सोलह वर्ष की अवस्था ही वय सधि है। व्रजललनाएँ नित्य किशोरी है कारण कि उनमे बाल्य, पौगण्ड, एव वृद्धावस्था का आविर्भाव कदापि नही होता। इसलिए इस रस का साधक अपनेको किशोरी रूप मे भावना करे।[1]

वयस्

इसके अनन्तर है नाम भाव। व्रजरानी की परिचारिका की परिचारिका का सम्बन्ध ज्ञात होते ही सखी रूप का जो नाम है, वही साधक का नाम हो जाता है। साधक की रुचि देखकर गुरु जो नाम दे दें, वही साधक का नित्य नाम है। नाम द्वारा ही साधक व्रजललनाओ के समीप 'मनोरम' होता है। उसकी रुचि के अनुसार प्रिया, लता, अली, सखी, कला आदि नाम उसे प्राप्त होते है।

नाम

---

१ आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥

—सनत्कुमार तंत्र

'रूप' के सम्बन्ध में लक्ष करने की बात यह है कि रूप-यौवन-सम्पन्न किशोरी हो जाने पर रुचि के अनुसार ही गुरुदेव सिद्ध रूप का निर्णय करते हैं। अचिन्त्य चिन्मय रूप विशिष्ट

रूप हुए विना श्री राधारानी की परिचारिका कौन हो सकता है? किस 'यूथ' में साधक का सखी रूप में वरण हुआ है, यह जानने के लिए यह जानना होगा कि श्रीमती राधिका ही यूथेश्वरी हैं। राधिका की अष्ट सखियो में से किसी एक के यूथ में रहना होगा। ललिता, विशाखा, चन्द्रावली आदि किसी सखी के यूथ में सम्मिलित होकर उसी की आज्ञा से श्रीराधामाधव की सेवा की जाती है।

चन्द्रावली आदि सखियाँ राधामाधव के लीला सम्पादन के लिए निरन्तर यत्नवती रहती है और विपक्ष-पक्ष होकर रसवृष्टि करने के लिए वही वह भाव ग्रहण करती हैं। वस्तुत स्वय श्रीराधिकाजी ही यूथेश्वरी हैं और श्रीकृष्ण की विचित्र लीला की अभिमानिनी हैं। जिनकी जो सेवा है उनका वही 'अभिमान' है। जो सेवा मिली है, उस सेवा के उपयोग नानाविध गुणो को धारण करने का आदेश गुरुदेव देते हैं।

यह आज्ञा दो प्रकार की है—नित्य और नैमित्तिक। करुणामयी सखी जो नित्य सेवा की आज्ञा दें उसे निरपेक्ष होकर अष्टकाल में जहाँ जो आवश्यक हो, निर्भ्रान्त होकर करना उचित है। बीच-बीच मे समय और प्रयोजन के अनुसार भी सेवा मिलती रहती है।

व्रज के किस ग्राम में वास होना चाहिए, गोपी होकर कहाँ जन्म हुआ, किस

वास गाँव में विवाह हुआ, किस कुण्ड के पास किस कुज में रहना आदि के सबध मे गुरुदेव का आदेश होता है।

'सेवा' मे जो यूथेश्वरी की आज्ञा हो वही करना होता है, जो श्रीराधिकाजी की ही सेवा मे लीन रहती है। कृष्ण यदि ऐसी सखी के प्रति रति का प्रकाश करें तो उसे स्वीकार नही करना

सेवा चाहिए, क्योकि राधिका जी की दासी को ऐसा करना अनुचित है। राधिका की अनुमति के विना कृष्ण-सेवा स्वतन्त्र होकर नही करना चाहिए। इसी का नाम है सेवा। श्री राधा की अष्टकाली सेवा ही दासी के लिए कर्त्तव्य है। 'पात्यदासी' का अर्थ है—जो गाढ प्रेमरस से परिलुप्त होकर प्रियता द्वारा प्रागल्म्य लाभ कर लेती है अर्थात् 'धृष्ट' हो जाती है और प्रति दिन क्रम से प्राणप्रिय राधाकृष्ण का लीला-विहार कराती है और वैदग्ध क्रम से अपनी सखी श्री राधिका के रसपूर्वक मान की शिक्षा देती हैं। वही श्री ललिता अपना पात्यदासी वना ले, यही साधक की कामना होती है।[1]

---

१ सान्द्रप्रेमरसै प्लुता प्रियतया प्रागल्भ्यमाप्ता तयो
प्राणप्रेष्ठ वयस्ययोरनुदिन लीलाभिसगक्रमै ।
वैदग्ध्येन तथा सखीं प्रति सदा मानस्य शिक्षा रसै ।
येऽय कारयतीह हन्त ललिता गृह्णातु सा मा गणै ।। —व्रजविलासस्तव श्लोक २९

सेवा में ताम्बूलरचना, चरणमर्दन, पय दान, अभिसारादि कार्य के द्वारा श्री राधा जी को नित्यतुष्ट रखना ही मुख्य है।

श्री राधाकृष्ण के प्रणय ललित कौतुक की पात्री बनना, सगीत वाद्य के द्वारा उनका मनोरजन करना यह भी सेवा में सम्मिलित है। राधिका के शृगार की पुष्टि के लिए सपत्नी भाव मे स्थित सौभाग्य, गर्व, विभ्रम प्रभृति गुणो की गुणवती के साथ श्री कृष्ण कुछ क्षणो के लिए क्रीडा करते है, यह सौभाग्य केवल चन्द्रावली जी को प्राप्त है।

यह सिद्ध देह न तो अस्थि-मास-रक्तमय जड देह है और न साख्य प्रोक्त सूक्ष्म और कारण देह ही है। यह है दिव्यानन्द चिन्मय रस प्रतिभावित नित्य शुद्ध सुचारु समुज्ज्वल परम सुन्दरतम सच्चिदानन्दमय रस विग्रह। वैष्णव साधना के क्षेत्र में इस सच्चिदानन्दरसमय मूर्ति को 'मजरी' कहते है। ये सखियो की अनुमति के अनुसार श्री राधामाधव की सेवा में नियुक्त रहती है और परमानन्द का अनुभव करती है। इनका यह देह नित्य शुद्ध, नित्य सुन्दर, नित्य मधुर, नित्य नव सुषमा सम्पन्न और नित्य समुज्ज्वल रहता है। इन पर देश-काल का कोई प्रभाव नही पडता। इस मार्ग मे साधना की परिपक्व स्थिति में इस सिद्ध देह की स्वयमेव स्फूर्ति हुआ करती है। पाँच भौतिक देह छूट जाती है, पर यह सच्चिदानन्द रसविग्रहमयी व्रज सुन्दरियाँ भगवान के प्रेमधाम में स्फूर्ति प्राप्त करके श्री युगल स्वरूप की सेवा में नित्य नियुक्त रहती हैं।

सिद्ध देह क्या है ?

इस साधना के क्षेत्र में तथा भगवान् श्री राधामाधव के प्रेमधाम में भगवान् श्री वृन्दावनेश्वर तथा श्री वृन्दावनेश्वरी, उनकी अष्ट सखी और अष्ट मजरियो के नाम, वर्ण, वस्त्र, वय तथा सखी और मंजरियो की दिशा और उनकी सेवा इस प्रकार मानी गई है।

अष्ट सखी, अष्ट मंजरी के नाम, वर्ण, वस्त्र, वय, दिशा, सेवा

दिशा	नाम	देह का वर्ण	वस्त्र का रग	वयस	सेवा
	श्री नन्दनन्दन श्यामसुन्दर	इन्द्रनील मणि	नीला	वर्ष मास दिवस १५ ६ ७	
	श्री मती राधिका रासेश्वरी	तपाया स्वर्ण	पीला	१४ २ १५	
			सखी		
उत्तर	श्री ललिता	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१४ ३ १२	ताबूल
ईशान कोण	श्री विशाखा	बिजली	तारावर्ण	१४ २ १५	वस्त्रादि
पूर्व	श्री चित्रा	काश्मीर	काच वर्ण	१४ १ ४	चित्र
अग्निकोण	श्री इन्दुलेखा	हरिताल	दाडिमपुष्प	१४ २ १२	अमृतासन
दक्षिण	श्री चम्पकलता	चम्पापुष्प	चीलवर्ण	१४ २ १४	चंवर

कोण	श्री रग देवी	पद्मकिंजल्क	जवापुष्प	१४	२	८	चन्दन
पश्चिम	श्री तुगविद्या	काश्मीर	पाण्डुवर्ण	१४	२	२०	गानवाद्य
वायव्य कोण	श्री सुदेवी	पद्मकिंजल्क	जवापुष्प	१४	२	८	जल

मजरी

उत्तर	श्री रूप मजरी	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१३	६	०	तावूल
ईशानकोण	श्री मजुलीला मजरी	तप्तस्वर्ण	किशुक पुष्प	१३	६	७	वस्त्र
पूर्व	श्री रस मजरी	चपा पुष्प	हसवर्ण	१३	वर्ष		चित्र
अग्निकोग	श्री रति मजरी	बिजली	तारावर्ग	१३	२	०	चरणसेवा
दक्षिण	श्री गुण मजरी	विजली	जवापुष्प	१३	२	२७	जल
नैर्ऋत्यकोण	श्री विलास मजरी	स्वर्ण केतकी	भ्रमरवर्ण	१३	०	२६	अजन सिंदूर
पश्चिम	श्री लवग मजरी	विजली	तारावर्ण	१३	६	१	माला
वायव्यकोण	श्री कस्तूरी मजरी	स्वर्ण वर्ग	काचवर्ण	१३	वर्ष		चन्दन

इन सखियो और मञ्जरियो के नाम, सेवा आदि में व्यतिक्रम भी माना जाता है। जैसे श्री सुदेवी जी के देह का वर्ण उद्दीप्त स्वर्ण के समान भी माना गया है—'प्रोत्तप्त शुद्ध कनकच्छवि चारुदेहाम्'। प्रधान अष्ट मञ्जरियो के नाम में भी अन्तर माना गया है। उपर्युक्त सूची के स्थान पर ये नाम भी मिलते हैं—

(१) श्री अनङ्ग मञ्जरी, (२) श्री मधुमती मञ्जरी, (३) श्री विमला मञ्जरी, (४) श्री श्यामलता मञ्जरी, (५) श्री पालिका मञ्जरी, (६) श्री मञ्जुला मञ्जरी, (७) श्री धन्या मञ्जरी, (८) श्री तारका मञ्जरी।

कुछ और सखियो और मजरियो के नाम

इनमें से प्रत्येक के अनुगत दो-दो मञ्जरियाँ अथवा प्रिय नर्म सखियाँ क्रमश इस प्रकार हैं—(१) श्री लवङ्ग मञ्जरी, (२) श्री रूप मञ्जरी, (३) श्री रस मञ्जरी, (४) श्री गुण मञ्जरी, (५) श्री रति मञ्जरी, (६) श्री मृदु मञ्जरी, (७) श्री लीला मञ्जरी, (८) श्री विलास मजरी, क (९) श्री विलास मञ्जरी, ख (१०) श्री केलि मञ्जरी, (११) श्री कुन्द मञ्जरी, (१२) श्री मदन मञ्जरी, (१३) श्री अशोक मञ्जरी, (१४) श्री मञ्जुलीला मञ्जरी, (१५) श्री सुधा मञ्जरी, (१६) श्री पद्म मञ्जरी। प्रधान अष्ट सखियो का क्रम भी कही-कही ऐसा माना गया है—श्री रग देवी, श्री सुदेवी, श्री ललिता, श्री विशाखा, श्री चम्पकलता, श्री चित्रा, श्री तुग विद्या, श्री इन्दु लेखा, अथवा श्री ललिता, श्री विशाखा, श्री चम्पकलता, श्री इन्दु लेखा, श्री तुग विद्या, श्री रङ्गदेवी, श्री सुदेवी, श्री चित्रा। सखियो एव मञ्जरियो की सख्या इतनी ही नही है। ये तो मुख्य आठ-आठ हैं। सिद्ध देह में मञ्जरियो की स्फूर्ति और तद्रूपता प्राप्त हो जाती है।

यह परमगोपनीय साधन राज्य का विषय है। यह स्मरण रहे कि इस राजमार्ग में रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव---ये आठ स्तर माने गये है। इनमें रति प्रथम है और यह रति तभी मानी जाती है जब कि इस लोक और परलोक के समस्त भोगो से तथा मोक्ष से भी सर्वथा विरति होकर केवल भगवच्चरणाविन्द में ही रति हो गई हो। साधक के चित्त में केवल एक ही भावना दृढ होकर बद्धमूल हो जाय कि इस लोक मे, परलोक में सर्वत्र सर्वदा और सर्वथा एक मात्र श्रीकृष्ण ही मेरे है और श्रीकृष्ण के सिवा मेरा और कोई भी, कुछ भी, किसी काल में भी, नही है। अतएव यहाँ दूसरी वस्तु मात्र तथा तत्त्व का अभाव हो जाता है, तव काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या और असूया आदि दोषो के लिए तो कल्पना ही नही की जा सकती। ये तो साधक देह मे ही समाप्त हो जाते है। सिद्ध देह मे तो सत्य निरन्तर श्रीकृष्णानुभव के अतिरिक्त और कुछ रहता ही नही। अस्तु,

ऊपर हम कह आये है कि इस भौतिक देह से लीला मे प्रवेश नही हो सकता, उसके लिए चाहिए भाव देह और सिद्ध देह। नाथ साधना, बौद्ध साधना, रसेश्वर साधना, ईसाई और सूफी साधना में इस सिद्ध देह की चर्चा है, हाँ, प्रक्रिया और लक्ष्य में भेद है। अस्तु, देह दो प्रकार का है---साधक देह और सिद्ध देह। साधक देह से साधन होता है और सिद्ध देह से रस का सवेदन और लीला का आस्वादन।[1] साधक देह भी मातृगर्भ से उत्पन्न प्राकृत देह नही है। कुछ लोग भाव देह और सिद्ध देह मे भेद मानते है और कुछ लोग अभेद। सामान्यत पहले साधक देह को प्राप्त करना चाहिए, फिर सिद्ध देह को या पहले भावदेह, तब सिद्ध देह। व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर युक्ति का प्रयोग भिन्न-भिन्न महात्माओ ने भिन्न-भिन्न ढङ्ग से किया है, पर भेद-अश हटाकर देखने पर यह पता चलेगा कि कोई भेद नही है।

साधक-देह और सिद्ध-देह अथवा भाव-देह और सिद्ध-देह

सबसे पहले है प्राकृत देह। इसके तीन भेद---स्थूल, सूक्ष्म और कारण। किसी-किसी मत में इस कारण देह को महाकारण देह में परिवर्तन करना ही साधना का लक्ष्य है। कुछ लोगो की मान्यता है कि कारण देह शुद्ध है, इसे ही भाव देह बना देना चाहिए। साख्य कारण देह नही मानता। कारण देह आनन्दात्मक है, पर है अज्ञानात्मक। कारण की निवृत्ति होने पर ही महा कारण का आविर्भाव होता है। उपासना, योगाभ्यास या नाम साधन के द्वारा 'स्वभाव' की प्राप्ति के लिए चेष्टा होनी चाहिए। गुरुकृपा का आश्रय लेकर किसी भी साधना का अवलम्बन कर के अविद्या माया से निवृत्त हो जाना चाहिए। मन्त्र-साधना, जपादि वैध कर्म से 'स्वभाव' की प्राप्ति होती है।

प्राकृतदेह और उसके भेद : स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह, कारण देह : महाकारणदेह

---

१ सेवा साधक रूपेण सिद्धरूपेण चात्रहि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥ ---संकल्प कल्पद्रुम

'स्वभाव' का अर्थ स्पष्ट रूप में जानना यहाँ प्रसङ्गत आवश्यक है। स्वभाव का अर्थ है प्रत्येक जीव का वैशिष्ट्य। प्रत्येक जीव अपना वैशिष्ट्य लेकर आता है। यह वैशिष्ट्य ही है उसका 'स्व-भाव' अथवा भाव। स्वभाव की प्राप्ति से अपने स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है। ज्ञानमार्ग से जो सम्बन्ध भगवान् से है उसका परिणाम 'एकता' की प्राप्ति है, पर भक्तिमार्ग से साधन करनेवाले को 'भेद' की प्राप्ति होती है—वैशिष्ट्य या स्वभाव के कारण। उपनिषद् कहते हैं—'परज्योति सपद्य ब्रह्मणा सह एकीभूत्वा स्वभावो प्राप्ति'[1] अर्थात् पर ज्योति का सम्पादन कर साधक ब्रह्म के साथ 'एकता' प्राप्त कर लेता है और तब उसे स्वभाव की प्राप्ति होती है। ब्रह्मज्ञान के द्वारा निज स्वभाव खुल जाता है। प्रकाश सब वस्तु को अपना स्वरूप प्रदान कर देता है, यही उसका धर्म है। अन्धकार में सब एकाकार हो जाता है। आवृत स्वभाव को ज्ञान अनावृत कर देता है। भगवान् के साथ जो सम्बन्ध होता है वह स्वभाव को लेकर ही। स्वरूप जाने विना भगवान् से सम्बन्ध क्या?

'स्वभाव'

भाव देह का अर्थ है स्वभाव-देह स्वरूप देह, जिससे जीव चित्स्वरूप में भगवान् से खेलता है। भावदेह ही भक्तिदेह है, चन्द्रमा की भाँति शीतल ज्ञान-देह प्राप्त होने पर पतन हो सकता है यद्यपि ज्ञान तब भी रहता है पर रहता है अज्ञान से आवृत। परन्तु भाव-देह से भगवत्प्रीति का ही सम्पादन होता है और वह नष्ट नही होता। भाव देह की प्राप्ति के पूर्व परभाव की निवृत्ति' हो जाना चाहिए। अविद्या के हट जाने पर ही स्वभाव खुल जाता है। स्वभाव साकार है, पर उसका वर्णन नही किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव अलग है। गुरु का प्रयोजन यही है कि वे बाहरी आवरण हटाकर शिष्य के 'स्वभाव' को खोल देते हैं। विधि-निषेध तक ही गुरु का प्रयोजन है। अविद्या-माया का आवरण हटते ही गुरु का प्रयोजन शेष नही रह जाता। भावमार्ग गुरुगम्य नही है। भाव-देह प्राप्त हो जाने पर स्वभाव ही 'गुरु', स्वभाव ही शास्त्र तथा स्वभाव का निर्देश ही विधि-निषेध होता है। वाहर में कोई नियन्त्रण करनेवाला नही रहता। गभीर आन्तर राज्य की नीरवता मे वाह्य जगत की किमी भी वस्तु का कोई स्थान नही होता। तथापि वहाँ की कोई शक्ति अन्तर्यामी रूप से भीतर रहकर भक्त को परिचालित करती है, इसी को स्वभाव कहते है।

भाव-देह, स्वभाव-देह, स्वरूप-देह

शिशु को जिस प्रकार शिक्षा नही दी जाती कि वह किस प्रकार माँ को पुकारे अथवा माँ के साथ व्यवहार करे—वह अपने स्वभाव के द्वारा ही नियमित होता है, ठीक उमी प्रकार जो भक्त भाव देह में शिशु है उसे मातृ-भक्ति सिखानी नही पडती, वह स्वभाव की सन्तान है, स्वभाव ही उसे परिचालित करता है। वह अपने-आप जो करेगा वही उसका भजन है। रागात्मिका

'स्वभाव'

---

१ छान्दोग्य

भक्ति मे वाह्य शास्त्र या वाह्य नियमावली की आवश्यकता नही होती। स्वभाव प्राप्ति के बाद इच्छा का प्रतिभात नही होता। स्वभाव प्राप्ति के बाद आत्म द्विवाकरण (सेल्फ डुप्लिकेशन) की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

भाव और प्रेम

भाव का विकास ही प्रेम है। भाव-साधना करते-करते स्वभावत ही प्रेम का आविर्भाव हो जाता है। जबतक प्रेम उदय नही होता, तबतक भगवान् का अपरोक्ष दर्शन नही हो सकता। भाव के उदय के साथ आश्रय तत्त्व की अभि-व्यक्ति होती है, परन्तु जबतक प्रेम का उदय नही होता, तब तक विषयतत्त्व का आविर्भाव नही हो सकता। अस्तु, प्रेम की अवस्था ही पूर्णता की अवस्था है।

रस और ज्योति

कमल के विकास के लिए जिस प्रकार एक ओर जलपूर्ण सरोवर और उसके साथ पृथिवी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार दूसरी ओर ज्योतिर्युक्त तेजोमण्डल तथा उसके साथ आकाश भी आवश्यक होता है। नीचे रस और ऊपर रवि-किरण, इन दोनो का एक साथ सयोग होने पर कमल स्फुटित होता है अन्यथा स्फुटित नही हो सकता। भाव के विकास के लिए भी उसी प्रकार एक ओर लक्ष्योन्मेष रूप और दूसरी ओर रसोद्गम का मूल कारण स्थायी भाव आवश्यक होता है।

भाव देह, प्रेम देह, सिद्ध देह

खेचरी भाड या अमृत भाड से लक्ष्योन्मेष के साथ-साथ अमृत-क्षरण प्रारम्भ हो जाता है। भाव-सरोवर में पहले भाव-कलिका के रूप मे प्रकट होता है, पश्चात् सूर्य की किरणे उसे प्रेम-कमल के रूप में विकसित कर देती है। भाव देह, फिर प्रेम देह, फिर सिद्ध देह। भाव देह विरह का देह है, प्रेम देह मिलन का और सिद्ध देह में न विरह है, न मिलन, वहाँ है नित्य अखण्ड लीला-स्वादन।'

भगवान् निरन्तर स्वय अपने साथ क्रीडा कर रहे है। वे नित्य है, इसलिए उनकी लीला भी नित्य है। अज्ञान की क्रिया के रहने पर इस नित्य लीला की कल्पना नही की जा सकती। पहले अद्वैत वोध में स्थित प्राप्त करना आवश्यक है, तब दिखाई देता है कि एक ही नाना रूपो मे सजकर अपने साथ आप ही सर्वदा—क्रीडा कर रहे है। उपनिषद् के शब्दो में यही हे उनकी आत्म रति, आत्म-क्रीडा, आत्म-मिथुन, आत्मरमण।[2] अनन्त प्रकारो में वह एक ही द्वितीय बनते है

---

१ विशेष विवरण के लिए देखिए—म० म० पं० गोपीनाथ कविराज का 'भक्ति रहस्य' शीर्षक लेख 'कल्याण' हिन्दू संस्कृति अक पृ० ४३६-४४४

२ प्राणो ह्येष य. सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरति क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठ ॥

—मुण्डकोपनिषद् ३-४

एव अनुरूप रस का आस्वादन करते हैं। भोक्ता वे है, भोग्य वे है और भोग भी वे ही है—द्वितीय के लिए स्थान नही है, फिर भी अनन्त प्रकारो से द्वितीय का स्वाँग उन्होने रच रखा है। यह कृत्रिम द्वितीय वस्तुत 'एकमेवाद्वितीयम्' है। अद्वैत की एक दिशा है, वह लीलातीत, निरञ्जन, निष्क्रिय है। पृथक् रूप से शक्ति की वहाँ सत्ता ही नही है। सब शक्तियाँ वहाँ तिरोहित है। उस समय वे अपने भाव में आप ही मगन है, सुषुप्त है। उसकी दूसरी एक दिशा है। वह निरन्तर लीलामय और सक्रिय है। दोनो ही नित्य और दोनो ही सत्य है। भगवान् अनन्त शक्ति-सम्पन्न है, इसी कारण उनकी अनन्त लीलाएँ है। उनकी सभी लीलाएँ स्वरूपत चिन्मय, आनन्दमय और अप्राकृत है। वे एक होकर भी अनन्त है। इसीलिए उनकी क्रीडाओ की इयत्ता नही है। रसरूप से एक होने पर भी वे अनन्त है। इसीलिए उनके रसास्वादन के वैचित्र्य का भी अन्त नही है। स्मरण रखना होगा कि भगवान् की इस नित्य लीला मे सकोच नही है, विभाग नही है, द्वन्द्व नही है, अज्ञान नही है। जिसका प्रतीत होता है वह भी लीला का ही अङ्ग है। इस कारण वह भी चिन्मय, अप्राकृत और आनन्दमय है। लीला केवल अभिनय मात्र है। रसास्वादन के बहाने से रङ्गमञ्च में उसका आयोजन होता है। वे स्वय अपने साथ आप क्रीडा कर रहे है। यह नित्य लीला है। यह सब चिन्मय राज्य का व्यापार है। वहाँ का आभास, विभाग भी चिन्मय है क्योकि अप्राकृत है। निमित्त भी वे ही है उपादान भी वे ही है। कर्ता वे है, कर्म वे है, करण वे है, केवल यही नही क्रिया भी वे है, एक चैतन्य रूपी वे विविध स्वाँग बनाकर नाना प्रकारो से क्रीडा करते है, अपने साथ आप ही। और सब क्रीडाओ के मध्य में भी वे लीलातीत रूप से अपनी क्रीडा को स्वय ही देखते है। लीला करते भी वे है, देखते भी वे है, अपनी क्रीडा के अतीत भी वे है।[१] वे विश्वसीत है, विश्वनय है, परमानन्दमय घनीभूत प्रकाश स्वरूप है, सब कुछ उनमें अभिन्न रूप से स्फुरित हो रहा है, उनमे पृथक् कोई ज्ञाता नही है, ज्ञान नही है—सब ज्ञान वे है, सम्पूर्ण ज्ञेय भी वे है। एक मात्र वे ही अनन्त विचित्रताओ के साथ सर्वदा और सर्वत्र खेलते और खेलाते प्रतिभासमान हो रहे है। यही उनकी नित्य लीला है।[२]

---

१ तस्य पुनर्विश्वोत्तीर्ण विश्वात्मक परमानन्दमय प्रकाशैकघनस्य एवविध मेवाखिल अभेदेनैव स्फुरित न तु वस्तुत अन्य किंचित् ग्राह्य ग्राहक वा, अपितु स एव यूत्य। नानावैचित्र्यसहस्त्रै स्फुरति।

—शक्ति सूत्र

२ देखिये आनन्दवार्ता।

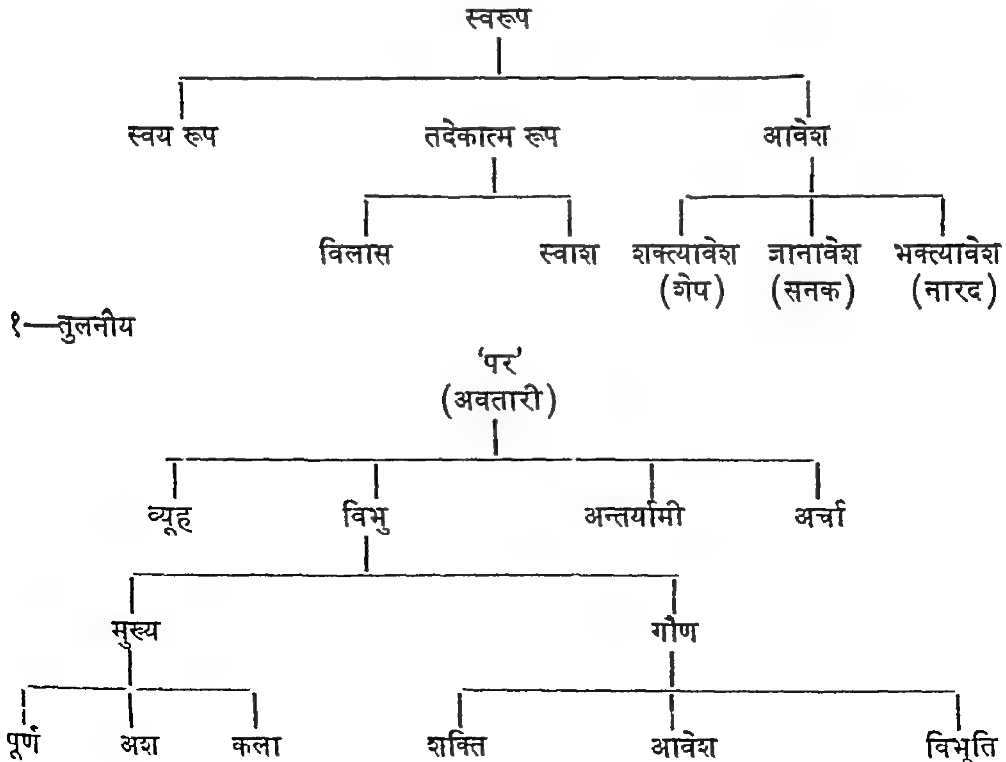
पाँचवाँ अध्याय

अवतारतत्त्व तथा रामोपासना

सभी धर्मसाधनाओ में अवतार-तत्त्व

हमारे देश के अति प्राचीन काल से किसी-न-किसी प्रकार में अवतारवाद प्रचलित है। खीस्तीय धर्म समाज में भी (डिसेण्ट ऑव गॉड ऐज़ मैन) अर्थात् नर के रूप मे भगवत्सत्ता का अवतरण होता है—यह सिद्धान्त प्रचलित है। इस्लाम धर्म में भी प्रकारान्तर से अवतारवाद नही है सो वात नही है। वौद्धो मे, विशेषत त्रिकायवादी महायानी वौद्धो में निर्माणकाय के रूप में अवतारवाद ने स्थान ग्रहण किया है। इससे सिद्ध होता है कि एक प्रकार से प्रत्येक धर्म में अवतारवाद-तत्त्व स्वीकृत हुआ है।

वैष्णव पुराणो तथा शास्त्रो के आधार पर भगवत्स्वरूप के तीन प्रकार माने गये है और वे निम्नलिखित है—



यदि किसी जीव में विशेष ज्ञान-शक्ति अथवा क्रियाशक्ति अथवा युगपत् दोनो का सञ्चार देखा जाय तो उसे आवेशावतार कहते है। उदाहरणार्थ—भक्तिशक्ति के अवतार श्री वेदव्यास जी, क्रियाशक्ति के अवतार पृथु जी एव ज्ञानशक्ति के अवतार सनकादिक हुए।

अवतार के और भी भेद है—पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार। पुरुषावतार के तीन भेद हैं—प्रथम पुरुष, द्वितीय पुरुष और तृतीय पुरुष। इन तीनो में जो महत्तत्त्व का स्रष्टा

अवतार के भेद
पुरुषावतर

कारणार्णवशायी, प्रकृति का अन्तर्यामी प्रथम पुरुष है, वह पर-व्योमस्थ सकर्षण का अश है। जो समष्टि विराट् का अन्तर्यामी गर्भोदशायी एव ब्रह्मा का भी रचयिता द्वितीय पुरुष है, वह पर-व्योमस्थ प्रद्युम्नजी का अशावतार है और व्यष्टि विराट् का अन्तर्यामी क्षीरोदशायी जो तृतीय पुरुष है, वह परव्योमस्थ अनिरुद्ध का अश है।

सत्त्वगुण के द्वारा उत्पन्न पालन करनेवाले क्षीरोदनाथ विष्णु ही हैं। रजोगुण के

गुणावतार

द्वारा गर्भोदशायी की नाभि से उत्पन्न सृष्टिकर्ता ब्रह्मा है। तमोगुण से सृष्टि के सहारकर्ता शिव का अवतार होता है। किन्तु जो सदाशिव हैं, वे निर्गुण एव स्वयरूप विलास विशेष है, अत वे गुणावतार शिव के अशी है।

सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार, नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल

लीलावतार

देव, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हस, पृश्णिगर्भ, ऋषभदेव, पृथु, नृसिह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, रघुनाथ, व्यास, बलदेव, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि प्रभृति लीलावतार कहे जाते हैं। प्रत्यक कल्प में यह सब-के-सब अवतीर्ण होते हैं, अत इनको कल्पावतार भी कहा जाता है।

चौदह मन्वन्तर अवतारो के नाम हैं—यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, वैकुण्ठ, अजित,

मन्वन्तरावतार

वामन, सार्वभौम, ऋषभ, विश्वक्सेन, धर्मसेतु, सुदामा, योगेश्वर, बृहद्भानु।

युगावतार

सतयुग, त्रेता आदि चारो युगो में क्रम से शुक्ल, रक्त श्याम और कृष्ण ये चार युगावतार होते हैं।

पूर्वोक्त इन सब प्रकार के अवतारो मे कोई आवेश, कोई प्राभव, कोई वैभव, कोई परा-वस्थ नाम से अभिहित होते है। सनकादि, नारद और पृथु आदि 'आवेशावतार' है। मोहिनी, धन्वन्तरि, हस, ऋषभ, व्यास, दत्तात्रेय, शुक्ल प्रभृति प्राभव हैं। प्राभव की अपेक्षा जो अधिक शक्ति के प्रकाशक है, उनको 'वैभवावतार' कहते हैं—वे है मत्स्य, कूर्म, नर-नारायण, वराह, हयग्रीव, पृश्निगर्भ, बलभद्र, यज्ञ आदि। वैभवो की अपेक्षा भी जो अधिक शक्ति के प्रकाशक हैं उन्हें 'परावस्थ' कहते है। वे है—नृसिह, श्रीराम, श्रीकृष्ण।

स्वयरूप मुख्य रूप है। यह अन्य रूपो की अपेक्षा नही करता, स्वत सिद्ध है। निखिलानन्द सन्दोह स्वय रूप भगवान् वही हैं जिन्हें योगी, ज्ञानी, सिद्ध खोजते रहते हैं। भगवान् का यह देह चिन्मय है आनन्दमय है। भक्त भगवान् के जिस रूपरस का पान करता है, वह केवल सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य, सौकुमार्य आदि का सार ही नही है, अपितु षड् ऐश्वर्य यश श्री आदि का भी एक मात्र आश्रय हैं।

स्वयं रूप

तदेकात्म रूप भी मूलत और स्वभावत सर्वथा स्वय रूप के समान है, परन्तु आकृति, वैभव, चरितादिक के कारण भिन्न दीखता है। इसकी अभिव्यक्ति (क) विलास के द्वारा हो सकती हैं जो शक्ति में प्राय स्वय रूप के समान हैं–'प्रायेणात्मसम शक्त्या' जैसे नारायण जो पर वासुदेव के विलास हैं या (ख) स्वाश रूप में जो शक्ति में अपेक्षाकृत न्यून हैं, जैसे मत्स्य, वराह, सकर्षण आदि। स्वय भगवान् में ६४ कला, भगवान् में ६०, परमात्मा में ५६ और जीव कोटि में ५० कलाएँ होती हैं।

तदेकात्म रूप

किसी महापुरुष में जव शक्ति, ज्ञान या भक्ति के द्वारा भगवान् का आवेश होता है तव उसे आवेशावतार कहते हैं। शक्तावेश के उदाहरण हैं शेष, ज्ञानावेश के सनकसनन्दन और भक्त्यावेश के नारद। ये रूप मायिक नही है, ये नित्य रूप है। द्विभुज का चतुर्भुज हो जाना उसी का प्रकाशमात्र है।

आवेश

अवतार का हेतु विश्वकार्य ही है। 'विश्वकार्य' का अभिप्राय है 'महत्' के उत्पादन के कारण जव प्रकृति में क्षोभ होता है, उसका उपशमन अथवा दुष्टो के विमर्दन के द्वारा देवादिको का सुख-विवर्द्धन। गीता में भगवान् कहते है कि जव-जव धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तव-तव मैं अपने आप को मनुष्य रूप में सृष्ट करता हूँ।[1]

अवतार के सामान्य और विशेष हेतु

---

१ अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृति स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥
जन्म कर्म च मे दिव्यम्............

—गीता,अ० ४, श्लो० ६, ७, ८

चारो युगो में एक-एक युगावतार होते हैं। सत्ययुग में शुक्लवर्ण के, त्रेता में रक्तवर्ण के, द्वापर में श्याम वर्ण के और कलिकाल में कृष्णवर्ण के। आवेश, प्राभव, वैभव और परत्व भेद से प्रत्येक कल्प में ये अवतार चार प्रकार के हो जाते हैं। अशावतार के उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार, नारद, पृथु आदि औपचारिक अशावतार हैं। भगवान् इनमें प्रवेश कर अवतार कोटि तक पहुँचा देते हैं। यह उत्क्रमण (Ascent) का मार्ग हुआ। प्राभव और वैभवावतार में मोहिनी, हस, शुक्ल आदि हैं जो अपना कार्य समाप्त कर अन्तर्हित हो गये। इनके दूसरे प्रकार में धन्वन्तरि, ऋषभ, व्यास, कपिल आदि शास्त्रकार हैं। वैभव अवतार में कूर्म, मत्स्य, नर-नारायण, वराह, हयशीर्ष, पृश्णिगर्भ, बलराम आदि १४ मन्वन्तर अवतार हैं। इन अवतारो के अपने-अपने विशिष्ट लोक भी हैं, जैसे कूर्म का महातल, मत्स्य का रसातल, नर-नारायण का बदरी, द्विपाद वराह का महलोक, चतुष्पाद वराह का पाताल, हयशीर्ष का तलातल, पृश्णिगर्भ का ब्रह्मा के जनलोक के ऊपर, बलराम का श्रीकृष्ण के साथ उन्ही के लोक में—वैकुण्ठ का स्वर्गलोक, अजित का ध्रुव लोक, त्रिविक्रम का तपोलोक और वामन का भुव लोक। परन्तु ये सभी अवतार परव्योम या महा वैकुण्ठ के नीचे वाले लोको में ही रहते हैं।[1]

युगावतार

परवस्था का अर्थ है सम्पूर्णावस्था। इस अवस्था में अवतार षडैश्वर्य सम्पन्न एव पूर्णतम होते हैं। ये हैं नृसिंह, राम और कृष्ण। राम अयोध्या और महावैकुण्ठ में रहते हैं। पद्मपुराण के अनुसार राम = नारायण, लक्ष्मण = शेष, भरत = चक्रसुदर्शन, शत्रुघ्न = पाँचजन्य। पुराणो के अनुसार कृष्ण चार स्थानो में रहते है। व्रज, मथुरा, द्वारिका और गोलोक। भगवान् की सोलह कलाएँ उनकी सोलह शक्तियाँ हैं। उनके नाम हैं—श्री, भू, कीर्ति, इला, लीला, कान्ति विद्या, विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईषाना और अनुग्रहा।

पूर्णावतार

अवतार तत्त्व के मूल मे यह सिद्धान्त है कि एक रूप मे अपने नित्यलोक में नित्य विहार होता है तथा दूसरे रूप में जगत्प्रवृत्ति होती है। ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका साराश यह है कि (१) परमात्मा एक होते हुए भी अपने को अनेक रूपो में प्रकट कर सकते है। उनके सभी रूप पूर्ण, सत्य, सनातन और केवलैक-बुद्धिगम्य हैं।

अवतार तत्त्व का मूल सिद्धान्त

---

१ दे० विष्णुधर्मोत्तर, भागवत्पुराण, पद्मपुराण।

२ द्रष्टव्य —

अह वहामीह गति तदीया
रूपद्वयं नित्यमतोऽस्य विष्णो।

(२) अवतार नित्यरूप है, मायिक नही।

(३) सभी अवतार सच्चिदानन्द-विग्रह हैं—उसमे परात्पर ज्ञान, परात्पर सत्ता और परात्पर आनन्द का समवाय है और मोक्ष देनेवाले है।

(४) कुछ अवतार मनुष्य रूप मे होते है और कुछ मे मानुपी चेष्टा होती है।

(५) अवतारो का 'मानुपी तनु' भी दिव्य है और उसमें अपूर्णता का लेश भी नही होता।

(६) 'मानुपी तनुमाश्रित' होने पर भी अवतार में दिव्य शक्तियाँ और दिव्य पूर्णत्व है और इसलिए अतिमर्त्य लीला में पूर्णत समर्थ है।

(७) कुछ अवतार भूतकाल में हुए, परन्तु नित्य होने के कारण वे आज भी पूज्य ही है। प्रत्येक अवतार की विशिष्ट देह-लीला होती है और उनका अपना विशिष्ट लोक भी होता है।

(८) अवतार भगवान् के अश है—इस अर्थ मे कि इस धरातल पर आने के साथ ही वे अपने दिव्य अय च पूर्ण रूप में अपने निज धाम में विराजमान रहते है।

(९) अवतार का मुख्य हेतु है—विश्व का कल्याण तथा प्रेम का आस्वादन और भक्ति का प्रचार।

वैसे तो अवतारो की सख्या अनेक है, परन्तु इनमे दस अवतार ही मुख्य है और इनमें भी राम और कृष्ण की प्रधानता है। ये दोनो ही विष्णु के अवतार है और इनका महत्त्व परम प्राचीन एव अत्यन्त व्यापक है। इसमें मुख्य हेतु इनकी 'मानवीयता' ही है। मानवीय रस की प्रचुरता के कारण ही राम और कृष्ण की उपासना बहुत ही पुरानी और अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है।

मानवीय रस

रामावतार का महत्त्व भी बहुत अधिक रहा है। भगवान् रामचन्द्र सदा दुष्टदमनकारी और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित हुए है। १५वी शताब्दी के परवर्ती साहित्य में राम के लीला-गान की प्रथा चली, परन्तु इस लीला में भी भगवान् श्री रामचन्द्र का दुष्ट दमनकारी और सन्त-हितकारी रूप ही मुख्यत लक्ष्य रहा, उनका मर्यादा पुरुषोत्तम रूप कथमपि म्लान नही हुआ, परन्तु शनै-शनै १६वी शताब्दी के बाद के साहित्य में भगवान् राम का चरित्र भी भक्तो के लीला-विहार का साधन बनता और माधुर्य-भावना से ओत-प्रोत होता गया। यहाँ तक कि १८वी शताब्दी के बाद के राम-साहित्य में प्रणय-विलास और रासलीला का अत्यन्त विशद एव व्यापक विन्यास हुआ और प्रेमी भक्तो की एक धारा-सी छूट पडी जो भगवान् राम की परम प्रेमास्पद, परम प्रियतम के रूप में उपासना करने लगे और इस प्रकार रामावत सम्प्रदाय में भी, कृष्ण भक्ति शाखा

एकेन नित्यं नियतो विहार-
स्तया द्वितीयेन जगत्प्रवृत्ति.। —हंसविलासे, ४७ उल्लासे।

श्रृणुतेऽहं प्रवक्ष्यामि विष्णोः रूप द्विधामतम्।
नित्य विहार एकेन चान्येन सृष्टि रेव हि॥

—आदि पुराण १०।१६

की भाँति, मधुर भाव की उपासना का रूप खुल कर उन्मुक्त एव उद्दाम रूप में, सामने आया। मानवी तनु का आश्रय लेने के कारण भगवान् की मानवी लीला का रसास्वादन सहज रूप में किया जा सकता है और मनुष्य की भाँति ही मिलन-विरह, सुख-दु ख, हर्ष-विषाद, आविर्भाव और अन्तर्धान के कारण मानव-मन को इन लीलाओ ने विशेष रूप से मोहित किया और रस-सिक्त किया है और फलस्वरूप हमारा ९९ प्रतिशत काव्य साहित्य इन्ही दो अवतारो को लेकर रचा गया है।

भगवान् राम की लीला में माधुर्यभाव का प्रवेश क्यो और कैसे हुआ ? इसका विचार हम आगे करेंगे, परन्तु इस सम्बन्ध में ध्यान रहे कि यहाँ माधुर्य में भी पूरी मर्यादा है। अस्तु

अवतारवाद में वैज्ञानिक विकासवाद

बहुत-से लोग अवतारवाद में वैज्ञानिक विकासवाद का ही समर्थन करते है। पहले जल-जन्तु (मत्स्यादि) फिर जल-थल में रहनेवाले (कच्छपादि) फिर केवल स्थलवासी (वराहादि) फिर अर्ध पशु, अर्ध मनुष्य (नृसिह) फिर मनुष्य का लघु रूप (वामन) फिर दर्पमय क्षत्रियत्व (परशुराम) और बाद में मनुष्यत्व का पूर्ण विकास और हमे राम-कृष्ण तथा बुद्ध के मानव अवतारो के दर्शन होते है। इसके अतिरिक्त शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अर्थो में भी दशावतारो का वर्णन है।[1] अवतारो में श्रीकृष्ण की पूजा सबसे प्राचीन मानी गई है। जैकोबी का कथन है कि पहले इनकी पूजा एक जातीय वीर पुरुष (नेशनल हीरो) के रूप मे होती थी। उसके बाद वैदिक काल के अन्त मे कृष्ण आभीरो के एक जातीय देवता के रूप में पूजे जाने लगे। गोपाल कृष्ण और वासुदेव कृष्ण[2] जो पहले अलग-अलग थे, अब एक ही व्यक्तित्व में केन्द्रित हो कर पाञ्चरात्र धर्म के प्रधान आराध्य देव बन गय। महर्षि पतञ्जलि के महाभाष्य में[3] कृष्ण और अर्जुन का उल्लेख मिलता है। पतञ्जलि ने कृष्ण का उल्लेख केवल एक वीर क्षत्रिय के रूप में ही नही, वरन् दैवी शक्ति सम्पन्न महापुरुष के रूप में किया है[4]।

बूलर के मतानुसार जैन धर्म के बहुत पहले ही (ई० पू० आठवी शताब्दी) में इस धर्म का उदय हो चुका था। तैत्तरीय अरण्यक एव छान्दोग्य उपनिषद् में (छठी सदी ईसा पूर्व) कृष्ण का उल्लेख आ चुका है।[5] चौथी शताब्दी में मेगास्थनीज ने इन्ही का हरि कृष्ण (Heracles)

---

१ द्रष्टव्य—पुरान्स इन दि लाइट आव माडर्न साईन्स। पृ० २०९-२१२

२ The Early History of the Vaisnava Sect D.Hemchandra Ray Choudhury
Chapters on Vaisnavism and Vasudeva The Life of Krishna Vasudeva
Pages 10-118

३ महाभाष्य—५, ३, ९५।

४ महाभाष्य—४, ३, ९८।

५ तद्वैतद्धोर आंगिरस कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापियास एव स बभूव, छा० ३, १७, ६।

के नाम से अभिहित किया है, और ये शूरसेन देश में पूजित थे जहाँ कि मथुरा नगरी (Methora) बसी है और जहाँ से यमुना नदी (Gaboras) बहती है। भाण्डारकर ने स्पष्टत श्रीकृष्ण से सात्वत जाति का सम्बन्ध होने से इस धर्म का नाम 'सात्वत धर्म' माना है।[1] यह सात्वत धर्म ही 'भागवत् धर्म' कहलाया। 'भागवत' का अर्थ है भगवान् का भक्त। ई० पू० १४० में तक्षशिला में ग्रीक सम्राट् अन्तियल्किदास (Antialkidas) का प्रतिनिधि हिलियोगस और भागभद्र तथा विदिशा के राजा अपने नाम के साथ 'भागवत' उपाधि का व्यवहार करते थे। इनके द्वारा भगवान् वासुदेव के मन्दिर तथा गरुडध्वज स्थापित करने का उल्लेख उस समय के बैसनगर के लेखो में मिलता है।[2] तीसरी से पाँचवी शताब्दी तक गुप्त सम्राट् भागवत धर्म के उपासक थे। इन्ही के समय श्रीमद्भागवत पुराण तथा श्रीविष्णु पुराण आदि की रचना मानी जाती है। अपनी मुद्राओ एव ताम्रपत्रो में वे अपने नाम के सामने 'परम भागवत्' उपाधि बडे गर्व के साथ लिखते थे। मालव, मगध, कन्नौज, गौड, तथा गुर्जर में इस धर्म का विशेष प्रचार हुआ। भगवद्गीता के समय श्रीकृष्ण वासुदेव की 'परम पुरुष' के रूप मे उपासना हो रही थी। घोसुण्डी मे मिले हुए शिलालेखो में वासुदेव और सकर्षण के लिए 'पूजा शिला' और 'नारायण वाटिका' निर्माण करने का उल्लेख है।[3] इससे प्रकट होता है कि उस समय पाँचरात्र पद्धति स्थापित हो चली थी जिसमे वासुदेव के चतुर्व्यूहो की पूजा प्रचलित थी। अब भागवत धर्म ही 'पाँचरात्र' के नाम से पुकारा जाने लगा था। पाँचरात्र का सामान्यत अर्थ है 'पुरुष' द्वारा पाँच रात्रियो तक यज्ञ आचार। तदनन्तर 'पुरुष' और 'विष्णु' एक हो गये और तब श्रीकृष्ण वासुदेव और नारायण से एक रूप होकर भागवत धर्म या पाँचरात्र के प्रधान आराध्य देव बन गये। मैकनिकल ने 'इण्डियन थेइज्मि' नामक अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ६५ पर लिखा है कि श्रीकृष्ण पूजा का प्रभाव बौद्धधर्म एव जैनधर्म पर अत्यन्त स्पष्ट है।

राम कथा की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे बहुत लोगो को सन्देह है। अवश्य ही राम भक्ति कृष्ण भक्ति की अपेक्षा आधुनिक है।[4] ऋग्वेद मे राजा 'इक्ष्वाकु' का नाम आया है। इसी प्रकार अथर्ववेद मे भी 'इक्ष्वाकु' शब्द एक बार आया है। वैदिक साहित्य में 'दशरथ' का बस एक बार उल्लेख मात्र मिलता है। ऋग्वेद की एक दानस्तुति में अन्य राजाओं के साथ-

---

१ भाण्डारकर—इण्डियन एण्टीक्वैरी।

२ देव देवस वासुदेवस गरुडध्वजो कारितो हिलिउडोरेन भागवतेन दिवसपुत्रेण तखसीलकेन।
—इपिग्राफिया इण्डिका वोल्युम० १०

३ जर्नल आव दि रायल एशियाटिक सोसायटी १८७७ पार्ट १ पृ० ७८।

४ यस्यै क्ष्वाकुरुप व्रते रेवानमाराय्येधते (जिनकी सेवा में प्रतापवान् और धनवान् इक्ष्वाकु की वृद्धि होती है।)

५ त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं १९.३९.९

साथ दशरथ की भी प्रशसा की गई है।[१] परन्तु 'राम' शब्द का व्यवहार ऋग्वेद में एक प्रतापी राजा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[२] इसी प्रकार वैदिक साहित्य में सीता का नाम दो स्थलो पर उपयुक्त हुआ है। समस्त वैदिक साहित्य में सीता ऋषि की अधिष्ठात्री देवी है। तैत्तरीय ब्राह्मण में 'सीता सावित्री' सूर्य की पुत्री है।[३] सीता का उल्लेख ऋग्वेद की एक ऋचा में हुआ है—

इन्द्र सीता निगृह्णातु ता पूषा न यच्छतु।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समाम् ।।
ऋ० अ० ३, अनु० ८ ४ ८

यहाँ सीता के साथ इन्द्र शब्द आया है। कुछ लोगो का अनुमान है कि इन्द्र का ही नाम राम था। गृह्य सूत्रो में राम और सीता का जहाँ - जहाँ उल्लेख है वहाँ सीता हल से बनी हुई पक्तियो का नाम है और राम पानी बरसानेवाले इन्द्र देवता का नाम है। सीता इन्द्र की भार्या है।[४] अभिप्राय यह कि ऋग्वेद से लेकर अथर्ववेद के कुछ मन्त्र ऐसे है, जिनमें सीता की देवी रूप में प्रार्थना की है। यथा—

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा न सुमना असो यथा न सुफला भुव ।।
घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैदेवैरनुमता मरुद्भि ।
सा न सीते पयसाम्याववृत स्वोर्जस्वती घृतवप्तिवमाना ।।[५]

हे सीते! हम तेरी वन्दना करते है। सौभाग्यवती! अपनी कृपा दृष्टि से हमारी ओर अभिमुख हो, जिससे तू हमारे लिए हिताकाक्षिणी होवे और जिससे तू हमारे लिए सुन्दर फल देने वाली होवे। घी और मधु से सानी हुई सीता विश्व में देवताओ और मरुतो से अनुमोदित होवे।

---

१ चत्वारिंशद्दशरथश्च क्षोणा' सहस्रस्याग्रे श्रेणि नयन्ति। —ऋग्वेद १.१२६ ४

२ प्र वहुशीमे वृपवाने यने प्रण्ये वोचमसुरे ये युक्तवाय पचशतास्मयु यथा मघवत्सु विश्राव्येषाम्।
—ऋग्वेद १० ९३ १४

३ तैत्तिरीय ५ २ ५ ५।

४ यस्या भावे वैदिकलौकिकाना भूतिर्भवतिकर्मणाम्।
इन्द्रपत्नीमुपह्वये सीता सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि कर्मणि स्वाहा।
—पारस्कर्य गृह्यसूत्र ११, १७, ३

इन्द्र पत्नी सीता का मैं आह्वान करता हूँ जिसके तत्त्व में वैदिक और लौकिक दोनो प्रकार के कार्यो की विभूति निहित है। वह सीता सब कार्यो में मेरी सहायता किया करे।

५ अथर्ववेद १७, ८, ६।

हे सीते! ओजस्विनी और घी से सीची हुई, तू दूध के साथ हमारे पास विद्यमान रह। महाभारत मे राम-कथा विद्यमान है। द्रोणपर्व में सीता का उल्लेख कृषि की अधिष्ठात्री देवी एव सब बीजो को उत्पन्न करनेवाली के रूप मे हुआ है।[1] हरिवंश में दुर्गा की एक स्तुति है जिसमें कहा गया है, 'तू कृषकों के लिए सीता है यथा प्राणियो के लिए धरणी।[2] श्रीमद्भागवत् पुराण तथा श्री विष्णु पुराण में राम-कथा है, परन्तु उसका सम्यक् सुव्यवस्थित रूप श्रीमद्वाल्मीकि रामायण मे ही मिलता है, फिर भी, यहाँ, सीता अयोनिजा है और उनका पृथ्वी में ही तिरोधान हो जाता है जो वैदिक सीता के व्यक्तित्व से प्रभावित है।

रामोपासना का क्रम-विकास

अब हम यहाँ यह देखना चाहते हैं कि रामोपासना का क्रमविकास किस प्रकार हुआ तथा किस-किस काल में किस-किस भाव की मुख्यता रही है? भगवान के साथ दास्य, सख्य, वात्सल्य एव मधुर भावो में किसी भी भाव से युक्त या सबधित होने पर उस भाव की रसात्मक अनुभूति का नाम 'भक्ति' है। दूसरे शब्दो में यह भगवान के प्रति 'परमप्रेम' एव 'परानुरक्ति' है। भक्ति भक्त और भगवान् के बीच मधुर लीला-विलास है। भक्त के हृदय में भगवान् के लिए और भगवान् के हृदय में भक्त के लिए जो वासना, रति या वेदना है उसी का नाम है भक्ति। यह वेदना अथवा मिलन की वासना भगवान में भी है और भक्त में भी। अस्तु, जब एकान्त में भक्त और भगवान् परस्पर लाड लडाते हैं और हृदय से हृदय लगाकर प्राण से प्राण मिलाकर दो 'एक' हो जाते है और फिर आनन्द-विलास के लिए दो हो जाते हैं उसे ही सामान्य भाषा में भक्ति कहते हैं। यह कहना कठिन है कि भक्त और भगवान मे कौन है प्रेमी और कौन है प्रेमास्पद। दोनो ही परस्पर प्रेमी और प्रेमास्पद है, दोनो ही के हृदय में विरह की व्यथा है मिलन की तीव्र अभिलाषा है और विरह का यह एक निमिष सहस्र कल्पो की तरह दीर्घ लगता है।

परमात्मा से ही यह सृष्टि विस्तार है। मूलत वही एक है, उसकी इच्छा हुई अनेक हो जाऊँ। उसकी इसी वासना मे यह सारा प्रपच विस्तार हो गया।[3] अस्तु, एक मे दो हुआ और

---

१ मद्राजस्य शल्यस्यध्वनाग्रे भिशिखामिव।
सौवर्णी प्रतिपश्याम सीताभप्रतिमा शुभाम्॥
सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष।
सर्ववीजविरुढेव यथा सीता श्रिया वृता॥ —महाभारत, द्रोण पर्व, ७.१०५.१८-१९

२ कर्षकाणां च सीतेति
भूतानां धरणीति च। हरिवंश २.३.१४

३ स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्तत पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इति। —बृहदारण्यक ४, ३

दो से अनेक। परन्तु अनेक के मन-प्राण मे पुन अपने उद्गम उसी 'एक' से मिलने और मिलकर सर्वथा मिल जाने, उसी में समा जाने की लालसा अत्यन्त उत्कट और अदम्य है और यही है जीव-जीवन की एकमात्र साध। 'हस' की 'परम हस' से मिल कर कुरैल करने की अदम्य लालसा ही जीव को यहाँ, इस मिट्टी की काया मे, बेचैन किये रहती है। अस्तु।

उपासना तत्व का आदि हेतु

आर्य जाति ने आरम्भ से सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में 'ईशावास्यमिद सर्व' 'सर्व खल्विद ब्रह्म', 'नेहनानास्ति किंचन' 'वासुदेव सर्वमिति' 'तत्वमसि' की दिव्य भावना को ग्रहण किया और मत्रकाल में भी इन्द्र, वरुण, यम, अग्नि, वायु आदिदेवो में एक ही ब्रह्म का साक्षात्कार किया।[1] यह निर्विवाद है कि 'सुख' के लिए ही उपासना का आरम्भ हुआ। वह सुख प्रारम्भ में तो लौकिक 'अभ्युदय' को दृष्टि में रखता था, तदनन्तर उसमें पारलौकिक 'नि श्रेयस्' भी आ गया। दु ख की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की अभिप्राप्ति ही उपासना की प्रेरक भावना रही है। धीरे-धीरे इसमें लोकोपकार अथवा लोकहित की भावना भी सम्मिलित हो गई और यज्ञयाग का प्रवर्तन हुआ। अस्तु, सुख का 'लोभ', दु ख का 'भय' और स्वामी के उपकार के प्रति 'कृतज्ञता' का भाव ही पूजा का कारण हुआ। इसीलिए आरम्भ में हृदय पक्ष का पूज्य के साथ पूरा योग नही था।[2] लोभ, भय और कृतज्ञता के साथ-साथ विशिष्ट मानव हृदय में मनन और भावुकता की भी प्रवृत्ति विद्यमान थी और इसी का परिणाम है ऋग्वेद का पुरुषसूक्त। भगवान् को 'सहस्र शीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपाद्' के भव्य एव दिव्य रूप में पाकर मानव हृदय के आनन्दोल्लास का कुछ वार-पार न था।

ऋग्वेद का यह विराट् 'पुरुष' ही 'सगुण' परमेश्वर नारायण' (नरसमष्टि का आश्रय) रूप में गृहीत हुआ।[3] अन्न, प्राण, मन, विज्ञान एव आनन्द आदि रूपो में जिस अव्यक्त ब्रह्म की उपासना होती थी[4] उसी के सहज सान्निध्य का लोभ या उत्कण्ठा, उसके मनोहारी हृदयाकर्षक रूप नारायण के नराकार रूप में हुई। बाहर और भीतर समानरूप से भगवान् की व्यापक सत्ता का अनुभव भक्ति मार्ग की प्रधान विशेषता है।

---

१ इद्र मित्र वरुणमग्निमाहरथो
दिकस्स सुपर्जो गरुत्मान्।
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यम मातरिश्वानमाहु ॥ —ऋग्वेद १-२, १६४-६६

२ दे० आचार्य शुक्ल जी—'सूरदास' पृ० ९।

३ तुलनीय—जगृहे पौरुष रूप भगवान्महदादिभि।
सम्भूत षोडशकलामादौ लोकसिसृक्षया॥—भागवत १, ३, १

४ अन्न ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनोब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।
—तैत्तिरीय उपनिषद्, भृगुवल्ली

ऊपर कहा गया कि उपनिषदो मे वोधिवृत्ति और रागात्मिका वृत्ति दोनो ही सम्मिलित है अर्थात् ज्ञान और उपासना, वुद्धितत्त्व और हृदयतत्त्व दोनो का मेल है।[1] जहाँ से हृदयतत्त्व को विशेष प्रधानता मिलने लगी, वही से भक्ति मार्ग का आरम्भ मानना चाहिए। महाभारत के शान्ति पर्व मे नारायणीयोपाख्यान मे वासुदेव की उपासना इस लोक मे कैसे चली और भागवत-धर्म का उदय कैसे हुआ, स्पष्ट वर्णन मिलता है। महाभारतकार ने भीष्म से कहलाया है कि भागवत धर्म के आदि प्रवर्त्तक मरीचि, अत्रि, अगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वशिष्ठ तथा स्वायभुव मनु थे। फिर यह विद्या वृहस्पति को प्राप्त हुई और वृहस्पति से राजा वसु को मिली। राजा वसु ने अहिसक अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमे स्वय यज्ञपुरुष भगवान् श्री हरि ने आकर अपना भाग लिया। परन्तु भगवान् के दर्शन केवल वसु उपरिचर को हुए। वृहस्पति इस पर अप्रसन्न हुए तो प्रजापति के पुत्रो ने समझाया कि विना भक्ति के भगवान् का दर्शन नही हो सकता।

इस नारायणीयोपाख्यान से कई वाते स्पष्ट सामने आती है। मुख्यत यह कि भागवत धर्म का मार्ग लोककल्याण पक्ष को लेकर चला हुआ प्रवृत्ति मार्ग था। दूसरा यह कि ब्रह्म का सगुण रूप इस मार्ग मे उपासना के लिए गृहीत हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति लोक रक्षा, पालन और रजन करनेवाले के रूप में हुई होती है और उसी मे निर्गुण-सगुण, व्यक्त-अव्यक्त, मूर्त-अमूर्त सव अन्तर्भूत है। वही नारायण वासुदेव हरि है। ईश्वर के स्वरूप पर मन का आकर्पित होना या लुभाना ही भगवत्प्रेम या भक्ति है। यह प्रेम या भक्ति निर्हेतुक होती है।[2] अस्तु।

भागवत धर्म

इस नारायणी-उपाख्यान से यह भी स्पष्ट है कि महाभारत के समय में नारायण या नाराकृति भगवान् की गूढ भक्ति एक विशेष सम्प्रदाय में परम्परा द्वारा प्रचलित थी। वही नारायण वासुदेव कृष्ण के रूप में इस काव्य मे प्रकट हुआ और चूंकि नारायणी धर्म के इस पक्ष का प्रवर्तन सात्वतो-यादवो के वीच विशेष रूप में हुआ, इसी से इसे 'सात्वत धर्म' भी कहते है। अभिप्राय यह कि प्राचीन नारायणीय धर्म के अनेक पक्ष थे, जो 'नारायण' रूप में उपासना करते थे अथवा नरसिंह, वामन, दाशरथि राम की एकान्त उपासना ले कर चले। भगवान् राम की उपासना का आरम्भ कव से और कहा से हुआ है, इस सम्वन्ध में निश्चित रूप में कुछ भी कहना कठिन है, पर यह निर्विवाद है कि रामोपासना के आदि प्रवर्तक शिव है। स्वय वाल्मीकि को भी नारद ने भगवान् विष्णु के अवतार के रूप मे रामोपासना की विधि वतलाई।[3] इसका प्रचार पहले से भी दक्षिण भारत में विशेप रूप में से था। पुरातत्त्व के विद्वानो के मत से रामायण का निर्माणकाल ईसवी

---

१ दे० आचार्य शुक्ल जी—'सूरदास' पृ० २०
दे० इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एड एथीक्स —'भक्ति' 'भक्तिमार्ग' अध्याय

२ अहेतुव्यवहिता या भक्ति- पुरुषोत्तमे। —भागवत

३ पुत्रत्व तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मन ।
—वा० का० वाल्मीकिय रामायण

सन् के पूर्व छठी शती से चौथी शती के मानते हैं। इस समय रामोपासना का प्रचार विशेष रूप में था। इसका कोई प्रवल प्रमाण नही मिलता। ईसवी सन् के दूसरी शती में मौर्यवश के अनन्तर इस देश में सुग वश का आधिपत्य हुआ और इसमें वैदिक धर्म की पुनर्जाग्रिति हुई, रामायण महाभारत का प्रचार विशेष रूप मे हुआ और राम-कृष्ण अवतार रूप मे विशेपत पूजित हुए।'रामपूर्वतापनी' से भी यह सिद्ध होता है कि इसी समय से रामोपासना का विशेप प्रचार रहा।

'युद्धकाड' के पैंतीसवें अध्याय मे रावण के वध हो जाने पर सीता की अग्नि परीक्षा देखकर देवता कहते है—

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदा विभु ।
उपेक्षसे कथ सीता पतन्ती हव्यवाहने
कथ देवगणश्रेष्ठमात्मान नाववुध्यसे ।।

अगस्त्य सुतीक्ष्ण सवाद में भी रामोपामना का वर्णन है। वायुपुराण में रामावतार का वर्णन है। रघुवश के दसवें सर्ग में कालिदास ने 'सोऽह दाशरथि भूत्वा' के द्वारा राम के परमेश्वरत्व को स्वीकार किया है। ई० स० १०१४ से इसका विशेप विस्तार हुआ। भवभूति ने भी राम को परमोपास्य देवता के रूप में माना है।

रामोपासना वैदिकी है या तान्त्रिकी, यह प्रश्न भी कम गभीर नही है। 'मत्र रामायण' में नीलकण्ठ ने वैदिक मत्रो के उद्धरण देकर रामचरित का प्रतिपादन किया है। 'राम तापनी' उपनिषद् के उपक्रम में राम का महाविष्णु का अवतार माना है।[1] अस्तु, यह वैदिकी है यह कहा जा सकता है। श्रुतियो में अनेक स्थानो पर राम को पूर्ण ब्रह्म के रूप में कल्पना है। 'नारद पाचरात्र' मे तथा 'शारदा तिलक' में रामोपासना का वर्णन है, अतएव यह तान्त्रिक उपासना भी है। अतएव रामोपासना न केवल वैदिकी है और न केवल तान्त्रिकी, वरञ्च वैदिकी तान्त्रिकी दोनो ही है।

रामोपासना : वैदिकी या तान्त्रिकी?

सन ईसवी की सातवी शताव्दी में दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति ने वडा जोर पकडा। यही अलवार वैष्णवो का समय है। भाण्डारकर का कथन है कि यद्यपि ईसवी सन् के प्रारभ से ही राम विष्णु के अवतार माने गये थे तथापि उनकी विशेप रूप से प्रतिष्ठा ग्यारहवी शताव्दी के लगभग ही प्रारभ हुई।[2] डा० भाण्डारकर के मत से रामभक्ति की विशेष प्रतिष्ठा भले ही ग्यारहवीं शताव्दी मे हुई हो, परन्तु वीजरूप में यह आलवार भक्तो के स्तोत्रो में पाई जाती है। अत इसका उत्पत्तिकाल कम-से-कम सातवी शताब्दी माना जाना चाहिए। आलवारो की सख्या १२ है। इनमें कुलशेखर आलवार की रचनाओ में प्रौढ रामभक्ति का प्राचीनतम निरूपण सुरक्षित है। इन्ही आलवार वैष्णवो की परम्परा में सुविख्यात वैष्णवाचार्य श्री रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव

---

१ चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ।
२ दे० डा० भाण्डारकर वैष्णविज्म-शैविज्म।

हुआ। यह निर्विवाद है कि आलवार भक्तो ने भगवान् कृष्ण की ही प्रेमभक्ति के गीत गाये और इनमें 'अन्दाल' नाम की एक महिला भक्त मुख्य है, जो एक स्थान पर कहती है—'अब मैं पूर्ण यौवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसीको अपना पति नही बना सकती।' परन्तु कतिपय आलवार भक्तो मे राम के प्रति भी बडे ही कोमल और मर्मस्पर्शी भक्ति अकित है। इनमे कुलशेखर आलवार मुख्य है। श्री शठकोपाचार्य की 'सहस्र गीति' में भगवान राम के प्रति एक बडी ही मधुर भावमयी प्रार्थना है, जिसका भावार्थ यह है, हे प्रभो, आप का वियोग-कष्ट मन में इतना बढ गया है कि शरीर को लाह की तरह गलाकर पतला कर दिया है। हाय! आप इतने निर्दयी बन बैठे कि इसकी खबर भी नही लेते। आपने राक्षसो की पुरी लका को समूल नाश करके शरणागतरक्षक की प्रसिद्धि पाई है परन्तु आपकी इस निर्दयता को आज क्या करू?[1] फिर भी यह स्वीकार करना पडता है कि कृष्णावतार की उपासना रामावतार की अपेक्षा पुरानी और व्यापक है। आरम्भ में तो भगवान् श्री कृष्ण का दुष्टदलनकारी रूप ही मुख्य था, परन्तु आगे चलकर उनका मधुर रूप ही भक्तो के हृदय में विशेष रमा। भागवत मे भगवान् माधुर्य-विभूति की प्रधानता दी गई, ऐश्वर्य, शक्ति, शील इत्यादि लोकरक्षा द्वारा होनेवाली विभूतियो को गौण स्थान प्राप्त हुआ। महाभारत मे प्रतिष्ठित श्री कृष्ण के शील और सौन्दर्य पर मुग्ध भक्त उनके ज्वलन्त तेज और ऐश्वर्य से स्तभित और महत्त्व मे प्रभावित होकर थोडा दूर हटा हुआ भक्ति की दिव्य अनुभूति में लीन होता था। भागवत ने कृष्ण की वह मधुर मूर्ति सामने रखी, जो प्यार करने योग्य हुई। उस ढग का प्यार जिस ढग के प्यार की प्रेरणा से माता-पिता अपने बच्चे को दुलारते-पुचकारते है, उस ढग का प्यार जिस ढग के प्यार की उमग में प्रेमिका अपने प्रियतम का ललककर आलिगन करती है।[2] भागवत ने भगवान् को प्यार करने के लिए भक्तो के बीच खडा कर दिया।[3] इस सम्बन्ध मे प्रसगत कृष्णोपनिषद् की वे पक्तियाँ ध्यान मे रखने योग्य है।[4]

---

१ क्लेशादिय मनसि हन्त! विभाति चाग्नी
लाक्षादिवद् द्रुततनुर्वत! निर्दयोऽसि।
लकान्तु राक्षसपुरीं नितरां प्रणश्य
प्रख्यातमान किल भवान् किमु तेऽद्य कुर्याम्॥ —सहस्र गीति २, १, ४, ३

२ अजातपक्षा इव मातरं खगा· स्तन्यं यथा वत्सतरा· क्षुधार्ता·
प्रिय प्रियेव व्युषित विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्। —भागवत ६, ११, २६

३ आचार्य शुक्ल जी—'सूरदास' पृ० २७-२८।

४ श्री महाविष्णु सच्चिदानन्दलक्षण रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वागसुन्दर मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवु·। त होचुर्नोऽवद्यमवतारान्वै गण्यन्ते यूयं गोपिका भूत्वा मामालिगथ अन्ये येऽवतारास्तेहि गोपा न स्त्रीं च नो कुरु। अन्योन्यविग्रह धार्य तवांगस्पर्शनादिह। शश्वत्स्पर्शयितास्माक गृह्णीमोऽवतारान्वयम्। —कृष्णोपनिषद् १

भगवान् राम का सौम्य मनोहर रूप देखकर दण्डकारण्य के तपस्वी मुनियो ने आलिंगन करना चाहा, इसी पर भगवान् राम ने कहा कि कृष्णावतार में प्रकट होकर आप लोग गोपी रूप में प्रकट होगे तब आपको मेरा अग-सग मिलेगा। रामावतार में तो भक्तो ने भगवान् का चरणामृत ही पाया था, कृष्णावतार में भक्तो को भगवान् का अधरामृत पीने का सौभाग्य मिला। अस्तु,

रामभक्ति धारा में मर्यादा की मुख्यता शरणागति एकमात्र साधन

रामभक्ति की धारा में 'मर्यादा' की ही मुख्यता है तथा प्रपत्ति अथवा शरणागति ही मुख्य साधना है। यह शरणागति छ प्रकार की होती है —

(१) आनुकूल्यस्य सकल्प—भगवान के सदा अनुकूल बने रहने का सकल्प, भगवान् का अकिंचन दास तथा सेवक बने रहने का दृढ निश्चय।

(२) प्रातिकूल्यस्यवर्जनम्—भगवान् के प्रतिकूल भाव, भावना तथा चर्चा से सदा परागमुख रहना। भगवान् में उलटी मति करनेवाली जो कुछ भी वस्तु हो, उसका दृढतापूर्वक परित्याग।

(३) रक्षिष्यतीतिविश्वास—भगवान् सदा सदैव एव सर्वथैव अवश्यमेव हमारी रक्षा करेंगे ही—इसमें सुदृढ विश्वास।

(४) गोप्तृत्ववरणम्—भगवान् को ही, एकमात्र भगवान् को ही अनन्य भाव से अपने गोप्ता या रक्षक रूप में वरण करना।

(५) आत्मनिक्षेप आत्मसमर्पण—अपने-आपको तथा अपना सब कुछ समस्त कर्म, धर्म, आचरण आदि भगवान के चरणो में अर्पित कर देना।

(६) कार्पण्यम् —स्वामी की अपार अहैतुकी कृपा एव अपनी अपात्रता का स्मरण कर दैन्य भाव की स्फूर्ति—

राम सो बडो है कौन मोसो कौन छोटो।
राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो॥

अथवा

राम सुस्वामि कुसेवक मोसो।
निज दिसि देखि दयानिधि पोसो॥

तुलनीय—पद्मपुराण, उत्तरकाड, ६४-६५।

पुरा महर्षय सर्वे दण्डकारण्यवासिन।
दृष्ट्वा राम हरि तत्र भोक्तुमिच्छन् सुविग्रहम्॥
ते सर्व स्त्रीत्वमापन्ना समुदभूताश्च गोकुले।
हरि सप्राप्य कामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्॥

शरणागत भक्त के लिए भगवत्सेवा के अतिरिक्त और कुछ कार्य रह नही जाता। भगवान् की पूजा अर्चा में ही उसका सारा जीवन लगता है। इसके लिए वैष्णव शास्त्रो में समय के पाँच विभाग किये गये है जिन्हे 'पचकाल' कहते है। वे है—(१) अभिगमन—मनसा-वाचा-कर्मणा जप ध्यान अर्चन के द्वारा भगवान् के प्रति अभिमुख होना। (२) उपादान—पूजा के लिए पुष्प, अर्घ्य, नैवेद्य आदि सामग्री का सग्रह करना। (३) इज्या—आगम शास्त्रो के नियमो के अनुसार भगवान् की विधिवत् अर्चना। (४) अध्याय—वैष्णव ग्रन्थो का परिशीलन। (५) योग-भगवान के साथ किसी भाव से युक्त होकर उसी स्थिति में निरन्तर निवास। इस प्रकार वैष्णव उपासना के अनकानेक भेद-प्रभेद है और इसी के आधार पर वैष्णवो के प्रवान पाँच भेद माने जाते है—यती, एकाती, वैखानस, कर्म सात्वत और शिखी[1]।

वैष्णवों का पंचकाल

परन्तु यह प्रकरण प्रसग से वाहर जा रहा है। अभीष्ट इतना ही है कि रामभक्ति की साधना आरम्भ मे ही 'मर्यादा' को केन्द्र मे रखकर चली और दास्य भाव ही मुख्य भाव रहा और शरणागति ही एकमात्र साधन। राम-भक्ति की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए हम ऊपर कह आये है कि पहले-पहल आलवार भक्तो में ही इसका वीजरूप में दर्शन होता है। वस्तुत शतपथ ब्राह्मण के नारायण ही राम रूप मे अवतरित हुए और लक्ष्मी ही सीता रूप में।[2] यद्यपि गोस्वामी जी ने सीता जी का वर्णन करते हुए कहा है कि अगणित उमा, रमा, ब्रह्माणी इनसे ही निकली है और ये ही आदि शक्ति है, पर वस्तुत सीता जी महालक्ष्मी की अवतार है और श्री सम्प्रदाय में इसी प्रकार महाविष्णु और महालक्ष्मी की उपासना प्रचलित है। आलवारो ने नारायण, विष्णु, हरि, वासुदेव, राम आदि सम्बोधनो से अपने इष्ट का स्मरण किया है। कुलशेखर आलवार ने प्रार्थना करते हुए कहा है, यदि पति अपनी पतिव्रता स्त्री का सवके सामने तिरस्कार करे, तो भी वह उसका परित्याग नही कर सकती। इस प्रकार तुम चाहे कितना भी दुतकारो, मैं तुम्हारे उभय चरणो को छोडकर अन्यत्र कही जाने की वात भी नही सोच सकता। तुम चाहे मेरी ओर आँख उठाकर भी न देखो, परन्तु हे राम! मुझे तो केवल तुम्हारा ही और तुम्हारी कृपा का ही आलम्बन

---

१ जराख्य संहिता, पटल २२ श्लोक ६५-७५।

२ रा शक्तिरिति विख्याता मः शिवः परिकीर्तितः।
शिवशक्त्यात्मक ब्रह्म राम रामेति गीयते॥
रा शब्दो विश्व वचनो मश्चापीश्वर-वाचकः।
विश्वेषामीश्वरो यो हि तेन राम : प्रकीर्तित.।
रमते रमया सार्द्धं तेन रामं विदुर्बुधाः।
रमायां रमणस्थानं राम रामविदो विदु॥
रा चेति लक्ष्मी वचनो मश्चापीश्वरवाचक.।
लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिण.॥

है। मेरी अभिलाषा के एक मात्र विषय तुम्ही हो। जो तुम्हें चाहता है उसे त्रिभुवन की सम्पति से कोई मतलब नही।

हे भगवान्! मै धर्म, धन, कामोपभोग आदि की आशा नही रखता, पूर्वकर्मानुसार जो कुछ होता हो सो हो जाय, पर मेरी यही बार-बार प्रार्थना है कि जन्म-जन्मान्तरो में भी आपके चरणारविन्द युगल में मेरी निश्चल भक्ति बनी रहे'।

ऊपर के उद्धरणो से दो बातें स्पष्ट हैं कि (१) भगवान् राम की उपासना सातवी शताब्दी के आस-पास इस देश में आरम्भ हो गई थी तथा (२) आरम्भ से ही इसमें दास्य भाव के साथ-साथ दाम्पत्य भाव या मधुर भाव का सन्निवेश हो गया था।

दास्य और मधुर का सन्निवेश

और सच तो यह है कि किसी भी उपासना-पद्धति में किसी एक विभावशेष की प्रधानता रहती है, परन्तु अन्य भाव भी उसमें स्वत स्फूर्त होते रहते हैं। जहाँ दास्य है वहाँ वात्सल्य माधुर्य भी है, जहाँ माधुर्य है वहाँ भी दास्य, सख्य वात्सल्य है ही। ये भाव ऐसे घुले-मिले होते है कि इन्हें अलग अलग करना कठिन क्या असम्भव है, हाँ अलबत्ता किसी भी उपासना में किसी एक ही भाव की प्रधानता रहती है और शेष भाव उसी एक भाव में अन्तर्भुक्त अथवा अनुस्यूत होते हैं।

आगे चलकर रामभक्ति पर भागवत पुराण का बहुत गहरा और व्यापक प्रभाव पडा। वैष्णव पुराणो में पाद्म, वैष्णव, भागवत और ब्रह्मवैवर्त मुख्य हैं। विष्णु पुराण से अनेक उद्धरण स्वामी रामानुजाचार्य ने दिया है और एक प्रकार से विष्णु पुराण श्री सम्प्रदाय में आधार ग्रन्थ के रूप में मान्य है। परन्तु इन सभी पुराणो में श्रीमद्भागवत का प्रभाव बहुत ही व्यापक और हृदय-ग्राह्य हुआ। इसने रामावत और और कृष्णावत दोनो ही सम्प्रदायो पर अपनी अमिट छाप डाली। इसका मुख्य हेतु है—इसकी प्रेमाभक्ति का प्रतिपादन, वह भी अत्यन्त

भागवत पुराण का प्रभाव

---

१ प्रसिद्ध आलवार सत श्री शठकोप मुनि अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सहस्र-गीति' में आरम्भ में ही, लिखते हैं—

दीनात्विय भ्रमवशाहि दिवानिश चा-
प्यश्रुप्रवाह - भरितास्त्यसितायताक्षी।
लका प्रणश्य किल कण्टक - दुष्प्रभुत्व
प्राध्वसयोऽद्य परिपाहि कटाक्षमस्या ॥२.४ १०

यह बडी दीन है। यह भोलेपन में आकर दिन-रात अपने कजरीले नेत्रो से आंसू की धाराए बहा कर उनको नष्ट कर रही हैं। आपने लका को नष्ट कर के उसके दुष्ट राजा रावण को सपरिवार नष्ट कर दिया था। दयालो! इस विचारी के नेत्री की तो कृपा कर रक्षा कीजिए।

ऐसे भगवान् राम के प्रति विरह-निवेदन के कुछ और पद 'सहस्रगीति' में हैं।

ललित रसमयी शैली में। वल्लभ सम्प्रदाय, गौडीय सम्प्रदाय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय तो स्पष्टत: ही भागवत से प्रभावित एव अनुप्राणित है और यहाँ तक कि उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्-गीता की तरह प्रस्थानत्रयी के साथ ही साथ श्रीमद्भागवत भी इन सम्प्रदायो में उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में समादृत है। किसी ने यह अफवाह उडा दी कि भागवत वोपदेव की रचना है और यह वात अफवाह की तरह फैल भी गई, परन्तु वाद में स्वस्थ शान्त अनाविल चित्त से अनुसधान करने पर पता चला कि यह स्वय भगवान् व्यास की रचना है और 'समाधि भाषा' में लिखी गई है[1]। इसमें नारायण धर्म को ही गायत्री अथवा ब्रह्मविद्या माना गया है। इसी कारण इसे विविध पुराणो ने गायत्री का भाष्य माना है।[2] भारतीय जीवन एव साधनाओ पर श्रीमद्भावगत का प्रभाव वहुत ही व्यापक, गभीर एव चिरस्थायी है। यहाँ तक कि रामावत सम्प्रदाय भी उससे प्रभावित हुए विना न रहा और यहाँ भी मर्यादा के साथ-साथ लीला-विलास का प्रवेश हुआ और तदनुसार अनेक ऐसे सहिता ग्रन्थो का निर्माण हुआ जिनमें भगवान् राम की सहस्त्र-सहस्त्र सखियो के साथ नाना प्रकार के क्रीडा-विहार के वडे ही भव्य एव मनोहारी वर्णन अत्यन्त काव्यमयी भाषा में मिलते है।

(१) 'शिवसंहिता'—एक विहंगम दृष्टि

ऐश्वर्य और माधुर्य

ऐश्वर्य के श्रवण के वाद ही माधुर्य का स्फुरण होता है। भक्त के लिए पहले भगवद् ऐश्वर्य श्रवण करना चाहिए और जव ईश्वर भाव का अनुभव हो जाय तव माधुर्य में प्रवेश सभव है। ऐश्वर्य ज्ञान से भक्ति होगी, पर पूरी भक्ति नही होगी जव तक माधुर्य भाव न हो। माधुर्य ज्ञान के विना पूरी भक्ति हो नही सकती। अगस्त्य ज्ञान-भक्ति के अधिकारी है, परन्तु हनुमान केवल भक्ति के अधिकारी है और इनका माधुर्य चरित के ऊपर ही अवलव है। अगस्त्य में ऐश्वर्य माधुर्य दोनो है, पर हनुमान में केवल माधुर्य।

माधुर्य अधिकार

रामायण कथा सुनते-सुनते चित्त निर्मल हो जाने पर ही गुप्त लीला में अधिकार होता है। पूर्ण रामायण के वक्ता केवल चतुर्भुज ब्रह्मा है, शेष उच्छिष्ट है। सब नाम राम-नाम में निहित है।

भाव प्रकाशन

सव देश, सव काल में जितने जीवात्मा है, वे सव भगवान् के ही अनुजीवी है। पुरुष एक मात्र प्रभु रामचन्द्र है, शेष सव स्त्री है। इसी कारण एक ही काल में एक प्रभु ही सवमें रमण कर सकते है। भगवान में रमण करने की जितनी शक्ति, सामर्थ्य है, उतना जगत्रय में धारण करने की शक्ति ही नही है। एक भगवान् ही सभी स्त्रियो के पति है, भर्ता है। जार-वुद्धि से सेवन करने

---

१ वेदा. श्रीकृष्ण वाक्यानि व्याससूत्राणि चैवहि।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तत् चतुष्टयम्॥ —श्री वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत मार्तण्ड

२ अर्थोऽय ब्रह्मसूत्राणा भारतार्थविनिर्णय.।
गायत्रीभाष्य रूपोऽसौ वेदार्थपरिवृंहित.॥ —गरुड पुराण

पर भी प्रभु की प्रीति प्राप्त होती है। भागवान् का सौन्दर्य माधुर्य, यौवनारम्भ, सौगन्ध, सुकुमारता, लावण्य, परम कान्ति, सौशील्य, बल, सौहार्द, सौलभ्य, परम वात्सल्य, स्वभावत सदा प्रसन्न रहना ये सब गुण ही भक्तो के चित्त को हरनेवाले है। विमुग्ध बालाओ के लिए तो उनका नित्य किशोर, सर्वरसभोक्ता, रसिकेन्द्र युवराज नित्य ही पन्द्रह वर्ष की अवस्था वाला रूप स्फुरित रहता है। भगवान् के चरणो की सेवा के अतिरिक्त शेष सब विपत्ति है। एक मात्र भगवान् श्री राम ही भोक्ता है, शेष सब उनका भोग्य है। यद्यपि श्री भगवान् राम आनन्द स्वरूप है, स्वय ईश्वर है और सदा अपने ही आनन्द में मग्न रहते है, फिर भी उनके जो परम अनुरागी है, वे अनुराग युक्त हो कर उनकी आराधना करते और भोग अर्पण करते हैं, उसे प्रभु श्री राम परम आह्लाद से ग्रहण करते हैं।

भगवान् राम और भगवती सीता दोनो रस के एक मूर्तिमान् विग्रह है—लीला के लिए ही एक से दो हुए है।

क्रिया-शक्ति, ज्ञान-शक्ति तथा उपासना-शक्ति वेद की ये तीन प्रमात्मिका शक्तियाँ हैं। इनमें कैकयी क्रिया-शक्ति, सुमित्रा उपासना-शक्ति है और कौसल्या ज्ञान-शक्ति है। इन तीनो शक्तियो से युक्त वेद स्वरूप चक्रवर्ती महाराज दशरथ जी है।

स्वरूप प्रकाशन

क्रिया में स्वभावत कुछ कलह, उपासना में प्रीति और ज्ञान में नित्य निर्हेतुक निर्मल आत्मसुख मिलता है। कैकेयी रूपी क्रिया से धर्म का जन्म होता है, भरत जी धर्मस्वरूप है। भक्त में रत होने के कारण तथा विश्व का भरण-पोषण करने के कारण इनका नाम भरत हुआ। सुमित्रा रूपी उपासना शक्ति से लक्ष्मण जी सख्य भाव के आचार्य हुए। भगवान् श्री राम कौसल्या रूपी ज्ञान से कल्याण स्वरूप तथा विश्व को आनन्द देनेवाले हुए। शत्रुघ्न जी शत्रुओ को विनाश करनेवाले तथा अर्थ के अध्यक्ष हैं। शस्त्र और शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हैं।

शत्रुघ्न जी का गौर शरीर तडित सुवर्ण वर्ण का है और उन्हें कुसुम रग का वस्त्र विशेष प्रिय है। अरुण कमल दल के समान उनके नेत्र हैं और उनके शब्द दुदुभी की तरह है। लक्ष्मण जी कर्पुर के पुट के समान गौराग, अरुण कमल समान नेत्र और नीलाम्वर को धारण करते है। श्री भरत लालजी नीलरत्न के समान श्याम, पीताम्वर धारण करने वाले सबके मन को हरने वाले हैं। वे श्री भगवान राम के गृह, आराम, वाद्यादिको के राजा और भगवान् की सब क्रीडाओ में महाप्रवीण हैं।

कोटिकदर्पलावण्य सीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्र जी सर्वलोक में रमण करनेवाले एव रमाने वाले, मोक्ष के भर्ता है। आप ही शृगार रस के देवता है और सब कामिनियो में अतिशय कामोन्माद बढानेवाले आप ही हैं।

जगत के प्राणभूत श्रीराम जी की भी प्राणेश्वरी श्री जनकनन्दिनी जी है। आप पतिव्रता शिरोमणि है।

श्रीराम जी की सेवा करनेवालो के दो भेद है—पुरुषवर्ग, नारीवर्ग। सभी दिव्य है

एक रस एक आकारवाले हैं। अपने गुणो मे श्री सीताराम जी का आराधना करना ही इन मत्रो का साधन है। बाहर के कार्य मे पुरुपवर्ग सदा स्थित रहते है और भीतर आनन्दवर्धक विहारादि कार्यो में देवीगण सदा सलग्न हैं। भगवान राम रस स्वरूप है—रसो वै स ।

राम सीता के विना और सीता राम के विना क्षणमात्र भी नही रह सकते —'रामो न सीतया शून्य सीता रामं विना न हि' ।

शृगार रस किसी फल का साधन स्वरूप नही है। यह नित्य सिद्ध स्वरूप है। दम्पति मिल गये और मैथुनोद्भूत आनन्द को प्राप्त हुए, यही शृगार है, ऐसा मानना महा भ्रान्ति है।

शृंगार साधना का स्वरूप प्रकाश

जिस शृगार रस को बडे-बड़े सिद्ध शिव, सनकादिक उपासना कर आनन्द समुद्र, में निमग्न रहते है, वह शृगार दिव्य और नित्य सिद्ध है। प्रिया प्रियतम श्री सीताराम जी नित्य इच्छा रूप है नित्य नाना प्रकार के केलिभेदो से शृगार रस के सुखानन्द प्रवाह के तरग बढाया करते हैं। यह सच्चिदानन्द आत्मास्वरूप शृगार रस का अवतार शृगार रस के हर्ष और उत्कर्ष के बढाने में स्त्री ही प्रधान है और यह आनन्द-भोग्य भी हम सबको स्त्री ही रूप से है।

सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होते हुए भी भगवान् राम प्रेमपिपासा से व्याकुल रहते हैं और नाना प्रकार की क्रीडाओ से अपने भक्तो में प्रीति का सम्पादन करते रहते हैं। राम के परम भक्त बाह्य कार्य में पुरुष है, पर आभ्यन्तर कार्य मे सभी देवी है। वास्तव में एक रस ही खडित होकर सखा सखी रूप में प्रस्फुटित हो गया है। अभ्यन्तर कार्य में प्रेरणा करनेवाली प्रेरिणी है जानकी। स्वामिनी जानकी है, इसलिए सभी उनकी इच्छा का अनुसरण करते हैं, स्वय रामचन्द्र भी इनकी इच्छा के वशवर्ती हैं। राम जानकी में सामरस्य है। स्वरूप एक ही हो तो रस न हो। इनका स्वरूप ही शृगार है। वहाँ भोक्ता भोग्य नही—एक ही लीला में दो हो जाता है—लीला में और लीला के रसास्वादन के लिए। यह अद्वैत में द्वैत है— एक में ही दो का या एक ही का दो में खेल है। एक आत्मा दो शरीर।

"रमन्ते रसिका यस्मिन् दिव्यानेकगुणाश्रये स्वय यद्रमते तेपु रामस्तेन प्रयुज्यते ॥"

रसिक भक्त दिव्य अनेक गुणाश्रय रूप श्री राम जी मे रमण करते है और उन भक्तो में श्रीराम जी भी स्वयं रमते है। इसी हेतु 'राम' कहे जाते है। जैसे समुद्र जलमय और मधु मिष्ठ-

राम शब्द का अर्थ

मय है, बाहर-भीतर रसमय हैं—वैसे ही भगवान् राम रसमय रसस्वरूप है। स्वय रस ही रम है स्त्रियो को कौन कहे, अपने रूपौदार्य के कारण पुरुषो को भी यह अभिलाषा होती है कि हम स्त्री होकर इनके साथ आलिगनादि सुख को प्राप्त करें।[1]

---

१ 'पुंसामपि रामं पश्यतां स्त्रीभूत्वाऽहमनुभवे राममित्यभिलाषो भवति।

'राम' शब्द ही रस राजत्व का बोधक है। शृंगाररस विहार का पर्यवसान श्री राम में ही है।

श्री राम सीता का नित्य का रासस्थल अयोध्या है। यही भुक्ति क्षेत्र भी है, और मुक्ति क्षेत्र भी है। द्वारका, मथुरा आदि अयोध्या के ही अशभूत हैं। अशोक बाटिका में श्री सीताराम जी नित्य रास लीला करते हैं। यह अशोक वन ही रस रूप है। अयोध्या, नन्दिनी, सत्या, साकेत, कोसला, राजधानी, ब्रह्मपुर, अपराजिता इत्यादि नाम अयोध्या जी के हैं। पहले दिव्य धाम का ध्यान फिर शृंगार रस की सर्वस्व मूर्ति तथा एकमात्र भोक्ता भगवान् राम का ध्यान करे और पुन रासरचना करे।

पारमार्थिक तत्व

(२) लोमश—सहिता की दृष्टि में

इस शृंगार राज्य में प्रवेश पाने के लिए श्री विदेहराज कुमारी जी की अतरग सखियो की कृपापूर्ण दृष्टि अनिवार्य हैं। यहाँ किसी साधना या अनुष्ठान स प्रवेश ही नही हो सकता। अस्तु इन अतरग सखियो में मुख्य हैं—चन्द्रकला, विमला, सुभगा, मदनकला, चारूशीला, हेमा, क्षेमा, पद्मगधा, लक्ष्मणा, श्यामला, हसी, सुगमा, वशध्वजा, चित्रलेखा, तेजोरूपा और इन्दिरावली। ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी हैं।

शृंगार राज्य में प्रवेश

इन सोलहो में चन्द्रकला, चारुशीला, मदनकला और सुभगा मुख्य हैं और इनमें चन्द्रकला जी सर्वश्रेष्ठ हैं। वाह्य कार्यो में जैसे श्री भरतलाल जी का स्वतत्र सर्वाधिकार है, अतरग लीलाओं में उसी प्रकार चन्द्रकला जी प्रधानता में सर्वश्रेष्ठ हैं। जिस प्रकार ललिता जी राधा-कृष्ण का मिलन सघटन करती है, उसी प्रकार चन्द्रकला सीता-राम का मिलन सघटन करती हैं और इनका यहाँ ठीक वही स्थान है जो ललिता का वहाँ है।

चार मुख्य सखियाँ

लोमश सहिता में चन्द्रकला जी का ही प्रसग मुख्य है और फिर श्री अयोध्या जी के प्रमोद वन में रासलीला का भव्य वर्णन है। श्री चन्द्रकला जी रासरस की आचार्या हैं और उन्ही की कृपा से साधक अपने सिद्ध देह से इस लीला में प्रवेश पाता है। इस सहिता क अ० २० श्लोक

क्रीडा सम्पद्यते यैस्तु गुणं नैत्रगुणं.शुभै
ज्ञेयोऽस्मिन्सतत 'राम' इत्याहुर्मुनयोमला ।
यत्रास रामो रसरगमूर्त्ती रास सनाम्नोप्यथ केलिभेद
रामाभिरामो रमणीश रामो रा शब्द रामो रसराजराम ॥

'राम' शब्द ही रसराजत्व का बोधक है। शृंगार रस विहार का पर्यवसान श्री राम में ही है।

१८६वें से १८९ तक रासनृत्य पर संचालित संगीत का वडा ही मनोहारी विन्यास हुआ है। यहा रास का प्रकरण ज्यो-का-त्यो श्रीमद्‌भागवत के रास पचाध्यायी के आधार पर है और स्पष्टत उसी से प्रभावित है। यहाँ भी इस महारास के समय गौ-मृग-पशु-पक्षी-मनुष्य गधर्व, देवादिक सभी के सभी अपनी सुधवुध खोकर अपने-आप में न रहे, अचेत हो गये और इनके हृदय को महारास ने अपनी ओर खीच लिया। प्रिया-प्रियतम के दिव्य मिलन का एक दृश्य वडा ही मनोहारी है।[1]

(३) श्री हनुमत्संहिता—एक विहंगम दृष्टि

श्री हनुमत्सहिता में 'प्रेमामृत महोत्सव' का वडा ही भव्य वर्णन है। अगस्त्य और हनुमान का सवाद है। जानकी-प्रेम-लपट रामचन्द्र अपनी प्राणप्रिया तथा असख्य रूपयौवन-शालिनी सखियो के साथ सरयूतट पधारते हैं और प्रेमामृतरसावेश मे हास्य, लास्य, कटाक्ष तथा मनोहर चाटुकारो से परस्पर प्रसन्न करते हुए कदव वन में माध्वीक रस का पान करते हैं और फिर माधवी कुज में पधारते है, तत्पश्चात् हरिचन्दन वन मे और तव अशोकवन मे। यह अशोकवन पुरुपो को नही दिखाई पड सकता, केवल स्त्री भावापन्न साधको को ही उपलब्ध होता है।[2] इस प्रकार कोटिकदर्पलावण्य भगवान् रामचन्द्र हास्य, लास्य, कटाक्ष से जानकी का मोदन और मार्दन करते हुए एक वन में से दूसरे वन में विचरण कर रहे हैं। ऐसी कमनीय किशोर मूर्त्ति को देखकर उन सखियो के मन मे रमण की अभिलापा जगती है और भगवान् उन्हें नाना प्रकार से तृप्त करते हैं।[3] जैसे नक्षत्रो से घिरा चन्द्रमा शोभा पाता है, वैसे ही सखियो से घिरे रामचन्द्र। नाना प्रकार के लास्य नृत्यादि से सखियो के चित्त को आह्लादादि प्रदान करते हुए भगवान् उनके अधरामृत का पान

---

१ इत्युक्त्वा त तदा देवी सीता प्रोत्फुल्ललोचना।
प्रियमालिंग्य वाहुभ्यां चुचुम्वाधरमाधुरीम्॥
हृदयं हृदयेन मुखेन मुखं करमञ्जकरेण सरोजनिभम्।
उरसा प्रिया वक्षसि संगमतो सुखमापमहोत्सवजन्यमता॥

—अ० २२, श्लोक १३६

२ पुंसामगोचरं स्थान केवलं प्रेमदायकम्।
नारीभावसमायुक्तास्तेषा दृश्यं भवेद् ध्रुवं॥

—ह० सं० २-४३

३ आलोलपाणिचरणा स्मित दृग्विभगी।
विभ्रच्चलद्‌वलयककणनूपुरादीन्॥
आश्लिष्टकंठकुचको जनकात्मजाया:
रामो रराज भवनाटक नाट्यवेश.॥ ह० सं० ४-१७
सरसनिकषे प्रेमजलै: परिपूर्णं स्वर्णग्या:।
विकसिताननकमलं पिवति यत्र मधुव्रतो राम:॥ ४-५१

'राम' शब्द ही रस राजत्व का बोधक है। शृगाररस विहार का पर्यवसान श्री राम में ही है।

श्री राम सीता का नित्य का रासस्थल अयोध्या है। यही भुक्ति क्षेत्र भी है, और मुक्ति क्षेत्र भी है। द्वारका, मथुरा आदि अयोध्या के ही अशभूत हैं। अशोक वाटिका में श्री सीताराम जी नित्य रास लीला करते हैं। यह अशोक वन ही रस रूप है। अयोध्या, नन्दिनी, सत्या, साकेत, कोसला, राजधानी, ब्रह्मपुर, अपराजिता इत्यादि नाम अयोध्या जी के हैं। पहले दिव्य धाम का ध्यान फिर शृगार रस की सर्वस्व मूर्ति तथा एकमात्र भोक्ता भगवान् राम का ध्यान करे और पुन रासरचना करे।

पारमार्थिक तत्त्व

(२) लोमश—संहिता की दृष्टि में

इस शृगार राज्य में प्रवेश पाने के लिए श्री विदेहराज कुमारी जी की अतरग सखियो की कृपापूर्ण दृष्टि अनिवार्य है। यहाँ किसी साधना या अनुष्ठान स प्रवेश ही नही हो सकता। अस्तु इन अतरग सखियो में मुख्य हैं—चन्द्रकला, विमला, सुभगा, मदनकला, चारूशीला, हेमा, क्षेमा, पद्मगधा, लक्ष्मणा, श्यामला, हसी, सुगमा, वशध्वजा, चित्रलेखा, तेजोरूपा और इन्दिरावली। ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी हैं।

शृंगार राज्य में प्रवेश

इन सोलहो में चन्द्रकला, चारुशीला, मदनकला और सुभगा मुख्य हैं और इनमें चन्द्रकला जी सर्वश्रेष्ठ हैं। वाह्य कार्यों में जैसे श्री भरतलाल जी का स्वतत्र सर्वाधिकार है, अतरग लीलाओ में उसी प्रकार चन्द्रकला जी प्रधानता में सर्वश्रेष्ठ हैं। जिस प्रकार ललिता जी राधा-कृष्ण का मिलन सघटन करती है, उसी प्रकार चन्द्रकला सीता-राम का मिलन सघटन करती है और इनका यहाँ ठीक वही स्थान है जो ललिता का वहाँ है।

चार मुख्य सखियाँ

लोमश सहिता में चन्द्रकला जी का ही प्रसग मुख्य है और फिर श्री अयोध्या जी के प्रमोद वन में रासलीला का भव्य वर्णन है। श्री चन्द्रकला जी रासरस की आचार्या है और उन्ही की कृपा से साधक अपने सिद्ध देह से इस लीला में प्रवेश पाता है। इस सहिता क अ० २० श्लोक

क्रीडा सम्पद्यते यैस्तु गुणै नैत्रगुणै.शुभै
ज्ञेयोऽस्मिन्सतत 'राम' इत्याहुर्मुनयोमला ।
यत्रास रामो रसरगमूर्त्ती रास सनाम्नोप्यथ केलिभेद'
रामाभिरामो रमणीश रामो रा शब्द रामो रसराजराम. ॥

'राम' शब्द ही रसराजत्व का बोधक है। शृगार रस विहार का पर्यवसान श्री राम में ही है।

१८६वें से १८६ तक रासनृत्य पर सचालित सगीत का वडा ही मनोहारी विन्यास हुआ है। यहा रास का प्रकरण ज्यो-का-त्यो श्रीमद्भागवत के रास पचाध्यायी के आवार पर है और स्पष्टत उसी से प्रभावित है। यहाँ भी इस महारास के समय गौ-मृग-पशु-पक्षी-मनुष्य गधर्व, देवादिक सभी के सभी अपनी सुधवुध खोकर अपने-आप में न रहे, अचेत हो गये और इनके हृदय को महारास ने अपनी ओर खीच लिया। प्रिया-प्रियतम के दिव्य मिलन का एक दृश्य वडा ही मनोहारी है।[1]

(३) श्री हनुमत्संहिता—एक विहंगम दृष्टि

श्री हनुमत्सहिता में 'प्रेमामृत महोत्सव' का वडा ही भव्य वर्णन है। अगस्त्य और हनुमान का सवाद है। जानकी-प्रेम-लपट रामचन्द्र अपनी प्राणप्रिया तथा असख्य रूपयौवन-शालिनी सखियो के साथ सरयूतट पधारते हैं और प्रेमामृतरसावेश मे हास्य, लास्य, कटाक्ष तथा मनोहर चाटुकारो से परस्पर प्रसन्न करते हुए कदव वन मे माध्वीक रस का पान करते हैं और फिर माधवी कुज में पधारते है, तत्पश्चात् हरिचन्दन वन में और तव अशोकवन में। यह अशोकवन पुरुषो को नही दिखाई पड सकता, केवल स्त्री भावापन्न साधको को ही उपलब्ध होता है।[2] इस प्रकार कोटिकदर्पलावण्य भगवान् रामचन्द्र हास्य, लास्य, कटाक्ष से जानकी का मोदन और मादन करते हुए एक वन में से दूसरे वन में विचरण कर रहे हैं। ऐसी कमनीय किशोर मूर्त्ति को देखकर उन सखियो के मन में रमण की अभिलापा जगती है और भगवान् उन्हें नाना प्रकार से तृप्त करते हैं।[3] जैसे नक्षत्रो से घिरा चन्द्रमा शोभा पाता है, वैसे ही सखियो से घिरे रामचन्द्र। नाना प्रकार के लास्य नृत्यादि से सखियो के चित्त को आह्लादादि प्रदान करते हुए भगवान् उनके अधरामृत का पान

---

१ इत्युक्त्वा त तदा देवी सीता प्रोत्फुल्ललोचना।
प्रियमालिंग्य वाहुभ्या चुचुम्वाधरमाधुरीम्॥
हृदयं हृदयेन मुखेन मुखं करमब्जकरेण सरोजनिभम्।
उरसा प्रिया वक्षसि संगमतो सुखमापमहोत्सवजन्यमता॥
—अ० २२, श्लोक १३६

२ पुंसामगोचरं स्थान केवल प्रेमदायकम्।
नारीभावसमायुक्तास्तेषां दृश्य भवेद् ध्रुवं॥
—हृ० स० २-४३

३ आलोलपाणिचरणा स्मित दृग्विभगो।
विभ्रच्चलद्वलयकंकणनूपुरादीन्॥
आश्लिष्टकठकुचको जनकात्मजाया.
रामो रराज भवनाटक नाट्यवेशः॥ हृ० सं० ४-१७
सरसनिकषे प्रेमजले परिपूर्ण स्वर्णग्या।
विकसिताननकमल पिवति यत्र मधुव्रतो राम :॥ ४-५१

करते है। इसके पश्चात् जल-क्रीडा होती है। इसके अनन्तर भगवान राम सीता के साथ एक परम दिव्य परम मनोहर कुज मण्डप में विराजते है। चारो ओर षोडस कमल दल की भाँति वेदी है जिसपर सोलह मुख्य सखियाँ है—उनके नाम है—काचनी, चित्रा, चित्ररेखा, सुधामुखी, कमला, चन्द्रकला, चन्द्रानना, वरा, माधुर्यशालिनी, विशदाक्षी, सुदशका, उज्जला, हसिनी, कर्पूरागी, वरारोहा, प्रशसी। (५-१७) ये तो मुख्य सखियाँ है, परन्तु उस पद्म के उपदलो पर शोभना, शुभदा, शाता, सतोषा, सुखदा, चारुस्मिता, चारुरूपा, चारुलोचना, हैमा, क्षेमा, प्रेमदात्री, माधवी, कामदा, मोहिनी, लीला आदि सखिया विराजमान है और बीच में कर्णिकार पर भगवान् राम और भगवती सीता। सभी सखियो के हाथ में एक-एक वाद्य यत्र है। किसी के हाथ में वीणा है तो किसी के हाथ में वेणु, किसी के हाथ में मृदग तो किसी के हाथ में मजीर। भगवान् का यह नित्य दिव्य विहार देखकर सभी मुग्ध है, आनन्दमग्न है। इस प्रकार साकेत में परम रास सम्पन्न हुआ। यह चिर गोपनीय रहस्य है।[1] रहस्य लक्ष्य करने की बात यह है कि यहाँ सीता अपने ही शरीर से १०८ सखियो की सृष्टि करती है और इनके साथ भगवान् राम कृष्ण की भाति उतने ही उतने रूप धारण कर लेते है।

अगस्त्य जी ने पुन हनुमान जी से पूछा कि इस भाव में प्रवेश कैसे हो। इसपर हनुमान जी कहते है कि श्री राम से प्रीति सम्बन्ध होने पर ही इस भाव की प्राप्ति होती है और यह सम्बन्ध कोई गुरु ही करा सकता है। इसके अनन्तर शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव के भेदोपभेद तथा इनके विभावादि का सविशेष विवरण है। श्री हनुमान जी ने कहा है कि यह सम्बन्ध ही सहजानन्द प्रदान करनेवाला है और इसे प्राप्त कर ही जीव की भगवान् में अचला अव्यभिचारिणी भक्ति होती है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य की वही व्याख्या है जो परम्परामुक्त है।[2] इस ससार मे देखा जाता है कि सम्बन्ध से कितनी प्रगल्भता आ जाती है तो भगवान्

अर्थ-पचक

---

१ गोपनीय गोपनीय गोपनीय च सर्वदा। ७-५

२ श्रीमद्रघुपति साक्षात् ब्रह्म सर्वपरात्पर।
ज्ञात्वा भजति यो नित्य सर्व शान्तरसाश्रय ॥
श्री राम करुणासिंधु भक्तसरक्षण परे।
बुद्ध्वा भजति यो नित्य स वै दास्य रसाश्रय ॥
श्री रघुनन्दन मित्र प्रेमपात्र विबुध्य च -
स्नेहेन रमते नित्य स हि सख्य रसाश्रय ॥
बाल सौन्दर्यसहित कोमलाग प्रमोदद।
सर्वदा जीवनं मत्वा स वै वात्सल्यसज्ञक ॥
मधुर मनोहर राम पति सबन्धपूर्वकम्।
ज्ञात्वा सदैव भजते सा शृंगाररसाश्रया ॥ —६. २३-२७

भुशुण्डी-रामायणका एक पृष्ठ

से जिनका संबंध हो गया उनका फिर कहना क्या ? स्थूल, कारण, सूक्ष्म इन तीनो देहो के विनाश हो जाने पर गुरुमुख से सबध की योग्यता प्राप्त होती है। सबसे पहले अपनी (दिव्य) वास्तविक जननी और जनक का पता लगता है, आचार्य का पता लगता है, तब 'सेवा' मिलती है। तब इन पाच रसो मे जिस रस का अधिकार होता है उसके अनुरूप दिव्य नाम तथा दिव्यस्वरूप मिलता है यही 'अर्थ पचक' है।

गुरु में ईश्वर बुद्धि रखते हुए 'अमायया' तथा 'अनुवृत्या' उसका सेवन करे। भगवान् की कृपा का अवलम्बन लेकर अपना सर्वस्व उन्ही के चरणो मे समर्पित कर प्रारब्धभोग समाप्त कर

उज्ज्वल भक्ति रस

साधक सूर्यमण्डल को भेद कर 'विरजा' में स्नान करता है। यहा वह वासना सहित अपने दोनो देहो का परित्याग कर 'विरज' हो जाता है। अत्यन्त प्रबल वेग से वह 'विरजा' पार साकेत में प्रवेश करता है और राजमार्ग से सप्तावरणसयुत, नानारत्नमय दिव्य श्री रामभवन में प्रवेश करता है। अपनी भावना के अनुसार वह प्रभु श्री राम को प्राप्त कर समस्त आनन्द को प्राप्त होता है, स्वय परानन्दमय हो जाता है। इस सहिता के अन्तिम अध्याय मे रस का प्रकरण है और उसका सागोपाग विन्यास है। इसमें उज्ज्वल भक्ति रस का विवेचन करते हुए लिखा है कि माधुर्यसिंधु कमनीय किशोरमूर्ति श्री रामचन्द्र ही विषयालम्बन है, प्रेयसीगण आश्रयालम्बन हैं, सौशील्य, माधुर्य, कमनीय किशोरत्व, प्रियवचनत्व, भूषणालकार, वसन्त, कोकिलाकूजन, उपवन आदि उद्दीपन विभाव है, कटाक्ष, स्मित, भ्रूविक्षेप, आदि अनुभाव हैं, रोमाच, वैवर्ण्य, प्रस्वेद आदि अष्ट सात्विक भाव हैं और आलस्य, निर्वेद आदि व्यभिचारी भाव है और प्रियता रति स्थायी भाव है।

ऊपर हमने 'शिव सहिता' 'लोमश सहिता' एव 'हनुमत्संहिता' का सक्षिप्त उल्लेख इस लिए किया है कि हम यह अनुभव करें कि रामभक्ति में शृगारोपासना हाल की नयी उद्भावना-नही है। अपितु इसका आरम्भ बहुत पहले हो चुका था। इन सहिताओ के निर्माण का काल-निर्णय वस्तुत बहुत ही जटिल समस्या है। परन्तु ये उतनी 'आधुनिक' नही है जितनी समझी जाती है। और तो और, स्वय वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाड में अशोकवन में राम सीता के विहार का वर्णन मिलता है।[1] वस्तुत ईसवी सन् की आठवी शताब्दी से ही राम और सीता के पूर्वानुराग का चित्रण होने लगा[2] और महावीर चरित, जानकीहरण, प्रसन्न राघव तथा हनुमन्नाटक में राम सीता के विलास का बहुत ही व्यापक एव सागोपाग वर्णन मिलता है, यहाँ तक कि कुछ लोगो की दृष्टि में अश्लीलता की सीमा तक पहुच गया है।

इन सहिताओ तथा चरितो के अतिरिक्त प्राचीन ग्रन्थो में 'सत्योपाख्यान' एव 'बृहद् कोशल खण्ड' आदि कुछ ऐसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है, जिनमे भगवान् राम और भगवती सीता के नाना

---

१ दे० वाल्मीकि रामायण, सर्ग ४२।

२ दे० रामकथा पृ० ४८३, अनु० ६१९।

विध लीला विलास का बडा ही भव्य वर्णन है। सत्योपाख्यान में[1] भगवान् का सीता के साथ वन विहार तथा जलक्रीडा का बडा ही रसीला वर्णन है तथा होलिका में राम और सीता का प्रणय विहार एव पुन सीता की मानलीला (क्रोध) का चित्रण है। 'आनन्द रामायण' के विलास काण्ड में राम-सीता की जलक्रीडा एव वन-विहार का वर्णन है।[2] इसी खण्ड में राम द्वारा सोलह हजार कामपीडिता देवियो को गोपी रूप में अग-सग का आश्वासन मिलता है,[3] तथा एक दासी को पीकदान के अभाव में अपना हाथ बढाने पर तथा ताबूल रस पीने पर अगले जन्म में राधा बनकर अधरामृत पान का आश्वासन मिलता है।[4] इसी प्रकार 'महारामायण' में राम की रासक्रीडाओ का बडा ही मधुर मनोहारी वर्णन है।[5] कामिल बुल्के ने 'चित्रकूट माहात्म्य'[6] शीर्षक एक हस्त-लिखित पुस्तक की चर्चा की है, जिसमें ऐसा वर्णन मिलता है कि चित्रकूट के सातानक वन में एक सरोवर है, जिसके मध्य में एक रम्य मण्डप बना हुआ है, जहाँ एक वेदिका पर रामसीता और उनकी सखियो के साथ नित्य रासक्रीडा करते है।

श्रृगारी रामभक्ति का आधार ग्रन्थ 'वृहत्कौशल खण्ड' अभी-अभी दो खडो में प्रकाशित हुआ है परन्तु है 'प्राइवेट सर्क्युलेशन' के लिए। श्री हनुमत् निवास अयोध्या के महात्मा रामकिशोर

श्रृगारी रामभक्ति का आधार ग्रथ: वृहत् कौशल खण्ड

शरण जी महाराज की कृपा से मुझे इसकी जो प्रति प्राप्ति हुई है, उसके अध्ययन से रामभक्ति में मधुरोपासना के अनेक परम गोपनीय रहस्यो का उद्घाटन होता है। इसमें राम लीला पूर्णत कृष्णलीला प्रतीत होती है। अपने विवाह के पूर्व राम अपने सखाओ के साथ, पुन गोपकन्याओ के साथ, फिर देव कन्याओं के साथ, फिर राज-कन्याओ के साथ रासलीला करते हैं। इसके अनन्तर देव कन्याओ के साथ परिहास एव उपालभ का विषय है। इसके पश्चात् श्री मैथिली जी के पूर्वराग एव विप्रलभ का प्रकरण है और इसी के पश्चात् है विवाह रहस्य-प्रकरण। विवाहोत्तर देवकन्या, गधर्वकन्या, राजकन्या, साध्यसुता, गुह्यकदेव कन्या, यक्षकन्या, नागकन्या के साथ रास का वर्णन है। यह समस्त ग्रन्थ जो ३०७२ श्लोको मे समाप्त होता है पूरा-का-पूरा रास का ही प्रसग है और रासविलास के नाना प्रकरणो का इतना मनोमुग्धकारी वर्णन है कि काव्य और रहस्य का इतना सुन्दर सम्मिश्रण एव मणिकांचन योग अन्यत्र दुर्लभ है। अवश्य ही रामावत भक्ति-धारा की श्रृगारी शाखा पर श्री हनुमत्सहिता तथा वृहद्कौशलखण्ड का ही विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है और

---

१ दे० सत्योपाख्यान उत्तरार्ध, अध्याय २०, २७।

२ दे० सर्ग २, ६।

३ तु० कृष्णोपनिषद्, पद्मपुराण।

४ दे० आनन्द रामायण ७, १९, २९।

५ दे० महारामायण अ० ५२।

६ दे० रामकथा पृष्ठ १७१।

इस सम्प्रदाय मे इन ग्रन्थो का वेदवत् आदर होता है तथा अष्टयाम मे इनका विधिवत् पाठ होता है।

अभिप्राय यह है कि ग्यारहवी शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक साधना और साहित्य के क्षेत्र मे माधुर्य भक्ति का ज्वार उमड रहा था और परम गोपनीय होते हुए भी इसमें कृष्ण भक्ति शाखा की तरह माधुर्य साधना का पूरा-पूरा सन्निवेश हो गया था।

गोस्वामी जी मे माधुर्य भाव की झलक

गीता में हम जिसे 'राम. शस्त्रभृतामह' का दर्शन कर आये थे वे 'जानक्या सह सप्रीत क्रीडारसविलम्पट' तथा 'महारासरसोल्लासी विलासी सर्वदेहिनाम्' हो चुके थे और प्रेमी भक्तो के बीच उनका यह रूप ही विशेष प्रिय हुआ। हम अगले अध्याय में विस्तार से देखेगे कि साहित्य और साधना के क्षेत्र में इस मर्यादा-प्रधान साधना का रूप माधुर्य प्रधान कैसे चुपचाप हो गया। यहाँ लक्ष्य करने की एक और बात है कि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस का प्रणयन करते समय अपने चारो ओर फैले हुए इस माधुर्योपासना के प्रचुर साहित्य को अवश्य देखा होगा और कुछ साहित्यकारो की यह भी मान्यता है कि स्वय गोस्वामी तुलसीदास की उपासना भी ऊपर-ऊपर दास्य भाव की, पर अन्दर-अन्दर मधुर भाव की ही थी।[1]

श्री व्रजनिधि[2] का कथन है—

रग की वरखा करी वहु जीव सन्मुख करि लिए,
जनकनन्दिनी राम छवि में भिजै दोनो जन-हिए।
वस निरन्तर रहत जिनके नाथ रघुवर-जानकी,
ते दास तुलसी करहु मोपर दया दपति दान की॥
सुन्दर सिया राम की जोरी, वारो तिहि पर काम करोरी।
दोउ मिलि रग महल में सोहैं, सव सखियन के मन को मोहैं॥
सकल सखियन में सिरोमनि दास तुलसी तुम रहौ।
करौ सेवन रुचिर रुचि मो सुजस की वानी कहौ।
दास यह तव अनन्य तापर रीझि चरनन तर परी।
अहो तुलसीदास तुम्हरी कृपा करि अपनी करी॥

'व्रजनिधि' ने 'तुलसीदास' नामका 'रहस्य' खोलते हुए कहा है—

जैंजै श्री तुलसी तरु जगम राजई।
आनद वन के माँहि प्रगट छवि छाजई॥
कविता मंजरि सुन्दर साजै।
राम भ्रमर रमि रह्यो तिहि काजै।

---

१ दे० चन्द्रवली पाण्डेय—तुलसी की गुह्य साधना, 'नया समाज' सितवर १९५३।
२ व्रजनिधि ग्रन्थावली ना० प्र० सभा, काशी पृ० २७५-२७६ पद—८९, ९०, ९१, ८६, ८७।

रमि रहे रघुनाथ अलि है सरस सोधो पाइ कैं।
अलि ही अमित महिमा तिहारी कहौं कैसे गाइ कैं।।
तुलसी सु बृन्दा सखी कौ निज नाम तें वृन्दा सखी।
दास तुलसी नाम की यह रहसि मैं मन में लखी।।

'रामचरित मानस' मे तो सीता-राम की जोडी को छवि और शृंगार की एकता कहकर गोस्वामी जी चुप हो गये हैं, परन्तु 'गीतावली' में उनका आन्तरिक रूप कुछ-कुछ अनग्वृत हुआ, जब वे सीताराम तथा उर्मिला लक्ष्मण के 'केलिगृह' का वर्णन करते हैं—

जैसे ललित लषन लाल लोने।
तैसिये ललित उरमिला, परस्पर लखन सुलोचन कोने।
सुखमासागर सिंगार सार करि कनक रचे हैं तिहि सोने।
रूप प्रेम-परिमिति न परत कहि, बिथकि रही मति मौने।
सोभा सील सनेह सोहावनै समउ केलिगृह गौने।
देखि तियनि के नयन सफल भए तुलसीदास हू के होने।[1]

'केलिगृह' का दर्शन किसी 'सखी' को ही मिल सकता है। तुसली के इस गुह्य रूप का, जो उनकी अत्यन्त अतरग साधना का वास्तविक रूप था, दर्शन 'गीतावली' के निम्न लिखित पद में होता है—

माई! मन के मोहन जोहन-जोग जोही।
थोरी ही बयस, गोरे सावरे सलोने लोने,
लोयन ललित बिधुवदन बटोही।।१।।
सिरनि जटा मुकुट मजुल सुमन जुत,
जैसिये लसति नव पल्लव खोही।
किये मुनि वेषु वीर, धरे धनु तन तीर,
सोहैं मग, को है लखि परै न मोही।।२।।
सोभा को साचो सवारि रूप जातरूप।
ढारि नारि बिरची बिरचि सग सोही।
राजत रुचिर तनु, सुन्दर स्रम के कन,
चाहै चकचौंधी लागै, कहौं का तोही?।।३।।
सनेह सिथिल सुनि वचन सकल सिय,
चितइ अधिक हित सहित ओही।
तुलसी मनहु प्रभु कृपा की मूरति फेरि,
हेरिके हरषि किये लियो है मोही।।४।।

---

१ गीतावली, बालकाड, १०५।
२ गीतावली, अयोध्याकांड, पद २०।

इसके ठीक पहले वाले पद मे गोस्वामी जी ने अपना 'रूप' स्वय प्रकट कर दिया है—

सखिहि सुसिख दई प्रेममगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनो ओही।
तुलसी रही है ठाढी पाहन गढी सी काढी,
न जाने कहाँ तें आई है कौन की कोही ॥१॥[1]

यह 'ओही' स्वय तुलसी ही है और वही है मानस के 'तापस' भी। 'गीतावली' में शृगार के कई ऐसे पद है जो सिद्ध करते है कि गोस्वामी जी का वाह्य (साधक) रूप मर्यादावादी दास्य भाव का था, परन्तु आन्तरिक गुह्य (सिद्ध) रूप लीला विलासी सखी भाव का था।

फटिक सिला मृदु विसाल, सकुल सुर तरु तमाल,
ललित लताजाल हरति छवि वितान की।
मदाकिन तारनि तीर मजुल मृग विहग भीर
धीर मुनिगिरा गभीर सामगान की॥
मधुकर पिक बरहि मुखर सुदर गिरि निरझर झर
जलकन घन छाँह छन प्रभा न भान की।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, सतत बहै त्रिविध बाउ
जनु विहार वाटिका नृप पचवान की॥
विरचित तहँ परन साल, अति विचित्र लषनलाल
निवसत जहँ नित कृपालु राम जानकी।
निजकर राजीव नयन पल्लवदल रचित स्रमन
प्यास परस्पर पियूष प्रेमपान की।
सिय अग लिखै धातुराग सुमननि भूषन विभाग,
तिलक करनि का कहौ कलानिधान की।
माधुरी विलास हास गावत जस तुलसीदास
वसत हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की॥ अ० का० पद ४४।

या

भोर जानकी जीवन जागे।
सूत मागध प्रवीन, वेनुवीन-धुनि डारे गायक सरस राग रागे।
स्यामल सलोने गात आलस वस जँभात पिया प्रेमरस पागे॥
उनीदे लोचन चारु मुख सुखमासिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे
सहज सुहाई छवि, उपमान लहै कवि मुदित विलोकन लागे।
तुलसी दास निसिवासर अनूप रूप रहत प्रेम-अनुरागे॥

---

१ वही पद १९।

इस प्रकार रामोपासना का प्रादुर्भाव 'दास्य'—सेवक-सेव्य भाव में हुआ तथा 'मर्यादा' ही इसकी मुख्य प्रेरणा एव आधारशिला रही। परन्तु क्रमश दास्य सख्य में, सख्य वात्सल्य मे और वात्सल्य माधुर्य में परिणत होता गया और आज लगभग चार सौ वर्षो से रामभक्ति की माधुर्य धारा उत्तर भारत मे प्रवाहित हो रही है, आरम्भ मे तो गुप्त गोदावरी की भाँति अप्रकट रूप मे परन्तु शनै शनै व्यक्त एव प्रकट रूप मे हाँ, अलबत्ता यह स्वीकार करना होगा कि कृष्णभक्ति-शाखा की तरह इसमे 'सखी भाव' अत्यत उन्मुक्त रूप मे व्यक्त नही हो पाया है। यहाँ सखी भाव मे भी मर्यादा की मुख्यता रही है। लक्ष्य करने की बात यह हे कि आज अयोध्या मे अधिकाश मन्दिर 'कुज' और 'वन' नाम से अभिहित है और श्री कनक भवन के अतिरिक्त भी जितने मुख्य स्थान है, वहाँ भी युगलमूर्ति की 'मधुर उपासना' चल रही है। यहाँ के अधिकाश साधु सत एव साधक या तो कोई 'लता' है, या 'प्रिया', या 'अली' या 'सखी'। सभव है यह आरम्भ की कठोर 'मर्यादाओ' एव नियमो' की प्रतिक्रिया ही हो—जैसा अभिनव मनोविज्ञान के पडित कहेगे, परन्तु इसका अनुशीलन हम आगे किसी अध्याय मे प्रस्तुत करेगे और उसमे हम दिखलाने की चेष्टा करेगे कि किन-किन प्रभावो के कारण रामभक्ति में माधुर्य का सन्निवेश हुआ है और आज उसका वास्तविक रूप क्या है, उसकी बहिरग एव अतरग साधना मे क्या सम्बन्ध है तथा उसके सिद्धान्त पक्ष एव साधना ने साहित्य को जिस सीमा तक प्रभावित किया है और करता जा रहा है।

यहाँ अवश्य ही लक्ष्य करने की बात यह है रामावत सम्प्रदाय के साहित्य मे मधुर भाव का सन्निवेश या विकास केवल कृष्णभक्ति के अनुकरण पर नही हुआ है जैसा अधिकाश सुधी समालोचको एव मान्य विद्वानो का मत है। वहाँ स्वय दास्य प्रस्फुटित होकर माधुर्य में पर्यवसित हुआ है और सभव है, उस पर उस समय की अन्य साधना पद्धतियो—कृष्णायत सखी सम्प्रदाय, वैष्णव सहजिया एव बौद्ध सहजिया, तथा काश्मीर शैव और 'रसेश्वर' दर्शन का प्रकारातर से कुछ-न-कुछ प्रभाव अवश्य पडा होगा। सच तो यह है कि मध्यकालीन समस्त साधनाओ मे क्या वैष्णव, क्या शाक्त, क्या शैव, क्या बौद्ध, मधुर भाव की उपासना का ही स्वर मुख्य है और शेष समस्त भाव गौण है। प्रभाव जो कुछ और जैसा कुछ भी हो, रामावत मधुर उपासना अपने-आपमे से प्रस्फुटित, विकसित, पल्लवित—पुष्पित स्वतत्र साधनाशैली के रूप मे ही इस उत्तरा खण्ड मे छा गई थी और फिर भी 'मर्यादा' की मुख्यता के कारण इसे खुलकर खेलने का अवकाश नही मिल सका। इसीलिए यह दबी हुई गुप्त परम गुह्य रूप मे ही बनी रही और आज भी वह परम गुह्य ही है।

छठा अध्याय

रामोपासना की रसिक परम्परा

भगवान् राम की मधुर भाव से उपासना करनेवाले भक्तों को 'रसिक' कहते हैं। यहाँ इस साधना में 'रसिक' शब्द इसी भाव में रूढ़ हो गया है।[1] और इसीलिए यह सम्प्रदाय 'रसिक सम्प्रदाय' कहलाता है। रसिक सम्प्रदाय की परम्परा परम प्राचीन है। इसके आकर ग्रन्थों से पता चलता है कि इसके आदि प्रवर्त्तक श्री हनुमान जी हैं, जिनका आत्म सम्बन्धी नाम श्री चारुशीला जी है। इस सम्प्रदाय में व्यास, शुकदेव, वशिष्ठ, पाराशर—आदि ऋषि-मुनि भी आते हैं। अभी-अभी स्वामी श्री सियालाल शरण जी महाराज 'श्री प्रेमलता जी' का जीवन चरित्र प्रकाशित हुआ है, जिसमें इस सम्प्रदाय की परम्परा दी हुई है, वह इस प्रकार है—

नाम	रसिक साधना का नाम
श्री हनुमान जी	श्री चारुशीला जी
श्री ब्रह्मा जी	श्री विश्वमोहनी जी
श्री वशिष्ठ जी	श्री ब्रह्मचारिणी जी
श्री पराशर जी	श्री पापमोचना जी
श्री व्यास जी	श्री व्यासेश्वरी जी
श्री शुकदेव जी	श्री सुनीता जी
श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी	श्री पुनीता जी
श्री गंगाधराचार्य जी	श्री गाधर्वी जी
श्री सदाचार्य जी	श्री सुदर्शना जी
श्री रामेश्वराचार्य जी	श्री रामअली जी
श्री द्वारानन्द जी	श्री द्वारावती जी
श्री देवानन्द जी	श्री देवा अली जी

१—श्री रामस्य माधुर्यरीत्यापि बहुस्त्री वल्लभत्वंसिद्धः सर्वस्त्री स्वामिन्या श्री जानक्या तद्विरोधाश्रवणाच्च। ऐश्वर्यरीत्यातु श्री रामस्य सर्वं चिदचिच्छेशित्वेन सर्वजीवभोक्तृत्वोपपत्या सर्वजीवभर्तृत्वनिष्पत्ते. ये भर्तृभार्याभावेन श्री रामं भजते त्वेषामेव रसिकत्वमुपपद्यते।

—श्री हारिदासकृत भाष्य पृ० १६३

—श्री रामस्तवराज

श्री श्यामानन्द जी	श्री श्यामा अली जी
श्री श्रुतानन्द जी	श्री श्रुता अली जी
श्री चिदानन्द जी	श्री चिदा अली जी
श्री पूर्णानन्द जी	श्री पूर्णा अली जी
श्री श्रियानन्द जी	श्री श्रियाअली जी
श्री हरियानन्द जी	श्री हरिसहचरी जी
श्री राघवानन्द जी	श्री राघवा अली जी
श्री रामानन्द जी	श्री रामानन्ददायिनी जी
श्री सुरसुरानन्द जी	श्री सुरेश्वरी जी
श्री माधवानन्द जी	श्री माधवी अली जी
श्री गरीवानन्द जी	श्री गर्वहारिणी जी
श्री लक्ष्मीदास जी	श्री सुलक्षणा जी
श्री गोपालदास जी	श्री गोपाअली जी
श्री नरहरिदास जी	श्री नारायणी जी
श्री तुलसीदास जी	श्री तुलसी सहचरी जी
श्री केवल कूवा राम जी	श्री कृपा अली जी
श्री चिन्तामणिदास जी	श्री चिन्तामणि जी
श्री दामोदरदास जी	श्री मोददायका जी
श्री हृदयराम जी	श्री उल्लासिनी जी
श्री मौजीराम जी	श्री स्वच्छन्दा जी
श्री हरिभजन दास जी	श्री हरिलता जी
श्री कृपाराम जी	श्री करुणाअली जी
श्री रतनदास जी	श्री रत्नावली जी
श्री नृपतिदास जी	श्री नीतिलता जी
श्री शकरदास जी	श्री सुशीला जी
श्री जीवाराम जी	श्री युगलप्रिया जी
श्री युगलानन्यशरण जी	श्री हेमलता जी
श्री जानकीवरशरण जी	श्री प्रीतिलता जी
श्री रामवल्लभाशरण जी	श्री युगलविहारिणी जी
श्री सियालाल शरण जी	श्री प्रेमलता जी

पुरातत्त्वानुसंधायिनी समिति अयोध्या ने संवत् १९७७ में मंत्रराज की परम्परा पर खूब अच्छी तरह जम कर विचार किया था तथा उस समय तक की प्रचलित भिन्न-भिन्न परम्पराओं की आठ सूचियाँ दी हैं।

आजकल के महानुभावों ने जो शुद्धता पूर्वक 'निजगुरु' नामक पुस्तक में परम्परा छपवाई है उसका क्रम इस प्रकार से है—

(१)

१ श्री मन्नारायण	२ श्री लक्ष्मी जी
३ श्री विष्वक्सेन जी	४ श्री शठकोप जी
५ श्री नाथमुनि जी	६ श्री पुण्डरीकाक्ष जी
७ श्री राममिश्र जी	८ श्री यामुनाचार्य जी
९ श्री महापूर्णाचार्य्य जी	१० श्री रामानुज स्वामी जी
११ श्री गोविन्दाचार्य जी	१२ श्री पराशर भट्ट जी
१३ श्री वेदान्ती जी	१४ श्री कलिवैरी जी
१५ श्री कृष्णपाद जी	१६ श्री लोकाचार्य जी
१७ श्री शैलेश जी	१८ श्री वरवर मुनि जी
१९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी	२० श्री गंगाधराचार्य जी
२१ श्री सदाचार्य जी	२२ श्री रामेश्वराचार्य जी
२३ श्री द्वारानन्द जी	२४ श्री देवानन्द जी
२५ श्री श्यामानन्द जी	२६ श्री श्रुतानन्द जी
२७ श्री चिदानन्द जी	२८ श्री पूर्णानन्द जी
२९ श्री श्रियानन्द जी	३० श्री हर्षानन्द जी
३१ श्री राघवानन्द जी	३२ श्री रामानन्द जी
३३ श्री अनन्तानन्द जी	३४ श्री कृष्णदास पयहारी जी
३५ श्री अग्रदास जी इत्यादि।	

डाक्टर ग्रियर्सन की एक सूची का अनुवाद इण्डियन प्रेस इलाहाबाद में छपे हुए रामायण में छपा है, वह इस प्रकार है—

(२)

१ श्री मन्नारायण	२ श्री लक्ष्मी
३ श्री श्रीधर मुनि	४ श्री सेनापति मुनि
५ श्री कर्मसूनु मुनि	६ श्री सैन्यनाथ मुनि
७ श्री श्रीनाथ मुनि	८ श्री पुण्डरीक
९ श्री राम मिश्र	१० श्री पराकुश
११ श्री यामुनाचार्य	१२ श्री रामानुज स्वामी
१३ श्री शठकोपाचार्य	१४ श्री कूरेशाचार्य
१५ श्री लोकाचार्य	१६ श्री पराशराचार्य

१७ श्री वाकाचार्य
१८ श्री लोकाचार्य
१९ श्री देवाधिपाचार्य
२० श्री शैलेशाचार्य (लोकाचार्य) ?
२१ श्री पुरुषोत्तमाचाय
२२ श्री गगाधरानन्द
२३ श्री रामेश्वरानन्द
२४ श्री द्वारानन्द
२५ श्री देवानन्द
२६ श्री श्यामानन्द
२७ श्री श्रुतानन्द
२८ श्री नित्यानन्द
२९ श्री पूर्णानन्द
३० श्री हर्यानन्द
३१ श्री श्रियानन्द
३२ श्री हरिवर्यानन्द
३३ श्री राघवानन्द
३४ श्री रामानन्द
३५ श्री सुरसुरानन्द
३६ श्री माधवानन्द
३७ श्री गरीबानन्द
३८ श्री लक्ष्मीदास

(३)

उक्त डाक्टर साहेब को एक और सूची पटना से मिली है वह प्राय इसके समान ही है। अन्तर केवल इतना ही है कि रामानुज स्वामी तक परम्परा नही दी है और कही-कही नामो में कुछ अन्तर है तथा कोई-कोई नाम नही है जैसे न० १३, १५ का नाम ही नही है। न० १७ श्री वाकाचार्य के स्थान पर श्री मद्यतीन्द्राचार्य है। न० २३ श्री रामेश्वरानन्द के स्थान पर श्री राममिश्र, न० २७ श्री गरीबानन्द के स्थान पर श्री गरीब दास है। न० ३१ का नाम नही है।

एक सूची श्री तपसी जी की छावनी अयोध्या से प्राचीन हस्तलिखित मिली है। वह इस प्रकार है—

(४)

अथ[1] प्रनावलि लिख्यते। प्रथम ब्रह्म, ब्रह्म के मूल, मूल के प्रकृति, प्रकृति के बीज ओकार, बीज ओकार के महातत्व महातत्व के आदिमूल नारायण आदिमूल नारायण के महालक्ष्मी महालक्ष्मी के ईक्षारूप ईक्षास्वरूप के विश्वकर्ण, विश्वकरण के उज्जासमुनि, उज्जासमुनि के जोतिमुनि, जोतिमुनि के लोकमुनि, लोकमुनि के प्रगटमुनि, प्रगटमुनि के गभीर मुनि, गभीर मुनि के दीर्घमुनि, दीर्घमुनि के अचलमुनि, अचलमुनि के प्रकाशमुनि, प्रकाशमुनि के नारदमुनि के कोष्ठमुनि, कोष्ठमुनि के कृपालमुनि, कृपालमुनि के गोपालमुनि, गोपालमुनि के वैराग्यमुनि, वैराग्यमुनि के त्यागमुनि, त्यागमुनि के श्रोत्रानन्द, श्रोत्रानन्द के अच्युतानन्द, अच्युतानन्द के पूर्णानन्द, पूर्णानन्द के दयानन्द, दयानन्द के श्रियानन्द, श्रियानन्द के हरियानन्द, हरियानन्द के राघवानन्द, राघवानन्द के श्री स्वामी रामानन्द स्वामी रामानन्द के अनन्तानन्द, अनन्तानन्द के कृष्णदास जी कृष्णदास पयहारी जी के स्वामी अग्रदास जी इत्यादि।

---

१ शुद्धाशुद्ध जैसा लिखा था वैसी ही नकल कर दी गई है।

(५)

जन्मस्थान के श्रीयुत रघुवरशरण जी ने 'रहस्यत्र' मे जो परम्परा लिखी है, वह इम प्रकार है—

१ श्री मन्नारायण	२ श्री लक्ष्मी जी
३ श्री विष्वक्सेन जी	४ श्री वोपदेव जी
५ श्री शठकोप जी	६ श्री नाथमुनि
७ श्री पुण्डरीकाक्ष	८ श्री राममिश्र जी
९ श्री यामुन मुनि	१० श्री पराकुश जी के ५ शिष्य
११ श्रुतदेव, श्रुतप्राज्ञ, श्रुतवामा, श्रुतोदधि पचम श्री रामानुज स्वामी	१२ श्री कूरेश जी
१३ श्री पराशर भट्ट जी	१४ श्री लोकाचार्य
१५ श्री देवाधिपाचार्य	१६ श्री शैलेश जी
१७ श्री वरवर मुनि	१८ श्री पुरुषोत्तम जी
१९ श्री गगाधर जी	२० श्री सदाचार्य्य जी
२१ श्री रामेश्वर जी	२२ श्री द्वारानन्द जी
२३ श्री देवानन्द जी	२४ श्री श्यामानन्द जी
२५ श्री श्रुतानन्द जी	२६ श्री चिदानन्द जी
२७ श्री पूर्णानन्द जी	२८ श्री श्रियानन्द जी
२९ श्री हर्यानन्द जी	३० श्री राघवानन्द जी
३१ श्री रामानन्द जी	

उपरोक्त परम्परा श्लोकवद्ध है। इसको कितने ही विद्वान् मानते है। परन्तु इसकी व्यवस्था इस तरह की है कि श्रीनारायण से लेकर वरवर मुनि तक जो परम्परा गद्दीस्थ आचारी लोगो के पास है, उसमें श्री वोपदेव जी का नामोनिशान नही है। नही मालूम इसमें वोपदेव जी कैसे लिखे गये। और महापूर्णाचार्य के शिष्य श्री रामानुज स्वामी प्रख्यात है तो इसमें पराकुश दास जी के शिष्य दूसरे चार श्रुतदेव, श्रुतप्रज्ञ इत्यादि पचम शिष्य श्री रामानुज स्वामी कैसे लिखे गये। और श्री रामानन्द स्वामी जी के पीछे ७१ वर्ष के वाद श्री वरवर मुनि का जन्म है। सो वरवर मुनि श्री रामानन्द स्वामी के पूर्व १४ वी पीढी के गुरु कैसे लिखे गये है। इस पर विद्वानो को विचारना चाहिए।

वोपदेव जी को छोड़कर इन तरह की परम्परा 'वैष्णव धर्म रत्नाकर' में भी लिखी है।

(६)

भाटो के पास जो परम्परा है उसकी नकल इस प्रकार प्राप्त हुई है—

१ श्री आदिसून	२ श्री महासुन
३ श्री निर्गुण	४ श्री निराकार
५ श्री बीजओकार	६ श्री आदि मूलनारायण
७ श्री महालक्ष्मी	८ श्री विष्वक्सेन
९ श्री ईक्षास्वरूप	१० श्री उजासमुनि
११ श्री जोतमुनि	१२ श्री लोकमुनि
१३ श्री प्रगट मुनि	१४ श्री गम्भीरमुनि
१५ श्री धीरजमुनि	१६ श्री प्रलोकसमुनि
१७ श्री पुहुपदेव मुनि	१८ श्री रामेमुनि
१९ श्री महापुरना मुनि	२० श्री विद्याधर मुनि
२१ श्री सरवन मुनि	२२ श्री जज्ञासमुनि
२३ श्री रामानुज मुनि	२४ श्री सूर्य्यप्रकाश मुनि
२५ श्री सूतधाम मुनि	२६ श्री सूतपीपा मुनि
२७ श्री मगल मुनि	२८ श्री श्रेष्ठगोप मुनि
३० श्री पद्मविलोचन	

इति मुनि पदवी समाप्त।

३१ श्री पद्माचार्य्य	१	३२ श्री कदमाचार्य्य	२
३३ श्री देवाचार्य्य	३	३४ श्री दीपाचार्य्य	४
३५ श्री ऋषियाचार्य्य	५	३६ श्री वशीधराचार्य्य	५
३७ श्री कृपालचार्य्य	७	३८ श्री सुखाचार्य्य	८
३९ श्री विषनाचार्य्य	९	४० श्री पुरुषोत्तमाचार्य्य	१०
४१ श्री नरोत्तमाचार्य्य	११	४२ श्री श्यामाचार्य्य	१२
४३ श्री पूर्णाचार्य्य	१३	४४ श्री गगाधराचार्य्य	१४
४५ श्री धराचार्य्य	१५		

इति आचार्य्य पदवी समाप्त।

४६ श्री दोयानन्द	१	४७ श्री देवानन्द	२
४८ श्री सेवानन्द	३	४९ श्री सुसेतानन्द	४
५० श्री अचेतानन्द	५	५१ श्री श्यामानन्द	६
५२ श्री पूर्णानन्द	७		

५३ श्री दरियानन्द	८	५४ श्री सीयानन्द	९
५५ श्री हरियानन्द	१०	५६ श्री राघवानन्द	११
५७ श्री रामानन्द	१२	५८ श्री अनन्तानन्द	१३

इति नन्द पदवी समाप्त।

५९ श्री पैहारी कृष्णदास जी	१	६० श्री अग्रदास जी	२

(७)

मौजे सतमलपुर, पो० समस्तीपुर जिला दरभगा के रहनेवाले श्री रसिकविहारी शरण जी ने अपने 'मन्त्रराज परम्परा' नामक ग्रन्थ में लिखकर परम्परा का निर्देश किया है। पुस्तक छपी है जो देखना चाहे मगाकर देख लें। वह उपर्युक्त पाचो प्रकार की परम्परा से विलक्षण है। क्योकि उसमें लिखा है कि श्री रामजी ने मन्त्रराज को श्री जानकी जी को दिया। उन्होने महाशम्भु जी को दिया। महाशम्भु जी ने विष्णु जी को दिया इत्यादि।

इस प्रकार से हमारे सम्मुख ७ प्रकार की परम्परा-सूचियाँ उपस्थित है। इनमे जितनी भिन्नता या भेद है, उसे देखा जा सकता है।

इस परम्परा से यह वात मालूम होती है कि श्रीरामानन्द स्वामी जी महाराज श्री रामानुज स्वामी के परिवार में से नही है।

यह परम्परा श्रीमन्नारायण से शुरू नही होती है, किन्तु श्रीराम जी से इसका आरम्भ होता है। जैसे कि—

(८)

१ सर्वेश्वर श्री रामचन्द्र जी महाराज	२ श्री जानकी जी
३ श्री हनुमान जी	४ श्री ब्रह्मा जी
५ श्री वशिष्ठ जी	६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी	८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य्य जी	१० श्री गगाधराचार्य जी
११ श्री सदाचार्य जी	१२ श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ श्री द्वारानद जी	१४ श्री देवानद जी
१५ श्री श्यामानन्द जी	१६ श्री श्रुतानन्द जी
१७ श्री चिदानन्द जी	१८ श्री पूर्णानन्द जी
१९ श्री श्रियानन्द जी	२० श्री हर्य्यानन्द जी
२१ श्री राघवानन्द जी	२२ श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज

श्री राम जी से श्री रामानन्द जी के मन्त्रराज आता है। इस अग्रस्वामी जी की परम्परा का मेल सदाशिव सहिता के इस श्लोक से भली भाँति मिल जाता है—

राजमार्गमिम विद्धि रामोक्त जानकीकृतम्।

अर्थात् श्री राम जी द्वारा कथित इस राममन्त्र को श्री जानकी जी ने प्रख्यात किया। इसको तुम राजमार्ग जानो। इसके अतिरिक्त एक बात और है। 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टार' इस निरुक्त वचन के अनुसार ऋषि वह होता है जो मन्त्र के अर्थ पर विचार और प्रचार करता है। राममन्त्र का ऋषि जानकी लिखा हुआ है। 'हारीत स्मृति' में भी लिखा है कि "ॐ अस्य श्रीरामषडक्षर मन्त्रराजस्य श्री जानकी ऋषि।" ऐसे ही समस्त पटलो में भी छपा हुआ है। इससे भी विदित होता है कि श्री की भी श्री परात्परा शक्ति श्री जानकी जी को ही श्रीरामजी से इन मन्त्रराज का उपदेश प्राप्त हुआ है।

इस परम्परा में आगे चलकर लिखा है कि श्रीजानकी जी ने श्री हनुमान जी को उपदेश दिया।

और 'श्रीरामविजय सुधाकर' में हमारे पूर्वाचार्य्य श्री मधुराचार्य्य जी लिख गये है—'सीता-शिष्य गुरोर्गुरुम्।' इससे स्पष्ट हो गया कि श्रीहनुमान् जी श्रीजानकी जी के शिष्य हैं।

पुन श्री हनुमान् जी ने श्रीराममत्र का उपदेश ब्रह्मा जी को दिया। प्रमाण 'सदाशिव सहिता—'

योऽय महाविभूतिस्थो हनुमान् रामतत्पर।
सऽप्रादाद् ब्रह्मणे तत्र मत्रराज षडक्षरम्॥

पुन अथर्वण—'श्री रामतापनी' का प्रमाण—

त्वत्तो वा ब्रह्मणोवापि ये लभन्ते षडक्षरम्।
जीवन्तो मत्रसिद्धा स्युर्मुक्ता मा प्राप्नुवन्ति ते॥

अर्थात् श्रीराम जी शिव जी से कहते है कि हे शकर! हमारी नित्य विभूति से पहले तुमको तथा ब्रह्मा को हमारा मत्र प्राप्त हुआ। अतएव तुम्हारी तथा ब्रह्मा की दो राममत्र की परम्परा पृथ्वीतल में प्रचारित हुई है। जो कोई इन दोनो परम्पराओ में से किसी में भी दीक्षित होकर राममत्र का अभ्यास करेगा वह जीते जी सिद्धि को प्राप्त होकर ससार समुद्र से तर जायगा।

अनन्तर ब्रह्मा, वशिष्ठ, पराशर, व्यास, शुकदेव द्वारा क्रमश इस भूलोक में मत्रराज का प्रचार हुआ। प्रमाण, 'अगस्त्य सहिता'—

ब्रह्मा ददौ वशिष्ठाय स्वसुताय मनु तत।
वशिष्ठोपि स्वपौत्राय दत्तवान्मत्रमुत्तमम्॥
पराशराव रामस्य भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
स वेदव्यास मुनये ददावित्य गुरुक्रम॥
वेदव्यास मुखेनात्र मत्रौ भूमौ प्रकाशित।
वेदव्यासो महातेजा शिष्येभ्य समुपादिशत॥

परमहस शुकदेव जी ने सबसे पहिले परमहस पुरुषोत्तमाचार्य को राममत्र का उपदेश दिया, यह वात सम्प्रदायाचार्य्य श्री अग्रस्वामी जी ने लिख दी है, यथा—

शुकदेवकृपापात्रो ब्रह्मचर्य्यंव्रतेस्थित ।
नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवी गत ॥

अस्तु, परमहस पुरुषोत्तमाचार्य्य, गगाधराचार्य्य आदि महापुरुषो द्वारा क्रमश श्री राम-मत्र श्री रामानन्द स्वामी जी को प्राप्त हुआ।

ये तो हुए शास्त्रीय प्रमाण, अब एक ऐतिहासिक प्रमाण भी। श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज के समकालीन काशीपुरी में मौलाना रशीद नामक एक मुसलमान सन्त हो गये हैं। उन्होंने 'तजकी रतुलफ्क्रा' नाम से एक पुस्तक फारसी भाषा मे लिखी है जिसमें विशेपत. मुसल-मान फकीरो की चर्चा है और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध हिन्दु सन्तो की भी कुछ महिमा गाई गई है। उसी पुस्तक मे उक्त मौलाना ने स्वामी जी की लोकोत्तर आध्यात्मिक शक्ति का परिचय देते हुए स्पष्ट शब्दो में लिखा है कि स्वामी जी आदि श्री सम्प्रदाय के आचार्य्य है, इस मार्ग की मूल प्रव-र्त्तिका श्री सीता जी है, उन्होने सबसे पहले इसे सिद्धान्त का उपदेश देवस्वभावी हनुमान जी को दिया और भगवान् आजानेय के द्वारा इस मत्र का प्रचार हुआ। इसीलिए इसका नाम श्री सम्प्रदाय है और उपदेश मत्र को रामतारक कहते हैं।[1]

श्री सम्प्रदाय की दो शाखाएँ—एक श्री शब्द वाच्या श्री जानकी जी के द्वारा श्री राममत्र-राज की परम्परा प्रकट हुई और दूसरी (श्री शब्द वाच्या) श्री लक्ष्मी जी द्वारा प्रकट हुई। जानकी जी श्री शब्द वाच्या है, इसका समाधान यह है कि श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण युद्ध काण्ड सर्ग ११३ श्लोक २२ में लिखा है 'वसुधा याहि वसुधा श्रिया श्रीर्भर्तृवत्सलाम्।' पुन अयोध्या-काण्ड सर्ग ४४ में लिखा है—'श्रिय श्रीश्चभवेद्गया कीर्त्या कीर्ति क्षमा शमा। अर्थात् श्री जानकी जी श्रियो की भी आद्याशक्ति सर्वेश्वरी है। 'पुन श्री अग्रस्वामी जी ने भी अष्टाक्षर मन्त्र की व्याख्या में लिखा है कि 'श्री शब्देन भगवती सीतोच्यते।'

अस्तु। उपर्युक्त दोनो शाखाओ का नाम 'श्री सम्प्रदाय' ही है क्योकि दोनो की प्रवर्त्तिका श्री जी ही है और दोनो का सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत ही है।

इनके अतिरिक्त श्री 'महारामायण' मे दी गई परम्परा इस प्रकार है—

१ श्री राम जी	२ श्री सीता जी
३ श्री हनुमान जी	४ श्री ब्रह्मा जी
५ श्री वसिष्ठ जी	६ श्री परासर जी
७ श्री व्यास जी	८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी	१० श्री गगाधराचार्य .

---

१ देखिये पुरातत्त्वानुसंधायिनी समिति अयोध्या सं० १९७७ की रिपोर्ट पृ० १३।

११ श्री सदाचार्य
१२ श्री सोमेश्वराचार्य
१३ श्री द्वारानन्दाचार्य
१४ श्री देवानन्दाचार्य
१५ श्री श्यामानन्दाचार्य
१६ श्री श्रुतानन्दाचार्य
१७ श्री चिदानन्दाचार्य
१८ श्री पूर्णानन्दाचार्य
१९ श्री श्रियानन्दाचार्य
२० श्री हर्यानन्दाचार्य
२१ श्री राघवानन्दाचार्य
२२ श्री जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य
२३ श्री योगानन्द जी
२४ श्री मयानन्द जी
२५ श्री तुलसीदास भागवती जी
२६ श्री नयनूराम जी
२७ श्रीखाम चौगानी जी
२८ श्री उधोमयदानी जी
२९ श्री खेमदास जी
३० श्री रामदास जी
३१ श्री लक्ष्मणदास जी
३२ श्री देवादास जी
३३ श्री भगवानदास जी
३४ श्री बालकृष्णदास जी
३५ श्री वेणीदास जी
३६ श्री श्रवणदास जी
३७ श्री रामवचनदास जी
३८ श्री रामवल्लभाशरण जी।

श्री 'विश्वभरोपनिषद्' की टीका (प० श्री सरयूदास जी कृत) मे गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

१ श्री रामजी महाराज
२ श्री जानकी जी
३ श्री हनुमान् जी
४ श्री ब्रह्मा जी
५ श्री वशिष्ट जी
६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी
८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी
१० श्री गगाधराचार्य जी
११ श्री सदाचार्य जी
१२ श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ श्री द्वारानन्द जी
१४ श्री देवानन्द जी
१५ श्री श्यामानन्द जी
१६ श्री श्रुतानन्द जी
१७ श्री चिदानन्द जी
१८ श्री पूर्णानन्द जी
१९ श्री श्रियानन्द जी
२० श्री हरियानन्द जी
२१ श्री राघवानन्द जी
२२ श्री रामानन्द जी
२३ श्री अनन्तानन्द जी
२४ श्री गैंसदास जी
२५ श्री खेमदास जी
२६ श्री पूर्णवैराठी (वैरागी) जी
२७ श्री गुजारदास जी
२८ श्री कृष्णदास जी
२९ श्री गोपालदास जी
३० श्री दामोदरदास जी
३१ श्री लक्ष्मीदास जी
३२ श्री आनन्दराम जी

३३ श्री तुलसीदास जी
३४ श्री विष्णुदास जी
३५ श्री हरिभजनदास जी
३६ श्री महादास जी निर्वाणी
३७ श्री अयोध्यादास जी
३८ श्री जानकीदास जी
३९ श्री मणिरामदास जी
४० श्री सरयूदास जी

श्री 'सीतोपनिषद्' में स्वामी श्रीरामानन्द जी तक की गुरु-परपरा इस प्रकार है—

१ सर्वेश्वर श्रीसीता रामचन्द्र जी महाराज
२ श्री हनुमान जी
३ श्री ब्रह्मा जी
४ श्री वशिष्ट जी
५ श्री पराशर जी
६ श्री व्यास जी
७ श्री शुकदेव जी
८ श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी
९ श्री गगाधराचार्य जी
१० श्री सदाचार्य जी
११ श्री रामेश्वराचार्य जी
१२ श्री द्वारकानन्द जी
१३ श्री देवानन्द जी
१४ श्री श्यामानन्द जी
१५ श्री श्रुतानन्द जी
१६ श्री चिदानन्द जी
१७ श्री पूर्णानन्द जी
१८ श्री श्रियानन्द जी
१९ श्री हर्यानन्द जी
२० श्री राघवानन्द जी
२१ श्री श्री रामानन्द स्वामी जी महाराज

श्री स्वामी रामचरणदास जी 'करुणासिंधु' के 'श्री रामनवरत्न सार सग्रह' मे गुरु-परम्परा का प्रकरण इस प्रकार है—

१ श्री राम जी
२ श्री सीताजी
३ श्री हनुमान जी
४ श्री ब्रह्मदेव जी
५ श्री वसिष्ठ जी
६ श्री पराशर जी
७ श्री व्यास जी
८ श्री शुकदेव जी
९ श्री पुरुषोत्तमाचार्य
१० श्री गगाधराचार्य
११ श्री सदाचार्य
१२ श्री रामेश्वराचार्य
१३ श्री द्वारानदाचार्य
१४ श्री देवानन्दाचार्य
१५ श्री श्यामानन्दाचार्य
१६ श्री श्रुतानन्दाचार्य
१७ श्री चिदानदाचार्य
१८ श्री पूर्णानन्दाचार्य
१९ श्रियानन्दाचार्य
२० श्री हर्यानन्दाचार्य
२१ श्री राघवानन्दाचार्य
२२ श्रीजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य
२३ श्री अनंतानदाचार्य
२४ श्री कृष्णाचार्य
२५ श्री अग्रस्वामी जी
२६ श्री रामभगवान जी
२७ श्री लक्ष्मणदास जी
२८ श्री मस्तराम जी

२९ श्री लक्ष्मीराम
३० श्री नन्दलाल जी
३१ श्री चरणदास जी
३२ श्री हरिदास जी
३३ श्री रामप्रसाद जी दीनबन्धु
३५ श्री रघुनाथ प्रसाद जी
३५ श्री रामचरणजी करुणा सिन्धु
३६ श्री सीताराम सेवक जी
३७ श्री जानकीवरशरण जी
३८ श्री लक्ष्मणशरण जी

श्री मथुरादास जी महाराज ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कल्याण कल्पद्रुम' में गुरुपरम्परा श्लोक-बद्ध दी है, जो इस प्रकार है—

परधाम्नि स्थितोराम पुण्डरीकायतेक्षण ।
सेवया परया जुष्टो जानक्यै तारक ददौ ॥१॥
श्रिय श्रीरपिलोकाना दु खोद्धरणहेतवे ।
हनूमते ददौ मन्त्र सदा रामाघ्रिसेविने ॥२॥
ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो हनुमानेन मायया ।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम् ॥४॥
मन्त्रराज जप कृत्वा धाता निर्मातृतागत ।
त्रयोसारमिम धातुर्वशिष्ठो लब्धावान्परम् ॥५॥
पराशरो वशिष्ठाश्च मुद्रा सस्कार सयुतम् ।
मन्त्रराज पर लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह ॥६॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यास सत्यवती सुत ।
पितु षडक्षर लब्ध्वा चक्रे वेदोपवृहणम् ॥७॥
व्यासोऽपि बहु शिष्येषु मन्वानो शुभ योग्यताम् ।
परमह सवर्याय शुकदेवाय दत्तवान् ॥८॥
शुकदेवकृपापात्रो ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थित ।
नरोत्तमस्तु[1] तच्छिष्यो निर्वाणपदवी गत ॥९॥
स चापि परमाचार्य्यो गगाधराय सूरये ।
मन्त्राणा परम तत्व राममत्र प्रदत्तवान् ॥१०॥
गगाधरात्सदाचार्य्यस्ततो रामेश्वरो यति ।
द्वारानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतो ऽ भवत् ॥११॥
देवानन्दस्तु तच्छिष्य श्यामानन्दस्ततो ग्रहीत् ।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततो ऽ भवत् ॥१२॥

---

१ इनका दूसरा नाम है श्रीस्वामी १०८ श्री पुरुषोत्तमाचार्य्यजी।

पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान्।
हर्य्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दाघ्रिसेवक ॥१३॥
हर्य्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ।
यस्य वै शिष्यता प्राप्तो रामानन्द स्वय हरि ॥१४॥
रामानन्दस्य सर्वज्ञ शिरोरत्नस्य धीमत।
अनन्तानन्द इत्याख्य सच्छिष्य सद्गुणाश्रय ॥१५॥
अनन्तानन्दमाचार्य्यं गयादास उपेत्य च।
मन्त्ररत्न समादाय लक्ष्मीदासाय दत्तवान् ॥१६॥
श्रीमन्माधवदासस्तु तस्माल्लेभे षड्क्षरम्।
द्वार प्रवर्तक खोजी ततो मन्त्र गृहीतवान् ॥१७॥
दत्तवान् क्षेमदासाय श्री खोजीजी महामुनि।
श्रीनारायणदासश्च तत प्राप्त षडक्षरम् ॥१८॥
भक्तराजो महाधीमान् श्रीमन्त्रं करुणालय।
ददौ नृसिंहदासाय रामदासाय सोपि च ॥१९॥
हरिदासस्ततो लब्ध्वा कृपारामाय धीमते।
मन्त्ररत्न पर प्रेम्णा दत्तवान् करुणानिधि. ॥२०॥
स च श्रीकृष्णदासाय महामन्त्र प्रदत्तवान्।
श्रीमत्सन्तोपदासस्तु ततो लेभे हि तं मनुम् ॥२१॥
ततो रघुनाथदास पूर्णदासस्ततस्तुतम्।
प्रगृह्य ब्रह्मदासाय प्रददौ काष्ठधारिणे ॥२२॥
स च भगवान्दासाय दत्तवान् मन्त्रमुत्तमम्।
रामगलोलादासाय स ददौ करुणानिधि ॥२३॥
स श्रीनृसिंहदासाय कमल्दासाय सो पि च।
दत्तवान्मत्ररत्न तत्सर्वजीव हिस्तावहम् ॥२४॥
श्री मान्वज्रागदासस्तु तदीय परिचर्य्यया।
राममन्त्रमुपादाय कार्तार्थ्यं समुपेयिवान् ॥२५॥
य पठेच्छ्रद्धयानित्य पूर्वाचार्य्यपरम्पराम्।
मन्त्रराज रतिं प्राप्य सद्यो रामपद व्रजेत ॥२६॥

श्री कान्तशरण ने 'प्रपत्तिरहस्य' में श्री अग्रस्वामी की दी हुई परपरा का उल्लेख करते हुए उसे अद्यतन रूप दिया है जो इस प्रकार है—

रामानन्दमह वन्दे वेद-वेदान्त-पारगम्।
राम-मत्रप्रदातारं सर्वलोकोपकारकम् ॥१॥

शुभासने समासीनमनन्तानन्दमच्युतम् ।
कृष्णदासो नमस्कृत्य पप्रच्छ गुरुसन्ततिम् ॥२॥

कृष्णदास उवाच—

भगवन् यमिना श्रेष्ठ प्रपन्नोऽस्मि दया कुरु।
ज्ञातुमिच्छाम्यह सर्वा पूर्वेषा सत्परम्पराम् ॥३॥
मन्त्रराजश्च केनादौ प्रोक्त कस्मै पुरा विभो ।
कथ च भुवि विख्यातो मन्त्रो य मोक्षदायक ॥४॥
कृष्णदासवच श्रुत्वा ऽनन्तानन्दो दयानिधि।
उवाच श्रूयता सौम्य वक्ष्यामि तद्यथाक्रमम् ॥५॥
परधाम्निस्थितो राम पुण्डरीकायतेक्षण ।
सेवया परया जुष्ठो जानक्यै तारक ददौ॥६॥
श्रिय श्रीरपि लोकाना सुखोद्धरणहेतवे।
हनूमते ददौ मन्त्र सदा रामाघ्रिसेविने॥७॥
ततस्तु ब्रह्मणा प्राप्तो मुह्यमानेन मायया।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम् ॥८॥
मन्त्रराजजप कृत्वा धाता निर्मातृता गत ।
त्रयीसारमिम धातुर्वसिष्ठो लब्धवान्परम् ॥९॥
पराशरो वसिष्ठाश्च मुद्रासस्कार-सयुतम् ।
मन्त्रराज पर लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह॥१०॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यास सत्यवतीसुत ।
पितु षडक्षर लब्ध्वा चक्रे वेदोपवृहणम्॥११॥
व्यासोपि बहुशिष्येषु मन्वान शुभयोग्यताम्।
परमहसवर्याय शुकदेवाय दत्तवान् ॥१२॥
शुकदेव-कृपापात्रो ब्रह्मचर्यव्रतेस्थित ।
नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवी गत॥१३॥
स चापि परमाचार्यो गगाधराय सूरये।
मन्त्राणा परम तत्व राममन्त्रप्रशास्तवान्॥१४॥
गगाधरात्सदाचार्यस्ततो रामेश्वरो यति ।
द्वरानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतो ऽभवत्॥१५॥
देवानन्दस्तु तच्छिष्य श्यामानन्दस्ततो ग्रहीत्।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततो ऽभवत् ॥१६॥
पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान्।
हर्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दाघ्रिसेवक ॥१७॥

हर्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ।
यस्य वै शिष्यता प्राप्तो रामानन्द स्वय हरि ॥१८॥

यहा तक की परम्परा श्री अग्रस्वामि कृत श्लोकवद्ध है। इसके आगे कई शाखाएँ हुई हैं उनमें मैं अपनी परम्परा आगे लिखते हैं—

तस्मात्सुरसुराख्यस्तु ततो माधवसज्ञक।
गरीवाख्यस्तत प्राप्तो लक्ष्मीदासस्तत परम्॥१९॥
तस्माद्गोपालदासस्तु नरहरिदासस्तत।
श्री मान्केवलरामश्च तत प्राप्त पद्धक्षर. ॥२०॥'
श्री दामोदरदासाख्य शिष्यस्तस्य महामते।
साधुसेवी दयायुक्त सदाचारेपु निष्ठित ॥२१॥
तस्माद् हृदयरामस्तु विरक्तश्च गुणालय।
कृपारामोपि वै तस्माद्रत्नदासस्ततो ऽभवत्॥२२॥
तस्मान्नृपतिदासस्तु रामभक्तो नसूयक।
तस्माच्छकरदासो हि राम-नाम-प्रकाशक ॥२३॥
तस्माज्जातो महाराजो जीवारामेतिसंज्ञक।
शुभस्थाने चिराणाख्ये राजत रसिकाग्रणी॥२४॥
तस्य सम्बन्ध सम्भूत महाराज प्रतापवान्।
साकेताख्य पुरे रम्ये विरराज महाप्रभु ॥२५॥
सीतारामौ प्रददतु तस्य नाम विलक्षणम्।
युगलानन्यशरणाख्य विदित पृथिवीतले॥२६॥
तस्यानन्तकल्याणगुणाख्यातो विलक्षण।
स्वभाव तस्य सौशील्य कारुण्य कटुवर्जितम्॥२७॥
सौन्दर्य तस्य लावण्य माधुर्य रसवर्द्धनम्।
तस्मिन्नेव प्रकाशन्ते यथा सीतापते गुणा ॥२८॥

---

१ श्री केवल राम (कूवा)जी का जन्म सं० १५४५ में हुआ है। उन्होंने १८० वर्ष तक की आयु प्राप्त कर जीवो का उद्धार किया है। सं० १७२५ में उनकी परधाम यात्रा हुई है। उनकी शुभ जीवनी उनके समकालीन गुरुभाई श्री रघुनाथदास जी ने उत्तम रीतिसे सस्कृत में लिखी है। उसके बीच बीच में दोहे भी है। उसमें श्री नरहरिदासजी के प्रथम शिष्य श्री केवल राम (कूवा)जी है और द्वितीय शिष्य श्री गोस्वामी तुलसीदासजी लिखे गए है, तथा—'द्वितीये नरहरिदास के, भये जो तुलसीदास। रामायण शुचि ग्रंथ रचि, जग में कियो प्रकास।' उक्त जीवनी 'फीयड़ा' गादी में वर्तमान है, जिन्हें विशेष जानना हो, वें उसे देखें।

प्रवक्तु नाप्यल कोऽपि तस्य महात्म्यमुत्तमम् ।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नम २९॥
तस्य शिष्यो महाप्राज्ञो रसिक सर्वधर्मवित् ।
जानकीवरशरण प्रख्यातो जगतीतले॥३०॥
सदा गुरुपदेशेषु नैष्टिको बहुसाधुषु ।
वक्ता बृहस्पति साक्षात्सहिष्णुत्वे मही सम ॥३१॥
सीतारामरसाना च वर्द्धको भेददायक ।
छेदक सशयाना च रसराजप्रवर्द्धक ॥३२॥
दयित सर्वभूताना राममन्त्रप्रदायक ।
गुरुवाक्यस्य तत्वज्ञ वास श्रीसरयूतटे॥३३॥
लक्ष्मरणाख्यप्रकोटे तु सीतारामस्य सन्निधौ ।
गुरुसन्निकटे तत्र क्षेत्रवासे च सुष्टुधी ॥३४॥
तस्य शिष्यो गुरुर्निष्ठ कवि काव्यविशारद ।
नाम श्री रामवल्लभाशरणो रामसेवक ॥३५॥
सद्गुरुसदने रम्ये शोभिते सरयूतटे ।
तस्मिन्वसनि वै धीरो गान-विद्या-विचक्षण ॥३६॥
तस्य शिष्य समीपस्य श्रीकान्तशरणो लघु ।
श्री सद्गुरुकुटीरस्थो रामनाम-परायण ॥३७॥
सीतानाथसमारम्भा रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्ता वन्दे गुरुपरम्पराम्॥३८॥

अर्थात् प्रथम श्रीरामजी ने श्री जानकी जी को षडक्षर मन्त्रराज प्रदान किया है, फिर श्री जानकी जी ने श्री हनुमान जी को दिया है—ऐसा ही क्रम जानना चाहिए—

१ अनन्त श्री राम जी	२ अनन्त श्री जानकी जी
३ ,, श्री हनूमान जी	४ ,, श्री ब्रह्मा जी
५ ,, श्री वसिष्ठ जी	६ ,, श्री पराशर जी
७ ,, श्री व्यास जी	८ ,, श्री शुकदेव जी
९ ,, श्री पुरुषोत्तमाचार्य	१० ,, श्री गगाधराचार्य जी
११ ,, श्री सदाचार्य जी	१२ ,, श्री रामेश्वराचार्य जी
१३ ,, श्री द्वारानन्द जी	१४ ,, श्री देवानन्द जी
१५ ,, श्री श्यामानन्द जी	१६ ,, श्री श्रुतानन्द जी
१७ ,, श्री चिदानन्द जी	१८ ,, श्री पूर्णानन्द जी
१९ ,, श्री श्रियानन्द जी	२० ,, श्री हर्यानद जी

२१	„ श्री राघवानन्द जी	२२	„ श्री स्वामी रामानन्द जी
२३	„ श्री सुरसुरानन्द जी	२४	„ श्री माधवानन्द जी
२५	„ श्री गरीबानन्द जी	२६	„ श्री लक्ष्मीदास जी
२७	„ श्री गोपालदास जी	२८	„ श्री नरहरिदास जी
२९	„ श्री केवलराम कूवा जी	३०	„ श्री दामोदरदास जी
३१	„ श्री हृदयराम जी	३२	„ श्री कृपाराम जी
३३	„ श्री रत्नदास जी	३४	„ श्री नृपति दास जी
३५	„ श्री शंकरदास जी	३६	„ श्री जीवाराम जी (युगलप्रिय शरण जी)
३७	„ श्री युगलानन्यशरण जी	३८	„ श्री जानकीवर शरण जी
३९	„ श्री रामवल्लभाशरण जी	४०	„ श्री कान्तशरण जी

श्री रूपकला जी (श्री सीतारामशरण भगवान् प्रसाद) ने श्री भक्तमाल के 'भक्ति सुधा स्वाद तिलक' में अपनी परम्परा इस प्रकार दी है—

१ श्री सीताराम जी	२ श्री हनुमंत जी
३ श्री राघवानन्दाचार्य स्वामीजी	४ श्री भगवान् रामानन्द जी
५ श्री भगवान् रामानन्द जी	६ श्री सुरसुरानन्द जी
७ श्री वलियानन्द जी	८ श्री सेउरिया स्वामी जी
९ श्री विहारीदास जी	१० श्री रामदास जी
११ श्री विनोदानन्द जी	१२ श्री धरनीदास जी
१३ श्री करुणानिधान जी	१४ श्री केवल राम जी
१५ श्री रामप्रसादीदास जी	१६ श्री रामसेवकदास जी परसा
१७ स्वामी श्री रामचरणदास जी 'करुणासिंधु'	१८ श्री सीताराम शरण भगवान् प्रसाद जी

इस परम्परा में चौथा और पाचवा दोनो ही नाम भगवान् रामानन्द जी का है। यह कहना कठिन है कि यह दो व्यक्तियो के सम्बन्ध में है या भूल से एक ही व्यक्ति के दो बार नाम आ गया है। जो हो श्री रूपकला जी की गुरु-परम्परा से तथा श्री प्रेमलता जी की गुरु-परम्परा से रसिक सम्प्रदाय के प्राय सभी रामोपासको का परिचय मिल जाता है।

परन्तु इस रस साधना की एक प्रमुख धारा छूटी ही जा रही है जिसकी परम्परा का ज्ञान परमावश्यक है और वह है जयपुर में गालवाश्रम (गलता गद्दी) की परम्परा। रामोपासक रसिक सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि स्वामी रामानन्द तो इस भाव के उपासक थे ही, उनके पूर्ववर्ती गुरुओ को भी मधुरभाव की साधना प्रिय थी और इस प्रकार वे श्री हनुमान जी से जिनका मधुर भाव का नाम श्री चारुशीला जी है, अपनी परम्परा का आरम्भ मानते है। एक बात यहा लक्ष्य

करने की यह है कि गलता (गालवाश्रम) पहले नाथी सिद्धो के हाथ में था उस पर रामानन्दी वैष्णवो के अधिकार होने के बाद मधुर भाव की उपासना अधिक व्यापक हुई है। इस श्रेणी के भक्तो का विश्वास है कि श्री सिद्ध नाभादास जी और उनके गुरु अग्रदास तथा अग्रदास के गुरुभाई श्री कील्ह स्वामी जी मधुर रस के रसिक थे। मधुर रस का रसिक अपने में श्री रामचन्द्र की प्रिया, सखी, श्री जानकी जी की सखी या दासी का अभिमान करता है और या तो श्री जानकी जी के सुख में सुख मानता है या श्री रामचन्द्र जी की प्रीति का पात्र बन कर जीवन धन्य करता है। शृगार रसाश्रया मधुरभक्ति में भक्त 'कदर्प कोटि कमनीय किशोर मूर्ति' मधुर मनोहर भगवान् रामचन्द्र को पतिरूप में भजता है।[1]

इस भाव के रसिक भक्तो का विश्वास है कि श्री अग्रदास जी इसी भाव के साधक थे। उनका साधना का नाम 'अग्रअली' था। श्री रूपकला जी ने अपने 'भक्तमाल' के 'भक्ति सुधास्वाद तिलक' में बताया है कि श्री अग्रदास जी शृगार रस के आचार्य श्री 'अग्रअली' के नाम से प्रसिद्ध है। आपका 'अष्टयाम', 'ध्यान मजरी', कुडलिया, पदावली आपके मधुर भाव को व्यक्त करती है।[2]

श्री रूपकला जी के उपर्युक्त तिलक में श्री अग्रस्वामी की गुरु-परम्परा यो है—

भगवान् रामानन्द जी
|
श्री अनन्तानन्द जी
|
श्री कृष्णदास जी पयहारी
|
श्री अग्रदेव जी
|
स्वामी श्री नाभादास जी

किम्बदन्ती है कि श्री जानकी जी महारानी ने कृपा कर के श्री अग्रस्वामी को दर्शन दिया और आप अपनी इच्छा से शरीर त्याग कर श्री साकेत को पधारे। अस्तु। श्री अनन्तानन्द जी की पूरी शिष्य-परम्परा मधुरोपासक है। स्वामी श्री हरियानन्द आचार्य भी मधुरोपासक सत थे। श्री युगलप्रिया जी ने अपने 'रसिक भक्तमाल' में आपका परिचय यो दिया है—

चरण कमल वन्दौं कृपालु हरियानन्द स्वामी।
सर्वसु सीताराम रहसि दशधा अनुगामी॥
वालमीक वर शुद्ध सत्व माधुर्य रसालय।
दरसी रहसि 'अनादि' पूर्व रसिकन की चालय॥

---

१ मधुर मनोहर राम पतिसवष पूर्वकम्।
ज्ञात्वा सदैव भजते सा शृंगाररसाश्रया॥ —श्री हनुमत्सहिता

२ देखिये भक्तमाल का भक्तिसुधा स्वाद तिलक पृ० ३१२-३१४।

नित सदाचार में रसिकता
अति अद्‌भुत गति जानिये।
जानकिवल्लभ कृपा सहि
शिष प्रतिशिष्य बखानिये।।

ऊपर के पद में 'दशधा अनुगामी' का अर्थ है मधुरोपासक। अभिप्राय यह है कि स्वामी श्री अनन्तानन्द जी की पूरी परम्परा मधुरोपासक है। इसी परम्परा में श्री 'बालअली' हुए, जिनका 'नेह प्रकाश', 'ध्यान मजरी' आदि ग्रन्थ इस परम्परा के प्रमुख आकर ग्रन्थ के रूप में समादृत है। जो हो, मधुर भाव के रामोपासक रसिक भक्तो का दावा है कि स्वामी अग्रदास जी स्वामी कीलदास जी अपने गुरु श्री कृष्णदास पयहारी के समान मधुरोपासक थे । अस्तु ।

इस परम्परा के परम प्रभावशाली आचार्य एव साधक श्री मधुराचार्य जी हुए। कील स्वामी के शिष्य छोटे कृष्णदास जी, कृष्णदास जी के विष्णुदास जी, विष्णुदास जी के नारायण मुनि, नारायण मुनि के हृदय देव और हृदयदेव के शिष्य स्वामी रामप्रपन्न जी या मधुराचार्य जी हुए। रामानन्दीय मधुरासोपासक भक्तो में मधुराचार्य जी का बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, लगभग वही जो गौडीय वैष्णवो मे श्री जीव गोस्वामी पाद का है। जिस प्रकार जीव गोस्वामी ने भक्ति, प्रीति आदि षट् सदर्भात्मक विशाल भक्ति-ग्रन्थ का निर्माण कर गौडीय साधना का दर्शन पक्ष परिपुष्ट किया उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी ने छ सदर्भो का विशाल ग्रन्थ लिखा था जिनमे केवल दो ही सदर्भ—(१)श्री सुन्दर मणि सदर्भ तथा(२)श्री वैदिक मणि सदर्भ प्रकाशित हुए है। श्री मधुराचार्य जी का लिखा एक और ग्रन्थ 'श्री रामतत्त्व प्रकाश' अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में राम रसिकोपासना को बडे ही उत्तम ढग से शास्त्रादि के पुष्ट प्रमाणो के आधार पर सिद्ध किया गया है। इसमें श्री राम का परत्व, श्री शुकदेव आदि ऋषियो का श्री रामोपासकत्व तथा श्री सीताराम की नित्य दिव्य लीलाओ का बडा ही भव्य एव मनोहारी वर्णन है। इनके अतिरिक्त आपके लिखे मुख्य ग्रन्थो मे 'श्री भगवद्‌गुण-दर्पण' तथा 'माधुर्य केलि कादम्बिनी' का इस सम्प्रदाय में विशेष सम्मान है। श्री मधुराचार्य जी के ग्रन्थो का रसिकोपासना में बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे आकर ग्रन्थ की भाँति पूजे जाते है तथा प्रमाण में प्रस्तुत किये जाते हैं ।

जिस प्रकार श्री जीवगोस्वामी ने अपने पक्ष के स्थापन के लिए श्रीमद्‌भागवत का आधार लिया है, उसी प्रकार श्री मधुराचार्य अपने पक्ष के स्थापन के लिए वाल्मीकीय रामायण का आधार लिया है। भले ही, अनेक स्थलो पर इनकी व्याख्या से आज का सुधी-समाज सहमत न हो, परन्तु श्री मधुराचार्य ने अपने पाडित्य एव तर्क के बल पर अपने मत का जो स्थापन किया है, वह साहित्य और दर्शन के विद्यार्थी के लिए अनुशीलन की वस्तु है, क्योकि इन ग्रन्थो ने परवर्ती 'रसिक' भक्तो को बहुत प्रेरणा दी है। 'श्री सुदर मणि सदर्भ' की भूमिका मे श्री पुरुषोत्तम शरण जी ने श्री मधुराचार्य जी की जो परम्परा दी है, वह इस प्रकार है—

माधुर्य रसमूर्ति श्री राम जी
|
आदि शक्ति श्री जानकी जी
|
अनन्य सेवी श्री हनुमान जी
|
श्री ब्रह्मा जी
|
श्री वसिष्ठ जी
|
श्री पराशर जी
|
श्री व्यास जी
|
श्री शुकदेव जी
|
श्री पुरुषोत्तमाचार्य
|
श्री गगाधराचार्य
|
यती श्री रामेश्वराचार्य
|
श्री द्वारानन्द जी
|
श्री देवानन्द जी
|
श्री श्यामानन्द जी
|
श्री श्रुतानन्द जी
|
श्री चिदानन्द जी
|
श्री पूर्णानन्द जी
|
श्री श्रियानन्द जी
|
श्री हर्यानन्द जी
|
स्वामी श्री रामानन्द जी
|
श्री अनन्तानन्द जी
|
पयहारी श्रीकृष्णदास जी महाराज

(१) श्री कीलस्वामी
|
छोटे श्री कृष्णदास
|
श्री विष्णुदास
|
रसिकेन्द्र श्री नारायण श्रमुनीन्द्र
|
श्री हृदय देव स्वामी
|
मधुर रस विजयशिरोमणि श्री मधुराचार्य जी महाराज

(२) श्री अग्रस्वामी
|
श्री नाभा स्वामी
|
श्री प्रियादास

श्री मधुराचार्य जी के सम्बन्ध में चिरान के महन्त श्री जीवाराम जी (श्री युगल प्रिया) ने 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में लिखा है—

मधुराचारज मधुर मरम शृगार उपासी।
रगमहल रसकेलि कुज मानसी खवासी॥
निमिकुल जन्य उदार सुखद मवध प्रतापी।
पहारी रसिकेन्द्र कृपमाधुर्य अयापी॥
द्वादस वार्पिक रास रस लीला करि बहु सुख दिये।
विपुल ग्रन्थ रच रसिकता राम राम पद्धति किये॥

कहते है, आपने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की एक लाख श्लोको में मधुरसाश्रयी टीका लिखी थी, जो अब अप्राप्य ही है। आपने बारह वर्ष तक श्री रामरासोत्सव का सकल्प किया और स्वय उसमे दिव्य अली रूप मे भली भाँति श्री ललीलाल जू का लाड लडाया। श्री अग्र-स्वामी की शृगार रस पर एक कुडलिया है जो इस रस के उपासको के गले का हार है और जिसमें इस रस की महिमा और मर्यादा का वर्णन है, जो इस प्रकार है—

रस शृगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि।
तुलवे को कोउ नाहि सोइ अधिकारी जग में॥
कचन कामिनि देखि हलाहल जानत तन में।
जावत जग के भोग रोग सम त्यागेउ द्वन्दा।
पिय प्यारी रससिंधु मगन नित रहत अनदा॥
नहि अग्र सम सत के सरलायक जग माहि।
रस शृगार अनूप है तुलवे को कोउ नाहि॥

इस तरह ऐतिहासिक कालक्रम मे देखने पर पता चलता है कि सोलहवी सदी से रामो-पासना मे मधुर भाव की विवृत्ति स्पष्ट रूप में मिलने लगती है। इसके पूर्व का साहित्य अभी उपलब्ध नही है। इस सम्प्रदाय को विद्वानो की घोर उपेक्षा अथवा तिरस्कार का शिकार होना पडा है और यही कारण है कि इसका बहुत-कुछ विकृत रूप ही हमारे सामने आया है। परन्तु इसका यह अभिप्राय कदापि नही कि इस साधना का स्वस्थ सबल एव सुग्राह्य रूप है ही नही। इसका साहित्य अपने-आप-में सर्वथा सम्पन्न एव अनुभव तथा प्रतिभा के प्रकाश से पूर्ण है। इस रसिक संप्रदाय की साधना और पच सस्कार का प्रसग हम यथास्थान प्रस्तुत करेंगे। यहाँ प्रसगत इतना संकेत से लिखना आवश्यक है कि—

१—इस सम्प्रदाय का नाम 'श्री सम्प्रदाय' है।
२—श्री लक्ष्मी जी आचार्य है
३—श्री हनुमान जी देवता है

४—श्री विश्वामित्र जी ऋषि है

५—श्री रामेश्वर जी धाम है

६—श्री अयोध्या जी धर्मशाला है

७—श्री चित्रकूट सुख विलास है

८—श्री रामानन्दी वैष्णव है

९—श्री दिगम्बर अखाडा है

१०—श्री कूवा जी का द्वारा है

११—श्री सीता जी इष्ट है

१२—मुख्य रस शृगार है

१३—अनन्त शाखा है

१४—उर्ध्वपुण्ड्र तिलक है

१५—श्री धनुष क्षेत्र है

१६—श्री गुरुद्वारा अयोध्या जी है।[1]

अब हम अगले दो अध्यायो में रामावत मधुर उपासना के साहित्य का स्वरूप निर्देश प्रस्तुत करेंगे—पहले सस्कृत ग्रन्थो के फिर हिन्दी के।

---

१ देखिये—श्री 'प्रेमलता' जी का जीवनचरित्र पृ० १०॥

सातवाँ अध्याय

रसिक परंपरा का साहित्य

(१)

संस्कृत में

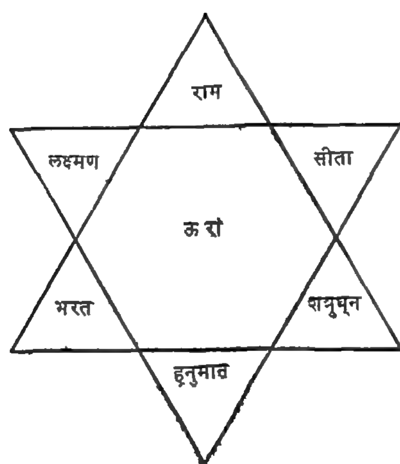
रामोपासना की रसिक परम्परा साहित्य, माधना एव दर्शन की दृष्टि से सर्वथा परिपुष्ट एव इतस्तत है। अवश्य ही इसको एक सुव्यवस्थित रूप नही मिला है और इसका अधिकाश माहित्य विखरा हुआ, समृद्ध और उपेक्षित रहा है। इसका मुख्य कारण, जैमा पहले कहा जा चुका है, यह रहा है कि इम सम्प्रदाय का समूचा माहित्य एक वहुत छोटी परिधि की सीमा में सिमट कर रह गया है तथा दूमरा कारण यह है कि इमके प्रति विद्वानो का आदर भाव नही रहा है। वे इस सम्प्रदाय तथा इसकी साधना को अत्यन्त हेय दृष्टि से देखते रहे है। एक और कारण भी है। विज्ञान के नये-नये अनुसधानो, वौद्धिक जागृति तथा देश में राजनीतिक आन्दोलनो एव उथल-पुथल के कारण भी लोगो की दृष्टि इस ओर नही गई। वहुधा इसका अत्यन्त विकृत रूप ही देखने को मिला जिसके प्रति हेय भावना घृणा का होना स्वाभाविक ही था। परन्तु इसी कारण हम इसके स्वस्थ रूप से भी अपरिचित रह जायँ, यह हमारा अभाग्य होगा।

किसी भी वस्तु के दो पक्ष होते है। शुक्ल और कृष्ण—यो देखा जाय तो क्या ईसाई धर्मसाधना, क्या सूफी साधना, क्या वौद्ध सावना और क्या कृष्ण-भक्ति की मधुर साधना में कम विकार आये ? और तो और अभी हम अपनी आँखो गाधीवादी साधना का भयकर पतन देख रहे है। सर्वोदयी इस पर यदि हम यह निर्णय कर वैठें कि ये मव-की-सव माधनाए क्षयग्रस्त जीवन की प्रतीक है या मानव-मन की अस्वस्थता के लक्षण है तो हमारा निर्णय मही माना जायेगा ? यही वात रामावत सम्प्रदाय की मधुर उपासना के सम्वन्ध मे भी कही जा सकती है। उमका एक स्वस्थ सवल पक्ष है और अस्वस्थ दुर्वल पक्ष भी। हम तो यहाँ साहित्य, साधना और मिद्धान्त की दृष्टि मे उसके सवल स्वस्थ पक्ष का ही अनुशीलन करेंगे। उमके विकारो को देख कर उससे भाग खडा होना और उसके सही रूप से अपरिचित रह जाना माहित्य के अध्येता को शोभा नही देता। अस्तु।

रामोपासना की मधुर साधना का साहित्य मस्कृत मे परम ममृद्ध और विपुल है। उममें कतिपय प्रमुख ग्रन्थो की ही चर्चा की जा मकेगी। मव मे पहले हम उमके उपनिपद् भाग को लेते है—

उपनिषद्

१ **श्री रामतापनीयोपनिषद्**—यह अथर्व वेद से लिया गया है। इसमें कुल ७५ मत्र है। आरम्भ में भगवान् राम का परत्व सिद्ध किया गया है[1] और यह दिखलाया गया है कि यह समस्त जगत राममय है, अत सत्य है। फिर जीवात्मा परमात्मा का क्या-क्या सम्बन्ध हो सकता है, उसका निर्देश है। सेव्य-सेवक, आधार-आधय, नियाम्य-नियामक, शेष-शेषी, व्याप्य-व्यापक, शरीर-शरीरी, पिता-पुत्र, भर्तृ-भार्या—इन नव सम्बन्धो से परमात्मा-जीवात्मा सम्बन्धित है। जैसे समस्त वृक्ष अपने बीज में स्थित है वैसे ही ब्रह्मादि स्थावरपर्यन्त चर-अचर सम्पूर्ण जगत् राम बीज में स्थित है।[2] वह श्री राम अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता से सदा आश्लिष्ट सयुक्त है।[3] इसके अनन्तर तान्त्रिक साधना के आश्रय पर आसनासीन रामपचायतन का आसन इस प्रकार स्थिर किया गया है—



दो त्रिकोणो की यह पद्धति अवश्यमेव तान्त्रिक साधना का प्रभाव सूचित करती है क्योकि वहाँ त्रिकोण योनि मुद्रा का प्रतीक माना जाता है। इस दो त्रिकोण के परस्पर सयोजन को देखते हुए यह स्वीकार करणा पडता है कि रामावत मधुर उपासना में तत्र का भी

---

१ राम सत्य पर ब्रह्म रामात्किचिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्य रूपोऽय सत्य सत्यमिद जगत्॥ स० स०

२ यथैव बटवीजस्थ प्राकृतश्च महाप्रभु।
तथैव राम—वीजस्थ जगद्देतच्चराचरम्॥

३ हेमामया द्विभुजया सर्वालकृतया चिता।
श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्ट कोसलजात्मज॥

यत्किंचित प्रभाव है। पडक्षर मत्र की महिमा वतलाते हुए ऋपि कहते हैं कि चूंकि यह गर्भ, जन्म, जरा, मरण आदि ससार के समस्त महान् भयो मे मनुष्य को तार देता है, इसलिए इसे 'तारक मत्र' कहते है।[1]

इस प्रकार इस उपनिषद् की प्रथम कडिका में वृहस्पति जी के प्रश्नोत्तर मे याज्ञवल्क्य ने तारक ब्रह्म का निर्देश किया, द्वितीय कडिका में तारक ब्रह्म का स्वरूप तथा प्रणव एव तारक की एकता तथा तृतीय कंडिका मे तारक ब्रह्म का अर्थ, वाच्च-वाचक की एकता और उपासना का स्वरूप वर्णन किया। अन्त मे भगवान् राम ने शिव को प्रसन्न होकर पडक्षर मत्रराज प्रदान किया जिसके कारण भगवान् शिव काशी में मुक्ति का सदाव्रत चलाते है।

२ **श्री विश्वंभरोनिषद्**—यह रामोपासना की मधुर उपासना के आकर ग्रन्थो मे सर्वसम्मान्य है। यह भी अथर्व वेद का अग माना गया है। 'श्री रामतत्त्व प्रकाशिका' टीका सहित यह अयोध्या से प्रकाशित हुआ है। इसमे भक्ति के प्रधान आचार्य शाण्डिल्य मुनि ने महाशभु से प्रश्न किया है—

(१) सव देवो में श्रेष्ठ, सगुण-निर्गुण मे परे वाणी मन-वुद्धि से अगोचर, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के सर्वेश्वर कौन है?

(२) वह मत्र कौन है जिसके द्वारा जीव ससार से मुक्त होकर भगवान् के साथ सायुज्य लाभ करता है?

इसके उत्तर मे महाशभु ने भगवान् राम को ही निर्गुण-सगुण ब्रह्म मे परे वतलाया है और कहा है कि वे अयोध्या में केवल रासलीला ही करते है।[2] उनके अनेक मत्र है, पर उनमें भी तीन मत्र अत्यन्त श्रेष्ठ है—(१) रा रामाय नम (२) श्रीमद्रारामचन्द्रचरणौ शरण प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्रायनम और (३) ऊँ नम सीतारामाभ्याम्। श्री राम जी ही सवके कारण है। उनके दो स्वरूप है—१—परिछिन्न और २—अपरिच्छिन्न। परिच्छिन्न स्वरूप मे श्री राम जी साकेत लोक मे स्त्रियो के समूह में रहकर केवल रासलीला करते है और अपरिच्छिन्न स्वरूप समार की उत्पत्ति का कारण है। उनके दाहिने अग मे क्षीर-समुद्रवासी अष्टभुजी भूमा पुरुष हुए है, वायें अग मे रमा वैकुण्ठवासी हुए है, हृदय से परनारायण हुए है और चरणो से वद्रीवन निवासी नरनारायण हुए है। उनके शृगार से नन्दनन्दन श्रीकृष्ण हुए है। सभी अवतार भगवान्

---

१ गर्भ-जन्म-जरामरण-ससार महद्भयात् सतार्यतीति तस्मादुच्यते तारकमिति।

—रा० ता० उ० २-३

२ सर्वावतर लीला च करोति सगुणो य अयोध्याया स्वयं रासमेव करोति स· सगुण-निर्गुणाभ्यां परस्वयपरमपुरुषस्य दाशरथेर्मन्त्रस्य नाद-विन्दु वाङ्मनसोरगोचरौ तस्य मंत्राश्चानन्तास्तेपु पट्शत वरियासस्तेपु च त्रयो मन्त्रा अतिश्रेष्ठानः।

—विश्वंभरोपनिषद् ५

रामचन्द्र की चरण-रेखाओ से उत्पन्न होते हैं।[1] परात्पर श्री राम नाम से ही नारायण आदि सब नाम उत्पन्न होते हैं।[2] अन्त में श्री अयोध्या जी में रतन-मण्डप में श्री जानकी जी सहित भगवान् श्रीराम का मगलमय ध्यान है जहाँ सभी देवता और देवियाँ सामने हाथ जोडे खडे है।

३ **श्री सीतोपनिषद्**—अनन्त श्री श्री सीतारामपदकजमकरन्दमधुमधुप श्री स्वामी सीतारामीय परमहस परिब्राजकाचार्य युगलविनोद विहारी शरण कृत तत्त्वबोधिनी टीका सहित ओकार प्रेस प्रयाग से सवत् १९२४ में मुद्रित तथा सियावल्लभशरण श्री जानकी कुण्ड युगल विनोद कुज चित्रकूट मे प्रकाशित यह छोटा सा उपनिषद् ग्रन्थ रत्न भगवती सीता का परत्व सिद्ध करता है और उन्हें ही आदि शक्ति महा महेश्वरी के रूप में प्रतिष्ठित करता है जिनके अशमात्र

---

१ सर्वे अवतारा श्री रामचन्द्रचरणेरेखाभ्य समुद्भवन्ति तथा अन्त कोटि विष्णवश्चचतुर्व्यूहश्च समुद्भवन्ति एवमयपराजितेश्वरमपरिमिता परनारायणादय अष्टभुजा नारायणादयश्चानन्तकोटि सख्यका बद्धाजलिपुरा सर्वकाल समुपासक्ता।

—वि० उ० ८

२ तुलनीय —

विष्णुर्नारायण कृष्णो वासुदेवो हरि स्मृत.।
ब्रह्म विश्वभरोऽनन्तो विश्वरूपकुलानिधिः॥
कलमषघ्नो दयामूर्ति सर्वग. सर्तसेवित ।
परमेश्वरनामा सतिउनि नेकानि पार्वति॥
एकादश महास्वच्छ उच्चारान्मोक्षदायकम्।
नाम्नामेव च सर्वेषा राम नाम प्रकाशक ॥

—महारामायण सर्ग ५१

तथा च

भानुकोटि प्रतीकाश चन्द्रकोटि प्रमोदकम्।
इन्द्रकोटि सदा मोद वसुकोटि वसप्रदम्॥
विष्णु कोटि प्रतीपाल ब्रह्मकोटि निसर्जनम्।
रुद्र कोटि प्रमद वै मातु कोटि विनाशनम्॥
भैरव कोटि सहार मृत्युकोटि विभक्षणम्।
यम कोटि राघर्ष कालकोटि प्रधावकम्॥
गधर्व कोटि सगीत गण कोटि गणेश्वरम्॥
काम कोटिकला नाथ दुर्गाकोटि विमोहनम्॥
सर्वसौभाग्यनिलय सर्वानन्देकदायकम्।
कौशल्यानन्दन राम केवल भवखण्डनम्॥

—सदाशिव–सहिता ५-७-१२

से अगणित महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, उमा, राधा, तारा, दुर्गा आदि निकली हैं।[1] सृष्टि, स्थिति और लय की नियामिका श्री जानकी जी हैं और भगवान राम भी आप के ही संकेत पर चलते हैं। भगवती सीता ही इच्छा शक्ति, कृपाशक्ति एवं साक्षात् शक्ति रूपों में हैं। इच्छा शक्ति के तीनभेद हैं—(१) श्री (भद्र रुक्मिणी), (२) भूमि (प्रभाव रूपिणी), (३) नीला (चन्द्र-सूर्य-अग्नि-स्वरूपा) इन्ही तीन शक्तियों के प्रतीक स्वरूप श्री से रुक्मिणी, भूमि से सत्य-भामा, नीला से राधा।[2] चन्द्र-स्वरूप होकर ओषधियो को उत्पन्न करती हैं, अमृत स्वरूपिणी होकर देवताओ को अत्युत्तम फल से संतृप्त करती हुई मनुष्यों को अन्न, पशुओं को तृण तथा समस्त जीवों को उनके योग्य आहार द्वारा सबका पोषण करती हैं। श्री सीता ही दिन में सूर्य और रात्रि मे चन्द्रमा के रूप मे चर-अचर को प्रकाशित करती हैं और इस प्रकार वे ही कालचक्र की मूल प्रवर्तिका हैं। अग्नि रूप में वे ही जठराग्नि, दावाग्नि, वाडवाग्नि, काष्ठ में विद्यमान अग्नि, देवताओ के मुख में विद्यमान अग्नि आदि हैं।

श्री रूप में वे ही लक्ष्मी हैं, भूमि रूप में भू भुव स्व आदि चौदहो लोको की आधार-आधेय प्रणव-स्वरूपिणी हैं और नीलारूप में विद्युत् समूहो से परिपूर्ण सभी ओषधियो, वनस्पतियो एवं प्राणिमात्र के प्राणो को पोसती हैं। क्रिया-शक्ति के स्वरूप परमात्मा के मुख से नाद हुआ, नाद से विन्दु और विन्दु से ओंकार। ओंकार से परे श्रीराम। श्रीराम से चारो वेद, इनकी शाखा-प्रशाखा, उपनिषद्, कल्प, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द आदि। यह क्रिया शक्ति साक्षात् ब्रह्म-स्वरूप है।

अब साक्षात् शक्ति के सम्बन्ध में कहते हैं। यह साक्षात् शक्ति श्री भगवान् के स्मरणमात्र से रूप के आविर्भाव, तिरोभाव, अनुग्रह, निग्रह, शान्ति, तेज, सदा भगवान की सहचरी, निमेष-उन्मेष से सृष्टि स्थिति संहार करनेवाली सर्वसमर्था है।

इच्छा शक्ति प्रलय की अवस्था में भगवान् के दक्षिण वक्षस्थल में श्रीवत्स स्वरूप होकर विश्राम करती हैं। इसी प्रकार क्रिया और साक्षात् शक्तियाँ भी भगवान् के हृदय में जाकर सो जाती हैं।

---

१ हर्षिता राधिका तत्र जानक्यंशसमुद्भवा।
रामस्यांशसमुद्भूतः कृष्णो भवति द्वापरे॥
—भुशुंडि रामायण में नारद के प्रति ब्रह्मा का वचन।
सीतोपनिषद् की उक्त टीका के पृ० ६ से उद्धृत।

२ सीतायाश्च त्रिविधांशाः श्री भूनीलादिभेदतः।
श्री भवेद् रुक्मिणी भूः स्यात् सत्यभामा दृढव्रता॥
नीलास्याद् राधिका देवी सर्वलोकैक पूजिता।
—ब्रह्माण्ड पुराण से उपर्युक्त सीतोपनिषद् की टीका पृ० ६ पर उद्धृत।

४ **श्री मैथिली महोपनिषद्**—श्री वाल्मीकि सहिता के पाँचवे अध्याय में १८ वें श्लोक के अनन्तर एक छोटा-सा 'श्री मैथिली महोपनिषद्' है जिसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीन तापो से मुक्ति के लिए 'ऊ राम' यह तीन अक्षरो का मत्र आया है और इसमे परम प्राप्तव्य, परम ज्ञेय भगवान् राम ही बताये गये है।[1] इसके अन्त में मत्र-परम्परा है जो यथापूर्व है।

५ **श्री रामरहस्योपनिषद्**—वैष्णव धर्म-प्रलेखक प० सरयूदास जी ने अपनी 'साकेत सुषमा'[2] में श्री राम रहस्योपनिषद् का एक उद्धरण दिया है जिसका अभिप्राय है कि अनन्त वैकुण्ठो का परम कारण श्री साकेतपुरी है।[3]

सहिता ग्रन्थ

रामोपासना में मधुर उपासना को लेकर अनेक सहिताओ का निर्माण हुआ है। इन सहिताओ का कालनिर्णय इस प्रकार विवाद-ग्रस्त है कि क्या अन्त साक्ष्य और क्या वहि साक्ष्य से किसी निर्णय पर पहुँचना बहुत कठिन है। ओटो श्रेडर ने सहिताओ की प्रामाणिकता के पक्ष में जो उदाहरण दिये हैं, उनमें इन सहिताओ से दो-एक के ही नाम मिलते हैं। परन्तु इसी आधार पर इन्हें श्रेडर का परवर्ती मानना भी भूल है। कारण यह है कि इन सहिताओ का प्रचार-प्रसार अत्यन्त सीमित क्षेत्र में रहा है और इनमें से कुछ तो अवतक भी अत्यन्त गोपनीय रूप में रसिक सम्प्रदाय के अन्दर-ही-अन्दर चलती हैं और बाहर की हवा उन्हें लगने नही दी जाती।[4] परन्तु मेरे देखने में इस सम्प्रदाय की लगभग बीस सहिताए आई हैं जिनमें रसिक परम्परा की साधना का वडा ही भव्य विन्यास हुआ है। अस्तु, साहित्य, साधना एव सिद्धान्त-सस्थापन की दृष्टि से इन सहिताओ का विशेष महत्त्व स्वीकार करना पडता है और इनके भीतर से साधना का जो स्रोत अखण्ड रूप से प्रवाहित होता आ रहा है, वह अनेकानेक मधुर रस के उपासको के लिए परम आश्रय एव आनन्द का कारण रहा है। इस सम्प्रदाय में मान्य सहिता ग्रन्थो की सूची इतनी विशाल एव

---

१ परात्परतरो निखिल गुणकरो जगतादिकारणभमिततेजोराशिर्ब्रह्मादि देवैरप्युपास्य श्री भगवान् दाशरथिरेव प्राद्योवाशरथिरेव प्राद्य.। सकलजगत् कारणवीज भक्तवत्सल· स एव भगवान् ज्ञेय स एव भगवान् ज्ञेय.।

२ सत्यनाम प्रेस, मैदागिन काशी से स० १९८२ में मुद्रित।

३ याऽयोध्यापू सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलधारा मूलप्रकृते परातत्सद् ब्रह्ममया विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोषा तस्या नित्यमेव सीतारामयो विहारस्थलमस्तीति।

—अथर्वणे उत्तरार्धे श्री रामरहस्योपनिषद् उत्तरखण्डे।

४ उदाहरणार्थ—श्री हनुमत्सहिता, श्री शिवसहिता, श्री लोमश सहिता।

व्यापक है कि यह सभव नही कि उनका विस्तार मे विवेचन हो सके, फिर भी यह ध्यान तो रहेगा ही कि कोई विशेष महत्त्व की उपयोगी वस्तु छूट न जाय। अस्तु।

१ **श्री हनुमत्संहिता**—श्री हनुमत्सहिता की चर्चा पहले भी आ चुकी है। श्री लक्ष्मी-नारायण प्रेस, मुरादाबाद में सन् १९०१ में पत्राकार छपी प्रति प्राप्त है। इसमें हनुमान अगस्त्य का सवाद है और भगवान् राम की रासलीला तथा जल-विहार का बडे ही विस्तार से एव परम मनोहर शैली में वर्णन हुआ है। सीता सभी सखियो की कायव्यूह है, क्योकि सीता के शरीर मे ही १८१०८ सखियो की सृष्टि होती है जिनके साथ भगवान् राम उतने ही शरीर धारण कर रास करते है। इसमें कुल ६० श्लोक है। ग्रन्थ के अन्तिम भाग में रस-प्रकरण है जिसमें दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य रस के आश्रय विषय, उद्दीपन, अनुभाव आदि का सक्षेप में विवरण है—जो रस-शास्त्र की दृष्टि से पूर्णतः परिपक्व है।

२ **श्रीशिवसंहिता**—श्री शिवसहिता बीस अध्यायो का एक विशाल ग्रन्थ है जिसे महात्मा रामकिशोरशरण जी की प्रेरणा से शिवहर स्टेट की श्री सिया किशोरी सहचरी जी ने प्रकाशित कराया है। इसमें आरम्भ में शिव-पार्वती-सवाद में पुन. अगस्त्य हनुमान के सवाद में साधु समागम की महिमा, श्रीराम के अनेक गुणो और विभूतियो का वर्णन, ध्यान, वन-दर्शन और पुन वन-केलि का वर्णन आया है। रास-विलास के प्रसग में ठीक वैसा ही भव्य मनोहारी, वर्णन है जैसा श्रीमद्भागवत के रासपचाध्यायी में मिलता है। नदी-नद सब स्तब्ध हो जहाँ के तहाँ रुक गये। पशु-पक्षी-कीट-पतग सब ब्रह्मानन्द में मग्न हो आत्म-विभोर हो गये। आकाश में देवताओ के विमान इस दृश्य को देखने के लिए छा गये। यहाँ तक कि इस दृश्य को देखकर शिव का हृदय भी विमोहित हो गया और वे अपना ताडव नृत्य भूल गये।[1] रासविलास के अनन्तर

---

१ तु०—कास्त्र्यंग ते कलपदामृत वेणुनाद।
सम्मोहितार्य चरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम्॥
त्रैलोक्य सौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं।
यद्गोमृगद्विजगणः पुलकान्य विभ्रन्॥

तुम्हारे मधुर स्वन् वेणुनिनाद को सुनकर और त्रैलोक्यमोहन रूप को देखकर कौन स्त्री कुलधर्म नहीं छोड देगी, जिनसे गायें, मृग और पक्षी भी पुलक-कंटकित हो जाते है।

नद्यो निष्पदवे गाश्च पशवश्च सरीसृपाः।
निश्चेष्टा अभवन्सर्वे मुक्ता इव निरामयाः॥
नो चेलु. किंचिदाकाशे विमानानि दिवौकसाम्।
मोक्षो योगसमाधीनां शिवताण्डवविद्रुतः॥ —शि० सं० ११, १०।

'मान' का प्रकरण है और फिर 'मनुहार' का प्रसग। इसके बाद है कदली वन में सीता-राम का प्रेम-प्रसग। सस्वरूप प्रकाशन के प्रसग में यह स्पष्ट आया है कि रसिक भक्त दिव्य गुणो से सम्पन्न श्रीराम जी में रमण करते हैं और उन भक्तो में स्वय श्रीराम जी रमण करते हैं।[1] सूक्ष्म अन्त-दृष्टि खुलने पर सारा ब्रह्माण्ड ही अयोध्या-सा प्रतीत होने लगता है और वहाँ अशोकवन में रम्य रसस्थान में नित्यलीला विहार में मग्न श्री सीताराम के दर्शन होते हैं।[2]

३ **श्री लोमश सहिता**—श्री लोमश सहिता की पूरी प्रति उपलब्ध नही है। एक खडित प्रति मिली है जिसमें केवल १५ वें अध्याय से लेकर २२ वें अध्याय तक कुल आठ अध्याय प्राप्त है। इसमें परमश्रेष्ठ मुनि पिप्पलाद तथा लोमश जी का सवाद है। कोटि कन्दर्पलावण्य रस-मूर्ति भगवान् श्रीराम का सीता जी के साथ और सीता जी की अनेक सखियो के साथ नानाविध रास-विलास का वर्णन है। यूथेश्वरियो में चन्द्रकला, विमला, सुभगा, मदनकला, चारुशीला, हेमा, क्षेमा, पद्मगन्धा, लक्ष्मणा, श्यामला, हसी, सुगमा, वशध्वजा, चित्ररेखा, तेजोरूपा, और इन्दिरावली जी ये सोलह मुख्य यूथेश्वरी सखियाँ हैं। इनमें चन्द्रकला की प्रमुखता है। वाह्य कार्यो में जैसे श्री भरतलाल जी का स्वतन्त्र सर्वाधिकार है, अन्तरग लीलाओ मे उसी प्रकार चन्द्रकला जी प्रधानता में श्रेष्ठ है। चन्दकलाजी श्री सीता-राम की सयोगलीला सघटित करती हैं। रास के समय का बडा ही भव्य सगीतमय वर्णन पढते ही बनता है—छन्द के माधुर्य एव ताल पर ध्यान बरबस खिंच जाता है—

अखण्डरासमण्डले सखीसमूहकल्पिते
रराज राजनन्दनी विमोहयन् जगत्त्रयम्।
प्रकामकामकामुको मनोजमत्रभाविता
रणन्सुवल्लकी भृश सुधासुधारया तदा॥
क्वचित्क्वचिद्वनान्तरे क्वचित्क्वचिल्लतान्तरे
क्वचित्क्वचित्कुचान्तरे प्रविश्य राजनन्दन ।
प्रदीपयन्मनोभव प्रदर्शयन्स्वलाघव
कलाकुतूहल मुहु प्रकामकामशास्त्रजम्॥

लो० स० २० १८७-१८९

---

१ रमन्ते रसिका यस्मिन् दिव्यानेकगुणाश्रये।
स्वयं यद्रमते तेषु रामस्तेन प्रयुज्यते॥ —शि० स० १८, ५

२ सर्वमेततदयोध्यैव सूक्ष्मदृष्टिसमर्पणे।
तत्राशोकवनं रम्य रसस्थान हि केवलम्॥
तन्मध्ये जानकी-रामौ नित्यं लीला रतौ स्थितौ।
सहितो वनिता यूथैः शतैरपि मनोहरैः॥ —शिव० स० २०. १३-१४

और अन्त मे युगल मिलन महोत्सव का एक दृश्य है—

हृदय हृदयेन मुखेन मुख करमध्यकरेण सरोजनिभम् ।
उरसा प्रिय वक्षसि सगमतो सुखमाद्य महोत्सवजन्यमहो ।

लो० स० २२।३६।

इस सहिता के अन्तिम भाग मे ऋषि ने वारवार मना किया है कि जो लोग रूक्षज्ञानी है, शुष्क हृदय हैं, महामूढता-वश कुतर्क करनेवाले और रस खण्डन करनेवाले है, निन्दक है, रस की कथा में लौकिक विषय वासना की दुर्गन्ध लाते है, ऐसे पुण्यहीनो को रास-रहस्य की यह कथा और चरित्र कभी नही सुनाना चाहिए।

४ **श्री वृहद् ब्रह्म सहिता**—इस दस अध्यायो में समाप्त वृहत् सहिता वैष्णवो की मधुर साधना का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ है। इसमें राधा-कृष्ण और सीता-राम दोनो की युगल उपासना का विधान है। आरम्भ के पाँच अध्यायो में वैष्णव-साधना का सामान्य विधान प्रस्तुत किया गया है। छठे अध्याय में राधाकृष्ण की उपासना का कामवीज एव कामकीलक और फिर तान्त्रिक शैली पर युगलोपासना की प्रक्रिया है। ठीक इसी के पश्चात्, सातवें अध्याय मे श्री रामावतार का हेतु तथा पुन पडक्षरात्मक, श्रीराम मत्र की महिमा का वर्णन है। 'श्री राम शरण मम' पर इस अध्याय में अनेक श्लोक है। यहाँ भगवान् राम का एक वडा ही भव्य ध्यान है।[1] आगे के शेष अध्यायो में वैष्णवाचार एकादशी, ऊर्ध्व पुण्ड्र-धारण आदि का व्याख्यान है।

५ **श्री अगस्त्य-संहिता**—श्री अगस्त्य सहिता, जैन प्रेस, लखनऊ से सन् १८९८ में पत्राकार तैंतीस अध्यायो और १३१ पृष्ठो में छपी मिलती है। यह श्री वैष्णवो की परम प्रामाणिक सहिताओ में परमादरणीय है। अगस्त्य और सुतीक्ष्ण का सवाद है। आरम्भ में वर्णाश्रमधर्म की प्रतिष्ठा है, फिर भिन्न-भिन्न फलो की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न राममत्र का न्यास, विनियोग, कीलक, वीज आदि के साथ उल्लेख है। इसके अनन्तर इक्कीसवें अध्याय तक ब्रह्मविद्या का निरूपण है।[2]

---

१ श्यामं वारिजपत्रनेत्रमनिसं प्रज्ञानमूर्ति हरिम्।
विद्युद्दीप्तपिशंग रम्यवसनं भास्वत्किरीटोज्ज्वलम्॥
कर्णालम्बित हेमकुण्डललसद् भ्रूवल्लिमत्यद्भुतं।
श्रीमन्तं भगवन्तमिन्दुसहित श्री जानकीशं स्मरेत्॥

—वृहद् ब्रह्म संहिता, अ० ७ श्लोक ५९

२ पश्य सर्वात्मना सर्वं सर्वत्रापि तपोनिधे।
प्रकाशते स्वय साक्षात्सच्चिदानन्दलक्षण.॥
राम एव परं ज्योतिः सच्चिदानन्द लक्षणम्।
इदं सत्यमिद सत्यं सत्यं नैवाति वर्तयेत्।
रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात्किंचिन्नविद्यते॥ —अं० सं० २४, १, २

इसके बाद के अध्याय में हृदय-कमल में सीताराम की आश्लिष्ट युगल मूर्ति का मगलमय ध्यान है—

मेघजीमूतसकाश विद्युवर्णावरावृतम् ।
सतप्तकाञ्चनप्रख्या सीतामागता पुन ॥
अन्योन्याश्लिष्टहृद्वाहुनेत्र पश्यन्तमादरात् ।
दक्षिणेन कराग्रेण कुचाग्रे च चलालकम् ॥
स्पृशत च तनोत्सर्गं परिहासैर्मुहुर्मुहु ।
विनोदयन्त ताम्बूलचर्वणैकपरायणम् ।
सर्वं रूपोज्वलद्वन्द्व योपितपुरुषयोरिव ।
श्री रामसीतयो सर्वं सपत्करविधायकम् ॥

इसके अनन्तर पडक्षरमत्र की महिमा एव यन्त्रकवचादि का विस्तार से वर्णन है और तत्पश्चात् पोडशोपचार पूजन का विधान है। इसमें लक्ष्य करने की एक वात है। भगवान् राम का जहाँ-जहाँ ध्यान आया है, वहाँ सीता से आश्लिष्ट आलिंगित मूर्ति का ही वर्णन है।

६ **श्री बाल्मीकि सहिता**—श्री वाल्मीकि सहिता पत्राकार आदर्श प्रिंटिंग प्रेस अहमदाबाद (गुजरात) स० १९७८ वि० में छपी प्राप्त है। श्री रामानन्दीय वैष्णवो में इस सहिता को परम श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। इसमें कुल पाँच अध्याय हैं और देखने से प्रतीत होता है कि अपेक्षाकृत नवीन है। जो हो, आरम्भ में बृहस्पति सभी मुनियो के सम्मुख श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्ति का व्याख्यान करते हैं, फिर राममत्र की महिमा कहते हैं और उसकी गुरु परम्परा बताते हैं जो अन्यत्र दी हुई परम्परा के अनुरूप ही है[1]। इसके अनन्तर विरक्त वैष्णवो के लक्षण एव कुलकृत्य का वर्णन है, दीक्षा सस्कार कण्ठी धारण आदि वैष्णवाचारो का वर्णन है। इस सहिता में लक्ष्य करने योग्य बात एक है और वह यह कि ऊर्ध्व पुण्ड्र के भेद-प्रभेद में भगवान् राम का श्री हनुमान के प्रति वचन है कि मेरे अनुरागी भक्त श्री नही धारण करते और सीता जी

---

१ इमा सृष्टि समुत्पाद्य जीवाना हितकाम्यया।
आद्यां शक्ति महादेवीं श्री सीतां जनकात्मजाम् ॥
तारक मत्रराज तु श्रावयामास ईश्वर ।
जानकी तु जगन्माता हनुमन्त गुणाकरम् ॥
श्रावयामास नून स ब्रह्माण सुधिया वरम्।
तस्माल्लेभे वसिष्ठर्षि क्रमादस्मादवातरत ॥
भूमौ हि राममत्रो य योगिनां सुखद शिव ।
एव त्र्यय समादाय मत्रराजपरपरा।
भूमौ प्रचलिता नित्या सर्वलोकसुखप्रदा॥ —वा० स० ६, ३२

के भक्त बीच में विन्दु श्री लगाते हैं[1]। इसके अन्त में भी 'श्री राम शरण मम' मत्र की महिमा का वर्णन है।

अब हम उन सहिताओ का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना चाहेंगे जिनकी चर्चा रामावत सम्प्रदाय के मधुरोपासक सन्तो ने साम्प्रदायिक आकार ग्रन्थो के भाष्य में मतस्थापन के लिए उद्धृत किया है।

७ श्री शुक संहिता—'उपासना त्रय सिद्धान्त' के पृष्ठ १२२ से १४३ पर उद्धत। आरम्भ में गोलोक विहार भगवान् कृष्ण एव राधारानी के रास-विलास का वर्णन है, फिर 'लीला' रहस्य का वर्णन है जिसमें राधा और कृष्ण दोनो ही परम देवाविदेव भगवान् राम के शरीर में प्रवेश कर गये। ये राम पुरुषोत्तम मात्र नही है, वे सनातन परब्रह्म है।[2]

एकबार चित्रकूट पर्वत में क्रीडा करते हुए भगवान् राम को मृगया में रत एव श्रान्त देखकर श्री जानकी जी ने कहा—आप पसीना-पसीना हो रहे है तथा सूर्य भी तप रहा है, थोडा विश्राम कीजिए। इस प्रस्ताव पर प्रिया-प्रियतम श्री सीताराम जी दिव्य माधुरी कुज में प्रवेश कर गये जो कामद गिरि के कदरान्तर शोभित है। उस माधुरी कुंज की शोभा और सुगन्ध का क्या कहना ? वहाँ सुन्दर पुष्पो की शोभा पर दर्शन, स्पर्शन, आलाप, प्रियासग के वाद सीताजी ने प्रस्ताव किया कि हम लोगो ने इस माधुरी कुज मे बहुत सुख पाया; परन्तु राधा-कृष्ण रूप मे भी हमारा लीला-विलास चलता रहे तो क्या ?[3]

इसपर भगवान् श्रीराम ने बडे प्रेम से कहा—प्रिये! तुम्हारा ही अश वृंदावनेश्वरी राधा है और मेरे ही अश गोपेन्द्र नन्दनन्दन श्रीकृष्ण है।[4] ऐसा कहकर भगवान राम ने वही पर दिव्य वृन्दावन दिखलाया, जिसमें नित्य यमुना, नित्य गोवर्धन, भिन्न-भिन्न वन, उपवन एव विहार-स्थली, श्री राधिका जी के सहित श्री कृष्णचन्द्र जी रासरस में उन्मत्त है। इस प्रकार युगल सरकार के नृत्य को दिखाकर श्रीराम जी ने सीता जी से कहा, प्रिये! तुम्हारा और मेरा स्वरूप यह दोनो प्रिया-प्रियतम श्री राधाकृष्ण लीलामय है। और सम्पूर्ण विश्व के प्यारे है। इतना कहते ही राधा-कृष्णात्मक दोनो स्वरूप श्रीसीतारामस्वरूप मे नमस्कार पूर्वक लीन हो गये—

---

१ मदनुरागिणो भक्ता धारयन्तो च न श्रियम्।
सीताभक्ताः प्रकुर्वन्ति मध्ये विन्दु श्रियंशुभाम्॥ —वा० सं० ४, २३

२ न वै स पुरुष· कश्चिन्न वै स पुरुषोत्तमः।
श्री राम संज्ञित धाम पर ब्रह्म सनातनम्॥

३ आवां प्रिय निकुंजेऽत्र सर्वर्तुसुखशोभितम्।
कश्चिन्न विहरिष्यावो राधाकृष्णाविवव्रजे॥

४ त्वदंशा एव राधा सा प्रिये वृन्दावनेश्वरी।
मदश एव नियत. कृष्णो गोपेन्द्रनन्दन·॥

इसके बाद के अध्याय में हृदय-कमल में सीताराम की आश्लिष्ट युगल मूर्ति का मगलमय ध्यान है—

मेघजीमूतसकाश विद्युवर्णीवरावृतम् ।
सतप्तकाञ्चनप्रख्या सीतामागता पुन ।।
अन्योन्याश्लिष्टहृद्वाहुनेत्र पश्यन्तमादरात् ।
दक्षिणेन कराग्रेण कुचाग्रे च चलालकम् ।।
स्पृशत च तनोत्सर्गं परिहासैर्मुहुर्मुहु ।
विनोदयन्त ताम्बूलचर्वणैकपरायणम् ।
सर्वं रूपोज्वलद्वन्द्व योपितपुरुषयोरिव ।
श्री रामसीतयो सर्वं सपत्करविधायकम् ।।

इसके अनन्तर पडक्षरमत्र की महिमा एव यन्त्रकवचादि का विस्तार से वर्णन है और तत्पश्चात् पोडशोपचार पूजन का विधान है। इसमें लक्ष्य करने की एक बात है। भगवान् राम का जहाँ-जहाँ ध्यान आया है, वहाँ सीता से आश्लिष्ट आलिंगित मूर्ति का ही वर्णन है।

६ **श्री बाल्मीकि सहिता**—श्री वाल्मीकि सहिता पत्राकार आदर्श प्रिंटिग प्रेस अहमदाबाद (गुजरात) स० १९७८ वि० में छपी प्राप्त है। श्री रामानन्दीय वैष्णवो में इस सहिता को परम श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। इसमें कुल पाँच अध्याय हैं और देखने से प्रतीत होता है कि अपेक्षाकृत नवीन है। जो हो, आरम्भ में बृहस्पति सभी मुनियो के सम्मुख श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्ति का व्याख्यान करते हैं, फिर राममत्र की महिमा कहते हैं और उसकी गुरु परम्परा बताते हैं जो अन्यत्र दी हुई परम्परा के अनुरूप ही है[1]। इसके अनन्तर विरक्त वैष्णवो के लक्षण एव कुलकृत्य का वर्णन है, दीक्षा सस्कार कण्ठी धारण आदि वैष्णवाचारो का वर्णन है। इस सहिता में लक्ष्य करने योग्य बात एक है और वह यह कि ऊर्ध्व पुण्ड्र के भेद-प्रभेद में भगवान् राम का श्री हनुमान के प्रति वचन है कि मेरे अनुरागी भक्त श्री नही धारण करते और सीता जी

---

१ इमा सृष्टि समुत्पाद्य जीवाना हितकाम्यया।
आद्या शक्ति महादेवीं श्री सीतां जनकात्मजाम् ।।
तारक मत्रराज तु श्रावयामास ईश्वरः।
जानकी तु जगन्माता हनुमन्त गुणाकरम् ।।
श्रावयामास नून स ब्रह्माणं सुधियां वरम्।
तस्माल्लेभे वसिष्ठर्षि ऋमावस्मावर्वातरत ।।
भूमौ हि राममत्रो य योगिनां सुखद शिव।
एव ध्यय समादाय मत्रराजपरपरा।
भूमौ प्रचलिता नित्या सर्वलोकसुखप्रदा।। —वा० स० ६, ३२

के भक्त वीच में विन्दु श्री लगाते हैं[1]। इसके अन्त में भी 'श्री राम शरण मम' मत्र की महिमा का वर्णन है।

अब हम उन सहिताओ का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना चाहेंगे जिनकी चर्चा रामावत सम्प्रदाय के मधुरोपासक सन्तो ने साम्प्रदायिक आकार ग्रन्थो के भाष्य मे मतस्थापन के लिए उद्धृत किया है।

७ श्री शुक संहिता—'उपासना त्रय सिद्धान्त' के पृष्ठ १२२ से १४३ पर उद्धत। आरम्भ में गोलोक विहार भगवान् कृष्ण एव राधारानी के रास-विलास का वर्णन है, फिर 'लीला' रहस्य का वर्णन है जिसमें राधा और कृष्ण दोनो ही परम देवाधिदेव भगवान् राम के शरीर में प्रवेश कर गये। ये राम पुरुषोत्तम मात्र नही हैं, वे सनातन परब्रह्म है।[2]

एकवार चित्रकूट पर्वत मे क्रीडा करते हुए भगवान् राम को मृगया में रत एव श्रान्त देखकर श्री जानकी जी ने कहा—आप पसीना-पसीना हो रहे हैं तथा सूर्य भी तप रहा है, थोडा विश्राम कीजिए। इस प्रस्ताव पर प्रिया-प्रियतम श्री सीताराम जी दिव्य माधुरी कुज में प्रवेश कर गये जो कामद गिरि के कदरान्तर शोभित हैं। उस माधुरी कुज की शोभा और सुगन्ध का क्या कहना? वहाँ सुन्दर पुष्पो की शोभा पर दर्शन, स्पर्शन, आलाप, प्रियासग के वाद सीताजी ने प्रस्ताव किया कि हम लोगो ने इस माधुरी कुज मे वहुत सुख पाया; परन्तु राधा-कृष्ण रूप मे भी हमारा लीला-विलास चलता रहे तो क्या?[3]

इसपर भगवान् श्रीराम ने वडे प्रेम से कहा—प्रिये! तुम्हारा ही अश वृंदावनेश्वरी राधा है और मेरे ही अश गोपेन्द्र नन्दनन्दन श्रीकृष्ण है।[4] ऐसा कहकर भगवान राम ने वही पर दिव्य वृन्दावन दिखलाया, जिसमें नित्य यमुना, नित्य गोवर्धन, भिन्न-भिन्न वन, उपवन एव विहार-स्थली, श्री राधिका जी के सहित श्री कृष्णचन्द्र जी रामरस में उन्मत्त हैं। इस प्रकार युगल सरकार के नृत्य को दिखाकर श्रीराम जी ने सीता जी से कहा, प्रिये! तुम्हारा और मेरा स्वरूप यह दोनो प्रिया-प्रियतम श्री राधाकृष्ण लीलामय है। और सम्पूर्ण विश्व के प्यारे हैं। इतना कहते ही राधा-कृष्णात्मक दोनो स्वरूप श्रीसीतारामस्वरूप में नमस्कार पूर्वक लीन हो गये—

---

१ मदनुरागिणो भक्ता धारयन्ती च न श्रियम्।
सीताभक्ताः प्रकुर्वन्ति मध्ये विन्दुं श्रियंशुभाम्॥ —वा० सं० ४, २३

२ न वै स पुरुषः कश्चिन्न वै स पुरुषोत्तम.।
श्री राम सज्ञित धाम परं ब्रह्म सनातनम्॥

३ आवा प्रिय निकुजेऽत्र सर्वर्तुसुखशोभितम्।
कश्चिन्न विहरिष्यावो राधाकृष्णाविवव्रजे॥

४ त्वदंशा एव राधा सा प्रिये वृन्दावनेश्वरी।
मदंश एव नियतः कृष्णो गोपेन्द्रनन्दनः॥

इस महान रचना पर भी सीता जी को हार्दिक आह्लाद नही हुआ और उन्होने रासोल्लास के लिए एक नवीन रचना का आग्रह किया। इसी पर श्रीराम जी ने सब लोको के ऊपर अपने लोक साकेत के अश से गोलोक का निर्माण किया जहाँ सबकुछ अयोध्या का प्रतिविम्ब है।[1] वह प्रतिविम्बरूप में कैसा हुआ, इसका वर्णन करते हैं। श्री सरयू जी यमुना बन गई, गोवर्धन मणि पर्वत बन गया, कल्पवृक्ष वशीवट बना, दशरथ नन्द हुए, कौसल्या यशोदा हुई, लीला के सब परिकर गोप हुए, जानकी जी राधा हुई, अशोकवन की देवी वृन्दा देवी हुई, उनके साथ श्रीराम जी राधाकृष्ण हो वशीनाद में निपुण, परम कौतुकी नित्य रास विलासादि की, सुन्दर लीला करने लगे। इस नूतन स्थान को देखकर जानकीजी का चित्त रम गया और वे श्री राम जी के साथ इस सच्चिदानन्द रूप में बहुत दिन तक काम-केलि विहार करती रही।[2]

उत्फुल्लकमलामोद वारीणिरुचिराणि च।
मेरु रचितवाँस्तत्र स्थानानि त्रिदिवौकसाम्॥
एव कृत्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥
देवानामपुराणा च मनुष्याणां च सौख्यदम्।
वास प्रकटयामास गृहारामादिशोभितम्॥

१ एवमभ्युदितो राम प्रियया साभिलाषया।
सर्वेषा चैव लोकानामुपरिस्थानमद्भुतम्॥
गोलोक कल्पयामास प्रादुर्भाव्यस्वलोकत।
अयोध्याया प्रतिकृतिर्यत्रसर्वापि दृश्यते॥

२ यमुनाया. परिणता सरयू सरसा सरित्।
अभूदगोवर्धनत्वेन विवि रत्नमयोगिरि॥
प्रमोदवन अत्रासीद्दिव्य वृन्दावन वनम्।
पारिजाततरुजीतो वशीवटतर्रुहि स.॥
ते च रासविलासाद्या प्रादुरासु समतत।
आभीरो सुरिवनो नाम रामधात्री पति पुरा॥
स एव समभून्नदो मागल्या च यशोदिका।
त एव गोपीगोपाद्या लीलापरिकराश्च ते॥
सैव श्री जानकी देवी वृषभानुसुताऽभवत्।
अशोकवनगा तत्र ह्यथ वृन्दावनेश्वरी॥
तया सह बभौ रामो वशीवादन कौतुकी।
नित्यरासविलासादि कुर्वाण सुमनोहरम्॥
गोलोकमखिल वीक्ष्य लीलापरिकरान्वितम्।
सद्य प्रसन्नहृदया प्रोवाच निजवल्लभम्।

८ श्री वसिष्ठ संहिता—इस सहिता का नामोल्लेख एव विषय विवरण 'उपासना-त्रय सिद्धान्त' मे आया है । इसमे दिव्य अयोध्या का वर्णन है। इसके ३६ वे अध्याय में लिखा है कि सर्वोपरि वैकुठ है, वैकुण्ठ से भी परे गोलोक है, गोलोक के मध्य मे साकेत लोक है, साकेत लोक के पूर्व मिथिला है, दक्षिण में चित्रकूट है, पश्चिम में वृन्दावन है, उत्तर मे महावैकुण्ठ है, जहाँ सब पार्षदो के सहित श्रीमन्नारायण रहते है। यही नारायण सृष्टिकर्ता २४ अवतारो के कारण है और ये ही श्री रामचरित के मुख्याचार्य है।

साकेत लोक सप्तावरणो के भीतर है। इन आवरणो का सविशेष वर्णन ही इस सहिता का मुख्य विषय है।[1] दिव्य अयोध्या तथा उसके सप्तावरणो का विवरण यथास्थान 'धामतत्त्व' मे आयेगा। इसके भीतर वारह वन हैं—शृगारवन, विहारवन, तमालवन, रसालवन, चम्पकवन, चन्दनवन, पारिजातवन, अशोकवन, विचित्रवन, कदववन, कामवन,नागकेसरवन। उस प्रमोदवन के चारो ओर पर्वत है, शृगार पर्वत, मणिपर्वत, लीलापर्वत, मुक्ता पर्वत। इन चारो पर्वत पर चार शक्तियाँ निवास करती है।

दृष्ट्वैदमद्भुत स्थान संपूर्णा मे मनोरया।
अयोध्यायाः प्रतिकृतिः क्वचित्तावत्ततोधिकाम्॥
आवां अत्रैव रंस्याव. सुचिरं कामकेलिभिः।
अतीव सुन्दरे स्याने सच्चिदानन्द मन्दिरे॥
एवमुक्तस्तया सार्द्धं रेमे वृन्दावने प्रभुः।
यया गायन्ति मुनयो महाभावविभूषिता.॥

—शुक सहिता, प्रथम अध्याय चतुर्थ पाद

१ सर्वेभ्यश्चापि लोकेभ्यश्चोर्ध्वं प्रकृतिमण्डलात्।
विरजायाः परे पारे कुण्डं यत्परं परम्॥
तस्मादुपरि गोलोक सच्चिदिन्द्रियगोचरम्।
तन्मध्ये रामधामस्ति साकेतं यत्परात्परम्॥
परान्नारायणाच्चैवकृष्णात्परतरादपि॥
यो वै परतम श्रीमान् रामो दाशरथि. स्वराट्॥
यस्यानंतावताराश्च कला अशविभूतयः।
आवेशा विष्णु ब्रह्मंशा. परं ब्रह्मस्वरूपमा.॥
सीतया सह रामस्य लीलारसविवर्द्धन।
चिद्रूपा काचनी भूमिः समारत्नै विचित्रिता॥
वाड्मनोगोचरानीत प्रमोदारण्यसंज्ञकम्।
रामस्याति प्रियं धाम नित्यलीलारसास्पदम्॥

परात्पर ब्रह्म राम ही सबके आदि कारण है। ब्रह्मा विष्णु महेश आदि जिनके अश के आवेश हैं। वे राम श्रीसीता जी के साथ दिव्य प्रमोदवन में नित्य विहार करते हैं।[1]

९ **सदाशिव सहिता**—स्वामी रामचरण दास 'करुणासिधु' ने श्री रामनवरत्न सार सग्रह–ग्रन्थ तैयार किया था, जो प० रामवल्लभा शरण जी की लिखी रत्नप्रभा टीका सहित स० १९८५ में गोकुल प्रेस अयोध्या मे मुद्रित हुआ। इसमें कई स्थानो पर नाम-महिमा के सम्बन्ध में सदाशिव सहिता का उल्लेख है।[2] इसके अनन्तर दिव्य अयोध्या एव उसके सप्त आवरणो का विशेष विस्तार से वर्णन कर साकेत विहारी भगवान राम और भगवती सीता का वडा ही भव्य ध्यान है।[3]

१० **श्री महाशभु सहिता**—श्री रामनवरत्न के पृष्ठ ११ पर महाशभु सहिता के दो श्लोक उद्धृत है जो जानकी जी ने श्री रामचन्द्र के प्रति कहे है। यहाँ 'राम' नाम की महिमा का विषय है। श्री जानकी जी कहती है कि कोई प्रणव को श्रेष्ठ कहते हैं, कोई और मत्र को, परन्तु प्रणव या अन्य बीज मत्र भी रकार मकार से ही सिद्ध होते है। राम मत्र का प्रभाव पूरा-का-पूरा समझ लेना कठिन है। वेद अनादिकाल से 'राम' के नाम की थाह नही पा रहे है तो औरो की क्या कथा ?[4]

---

१ तुलनीयः—

यस्यांशेनैव ब्रह्माविष्णुमहेश्वरापि जाता महाविष्णुर्यस्य दिव्यगुणाश्च। स एव कार्यकारणयो॰ परःपरमपुरुषो रामो दाशरथिर्बभूव। स श्री राम.सविता सर्वेषामीश्वर॰यमेवैष वृणुते स पुमानस्तु यमेवदस्माद्भूर्भुव स्व त्रिगुणमयो बभूव इतीम नरहरि स्तौतीम महाविष्णु, स्तौतीम विष्णु स्तौतीम महाशभु, स्तौतीम द्वैत मण्डल तपति यत्पुरुष दक्षिणाक्ष मण्डलो वै मण्डलाचार्य मण्डलस्थमिति सामवेदे तैत्तिरीयशाखायाम्।

—श्री रामोपासना, पृ० १६३ पर उद्धृत

२ सर्वसौभाग्यनिलय सर्वानन्दैकनायकम्।
कौसल्यानन्दन राम वदेऽह भवखण्डनम्॥

श्री रामनवरत्न, पृ० १९, लक्ष्मण का वेदो के प्रति कथन

३ स्निग्धमिन्दीवरश्याम कोटीन्दुललितद्युतिम्।
चिद्रूप परमोदार जानकीप्रेमविह्वलम्॥
दोर्दण्डचण्डलोछण्ड शरच्चन्द्र महाभुजम्।
सीतालिंगितवामाक कामरूप रसोत्तमम्॥
तरुणारुणसकाश विकचाबुजपादकम्॥

४ प्रणव केचिदाहुर्वै वीज श्रेष्ठ तथापरे।
तत्तु ते नाम वर्णाभ्या सिद्धिमाप्नोति मे मतम्॥

११. हिरण्यगर्भ सहिता—श्री रामनवरत्न के उक्त सस्करण के पृष्ठ ४१ पर हिरण्य-गर्भ सहिता का उल्लेख है और अगस्त्य जी ने सुतीक्ष्ण जी से कहा है कि अद्वैत आनन्द शुद्ध चैतन्य सात्वैकलक्षण श्री रामचन्द्र जी सब के भीतर-बाहर इस ब्रह्माण्ड मे प्रकाशित हो रहे है।[1]

१२. महा सदाशिव सहिता—श्री रामनवरत्न के उक्त सस्करण के पृष्ठ ५७-५९ तक महा सदाशिव सहिता का उल्लेख है जिसमे यह कहा गया है कि नाना प्रकार के मत्रो, नामो, चिह्नो मे भरमना और भटकना व्यर्थ है। मत्रमे श्रेष्ठ श्री रामनाम है जिसके परमाचार्य श्री हनुमान जी है, शेष सभी नाम श्री रामनाम के अश-मात्र है, परम धाम श्री रामधाम है, रामभक्ति ही राजमार्ग है। श्री मैथिली जी के सहित श्रीराम जी का मत्र, श्री हनुमान जी को महान् गुरु तथा श्री सीताराम जी के प्रति सखी भाव यही सदा मुक्ति देनेवाला है।[2]

१३—ब्रह्म सहिता—श्री रामनवरत्न मे पृष्ठ २६ पर ब्रह्मसहिता का एक ही श्लोक उद्धृत है—

पूर्ण पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वह।
अशानृसिंहकृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम्॥

भगवान् राम जी पूर्णावतार पूर्ण ब्रह्म है, कृष्ण, नृसिहादि अवतार अश है, श्री राघव स्वय भगवान् है।

१४, १५, १६, १७ पुराण सहिता, आलमदार सहिता, बृहत्सदाशिव सहिता, तथा सनत्कुमार सहिता श्रीराधाकृष्ण की लीलाओ के सबध मे होते हुए भी श्री सीताराम की मधुर उपासना को हृदयगम करने के लिए परम उपयोगी है।[3]

रामेति नाममात्रस्य प्रभावमतिदुर्गमम्।
मृगयन्ति तु यद्वेदा. कुतो मन्त्रस्य ते प्रभो॥

१ अद्वैतानन्दचैतन्यं शुद्धसत्त्वैकलक्षणम्।
बहिरंतः सुतीक्ष्णोऽत्र रामचन्द्रः प्रकाशते॥

२ श्री राममंत्रस्यांशानि मन्त्राण्यन्यानि विद्धि च।
हनुमताचार्येणाहो रामधाम सता पदम्॥
श्री जानक्या. पति सर्वे भजस्व मंगलायनम्।
राममंत्रेणायुधाभ्यां युक्ताः शशुभिरे भुवि॥
आद्याचार्यहनुमंतं त्यक्त्वाहृयन्यमुपासते।
क्लिश्यंति चैव ते मुग्धा मूलगा पल्लवाश्रिता.॥
श्री मैथिल्याश्च मंत्रं हि श्री गुरुं मारुत महत्।
सखीभाव दपतीष्टं भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा॥

३ इन चारो सहिताओ का बहुत ही सुन्दर तथा शुद्ध सस्करण चौखंभा-सस्कृत-सिरीज, विद्या विलास प्रेस से प्रकाशित हुआ है, जो परम संग्रहणीय है।

स्तवराज और गीति

१ श्री रामस्तवराज—इसकी एक प्रति सनत्कुमार संहिता से संकलित श्री हरिदास कृत भाष्य से समलंकृत श्री सीताराम मुद्रणालय अयोध्या में वि० संवत् १९८६ में मुद्रित उपलब्ध है। एक और प्रति रसराममणि श्री सीतारामशरण जी के भाष्य से भूषित वि० सं० १९५८ में बम्बई से प्रकाशित प्राप्त है। पहली टीका बहुत ही विद्वत्तापूर्ण एवं वैष्णव साधना के आकर-ग्रन्थों के प्रमाणों से परिपुष्ट है। यह स्तवराज कुल ९९ श्लोकों का है और राम का परात्परत्व, श्री रामनाम की महिमा तथा श्री सीताराम का युगल ध्यान का विषय ही इसमें आया है। इस स्तवराज के सनत्कुमार ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीराम देवता हैं, श्रीसीता बीज हैं और श्री हनुमान जी शक्ति हैं। आरम्भ में ध्यान के दो श्लोक (११, १२) है।[1]

अन्त में भी ध्यान के दो श्लोक हैं।[2] भाष्यकार श्री हरिदास ने शास्त्रों के वचनों द्वारा अनेक स्थलों पर यह सिद्ध किया है कि राम का रूप ही ऐसा है कि जो भी देख ले, वह मुग्ध हो जाय और इसी पक्ष में दण्डकारण्य के मुनियों का प्रसंग प्रस्तुत किया है। कहते हैं कि राम का रूप देखकर जब तपस्वी पुरुषों की यह स्थिति है तब स्त्रियों की क्या कही जाय।[3] ऐसा रमणीय है राम का रूप। श्री हरिदास ने बड़े ढंग से एक स्थान पर, ५२ वें श्लोक का भाष्य करते हुए कहा है कि जैसे पिता द्वारा कन्यादान के अनन्तर वह कन्या अपने पति की भार्या हो जाती है और अपने पिता

---

१ अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डप मध्यगे।
स्मरेत्कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्॥
तन्मध्ये षड्दलं पद्मं नानारत्नैश्च वेष्टितम्।
स्मरेन्मध्ये दाशरथिं सहस्रादित्यतेजसम्॥

२ वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम्।
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुते तत्त्वं च सान्द्रं परम्।
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम्॥ —रा० स्त० श्लोक ९५

रामं रत्नकिरीट कुण्डलयुतं केयूरहारान्वितम्।
सीतालंकृतवामभागममलं सिंहासनस्थं विभुम्॥
सुग्रीवादिहरीश्वरैः सुरगणैः संसेव्यमानं सदा।
विश्वामित्रपराशरादिमुनिभिः संसेव्यमानं प्रभुम्॥ —रा० स्त० श्लोक ९६

३ पुंसामपि स्त्रीभावेन श्री रामभजनमुपपद्यते किमुत स्त्रीणाम्?
न रामरूपादीनां केवलं स्त्रीपुरुषाणामेव दृष्टिचित्तापहारकत्वमुपपद्यते, किन्तु स्थावरजंगमात्मकस्य सर्वं जगतोऽपि।
—श्री रामस्तवराज भाष्यम्, श्री हरिदासकृत, पृ० ६८

का गोत्र छोडकर पति के गोत्र मे सम्मिलित हो जाती है, उसी प्रकार सद्गुरु की कृपा से जीव भगवान् श्रीराम का प्रपन्न होकर अपने माता-पिता का गोत्र छोडकर अच्युत भगवान् राम के गोत्र मे चला जाता है।[1]

लक्ष्य करने की बात यह है कि रामस्तवराज के भाष्यकार श्री हरिदास सभवत गालवाश्रम के श्री मधुराचार्य के शिष्य श्री स्वामी हर्याचार्य ही हैं।

२. **श्री जानकी स्तवराज**—जैसे रामस्तवराज सनत्कुमार सहिता से लिया गया है, वैसे ही श्री जानकी स्तवराज अगस्त्य सहिता से सकलित है। इसमे कुल ६९ श्लोक है। यह सवत् १९८५ में वेंकटेश पुस्तकालय, अयोध्या से प्रकाशित हुआ है। आरम्भ के ४५ श्लोको मे भगवती सीता का नखशिख ध्यान बडी ही भव्य एव उदात्त कवित्वमयी शैली मे हुआ है। श्री जानकी जी के अग-प्रत्यग का ऐसा मनोहारी वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। उनके तलवो की लाली क्या है कि भक्तो का अनुराग ही पुजीभूत होकर चरणो मे लिप्त है। मस्तक पर लाल बिन्दी भी भक्तो की प्रीति का प्रतीक है। जो श्री रामजी को प्रसन्न करना चाहते है, उनके लिए यह सर्वथैव अनिवार्य है कि श्रीसीता जी चरणो का सेवन करे और उनमें रति हो।[2]

श्री जानकी गीत

श्री जानकी गीत रसिक रामोपासको का परम प्रिय ग्रन्थ है। इसका प्रणयन श्री गाल्वाश्रम (गलता गद्दी) के पीठाधीश्वर, स्वामी श्री हर्याचार्य ने किया और अब सवत् २००९ मे श्री सीतारामशरण जी की 'रसबोधिनी' टीका सहित श्री हनुमत्प्रेस, अयोध्या से मुद्रित हुई है। यह ग्रन्थ राममधुररसोपासको में उसी स्थान का अधिकारी है जो कृष्णमधुरोपासको में 'गीतगोविन्द' और 'राधा-विनोद' को प्राप्त है। बडे ही रसभरे छदो मे पूरे छह सर्गो में यह समाप्त है। श्री हर्याचार्य श्री मधुराचार्य के पट्टशिष्य थे। इस ग्रन्थ में उनका मधुररसप्लावित हृदय,

---

१ किन्तु सकल्पयितृसमर्पिता कन्या यथा स्वपतेर्भार्या भवति स्वपितुर्गोत्रं विहाय स्वपतिगोत्रीया च भवति, तथैव सकृद् गुरुसमर्पितो यो जीव. श्री रामस्य प्रपन्नो भवति स्वपितुर्गोत्र विहायाच्युतगोत्रश्च भवतीति।

—श्री हरिदासकृत श्री रामस्तवराजभाष्यम्, पृ० १९९

२ यावन्न ते सरसिजद्युतिहारि न स्याद्रतिस्तरुनवाकुरखडिताशे।
तावत्कथ तरुणिमौलिमणेर्जनानां ज्ञानं दृढ भवति भामिनि रामरूपे॥

—श्री जानकीस्तवराज, श्लोक ४९

योगाधिरूढमुनयो हरिपादपद्मे ध्यायन्ति ये चरणपंकजयुग्ममंत।
वांछंति विघ्नशतशो ह्यनिवार्यमाणा भक्ति भवाब्धितरणाय कृपापयोधेः॥

—श्री जानकीस्तवराज, श्लोक ५१

अगाध पाण्डित्य, लोकोत्तर कवित्वशक्ति, मगीत की अलौकिक प्रतिभा का एक साथ दर्शन होता है। मगलाचरण का ही श्लोक मधुरोपासना का दिव्य सकेत है—

नवरागभरा चिताप्तवृत्ते
सरयूकुजगृहेषु राघवस्य।
जनकात्मजया सम समन्ताद्
विजयन्ते रति केलयोऽनवद्या ॥

—भावार्थ यह कि नितनूतन प्रीतिराग मे परिपूर्ण श्री राघव जी श्री श्री जानकी जी के साथ श्री सरयू कुजगृहो में होने वाली सच्चिदानन्दमयी केलियाँ निरन्तर विजय को प्राप्त हो।'[1] श्री चन्द्रकला जी द्वारा वमन्त की वन शोभा का वर्णन सुनकर श्री जानकी जी तुरन्त उस शोभा को देखना चाहती हैं, परन्तु चन्द्रकला जी वन की शोभा के साथ-साथ वहाँ अन्य सखियो के साथ राम की क्रीडा का वर्णन करने लगती है।[2] अब जानकी जी इस पर प्रणयक्रोध से भर जाती हैं। इस प्रकार मान-विधान मे प्रथम सर्ग समाप्त होता है।

अब श्री जानकी जी के हृदय में भगवान् 'राम' से मिलन के लिए उत्कठा जगती है और श्री चन्द्रकला जी से वे अपना विरह निवेदन करती है। उन्हें यह आशका है कि किसी अन्य भाग्य-शालिनी नायिका के साथ रामचन्द्र एकान्त विहार कर रहे है। प्रणय-कलह एव विरह-पीडा से खिन्न जानकी के म्लान हृदय का करुण चित्रण दूसरे सर्ग में है।

---

१ तुलनीय :

हेमाभया द्विभुजया सर्वालकारयभूषिता
श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्ट कोशलजात्मज ॥ —रा० पू० ता० उ०

अर्थात् स्वर्ण की कान्ति के सदृश गौर वर्णवाली, सभी आभूषणो से भूषित चिद्रूपा, कमल धारण करनेवाली श्री जानकी जी से आलिगित श्री रामचन्द्र जी आलिगनजन्य आनन्द से पुष्ट है।

२ क्रीडति रघुमणिरिह मधुसमये
पश्य कृशोदरि भूपतितनये।
जानकि हे वर्द्धितयौवन मानमये॥
कापि विचुम्बति त कुलबाला,
गायति काचिदभ्र धृतताला
कामपि सोऽपि करोति सहासां।
कलयति काचन कामविकाशाम्॥
हरिर्वर्णितमिदमनुरघुवीर
निवसतु चेतसि सरस गभीरम्॥

तीसरे सर्ग में श्री रामचन्द्र जी श्री जानकी जी की कोपशान्ति का उपाय सोच ही रहे हैं कि श्री चन्द्रकला जी आ जाती है। चौथे सर्ग में श्री चन्द्रकला जी भगवान् रामचन्द्र जी से श्री जानकी जी की ओर से मनुहार करती है और ऐसा करते हुए श्री जानकी का विरह-विदग्ध एव विभ्रान्त चित्त का एक मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करती है। इस पर श्री रामचन्द्र जी दोनो हाथ जोडकर निवेदन करते है कि यह वसन्त का समय है और इस समय सीता जी का मान करना उचित नही है। इतना ही नही, श्री जानकी जी का मान शमन करने के लिए श्री रामचन्द्र जी ने उनके चरणो में प्रणाम करते हुए उन्हें नाना प्रकार से प्रसन्न किया।[1]

पाचवें सर्ग में मानलीला का शमन हो चुका होता है और प्रिया-प्रियतम को धूलिधूसरित देखकर सखियाँ जलक्रीडा का प्रस्ताव उपस्थित करती है और सीताराम नाना प्रकार की जल-क्रीडाओ मे मग्न है। यह जलक्रीडा वडी देर तक चलती है और इसमे अन्य सखियाँ भी सम्मिलित है। इसके अनन्तर भोजन होता है और तव श्री किशोरी जी के साथ श्री कोशलराजकिशोर जी सुखपूर्वक सिंहासन पर विराजमान है। इसके अनन्तर रास शुरू होती है दो-दो सखियो के बीच एक-एक राम। वीच में सीताराम। नित्य निकुजविहारिणी दिव्य वस्त्रधारिणी श्री किशोरी जी ने रासरस की उमग मे भरकर इपत् हास्यमय रसभरे कटाक्ष से प्राणवल्लभ को देखा। श्री प्रिया जी तथा प्रियतम जी रासमण्डल से निकल-निकल कर नृत्य करते है और पुन मण्डल में यथास्थान आ जाते है। यही पाँचवाँ सर्ग समाप्त होता है।

छठें सर्ग मे रास-नृत्य के अनन्तर रासकेलि का प्रसग है। श्रीराम जी के अग की जैसी मेघ-कान्ति है उसी रग की साडी श्री जानकी जी ने धारण किया है और श्री जानकी जी के अग की जैसी विद्युत कान्ति है उसी रग की धोती श्री राम जी ने पहनी है। इसी सर्ग मे साम्प्रयोगिकी लीला का भी निरूपण है।[2] इस प्रकार इस युगल मिलन में श्री जानकी-गीत की परिणति है।

---

१ प्रणम्य पादौ जनकात्मजायाः
प्रसादनं कुर्वति रामचन्द्रे।
द्विपस्तया प्रांशु जगर्ज वक्ष-
स्तटीं यथासौ सहसाऽस्य भेजे॥

—जानकीगीतम् ४, ३

२ रामस्य जानुपरिसेवितसञ्जितम्वा,
वक्षस्युपाहितकुचास्यभुजोपधाना।
कण्ठे समर्पितभुजा वदने धृतास्या,
श्री जानकीकुसुमचापधृतापि शेते॥

—श्री जानकीगीतम् ६, १

२ **आनन्द रामायण**—आनन्द रामायण रामभक्ति के रसिकोपासको का एक प्रधान ग्रन्थ है। अनुमानत इसकी रचना १५ वी शताब्दी में हुई होगी। अध्यात्म रामायण के कई उद्धरण इसमे मिलते है। इसमें कुल १२२५२ श्लोक और ९ काण्ड है। पहला काण्ड **सारकाण्ड** है, जिसमें १३ सर्ग है। इसमें राम-जन्म से लेकर सीताहरण तक का प्रसग है। दूसरा **यात्रा-काड** है, जिसमें ९ सर्ग है। इसमें राम की तीर्थयात्रा का प्रसग है। तीसरा काण्ड **यागकाण्ड** है, जिसमें ९ सर्ग है। इसमें रामाश्वमेध का वर्णन है। चौथा काण्ड **विलास-काण्ड** है, जिसमें ९ सर्ग है। इसमे सीता का नखशिख वर्णन, सीता के नानाविध शृगारो एव अलकारो का वर्णन, राम-सीता की जलक्रीडा,[1] नाना विहार-विलास तथा उनकी दिनचर्या का बडे विस्तार से वर्णन है। इसी काण्ड के सर्ग ७ से १९ तक में राम के एकपत्नीव्रत रखने के कारण अगले अवतार में बहुत ही पत्नियो को प्राप्त करने का आश्वासन मिलता है। तथा कामपीडिता देव-पत्नियो को कृष्णावतार में गोपिकाएँ बनने का आश्वासन मिलता है। आठवे सर्ग में गुणवती तथा पिंगला को क्रमश सत्यभामा तथा कुब्जा बनने का आश्वासन राम देते है। नवें सर्ग में राम सीता-सहित कुरुक्षेत्र की यात्रा करते हैं।

पाँचवाँ काण्ड **जन्म-काण्ड** है, जिसमें ९ सर्ग है। इसमें राम द्वारा सीता-त्याग की कथा आती है, फिर लव-कुश का जन्म। फिर कुश-लव का राम की सेना से युद्ध, उर्मिला, श्रुतिकीर्त्ति तथा माडवी के दो-दो पुत्र उत्पन्न हुए।

छठा काण्ड **विवाह-काण्ड** है, जिसमें ९ सर्ग है। इसमें राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के आठ पुत्रो के विवाह का प्रसग है।

सातवाँ काण्ड **राज्य-काण्ड** है, जिसमें २४ सर्ग है। इसमें राम की अनेक विजय-यात्राओ का वर्णन है। राम के रूप को देख कर स्त्रियाँ प्राय कामातुर हो जाती है और राम अपने अगले (कृष्ण) अवतार में उनकी लालसा पूरी करने का आश्वासन देते है। इसमें लगभग १६१०८

---

१ मुष्टिभ्या जानकी राम ताडयामास कौतुकात्।
सोऽपि तां ताडयामास मुष्ट्या पुष्पसमानया॥
चुचुम्ब तस्या बिंबोष्ठ चूर्णयामास तत्कुचौ।
मुक्त्वा तत्कचुकीबधमालिग्य हृदयेन ताम्॥
मुमोच कच्छ श्रीरामः सीताया स्वकरेण स ।
उड्डीय वस्त्र हस्तेन तद्रम्भोरू ददर्श स ॥
तत. करेण तन्नीवीं रामश्चाकर्षयन्मुदा।
सीता चाकर्षयद्वेगाद्रामनीवीं स्मितानना॥
एव परस्पर क्रीडां चक्रतुर्दम्पती मुदा।
क समर्थस्तयो क्रीडां सविस्तारा निवेदितुम्॥

—आनन्द रामायण, सर्ग ६, श्लोक ५२-५६

स्त्रियो को राम अपने कृष्णावतार मे अगमग का वचन देते है। इक्कीमवे सर्ग में राम का ताम्बूल-रस उनकी एक दामी पी जाती है, जिसके पुरस्कारस्वरूप उसे अगले जन्म मे राधा वन जाने का वरदान मिलता है। इस काण्ड के अनेक स्थलो में यह मिद्ध किया गया है कि कृष्णावतार की अपेक्षा रामावतार श्रेष्ठ है।

आठवाँ काण्ड **मनोहर-काण्ड** है, जिसमें १८ सर्ग है। इस काण्ड में रामोपामना विधि, राम-नाम-माहात्म्य, चैत्र-माहात्म्य, रामकवच आदि है।

नवाँ काण्ड **पूर्ण-काण्ड** है, जिसमे ९ सर्ग है। इसमे कुश के अभिषेक तथा रामादि के वैकुण्ठारोहण की कथा है।

३ **महारामायण**—महारामायण श्री जानकीजीवन दास-कृत भाषातिलक के साथ अयोध्या से वि० स० १९८५ मे छपा है। यह एक खण्डित प्रति कुल पाँच सर्गो की है। कहते है, इसकी पूरी प्रति काश्मीर राजकीय पुस्तकालय में मुरक्षित है। जो हो, जो प्रति प्राप्त है उसमें कुल पाँच सर्ग है। प्रथम सर्ग मे ८९ श्लोक है और इसमें भगवान् राम के चरणचिह्नो का मविशेष वर्णन है। दूसरे सर्ग में २७ श्लोक है और इसमें राम-भक्ति-प्राप्ति के उपाय, रामभक्तो का लक्षण तथा धनुषवाण-धारण की विधि का प्रसग है। तीसरे सर्ग में २६ श्लोक है, इसमे भगवान राम क्षर अक्षर, निरक्षर आदि मे परे परात्परतम ब्रह्म वताये गये है। एकमात्र सखी-भाव से उनकी उपामना हो सकती है। चौथे सर्ग में २० श्लोक है और इसमें श्री जानकी जी की आज्ञाकारिणी, आह्लादिनी आदि तैंतीस शक्तियो का वर्णन है। और, उनमे से एक-एक की सहस्रश उपशक्तियो का वर्णन है। पाँचवें सर्ग में ११० श्लोक है, इसमें श्रीराम-नाम की महिमा का वर्णन है। इसी सर्ग में रम् धातु से रमणार्थ में 'राम' शब्द की व्युत्पत्ति सिद्ध करते हुए राम की रासक्रीडा का उल्लेख है। श्री रामदास गौड़ ने अपने 'हिन्दुत्व' नामक विशाल ग्रन्थ मे अनेक ऐसे रामायणो का नामोल्लेख किया है जिसके विषय में निश्चित रूप से कुछ भी पता लगना कठिन है। 'हिन्दुत्व' मे 'महारामायण' में ३,५०,००० श्लोक वताये जाते है और उसमें कनकभवन-विहारी भगवान् राम की मीता तथा अन्य सखियो के साथ ९९ रासलीलाओ का वर्णन है।

४ **आदि रामायण**—इसकी एक हस्तलिखित प्रति मणिपर्वत अयोध्या में श्री रामकुमार दाम के सरक्षण में है। इसमें मजरी, मुग्धा, मध्या, प्रौढा आदि का प्रमग है। कामिल वुल्के ने अपने ग्रन्थ राम-कथा में 'चित्रकूट-माहात्म्य'[1] नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ की चर्चा की है जो उन्हें इण्डिया आफिम से मिला है। उसे वे आदि रामायण का ही एक अग वताते है। उनका कथन है कि इस हस्तलिखित प्रति में चित्रकूट का मातानक वन में एक मरोवर का वर्णन है, जिमके मध्य में एक रम्य मण्डप वना हुआ है, जहाँ एक वेदिका मध्य पर भगवान् श्री राम जी मीता और उनकी मखियो के साथ नित्य रासक्रीडा करते रहते है।

---

१ देखिए रामकथा, पृष्ठ १७१, अनुच्छेद १९०

ऐसा वर्णित है। फिर दशरथ-कैकेयी का विवाह, मथरा के पूर्व जन्म की कथा और फिर राम की बाललीला का वर्णन है। उत्तरार्द्ध में सीता जी का स्वयवर, राम सीता का विवाह, जल-विहार, वन-विहार[1] सीता की मानलीला, होलिकोत्सव आदि का रसमय विवरण है।

यहाँ लक्ष्य करने की बात यह है कि जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में 'रासपचाध्यायी' के अनुशीलन से हृद्रोग के नाश होने का फल है, उसी प्रकार सत्योपाख्यान में राम-सीता के विहार का अनुशीलन भी सभी पापो को नष्ट कर विमल भक्ति को जन्म देता है। अतएव रसिको-रसभावुको को इसका बार-बार प्रीतिपूर्वक श्रवण-मनन-अनुशीलन करना उचित है।[2]

७ **वृहद् कौशल खण्ड**—वृहद् कौशल खण्ड अभी-अभी दो खडो में प० रामवल्लभाशरण जी महाराज की 'रसवर्धिनी टीका' सहित लाहौर के सेठ रोशनलाल अग्रवाल तथा रामप्रियाशरण जी द्वारा प्रकाशित हुआ है। परन्तु है यह 'प्राइवेट सर्क्यूलेशन' के लिए ही। जनसाधारण में इसका अन्यथा अर्थ भी लग सकता है, इसीलिए यह सर्वसुलभ नही है। कहते है, इस ग्रथ को श्री वेदव्यास जी ने श्री सूत-शौनक-सवाद रूप में निर्माण किया है। श्री शौनक जी ने श्री सूत जी से श्री रामजी के रहस्य-चरित्र की जिज्ञासा की। उत्तर में श्री सूत जी ने सक्षेप में श्री राम-जानकी (प्रिया प्रीतम) का लीला-रहस्य बतलाया। भगवान् श्री राम और भगवती सीता के युगल ध्यान के अनेक श्लोक है, तदनन्तर जलविहार, मृगयाविहार आदि की झाँकी का वर्णन कर के श्री सरयू-पुलिन में सखाओ के साथ रसविहार का वर्णन है और यही प्रथम अध्याय समाप्त होता है। द्वितीय अध्याय से पचम अध्याय तक गोपकन्या, देवकन्या, नागकन्या, गधर्वकन्या, राजकन्या आदि के साथ भगवान् के रासविहार का बडी मार्मिक भाषा में वर्णन किया है। छठें अध्याय में श्री जानकी जी के पूर्वराग का उल्लेख कर सातवें अध्याय में विवाह का प्रसग है। इसके अनन्तर नवें अध्याय से पन्द्रहवें अध्याय तक विवाहोत्तर देवकन्याओ के साथ गधर्व-कन्याओ के साथ, किन्नर-सुताओ के साथ, विद्याधर-कन्याओ के साथ सिद्धकुमारियो के साथ, राजकन्याओ के साथ, साध्य सुताओ के साथ, गुह्यक देव कन्याओ के साथ, यक्ष कन्याओ के साथ नाग कन्याओ के साथ रास का प्रकरण सविस्तार विशेष रूप से बडी ही भावमयी प्रभावमयी भाषा में प्रस्तुत

---

१ कुचद्वयेन रामस्य हृदय स्पृशतीव सा।
कण्ठे लग्ना तदा भाति मालेव स्वर्णवल्लरी॥ —स० २१ २३

तथा च

तस्यैवाके तथा सीता लज्जया सस्मिताननाम्।
रामचन्द्र घनश्याम सीता विद्युल्लतोपमाम्॥ —स० २६.१०

२ श्रोतव्य रसिकै सर्वैर्भावुकै प्रीतिपूर्वकम्।
श्रुत्वा पापानि नश्यन्ति रामे भक्ति प्रजायते॥

—सत्योपाख्यान, उत्तरार्द्ध २५-५०

किया गया है। यो यह समस्त ग्रन्थ ही श्री जानकीराघवरासविलास का अपूर्व ग्रन्थ है और रसिकोपासको मे इसे वेदवत् पूज्य एवं परम गुह्य मानते है। श्री हनुमत् निवास के सतत प्रिया-प्रीतम की अष्टयामसेवा मे परायण, अनन्योपासक, मधुर रस के परम रसिक एव रसज्ञ मर्मज्ञ महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज की कृपा से ही यह दुर्लभ ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है।

८ **माधुर्य केलि कादम्बिनी**—जैसा नाम से ही स्पष्ट है स्वामी श्री मधुराचार्य द्वारा रचित मधुर रस का एक परम आदरणीय ग्रन्थ है। इसकी पूरी प्रति अभी उपलब्ध नही हुई है। 'शिव सहिता' की 'रसबोधिनी टीका' मे प० रामवल्लभाशरण जी महाराज ने इस ग्रन्थ के कुछ श्लोक उद्धृत किये है।[1]

भावार्थ यह कि जब जड पदार्थ तक राम के रूप पर मुग्ध हो जाते है तो उन प्रमदाओ का क्या कहना, जिनके हृदय में मन्मथ का प्रवेश हो चुका है।

श्रीराघव परमहस यतीन्द्रमुख्या
नार्यो ऽभवन् सखि विमोहवशाश्च दृष्ट्वा।
ते राक्षसाश्च मुमुहु किल कामिनीना
पुसा कथैवननु का रसराजमूर्त्ति ॥
कन्दर्पकोटि समकान्तिरल च राम
श्याम सुपश्यति तरु ह्यथ पक्षिणश्च।
वृक्षा' खगा कुसुमबाणवशा भवन्ति
काम सदैव विनय क्रियते रसज्ञे ॥
दृष्ट्वा सुरम्य निजरूपमद्भुत
शिलातले काचन ज्योति निर्मले।
मुमोह राम रघुवशभूषण
सीतेव स्वालिगनभावमश्नुते ॥
अहोति रूप परम मनोहर
ममापि यन्मोहकर सुखावहम्।
मन्ये प्रिया भाग्यमतीव गौरव
या लिंगनामन्दमवाप दुर्लभम् ।
निजे सुरूपे लतिकादिमोहने
यदायुमोहाशु मनोज सुन्दर।
तदा कथा का प्रमदागणाना
चित्तेपु यासा प्रविशेच्च मन्मथ ॥

---

१ देखिए 'शिवसंहिता' की प० रामवल्लभाशरण जी कृत 'रसबोधिनी टीका' में पन्द्रहवें अध्याय के ५२ वें श्लोक का भाष्य (पृ० १६८)।

जबतक 'माधुर्य केलि कादम्बिनी' पूरी प्राप्त नही होती, तबतक इन पाँच श्लोको से ही सतोष करना पडेगा। अस्तु।

९ **रार्मालिगामृत**—रार्मालिगामृत की रचना बनारसनिवासी 'अद्वैत' नामक कवि द्वारा १६०८ ईसवी में हुई थी। इसकी हस्तलिपि लदन में सुरक्षित है। (दे० इडिया आफिस कैटलॉग न० ३९२०)[1] आरम्भ प्रथम सर्ग में देवताओ द्वारा विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना है, दूसरे सर्ग-राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का जन्म जानकी-स्तन-पान, वन-क्रीडा, अध्ययन, यज्ञोपवीत-सस्कार, तथा विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का जाना। तीसरे सर्ग में विश्वामित्र के साथ लक्ष्मण राम का सीता स्वयवर में पहुँचना। राम के सौन्दर्य का सीता की सखियो द्वारा वर्णन, राम द्वारा धनुर्भग। चौथे सर्ग में सीता स्वयवर है। राम को देखने की उत्सुकता में स्त्रियो की दशा का अनुमान इस शार्दूल छद से लग सकता है—

काचिन्मगलघोषहृष्टहृदया गेहात्सखी सवृता
व्यग्रा व्यस्तसमस्तभूषण गणान्शीघ्र दधारा ध्वजा।
सीताराम मुखारविन्दज रसोन्मत्ता गलन्मालती
केशे ककतिका चलत्कुचयुगा द्वारोर्ध्वभागे स्थिता॥

इसी सर्ग में लक्ष्मी सीता को रामावतार का रहस्य बताती हैं। पाँचवें सर्ग वा छठे सर्ग में राम-वनगमन का वर्णन तथा पचवटी निवास और बदरो से मैत्री का वर्णन है। सातवें में राम-विभीषण-मिलन, आठवें में लकायुद्ध है। नवें सर्ग में ही रावण महीरावण का वध है और दसवें में रामनाम की महिमा और रावण द्वारा सर्वत्र राम के रूप के दर्शन का उल्लेख है। ग्यारहवें सर्ग में रावण-वध एव विभीषण का अभिषेक है, बारहवें में राम का राज्याभिषेक और तेरहवें सर्ग में प्रचुर विस्तार से राम और सीता के सभोग का वर्णन है, उनके प्रात श्रृगार भोजन, शयन, केलिक्रीडा आदि का उल्लेख है। चौदहवें सर्ग में वाल्मीकि आश्रम में लवकुश का जन्म एव शिक्षा तथा तदनन्तर राम का सीता और लवकुश सहित अयोध्या लौटना वर्णित है। सोलहवें सर्ग में राम द्वारा श्री रग जी का पूजन और सत्रहवें में राम के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है, जिसमें देवता आकर राम तथा सीता की स्तुति करते है। यही राम-सीता समस्त अयोध्या-समाज सहित परलोक गमन करते हैं। अन्त में अद्वैतमजरी में जीव, ब्रह्म, ईश्वर, माया का निरूपण है। अठारहवें सर्ग में राम पूजा की विधि, राम शिव, तथा रामकृष्ण की अभिन्नता का प्रतिपादन है।[2]

लक्ष्य करने की बात यह है कि अद्वैत कवि गोस्वामी तुलसीदास जी के समकालीन थे और रार्मालिगामृत तथा रामचरितमानस की कथा में बहुत अधिक साम्य है।

---

१ 'राम कथा', पृष्ठ १६८, अनुच्छेद २३० से उद्धृत।

२ देखिए 'रामकथा', अनुच्छेद २५९, पृ० २०३-२०८।

प्रमाण अथवा सिद्धान्त-ग्रन्थ

रामावत मधुरोपासना के कतिपय विशिष्ट सिद्ध साधकों ने अपने सम्प्रदाय को शास्त्रीय प्रमाणों से परिपुष्ट किया। ठीक जिस प्रकार जीव गोस्वामीपाद, सनातन गोस्वामी, बलदेव विद्याभूषण तथा कृष्णदास कविराज ने गौडीय वैष्णव-साधना को शास्त्र प्रदान किया, उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी, श्री परमहंस रामचरण जी तथा श्री स्वामी युगलानन्द शरण जी ने अपने पांडित्य तथा अनुभव के आधार पर कतिपय विशिष्ट ग्रन्थों की रचना की जो इस रस-साधना में प्रमाण रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। अस्तु।

श्री सुंदरमणि संदर्भ

श्री मधुराचार्यरचित श्री सुंदरमणि संदर्भ की चर्चा पहले भी आ चुकी है। वस्तुतः गौडीय वैष्णव-साधना में जो स्थान श्री जीवगोस्वामी पाद का है, वही स्थान रामावत मधुर उपासना में श्री मधुराचार्य जी का है। जिस प्रकार श्री जीवगोस्वामी ने भक्ति, प्रीति, आदि षट् संदर्भ द्वारा गौडीय वैष्णव-साधना के रहस्य का उद्घाटन एवं विश्लेपण किया, ठीक उसी प्रकार मधुराचार्य जी ने भी छह-संदर्भों का विशाल ग्रन्थ लिखा था जिसमें केवल एक ही संदर्भ 'सुन्दर-मणि संदर्भ' मिलता है। शेष पाँच संदर्भों में 'वैदिक मणि संदर्भ' का कुछ अंश उपलब्ध है। इस ग्रन्थरत्न को 'रहस्य रत्न प्रभा' टीका के सहित स्वामी रामवल्लभाशरण जी महाराज की आज्ञा से श्री पुरुषोत्तमशरण जी ने संवत् १९८४ में प्रकाशित कराया। जिस प्रकार श्री गोस्वामीपाद ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए श्रीमद्भागवत का आधार लिया है उसी प्रकार श्री मधुराचार्य जी ने वाल्मीकीय रामायण को लिया है। यह दूसरी बात है कि श्री मधुराचार्य की व्याख्या को ज्यों का त्यों स्वीकार करने में आज के पंडित समाज को कुण्ठा होगी, पर इससे घबराने या बिचकने की क्या बात है? प्रत्येक दार्शनिक मत ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्, भगवद्गीता (बृहत्त्रयी) का अपने-अपने ढंग से अर्थ करता है। इसलिए यदि मधुराचार्य ने वाल्मीकीय रामायण की मधुराश्रयी व्याख्या करने में कुछ खींचतान की भी हो, तो उसका अपना विशिष्ट महत्त्व है और उसे उसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

मधुराचार्य जी ने सुंदरमणि संदर्भ के मंगलाचरण में ही अपने सिद्धान्त का सार रख दिया है—

प्रोद्यद्भानुसपत्नरत्ननिकरैर्देदीप्यमाने महा,
मोदे दिव्यतराति मंजुवनितावृन्दैः सदा सेविताम्॥
रासोल्लासमुखैश्च व्याकृततमं दिव्ये महामण्डपे-
ऽयोध्यामध्य प्रमोदशुभ्रविपिने रामं ससीतं भजे॥

अयोध्या के मध्य में स्थित सूर्य के समान प्रभा विस्तार करने वाले रत्नसमूहों से आलोकित शुभ्र प्रमोदवन में मंजु वनितावृन्द से सेवित रासोल्लास के आरम्भ में दिव्य महामण्डप में आसीन सीता सहित राम की वन्दना करता हूँ।

भगवान् राम में 'परत्व' और 'सौलभ्य' दोनो ही गुण प्रचुर होने के कारण इष्टदेव हैं। परत्व इष्टदेव की महानता का और सौलभ्य उनकी उदारता का परिचायक है। श्री वाल्मीकीय रामायण को मधुराचार्य जी ने 'निरतिशय निर्दोष नित्य रसमय' माना है।[1] यह सपूर्ण ग्रन्थ पूर्णत श्री सीता जी का चरित्र है।[2] हनुमान जी ने सुन्दर काण्ड के १६वें सर्ग में यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि सीता के लिए ही रामचन्द्र ने सारे दुष्कर कार्य किये।[3] इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ सीताहेतुक है और नारीप्राधान्य के कारण शृगाररसात्मक है।[4] जिस प्रकार श्री रामचन्द्र अन्य सभी अवतारो के कारण हैं, उसी प्रकार श्री रामायण भी समस्त वाङ्मय काव्य पुराणादिको का कारण है। यह स्वत प्रमाण है।[5] अवतारो में केवल श्री रामचन्द्र ही है जो शृगार रस की पूर्ण मूर्त्ति हैं, कारण कि श्री कृष्ण तो श्रीराम के अशावतार हैं। वस्तुत सभी अन्य अवतार अवतारमात्र हैं, श्रीराम ही 'अवतारी' हैं।

जैसा पहले कहा जा चुका है, श्री मधुराचार्य जी ने जार भाव या परकीया भाव को प्रेमोत्कर्ष का कारण नही माना है। गौडीय वैष्णवो ने परकीया भाव को इसलिए श्रेष्ठ माना,

---

१ कृत्स्नस्यापि श्रीमद्रामायणस्य निरतिशयनिर्दोष नित्यरसमयत्वम्।

—सुंदरमणि सदर्भ, पृष्ठ १०

२ कृत्स्न रामायणं काव्य सीतायाश्चरित महत्।

—वही, पृष्ठ ११

३ अस्या हेतो विशालाक्ष्या हतो वाली महाबल.।
रावणप्रतिमो वीर्ये कवन्धश्च निपातित ॥
अस्यानिमित्त सुग्रीव प्राप्तवान् लोकसत्कृतम्।
विराधश्च हत सख्ये राक्षसो भीमदर्शन.।
अस्या· हेतोर्महद्दु ख प्राप्त रामेण धीमता।
परा सम्भावनास्याभिरस्यान्दिशि निवेशिता॥
सागरश्च मदाक्रान्त श्रीमान् नदनदीपतिः।
अस्या हेतोर्विशलाक्ष्या विचितेय महामही।
अस्या कृते जगत्सर्वमणुमन्येत केवलम्॥

—वही, पृष्ठ १४-१५

४ रामायण नारीप्रधानमिति प्राधान्येन शृगाररस एवात्र प्रतिपाद्यते।

—वही, पृष्ठ २०

५ यथा श्री रामचन्द्र स्वेतर सर्वकारण तथा श्रीमद्रामायणमपि स्वान्य सर्ववाङ्मयकारणमिति वेदादिवोधस्य प्रामाण्यमवगन्तव्यम् तेन श्रीमद्रामायणस्य प्रमाणान्तरापेक्षा नास्त्येति। तद्विसवादि प्रामाण्यमुपेक्ष्यमिति निर्मत्सरतयागीकार्यं विद्वद्भिरिति।

—वही, पृष्ठ २३

क्योकि अनेक विघ्न-बाधाओ के भीतर से जो प्रच्छन्न कामुकत्व है, वही प्रेम को निरतिशय आनन्दमय बना देता है। इस पर श्री मधुराचार्य का कथन है कि यह तो प्राकृत जन के लिए है। भगवत्पक्ष में बिल्कुल बेमतलब की चीज है। वस्तुत स्वकीया प्रेम ही उत्तम प्रीति सुख का हेतु है। विघ्न-बाधाएँ इनमें भी क्या कम है? गुरुजनो की सेवा और प्रियजनो की आँख बचाकर स्वकीया पत्नी जो प्रेम दे सकती है वह किसी अन्य विधि से नही प्राप्त हो सकती है।[1] इसी प्रकार 'जार' और 'उपपति' शब्द का भी अर्थ मधुराचार्य ने अपना स्वतत्र किया है। 'जार' का अर्थ है संसार-बीज को जीर्ण अर्थात् नाश करनेवाला और 'उपपति' का अर्थ है अन्तर्यामी रूप से प्रीतिदाता।[2] प्रेम शारीरिक होता ही नही मानसिक होता है तब शारीरिक अगसग का प्रश्न ही कहाँ उठता है? वस्तुत परात्पर भगवान् को शृगार या मधुर रस का आलबन कहा जाता है तब यह रास प्राकृत जनो मे परिचित शरीर सुखमूलक शृंगार रस नही है, प्रत्युत दिव्य आनन्द रस है। इस प्रकार श्री मधुराचार्य ने शृगार रस को बहुत ऊँची आध्यात्मिक भूमिका पर रखा है और मर्यादापालन पर बहुत अधिक जोर दिया है। शरीर-सुख को तो उन्होने घृणित कहा है। वस्तुत मधुराचार्य के मत से चित्त का परम प्रीति रूप ब्रह्मावगाहन करनेवाला जो परिणाम है, जिसको श्रुतियो ने 'आनन्द' नाम दिया है, वही शृगार, रस है।[3] इस ग्रन्थ मे श्री मधुराचार्य जी ने वाल्मीकीय रामायण ने अनेक उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि पुरुष भी किस प्रकार भगवान् के कमनीय मुख को देखकर उसी प्रकार रमणेच्छुक हो जाते है, जिस प्रकार सती स्त्री अपने कान्त को देखकर हो उठती है। ऐसे स्थलो पर मधुराचार्य जी प्राय मानसी प्रीति की चर्चा कर दिया करते है, ताकि 'लोकवेदकिंकर' भक्तजन भ्रान्ति मे न पडे। अपनी व्याख्या मे वे प्राय 'रहस्य' शब्द का आश्रय लेते है। रामायण के प्राय सभी पात्रो के वचनो की श्री मधुराचार्य जी ने कुछ ऐसी व्याख्या की है कि रामायण के प्राय सभी मुख्य पात्र भगवान् को कान्त रूप में पाने की लालसा करते है।

---

१ किं च शृंगारोत्कर्ष प्रच्छन्नकामुकत्व जारत्वं च कारणं नोपद्यते। नापि परकीयात्वं बलीयसः स्फुट परदाराभिमर्शनात्। दौर्लभ्यमिहापि मातृ पितृ गुरु शुश्रूषण, मित्र बन्धु जनसमागम राजानुरोध सेवा विप्रवास मान कलहोपवास यागरोगादिषु व्यक्तं। धर्माधर्म साक्षिभूतेषु करणाधिपेषुच सर्वत्र सर्वदा सर्ववश्यत्सु प्रच्छन्न कामुकत्वमपि जारे नास्ति श्वशुरादि संनिधाने पत्युरपि कामुकत्वस्य सत्वात्।

—वही, पृष्ठ ३९-४०

२ परोपभुक्ताया सर्वांगु भोक्तृ भगवदनहत्वात् जारयति ससारबीजं नाशयतीति जार.। उप समीपं अंतर्यामिरूपेण व्यक्तरूपेण वा स्थित्वा पाति रक्षति पुष्णातीति उपपतिः।

—वही, पृष्ठ ४४

३ नहि मिथुनमेव शृगार· तस्य घृणित्वप्रसिद्धे· अपितु आनन्दापरनामक परमप्रीतिरूप· चित्तस्य ब्रह्मावगाही परिणामः प्रसिद्ध·।

—वही, पृष्ठ ५९

मैं (श्री सीता जी) हूँ। श्रीराम महादेव हैं, वे सत् असत् से परे भोक्ता है। मेरी ईक्षण-कला के आक्षेप से श्रीरामचन्द्र शरीर धारण करते है और उनकी इच्छा से मेरा शरीर है, ऐसा समझिए। श्रीरामचन्द्र जी और मेरे शरीर के ऐक्य भाव से यह रसरूप परब्रह्म है। इसी से विश्व सुखी होता है। इसी रस से वहुत से रस—वीर, करुण, हास्य, भयानक आदि उद्भिन्न हुए है। सभी शक्तियाँ मुझसे निकली है, जो शुद्ध सत्त्वरूप और विकाररहित है। वागीशा, माधवी, नित्या, विक्षा, अविक्षा, हरिप्रिया, कूटरूप, मनोजीवन आदि भुक्ति-मुक्ति-प्रदात्री शक्तियाँ ऐसी ही है। वे सव श्री रामचन्द्र जी को भोग्यरुपा हैं, सदानन्दा और रसमोदविहारिका है। ये मेरे ही समान हैं, इन सव के भोक्ता रघुनन्दन ही है।

मधुराचार्य ने वडे जोरदार शब्दो मे अपने पक्ष का स्थापन करते हुए कहा है—'वस्तुत लीला-रस के लिए अद्भुत अप्राकृत मनुष्य रूपी भगवान् पर ब्रह्मस्वरूप श्री रामचन्द्र मे प्राकृत के समान आभास देखना उन्हें विधि-निषेध का किकर मान लेने के समान है और उनकी अनीश्वरता वताना है। इस वात को तत्त्वज्ञ लोग ही समझ सकते हैं। लौकिक आचार मे ही लोक को प्रमाण मानना चाहिए, भगवद्रहस्यात्मक अलौकिक अर्थ में नही।"[1]

इस प्रकार, वडे ही आकर्षक ढग से इस ग्रन्थ मे मधुर रस का प्रतिपादन हुआ है और इस ग्रन्थ से परिवर्त्ती मधुर रस की साधना को वहुत प्रेरणा और शक्ति मिली है।

श्री रामतत्त्वप्रकाश

श्रीरामतत्त्वप्रकाश श्री मधुराचार्य जी का दूसरा ग्रन्थ है, जिसे प्रमाण ग्रन्थ के रूप में मानते हैं। यह ग्रन्थ स० २००३ वि० मे विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय से मुद्रित तथा श्री अखिलेश्वर-दास कृत 'उद्योता' टीका सहित श्री हनुमत् निवास-निवासी श्री रामकिशोर शरण जी के कृपापात्र श्री रामप्रियाशरण द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसमे कुल त्रयोदश उल्लास हैं। प्रथम उल्लास में अवतारो के अंशांशित्व का निरूपण है, दूसरे मे अन्य अवतारो की अपेक्षा श्रीराम की उत्कृष्टता

तादृशं वहुधा भिन्नं रामश्चैव तथाविधा.।
वीर करुणा शृंगार हास्य वीभत्स भीतयः।
रसभेदा वहुविधाः शक्तयोर्मे विनिःसृताः॥
शुद्ध सत्त्वात्मिका. सर्वा निर्विकारा रसोत्सवाः॥
वागीशा माधवी नित्या विक्षाविक्षा हरिप्रियाः।
कूटरूपा मनोजीवा भक्ति मुक्तिफलप्रदाः॥
एता भोग्याः सदानन्दा रसमोदविहारिकाः।
अहं यथा तयेयाश्च भोक्ता देवो रघूद्वहः॥

१ देखिए 'कल्पना', वर्ष, अंक ५ में प्रकाशित आचार्य हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का निवंध—'मधुराचार्य और उनका मणिसंदर्भ'।

सिद्ध की गई है। इसमें मधुराचार्य ने शास्त्रो के अनेक वचनो के उद्धरण लेकर यह प्रमाणित किया है कि राम अवतारी थे, शेष अन्य अवतार। अर्थात् 'एते चाशकला पुसा रामस्तु भगवान्स्वयम्।' 'स्वय भगवान्' की एक कला के विलास हैं भगवान्।[१] जैसे समस्त अवतारो में अवतारी श्रीराम जी ही हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ नदियो में कारणरूप परमपवित्रा सौम्या श्री सरयू जी है। सर्वावतारी भगवान् राम ही द्विभुज से चतुर्भुज हो गये। विष्णु पुराण में जाम्बवान् ने श्रीकृष्ण से कहा है कि हमारे स्वामी श्री राम के अश जैसे श्रीनारायण हैं, वैसे ही सकलजगत् के परायण श्रीनारायण के आप अश है। चतुर्थ उल्लास में भगवान् राम के तथा श्री जानकी जी के चरण-चिह्नो का सविशेष वर्णन है तथा भगवान् राम के रूप का माहात्म्य है। पाँचवें उल्लास में यह दिखलाया है कि रामायण भी भागवत की भाँति समाधि-भाषा में लिखा, समाधि में प्राप्त ज्योति से ज्योतिर्मान् आप्त ग्रथ हैं। छठे उल्लास में यह सिद्ध किया गया है कि शुकदेव आदि के उपास्य श्रीराम ही है। सातवें उल्लास में रामोपासना के परस्पर विरोधी वचनो का परिहार तथा समन्वय दिखलाया गया है। आठवें उल्लास में राम-सीता का नित्य सयोग सिद्ध किया गया है और नवें में रसिक शिरोमणि राम का अनेक नायिकाओ के साथ नृत्य तथा रास विलास प्रतिस्थापित किया गया है। मधुराचार्य ऐसे स्थलो पर अपने पाडित्य और प्रतिभा का प्रचण्ड प्रयोग करते हैं और लगता है अपने मन की बात रामायण के सभी पात्रो से कबुलवा लेते हैं।[२] शब्दो के ऊपर श्री मधुराचार्य जी का विशेष प्रभाव दिखता है और वे अपने पाण्डित्य के बल पर उन्हें एक नई दिशा में मोड लेने में सर्वथा समर्थ हैं। 'स्नुपा' शब्द को लेकर ही उन्होने एक श्लोक वाल्मीकीय

---

१ यथा सर्वावताराणामवतारी रघूत्तम्।
तया स्रोतसा सौम्या पाविनी सरयू सरित्॥

—अगस्त्य सहिता, उत्तरार्द्ध

तथा च

सर्वावतारी भगवान् रामश्चतुर्भुजोऽभवत्।—कोश-खण्ड
अस्मत्स्वामिना रामस्येव नारायणस्य सकल जगत्परायणस्याशेन भवता भवितव्यम्।
श्री विष्णु पुराण में कृष्ण के प्रति जाम्ववान् का वचन ४ ३.५३।

२ उपानृत्यन्त राजान नृत्यगीतविशारदा।
अप्सरोगणसघाश्च किन्नरी परिवारित॥
दक्षिणा रूपवत्यश्च स्त्रिय पानवशगता।
उपनृत्यन्त काकुत्स्य नृत्यगीतविशारदा॥
मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयता वर।
रमयामास धर्मात्मा नित्य परमभूपिता॥

—वा० रा० उ० स० ४२, २०-२२ श्लोक

रामायण का उद्धृत कर यह सिद्ध किया है कि राम ने अनेक नायिकाओ के साथ रासरग किया।[1] इस प्रकार, अनेक नायिकाओ के एकमात्र नायक श्रीराम है, इसके लिए अनेकानेक प्रमाण मधुराचार्य ने इस उल्लास में प्रस्तुत कर दिये है।

यदि राम और सीता का नित्य सभोग है तो विरह और वियोग के वचनो का क्या अर्थ है, इसी का समाधान दशम उल्लास का मुख्य विषय है। इस सम्वन्ध में श्री मधुराचार्य ने 'जानकी विलास' के उद्धरण दिये है जिससे यह सिद्ध होता है कि राम सीता के विना और सीता राम के विना एक क्षण भी नही रह सकते।[2] एकादश उल्लास में रामलीला की वर्ष-गणना है जिससे स्पष्ट है कि मधुराचार्य ज्योतिष के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। वारहवें उल्लास में लवकुश सदेह का निवारण हुआ है। और तेरहवें में लीला का नित्यत्त्व प्रमाणित हुआ है। और इसके लिए स्कन्द पुराण के अयोध्या माहात्म्य से कुछ श्लोक दिये है।[3] इस प्रकार श्री मधुराचार्य का 'रामतत्त्वप्रकाश, भी 'सुन्दरमणि सदर्भ' की भांति एक परम मान्य ग्रन्थ है।

श्री रामनवरत्नसार-संग्रह

श्री रामनवरत्नसार सग्रह परमहस स्वामी रामचरणदास 'करुणासिंधु' द्वारा संगृहीत तथा प० रामवल्लभाशरण जी कृत 'रत्नप्रभा' टीका सहित स० १९८५ में गोकुल प्रेस अयोध्या द्वारा मुद्रित तथा श्री जानकीघाट के श्री अवधशरण जी द्वारा प्रकाशित है। इसमें नौ अध्याय है और भिन्न शास्त्रो से प्रमाण एकत्रित कर रसोपासना के विविध अगो को परिपुष्ट किया गया है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि श्री रामचरणदास 'करुणा सिन्धु' वडे ही सुलझे विचार के सत पुरुष थे और उन्हें किसी प्रकार का आग्रह नही था और न अर्थ करने में विशेष खीचतान ही उन्होने की है। शब्दो की अपेक्षा भाव पर उनकी दृष्टि विशेष है और भावग्राहिणी प्रतिभा का वहुत ही सुन्दर सुसमजस परिचय आपके इस ग्रन्थ से मिलता है। इन नवरत्नो में

---

१ दृष्ट्वा खलु भविष्यन्ति रामश्च परमाः स्त्रियः।
अपदृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये॥

—वा०, अयोध्या, सं० ८, श्लोक १२

२ रामो हि न भवेज्जातु सीता यत्र न विद्यते।
सीता नैव भवेत्सा हि यत्र रामो निदीघति॥
सीता रामं विना नैव नैव सीतां विना हरि।
जानकीरामयोरेवः संवंधः शाश्वतो मतः॥

—जानकी विलास से रामतत्त्व प्रकाश, पृष्ठ २०६ पर उद्धृत

३ चतुर्धा तु तनुं कृत्वा देवदेवो हरिः स्वयम्।
अत्रैव रमते नित्यं भ्रातृभिः सह राघवः॥

—रामतत्त्वप्रकाश, पृष्ठ २९४ पर उद्धृत

सर्व प्रथम भगवन्नाम है। विविध शास्त्रो मे—जैसे हनुमन्नाटक, वाराहपुराण, पद्मपुराण, अध्यात्म रामायण, नृसिंह पुराण, ब्रह्मयामल, काशीखण्ड, सनत्कुमार सहिता, हिरण्यगर्भ सहिता, महाशभु सहिता, अध्यात्म रामायण, भरद्वाज सहिता, हनुमत् सहिता, अगस्त्य सहिता आदि-आदि ग्रन्थो से नाम-महिमा पर प्रमाण वाक्यो श्लोको का उद्धरण देकर श्री करुणा सिन्धु ने श्री रामनाम की अपार महिमा को प्रतिष्ठापित किया है। उन्होने इसमें सखियो के नाम भी पूरे विस्तार से दिया है।[1] अनेकानेक शास्त्रो के उद्धरण से श्री करुणासिन्धु ने यही प्रमाणित किया है कि परात्पर ब्रह्म श्रीराम ही है और उनसे भिन्न कुछ भी नही है।[2] रूप के अनन्तर धाम की चर्चा है

---

१ तत्र वागीश्वरी देवी माधवी प्रियवल्लभा।
असिता च सिता चैव प्रकृतिर्गुणसभवा॥
उमादेवी महामाया श्रुतिजात विशारदा।
पद्महस्ता विशालाक्षी कमला हरिवल्लभा॥
सुमुखी प्रेमदा नित्या वृन्दा देवी मनोरमा।
चिदात्मक सदाभास नयनानन्ददायकम्॥
स्वकान्तहृदयाराम राम राजीवलोचनम्।
निर्विकार पृथुश्रोण्यो राघव पर्युपासते॥
उर्वशी मेनका रभा राधा चन्द्रावली तथा।
हेमा क्षेमा वरारोहा पद्मगधा सुलोचना॥
हसिनी पालिनी पद्मा हारिणी मृगलोचना।
रामस्य परिनृत्यति गीतावादित्रमोहिता॥
कर्पूरागी विशालाक्षी शक्तिप्रियरसोत्सवा।
चारुनेत्रा चारुगात्रा चार्वंगी चारुलोचना॥
गोपकन्या सहस्रैस्तु गोपबालैश्च तादृशै।
गोकुलैरावृत सम्यक् पद्मशखादिभि सदा॥
अगादिपरिसकीर्णं आत्मादिशक्ति रजितम्।
वेष्टित वासुदेवाद्यै सेवित हनुमदादिभि॥ —श्री रामनवरत्न, पृष्ठ २०-२१

२ राम सत्य पर ब्रह्म रामात्किचिन्न विद्यते।
तस्माद्रामस्य रूपोय सत्य सत्यमिद जगत्॥ —सनत्कुमार सहिता, पृष्ठ २६ पर उद्धृत

तथा च—

शभु विरचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अश ते नाना।
सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। विधि हरिहर वदित पदरेनू॥
उपजहिं जासु अश गुनखानी। अगनित लक्षि उमा ब्रह्मानी।
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम वामदिसि सीता सोई॥ —रामचरित मानस, बालकाण्ड

और वडे विस्तार से। शैली वही है, शास्त्र वचनो का प्रमाण। साकेत लोक मे भगवान् राम सीता के साथ तथा अन्य अनन्त सखियो के साथ रास विलास करते रहते है। ये सब सखियाँ श्री जानकी जी के अश से उत्पन्न है।[1] वह साकेत लोक अथवा दिव्य अयोध्यापुरी सब वैकुण्ठो की मूलाधारा है, मूल प्रकृति से परे है, तत्सद् ब्रह्ममयी है, विरजा से उत्तर है, दिव्य रसमय कोषो से युक्त है और वही है श्री सीताराम का नित्य विहार स्थल।[2] इसके अनन्तर सच्चे वैराग्य का लक्षण है। वैराग्य का अर्थ है भगवान् मे अतिशय प्रीति-अनुराग, आसक्ति। ऐसा होने से स्वत ही जगत् से वैराग्य हो जाता है।[3] इसके बाद है साधु लक्षण तथा सत्सग का माहात्म्य कहते है कि गगा पाप का हरण करती है, चन्द्रमा ताप का हरण करता है, कल्पतरु दैन्य का हरण करता है परन्तु साधु समागम से पाप ताप तथा दैन्य एक साथ नष्ट हो जाते है।[4] साधु वे है जिनका हृदय भगवान् में रमता है और क्षण भर के लिए भी जो भगवान् से पृथक् नही होते। ऐसे वैष्णव साधु से कुल पवित्र हो जाता है, माता कृतार्थ हो जाती है और पृथ्वी धन्य हो जाती है।[5] इतना ही नही, वैष्णवो

---

१ अनन्ताभिः सखीभिश्च सार्द्धं रामः स सीतया।
स्वेच्छया कुरुते रासं ताः कुजागात्र संभवा॥
—श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ४० पर श्री महारामायण से उद्धृत

२ अयोध्यापुरी सा सर्वं वैकुण्ठानामेव मूलाधारा प्रकृतेः परा तत्सद् ब्रह्ममय विरजोत्तर दिव्य रत्नकोषाढ्या तस्या नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्तीति। अथर्वण उत्तरार्द्ध से
—श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ४२ पर उद्धृत

३ नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥
अन्तर्वहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नान्तर्वहिर्यदि हरिस्तपसा तत. किम्॥
—श्री रामनवरत्न, पृष्ठ ८० पर उद्धृत

४ गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं तथा दैन्यं हन्ति साधुसमागमः॥ आदि पुराण से
—श्री रामनवरत्न, पृष्ठ १-२ पर उद्धृत

५ साधवो हृदयं मह्यं साधूना हृदय त्वहं।
मदन्यान् नहि जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥
—श्री मद्भागवत से रामनवरत्न, पृष्ठ १०६ पर उद्धृत

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुंधरा भागवती च धन्या।
स्वर्गे स्थिता ते पितरश्च धन्या येषां कुले वैष्णवनामधेयम्॥
—पद्मपुराण से, पृष्ठ १०७ पर उद्धृत

के चरणोदक से बढकर कोई भी तीर्थ नही है, क्योकि वैष्णवो का चरणोदक नित्य गगा को भी पवित्र करता है।[1] अन्तिम भाग में है भगवान् श्रीराम के रूप, गुण, प्रताप तथा शरणागति का रहस्य और भेद का वर्णन। यह इस ग्रन्थ का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है और वैष्णव रस-साधना पर विशेष प्रकाश डालता है। इससे यह स्पष्ट है कि स्वामी रामचरणदास जी गुह्य रसिक साधना के अनुभवी भी थे और मर्मज्ञ भी, दूसरे शब्दो में श्रोत्रिय भी थे और ब्रह्मनिष्ठ भी। इस खण्ड के आरम्भ में ही उनका अपना रचा हुआ एक दोहा है। बीच में अनेक स्थलो पर श्री करुणासिधु जी ने स्वरचित पद दिये है जिससे उनकी अन्तर्धारा का अनुमान किया जा सकता है। वह दोहा इस प्रकार है—

नखसिख सीताराम छबि जब लगि हृदय न बास,
रामचरण सब साधना तब लगि लखब निरास।।

और अन्त में श्री करुणासिन्धु जी ने इष्ट ध्यान के स्वरचित दो श्लोक दिये हैं जो अद्वितीय है—

राम सान्द्रधनस्वरूपममल सच्चिद्घनानन्दकम्।
विद्युद्दिव्यदुकूलपीतयुगल श्रीदामवक्ष स्थलम्।।
मजीरागद रत्नककणरणत्काचीलसन्मुद्रिकम्।
मुक्ताहार किरीट कुण्डल धनु सचित्र वाणोज्वलम्।।
काश्मीरी तिलकालकावृतमुख साचीक्षण सस्मितम्।
ताम्बूलाधर पल्लव रसमय नासाग्रमुक्ताफलम्।।
ध्यायेच्छत्र सुदिव्यचामरयुत साकेतरत्नासने।
जानक्यशभुज सखीगणवृत नित्य निकुजे स्थितम्।।

इस प्रकार रामनवरत्न में स्वामी रामचरणदास करुणासिंधु जी ने रामभक्ति की रसमयी साधना के सम्बन्ध में अनेक आवश्यक ज्ञातव्य बातो को बडे ढग से सजाकर रख लिया है। शास्त्र के वचनो को ठीक-ठीक तारतम्य से सजा देना ही उनकी अलौकिक समन्वयी प्रतिभा तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य एव प्रशस्त अध्ययन का सूचक है। अर्थ में कही भी खीचतान अथवा दूरारूढ कल्पना से काम नही लिया है।

श्री सीताराम नाम प्रताप-प्रकाश

श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश श्री स्वामी युगलानन्दशरण जी महाराज द्वारा श्रुति, स्मृति, पुराण, उपपुराण, सहिता, तत्र, नाटक, रहस्य और श्रीमद्रामायण आदि सद्ग्रन्थो के प्रमाणो द्वारा श्रीरामनाममाहात्म्य विषय पर सगृहीत तथा सन् १९२५ ई० में लखनऊ स्टीम प्रेस

---

१ नात परतर तीर्थं वैष्णवाघ्रिजलात् शुभात्।
तेषा पादोदक नित्य गगामपि पुनाति हि।। —पद्मपुराण से, पृष्ठ १०७ पर उद्धृत

से मुद्रित (पाँचवाँ सस्करण) भापा-टीका सहित उपलब्ध है। इसमें कुल २१८ पृष्ठ हैं। श्री रामनाम की महिमा पर इतना भव्य प्रामाणिक ग्रन्थ और नही है और इसीलिए वात की वात में इसके कितने सस्करण हुए। इसकी लोकप्रियता का स्वय यह एक प्रवल प्रमाण है। स्वामी युगलानन्दशरण जी रसिक उपासना के एक सर्वमान्य आचार्य है। यह ग्रन्थ इनके अनुभव और पाण्डित्य के प्रकाश से जगमग है। इस ग्रन्थ में वीच-वीच में, स्वामी श्री युगलानन्दशरण जी के रचे हुए दोहे, कवित्त, सवैये भी मिलते है जो काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनका विवेचन यथास्थान मिलेगा। नाम-साधना में युगलानन्दशरण जी ने प्रेम को ही विशेप महत्त्व दिया है और प्रीतिपूर्वक, इष्ट के ध्यान के रस में लीन नाम-स्मरण को ही सर्वश्रेष्ठ ठहराया है, जैसा इनके इस दोहे से स्पष्ट है—

वडभागी रागी रसिक, ज्ञान ध्यान रसलीन।
भजे जानकी जानि निज, नाम महा रसमीन॥

इस दोहे में रसिकोपासना मे नामसाधना की सपूर्ण प्रक्रिया आ गई है। अस्तु श्री युगलानन्दशरण जी का 'श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश-ग्रन्थ नाम' साधना का एक अनुपम कोप है जिसमे समस्त शास्त्रो का निचोड इस विपय पर एक स्थान पर सुन्दर ढग से सजाया हुआ मिलता है। यह ग्रन्थ इसी कारण रसिकोपासको में नाम साधना में रसलीन भक्तो के गले का हार है और सदा रहेगा।

श्री रामतत्त्व-भास्कर

श्री रामतत्त्व-भास्कर श्री हरिहरप्रसाद का रचा हुआ और शृंगार भवन, अयोध्या के श्री प्रमोदवन विहारीशरण जी के तत्त्वावधान में लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादावाद से स० १९७२ में मुद्रित तथा प्रकाशित हुआ है। पूर्वार्द्ध में अनेक मतो का खण्डन है और अपने मत का स्थापन। उत्तरार्द्ध में श्रीराम का 'परत्व' तथा अन्य देवताओ से श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। प्रसगत. पडक्षर-माहात्म्य भी आ गया है। नामतत्त्व के प्रकरण में विष्णु, नारायण, हरि, गोविन्द, वासुदेव, जगन्नाथ, कृष्ण, राम आदि नामो का अलग-अलग माहात्म्य वर्णित है। फिर नामापराध की चर्चा है और पुन श्री रामनाम की महिमा का सविशेप वर्णन है। रामनाम सभी नामो से श्रेष्ठ है, मधुर है, आनन्ददाता है, यही ग्रन्थकार ने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रमाणित किया है, प्रतिपादन की शैली प्रभावशाली है।

उपासनात्रय सिद्धान्त

उपासनात्रय सिद्धान्त भी प्रमाण ग्रन्थो में एक आदरणीय स्थान का अधिकारी है। इस कनक-भवन, अयोध्या के महत परमहस सीताशरण जी के शिष्य श्री सरयूदास जी 'वैष्णवधर्म प्ररोचक' ने वडे परिश्रम से वेद, शास्त्र, पुराण, सहिता, तत्र, रहस्य, नाटक, रामायण तथा और भी अनेकानेक रहस्य-ग्रन्थो के प्रमाण देकर एम्० एन्० प्रेस, वनारस से छपवाया तथा सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचंद अयोध्या मे प्रकाशित कराया है। 'उपासनात्रय सिद्धान्त' में श्री रामानुजीय

वैष्णवो के मतानुसार श्रीमन्नारायण की उपासना, श्री वृन्दावन-वासियो के मतानुसार श्री कृष्णोपासना तथा श्री अयोध्यानिवासियो के मतानुसार श्री रामोपासना का सिद्धान्त बडे ही प्रामाणिक ढग से शास्त्रो के प्रमाणो से परिपुष्ट वर्णित है। सग्रहकर्त्ता की उदारता एव समन्वय बुद्धि का पता पग-पग पर मिलता है। अपने इष्ट के प्रति विशेष अनुराग एव आस्था होते हुए भी अन्य उपास्य के प्रति आदर एव श्रद्धा का भाव कथमपि खण्डित या दूषित नही होने पाया है। यही ग्रन्थकार की विशेषता है। साम्प्रदायिक आग्रह तो इस ग्रन्थ में लेशमात्र भी नही है।

इस ग्रन्थ में एक स्थान पर (पृ० १२०) स्वामी रामानन्द को राम का अवतार माना है तथा उनके साथ ही ब्रह्मा का अवतार अनन्तानन्द, नारद के अवतार सुरसुरानन्द, शकर के अवतार सुखानन्द-सनत्कुमार के अवतार नरहर्यानन्द, कपिल के अवतार योगानन्द, मनु के अवतार पीपा जी, प्रह्लाद के अवतार कबीर, जनक के अवतार भावानद, भीष्म के अवतार सेना जी, शुकदेव के अवतार गालवानन्द योगिराज, यमराज के अवतार रमादास अथवा रैदास, लक्ष्मी का अवतार पद्मावती हुई। इस कथन का क्या आधार है या क्या प्रमाण है इसका उल्लेख नही मिलता। जो हो, कुल मिला कर यह ग्रन्थ त्रिविध उपासना का तुलनात्मक रहस्य समझने के लिए तथा रामोपासना की रसिक धारा की विशेषता समझाने के लिए परम उपयोगी है।

एक बार श्री जानकी जी ने भगवान् राम से रास का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इस पर भगवान् राम ने कहा कि तुम्हारा ही अश वृन्दावनेश्वरी श्री राधा जी हैं और मेरे ही अश श्री गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण जी हैं। श्रीराम का ऐसा कहना था कि सपूर्ण गोलोक अपने पूर्ण रास मण्डल के साथ सामने प्रत्यक्ष हो गया तथा राधाकृष्ण श्री सीताराम में लीन हो गये—राधा जी सीता जी में और श्रीकृष्ण श्रीराम में।[1] सग्रहकर्त्ता ने कई स्थलो पर विभिन्न शास्त्र-वचनो से यह प्रमाणित किया है कि भगवान् राम नारायण से भी, श्रीकृष्ण से भी श्रेष्ठ है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भगवान् राम के आवेशावतार है।[2] इसमें साम्प्रदायिक आग्रह न समझकर साम्प्रदायिक निष्ठा ही मुख्य

श्री जानकी उवाच—

१ आवा प्रियो निकुजोऽत्र सर्वर्त्तुसुखशोभितम्।
कश्चिनौ विहरिष्यावो राधाकृष्णाविव व्रजे॥

श्री राम उवाच—

त्वदशा एव राधा सा प्रिये वृन्दावनेश्वरी।
महेश एव नियत कृष्णो गोपेन्द्रनन्दन ॥
ततस्तद् युगल श्रीमद्राधाकृष्णात्मक महत्।
सीतारामात्मक युगम प्राविशन्नतिपूर्वकम्॥

२ परा नारायणाच्चैव कृष्णात्परतरादपि।
यो वै परतप श्रीमान् रामो दाशरथि स्वराट्॥

मानना चाहिए । आग्रह एक चीज है, निष्ठा और। कोई भी अपनी अनन्य निष्ठा मे अपने इष्टदेव को सर्वोपरि मान सकता है और ऐसा मानने में किसी को कथमपि आपत्ति या विरोध नही होना चाहिए।

श्री रामपटल

श्री रामपटल हिन्दी-टीका के साथ स० १९७९ में आनन्द प्रेस, बनारस से मुद्रित तथा छोटेलाल लक्ष्मीचद, अयोध्या द्वारा प्रकाशित उपलब्ध है । इसमे वैष्णवो के आचार-विचार, उनके पच सस्कार, दश लक्षण, मुद्रा, जपविधि, षोडशोपचार पूजापद्धति, नाम, सस्कार, तिलक-धारण आदि पर बडे विस्तार से विचार किया गया है। इसे चारो वैष्णव मतो के आचार-विचार का कोष ग्रन्थ या 'रेफरेंस बुक' माना जा सकता है, क्योकि प्राय सभी उपयोगी साधना शैलियो तथा आवश्यक उपादानो का सविशेष सप्रमाण विवरण इस ग्रन्थ में एक स्थान पर एकत्र मिलता है।

शृंगारिक खण्ड काव्य

राम-सम्बन्धी शृगारिक खण्ड काव्य की सृष्टि विशेषकर 'मेघदूत' तथा 'गीतगोविन्द' के अनुकरण पर हुई है। 'मेघदूत' के अनुकरण पर निम्नलिखित ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है—

१ हस-सदेश अथवा हस-दूत । इसमे हस-द्वारा सीता के पास लाये हुए राम-सदेश का वर्णन मिलता है। यह तेरहवी शताब्दी का ग्रन्थ माना जाता है और इसके रचयिता के कई नाम पाये जाते हैं—वेंकटदेशिक, वेकटनाथ, वेदान्ताचार्य, श्री वेदान्तदेशिक ।

२. भ्रमर दूत—नैयायिक रुद्र वाचस्पति की २८८ छदो की इस रचना मे सीता के पास भ्रमर को भेजने का वर्णन किया गया है।

३ भ्रमर सदेश—वासुदेव कृत।

४ कपिदूत—हनुमान जी द्वारा सदेश वाहन।

५ कोकिल सदेश—वेंकटाचार्य कृत ६०० छन्दो की १७ वी शताब्दी की रचना।

६ चद्रदूत—कृष्णचन्द्र तर्कालकार कृत।

गीत-गोविन्द के अनुकरण पर भी बहुत से राम-सीता-सम्बन्धी काव्यो की रचना हुई है । उदाहरणार्थ—

१ रामगीत गोविन्द जो मूल से जयदेव कृत माना जाता है।

२ गीता राघव नाम से दो रचनाएँ प्रचलित हैं, एक हरिशकर कृत तथा अन्य प्रभाकर कृत।

- यस्यानन्तावताराश्च कला अंशविभूतयः।
आवेशा विष्णु ब्रह्मेशाः परं ब्रह्म स्वरूपभाः॥
स एव सच्चिदानन्दो विभूतिद्वयनायकः।
—श्री उपासनात्रय सिद्धान्त, पृष्ठ १४७

३ जानकी गीता—श्री हर्याचार्य कृत।

४ राम विलास-हरिनाथ कृत।

५ सगीत रघुनन्दन १८ वी शताब्दी—विश्वनाथ सिंह जू की रचना में गीतगोविन्द के अनुकरण पर साथ-साथ सीताराम की युग्म भक्ति का भी प्रतिपादन किया गया है।

६ राघवविलास—साहित्यदर्पण कार विश्वनाथ कृत।

७ रामशतक—सोमेश्वर कृत।

८ समार्याशतक—मुद्गलभट्ट कृत।

९ आर्यारामायण—कृष्णेनु कृत।

इनमें रामकथा की कोई विशेष सामग्री नही मिलती, परन्तु इनसे रामकथा की लोक-प्रियता तथा समस्त काव्य-शैलियो में व्यापकता का प्रमाण मिलता है।[1]

---

१ देखिए रामकथा—पृष्ठ २००-२०१ अनुच्छेद २५२-२५३-२५४।

आठवाँ अध्याय

रसिक परम्परा का साहित्य

हिन्दी में

अष्टयाम

'अष्टयाम' मे अष्टप्रहर की सेवा का वर्णन है। इसमे वाह्य सेवा और मानसी सेवा दोनो का ही वर्णन होता है। मधुरोपासना में अष्टयाम सेवा मुख्यतम अग है। इस समय भी श्री अवध मे अष्टयाम उपासना चलती है। मगला आरती से लेकर शयन तक की विविध लीलाओ को अष्टयाम कहते है। भगवान का स्नान तथा शृगार, भिन्न-भिन्न समयो की लीला, भोजन और शयन ये ही पाँच काल होते है।

सबसे पहला अष्टयाम श्रीकृष्णदास जी पयहारी के शिष्य श्री अग्रस्वामी का है। अभी-अभी चैत्र शुक्ल ६ वि० संवत् १९९५ मे प० श्री रामवल्लभाशरण जी महाराज श्री जानकी घाट अयोध्याजी की व्याख्या के सहित अमावा-टेकारी की राजराजेश्वरी श्रीमती रानी भुवनेश्वरी कुँवरि द्वारा प्रकाशित हुआ है।

श्री अग्रस्वामी कृत

भगवान राम के सखा और सखी

१ सुलोचनमणि, २ सुभद्र मणि, ३ सुचन्द्रमणि, ४ जयसेन मणि, ५ वलिष्ठमणि, ६ शुभशीलमणि, ७ अनगमणि और ८ रसकेतुमणि ये आठो काम को लज्जित करनेवाले सुन्दर कुमार आठो मन्त्रियो के पुत्र है। श्रीरामजी के सखा है। सदा ही श्रीरामजी की सेवा मे तत्पर रहते है।

स्त्रिय पुसस्स्वरूपेण सख्यमात्रेण सेविता ॥ पा० टि० ॥

पुन १ श्री लक्ष्मणा जी, २ श्री श्यामल जी, ३ श्री हसी जी, ४ श्री सुगमा जी, ५. श्री वश-ध्वजा जी, ६ श्री चित्ररेखा जी, ७ श्री तेजोरूपा जी, ८ श्री इन्दिरावली जी ये आठ सखी है। समय-समय पर पुरुष रूप धारण कर श्री सीतारामजी की सेवा करती है।

पुन आठ दासियाँ है—१ निगमा जी, २ सुरसा जी, ३ वाग्मी जी, ४ शास्त्रज्ञा जी, ५ वहुमगला जी, ६. भोगज्ञा जी, ७ धर्मशीला जी, ८ विचित्रा जी। ये सब नित्य ही सेवा विधान करनेवाली है।

ध्यान

अशोक वन के मध्य एक कल्पवृक्ष है। यद्यपि सभी वृक्ष देव-तरुवरो को लज्जित करने

वाले हैं, तथापि यह विलक्षण है। उस कल्पवृक्ष के पास ही अधोभाग में मणिमय मनोरम मण्डप है, मन्दिर बना हुआ है, जिसके चारों दिशाओं में द्वार हैं। उसके बीच में रत्नमयी वेदी है, उस वेदी के मध्य सिंहासन है। सिंहासन के मध्य मणिमय अष्टदल कमल है। कमल के मध्य कर्णिका है। उस कर्णिका में प्रथम मकार चन्द्रबीज है, पुन अकार भानुबीज है, पुन ऊपर के भाग में रकार वह्नि अग्नि बीज है। उसी अग्निमण्डल में श्री सीताराम जी का निवास है।

उसी कर्णिका पर आठ सखियों से सेवित श्री सीताराम जी विराजमान हैं। दक्षिण में चमर, पश्चिम में छत्र, उत्तर में व्यजन लिए श्री भरतादि भ्राता तथा अन्य सेवक परिकर सब ताम्बूल, पुष्पमाला इत्यादि लिए सेवा कर रहे हैं।

ईशान कोण में श्री लक्ष्मणा जी हैं, पूर्व में श्री श्यामला जी हैं अग्निकोण में श्री हंसा जी हैं और दक्षिण में श्री सुगमा जी हैं। नैर्ऋत्य कोण में श्री वंशध्वजाजी हैं, पश्चिम में श्री चित्ररेखा जी हैं, वायव्य कोण में तेजोरूपा जी हैं और उत्तर में श्री इन्दिरावली जी हैं। इस प्रकार, सेवा का वर्णन करके अब कुञ्जों के स्थानों का कथन करते हैं कि किस दिशा में किसका कुञ्ज है।

उत्तर में, सेवा के सब उपकरणों से युक्त, परम रम्य श्री लक्ष्मणा जी का कुञ्ज है। इसी तरह ललित कुण्ड से पूर्व श्री श्यामला जी का कुञ्ज है, और ललित कुण्ड से दक्षिण श्री हंसी जी का कुञ्ज है। पश्चिम में नाना पुष्पों से मण्डित श्री सुगमा जी का कुञ्ज है, पश्चिम और उत्तर के बीच में अर्थात् वायव्यकोण में श्रीमती वंश-ध्वजाजी अपने कुञ्ज में विराजती हैं। इसी तरह ईशान कोण में श्री चित्ररेखा जी हैं और पूर्व-दक्षिण के मध्य अग्निकोण में श्री तेजोरूपा जी अपने कुञ्ज में प्रतिष्ठित हैं। नैर्ऋत्यकोण में श्री इन्दिरावली जी हैं। इसी तरह, सखियों के नाम और उनके स्थान कुञ्ज कहे गये हैं। जैसे – ललितकुण्ड के आठों तरफ आठ सखियों के कुञ्ज हैं, वैसे ही, माधवी कुण्ड के आठों तरफ आठ सखाओं के कुञ्ज हैं। माधवी-कुण्ड के उत्तर कुञ्ज में श्री सुलोचन जी हैं, ईशान-कोण में श्री सुभद्रा जी का कुञ्ज है और पूर्व में श्री सुचन्द्र जी का कुञ्ज है। अग्निकोण में श्री जमयन जी का कुञ्ज है, दक्षिण में श्री वरिष्ठ जी का कुञ्ज है, नैर्ऋत्य में श्री जयशील जी का कुञ्ज है और पश्चिम में श्री अनगजित् जी अर्थात् जिनको श्री अनगमणि कहते हैं, वे इस कुञ्ज में स्थित हैं। वायव्यकोण में श्री रसकेतु जी का कुञ्ज है। इस प्रकार, अपने-अपने कुञ्जों में आठों सखा रहते हैं।

प्रफुल्लकमलप्रख्ये मरन्दामोदमेदुरे।
तत्र प्रसूनशयने समासीनान्तु जानकीम् ॥पा० टि०

सौरभ, आमोद और मकरन्द से भरे खिले हुए कमल के समान ही (ऐसे) कमल दलों की शैया पर (जिनमें सरोवर के नवविकसित कमलों की पंक्तियों से तनिक भी अन्तर नहीं है, जो तनिक भी नहीं मुर्झाए हैं) श्री विदेहराजनन्दिनी जू विराजी हुई हैं। ऐसा चिन्तन करें।

नानाऽलंकारसंयुक्ता सर्वसौन्दर्यशालिनीम्।
आश्लिष्टाङ्गी च हरिणा सर्वाङ्गी रामवल्लभाम् ॥पा० टि०

श्री राम जी से आश्लिष्ट हैं। प्रात काल जागकर दोनो प्रिया-प्रियतम, स्नेह भरे, परस्पर मिले हुए हैं – नायिका-शिरोमणि आपका मुग्ध भाव ही, सब शोभा का तथा गुणोद्रेक के गौरव का सूचक है।

रतिलीलासमाकृष्टास्फुरदलकसयुताम् ।
ध्यात्वादेवी वरारोहा माधकस्तत्परोभवेत् ॥

परस्पर की स्नेहमयी रतिलीला से समाकृष्ट होने के कारण अलके बिथुर रही है, उनमे मयुक्तवरारोहा देवी, दिव्यगुण लीला-सम्पन्ना श्री रामवल्लभा जू का ध्यान कर साधक अपनी सेवा मे तत्पर होवे।

लक्ष्मणा श्यामला हमी सुगमाऽच चतुर्विधा ।
स्त्रिय पुस स्वरूपेण मख्यमात्रेण सेविता ॥पा० टि०

श्री लक्ष्मणा जी, श्री श्यामला जी, श्री हमी जी और श्री सुगमा जी, ये चार प्रकार की परम चतुर सखियाँ, समय-समय पर, पुरुष-स्वरूप को धारण कर, अर्थात् कभी स्त्री रूप से कभी पुरुष रूप से सेवा करती है।

'यादृशी रामवाछास्यात्तादृगाहिभवन्ति ते' ।
'जानक्यासहित राम नित्य सेवेत्तु मानसे' ॥पा० टि०

सखियो की सेवा का वर्णन—

लक्ष्मणा ताम्बूलसेवा श्यामला गन्धमोदकम् ।
हसी चन्दनलिप्तागं मुगमा चन्द्रवासकम् ॥पा० टि०

श्री लक्ष्मणा जी ताम्बूल से सेवा करती है, श्री श्यामला जी अतर आदि सुगन्धित वस्तुओ से एव मोदक आदि पक्वान्नो से सेवा करती है, श्री हमी जी कोमल करकमलो से मृदु अगो में चन्दन आदि लेपन करने की सेवा करती है।

निगमा चामरसेवा च सुरमा वस्त्रक तथा ।
वाग्मी पादाब्ज सेवा च शास्त्रज्ञा वाद्यमगला ॥पा० टि०

श्री निगमा जी चामर की सेवा, श्री सुरमा जी वस्त्र की सेवा, श्री वाग्मी जी चरण कमलो की सेवा और शास्त्रज्ञा जी मगलमय अनेक प्रकार के सुरीले बाजो को बजाकर मगलमय गान के द्वारा मेवा करती है।

आलापे वहुमगला भोगज्ञा गायने रता ।
धर्म्मशीला पादसेवा नित्य सेवा शयाह्निकम् ॥पा० टि०

श्री बहुमगला जी अनेक तरह के रागो का आलाप करती है, श्री भोगज्ञा जी भी गान करने मे तत्पर रहती है और धर्मशीला जी चरण-मेवा करती है ।

जब वाटिकादिक बिहार करके श्री रामजी लौटते हैं, उस समय सखियो को सग लेकर गोपुर के गवाक्ष नाम झरोखो में बैठकर श्रीरामजी के मुख कमल को श्री रामवल्लभा जी अवलोकन करती हैं।

एव विचिंतयेद्दृष्ट प्रेमानन्देन साधक ।
सीतारामविहारच प्रेमामृतरसार्णवम् ।।पा० टि०

इस तरह से हर्षित होकर प्रेमानन्द से प्रेमावृत्त रस का समुद्र श्री सीताराम जी का विहार मन मे साधक को चिन्तन करना चाहिए।

सोलह शृगार

स्नान नासाग्र मुक्ता च नील कौशेयवस्त्रकम् ।
स्वर्ण सूत्रा दिव्य वेणीमगरागानुरजितम् ।।पा० टि०

स्नाम और नासाग्र मुक्ता का धारण करना और नील रग की रेशमी साडी धारण करना जिसमे सुवर्ण के सूत्रो की मनोहर चमकदार किनारी बनी है, दिव्य वेणी का सवारना और अगराग से अनुरजित करना।

काची गुणलसलन्नीवी मणिस्रगवतसिकाम् ।
कराग्रे धृतपद्मा च नागवल्ली दलान्विताम् ।।पा० टि०

सुवर्ण की मणिजटित काची अर्थात् छुद्र घण्टिका और उसके मनोहर गुण से नीबी का अग्र भाग शोभित होता है और मणियो की माला तथा कर्णफूल आदि सबसे शृगार होता है, पुन कर-कमल में पद्म को धारण करती है और ताम्बूल को ग्रहण करती है ।

सिन्दूर विन्दु तिलका कस्तूरी चिबुकाचिताम् ।
अजनेना रजिताक्षी वलयादिविभूषिताम् ।।पा० टि०

सिन्दूर का विन्दु तिलक स्थान पर धारण करती है। कस्तूरी का अति सूक्ष्म विन्दु चिवुक के ऊपर धारण करती है जिससे अति शोभित होती है । पुन अजन आदि से नेत्र कमल रजित होते है और वलयादि अर्थात् चूडी आदि मणि-रचित दिव्य भूपणो से कर-कमल शोभित होते हैं।

यावकै रक्तपादा च सिंजन्मजीरभूषणाम् ।
शृगार पोडशयुता सीता ध्यायेद्धृदम्बुजे ।।

फिर यावक अर्थात् महावर से आपके चरण-कमल अति शोभित किये जाते हैं और सुन्दर मनोहर नूपुरादि मजीर भूपणो से शोभित होती है। इस तरह पोडश-शृगार से युक्त सर्वेश्वर श्री रामजी की वल्लभा श्री जानकी जी को हृदय कमल मे ध्यान करे।

ध्यान मंजरी

श्री अग्रस्वामी या अग्रदासजी

नाभादास जी के गुरु अग्रदास जी की यह 'ध्यान मञ्जरी' रामरसिकोपासको की परम प्रिय पोथी है। एक बहुत प्राचीन प्रति कामेन्द्रमणि जी के शिष्य रसरगमणि जी की 'मकरन्द माधुरी' टीका के साथ प्राप्त है। टीका स्वय अपने आप मे रसिकोपासना का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमें स्थान - स्थान पर शकाएँ की गई है और विस्तार से जमकर, उनका समाधान प्रस्तुत किया गया है। टीका की शैली पुरानी है और 'किभूती' है, पर तत्व-निरूपण बडा ही प्रभावशाली है। सम्पूर्ण ग्रन्थ कुल ८० पदो का है। आरम्भ मे श्री अवधपुरी का ध्यान है, फिर वहाँ के निवासी धर्मशील नर-नारियो का वर्णन है। पुन अन्त पुर निवासिनी युवती सेविकाओ का उल्लेख है। सरयू जी के वर्णन मे अग्रदास जी ने कमाल कर दिया है। वहाँ, श्री सरयू तट पर, अशोक वन है जहाँ एक कल्पवृक्ष है। उसी कल्पवृक्ष की स्वर्ण वेदिका पर एक रत्न सिंहासन है जिसपर दिव्य पद्मो का एक शुभासन है। उसके बीच में दिव्य कर्णिका है जो एक तेज से आवेष्ठित है। उस पर युगल सरकार श्री सीताराम सुशोभित है।

अब स्वय श्री अग्रदास जी के शब्दो मे ही इस दिव्य ध्यान का आनन्द लीजिए—

श्री राम का ध्यान—

कल्प वृक्ष के निकट तहाँ यह धाम मणिन युत।
कचन मय सब भूमि परम अति राजत अद्भुत॥

स्वर्ण वेदिका मध्य तहाँ यह रतन सिंहासन।
सिंहासन के मध्य परम अति पदुम शुभासन॥

ताके मध्य सुदेस कर्णिका सुन्दर राजै।
अति अद्भुत तहँ तेज वन्हि सम उपमा भ्राजै॥

तामधि शोभित राम नील इन्दीवर ओभा।
अखिल रूप अमोघि सजल घन तन की शोभा॥

शिर पर दिव्य किरीट जटित मजुल मणि मोती।
निरखि रुचिरता लजित निकर दिन कर की जोती॥

कुण्डल ललित कपोल जुगल अति परम सुदेशा।
तिनको निरखि प्रकाश लजित राकेस दिनेशा॥

मेचक कुटिल सुचारु सरोरुह नयन सुहाए।
मुख पकज के निकट मनहुँ अलि छौना आये॥

भृकुटी श्रय पद सगुन मनहुँ अलि अवलि विराजै।
नासा परम सुदेश बदन लखि पकज लाजै॥

चितवनि चारु कृपाल रसिक जन मन आकर्षत।
मन्द हास मृदु बयन जनन को आनन्द वर्षत॥

दीरघ दीप्त ललाट ज्ञान मुद्रा दृढ धारी।
सुन्दर तिलक उदार अधिक छवि शोभित भारी॥

परम ललित मणिमाल हार मुक्ता छवि राजै।
उर श्रीवत्स सुचिन्ह कण्ठ कौस्तुभ मणि भ्राजै॥

यज्ञोपवीत सुदेश मध्यधारा जु विराजै।
उभै भुजा आजानु नगन जटि ककन राजै॥

चूनीरतन जराय मुद्रिका अधिक सवारी।
शोभित अद्भुत रूप अरुण की छवि अनुहारी॥

भूषण विविध सदेश पीत पट शोभित भारी।
लसत कोर चहु ओर छोर कल कचन धारीं॥

रोमावलि बनि आइ नाभि अस लगति सुहाई।
त्रिवलि तामधि ललित रेख श्रय अति छवि छाई॥

कटि परदेश सुढार अधिक छवि किंकिन राजै।
जानु पुष्ट बनि गूढ गुल्फ अति ललित बिराजै॥

नूपुर पुरट सुचारु रचित मणि माणिक सोहै।
रविकल सुरमगीत सुनत परिजन मन मोहै॥

युगल अरुण पद पद्म चिन्ह कुलिशादिक मडित।
पद्मा नित्यनिकेत शरण गत भव भय खडित॥

दक्षिण भुज शर सुभग सुहावन सुन्दर राजै।
दिव्यायुध सुविशाल वाम कर धनुष विराजै॥

षोडस वरस किशोर राम नित सुन्दर राजै।
राम रूप को निरखि विभाकर कोटिक लाजै॥

अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी।
रूप सच्चिदानन्द वाम दिशि जनक कुमारी॥

श्री सीता जी का ध्यान

नगन जरे छवि भरे विविध भूषण अस सोहैं।
सुन्दर अंक उदार विदित चामीकर कोहैं॥
अलक झलकता श्याम पीठ सोभित कल वेनी।
सुन्दरता की सीव किधौं राजति अलि श्रेनी॥
रचित सु विविध प्रकार माग जरतार संवारी।
मनहु, सरसरी धार वनी शोभा अस भारी॥
पाटन की लर और वडे वडे उज्ज्वल मोती।
सघन तिमिर के मध्य मनो उडगण की जोती॥
रतन रचित मणि जटित शीस पर विन्दा छाजै।
ललित कपोत सु युगल करन ताटक विराजै॥
उज्ज्वल भाल सुचारु अमित उपमा अस सोहैं।
राजत परम सोहाग भाग को भवन किधौं हैं॥
गोरोचन को तिलक ललित रेखा वनि आई।
उन्नत नासा सुभग लसत वेसरि जु सुहाई॥
भृकुटी नयन विशाल सौम्य चितवनि जग पावन।
मानहु विकसित कमल वदन अस लगत सुहावन॥
अरुण अधर तर दसन पाति अस लगति सुहाई।
चारु चिवुक विच तनक विन्दु मेचक छवि छाई॥
कंठ पोति मणि जोति सु छवि मुक्ता वरमाला।
पदिक रचित कलधौत विराजत हृदय विशाला॥
हेम तन्तु कर रचित अरुणा सारी रंग झीनी।
कंचुकी चित्रित चतुर विविध शोभित रंग भीनी॥
वर अंगद छवि देति वाहु अस लगति सुहाई।
करन चूरी रंगभरी ललित मंदरी वनि आई॥
पद्मराग मणिनील जटित युग कंकण राजै।
मनहु वनज के फूल टुरेफनि पंक्ति विराजै॥
लहगा कटि परदेश भांति अति शोभित गहिरी।
अरुण अमित सित पीत मध्य नाना रंग लहरी॥

हरित नगन कर जरित युगल जेहरि अस राजै।
तिन पर घुघुरु और अग्र बिछिया सुबिराजै॥
तिन पर नग जु अमोल ललित चूनी गण लाये।
चरण चारु तल अरुण सहज ही लगत सुहाये॥
अतुलित युगल स्वरूप कवन अस उपमा जिनकी।
जेतिक उपमा दीप्ति शक्ति करि भासित तिनकी॥
यहि विधि राजत राम अवधपुर अवध बिहारी।
दम्पति परम उदार सुयश सेवक सुखकारी॥

पार्षदो का ध्यान

दक्षिण भुज रिपुदलन गौर तन तेज उदारा।
उभय हेतु अनुसार धरे बृत खडित धारा॥
शेष लिये कर छत्र भरत लिये चवर दुरावै।
अनि सुवन करजोरि सु प्रभु की कीरति गावै॥
अपनी अपनी ठौर नित्य परिकर बनि भारी।
सुरति शक्ति विमलादि रहत नित आज्ञाकारी॥
जो जो जेहि अधिकार सचितव सेवा मन बासै।
बीनाधर सुरतान गान करि प्रभुहि उपासै॥
यही ध्यान उर धरै स्वय तन सुफल करेवा।
भव चतुरानन आदि चरन बन्दै सब देवा॥
यह दम्पति वर ध्यान रसिक जन नितप्रति ध्यावै।
रसिक विना यह ध्यान और सपनेहु नहिं पावै॥
पौरि द्वार अतिचारु सुहावन चित्रित सोहै।
चपतार मदार कल्पतरु देखत मोहै॥

रामाष्टयाम

श्री नाभादास जी

द्वादश वन वर्णन

प्रथमहि वन शृंगार सुहावन। वन विहार तमाल अति पावन॥
वन रसाल चपक नन्दन वर। पारिजात अशोक मगल तर॥

वन विचित्र कवि कहत कदवा। वन अनग रस अलि अवलवा ।।
नवल नाग केसरि वन नीको। ललित लालि तो रघुवर सीको ।।
तृदिशि नगर सरयू सरि पावनि। मणिमय तीरथ अमित सुहावनि ।।
विकमे जलज भृ ग रस भूले। गुजत जल समूह दोउ कूले ।।
परिपा त्रिविध मुधा सम वारी। विकसे विविध कज मनहारी ।।
विच विच महल पक्ति वनि आई। स्वर्ण रत्न मणि सुभग सुहाई ।।

परिपा प्रति चहु दिशि लसत, कचन कोट प्रकाम।
विविध रग नग जगमगत, प्रति गोपुर पुर पास ।।

दिव्य फटिक मय कोट की, शोभा कहि न सिराय।
चहु दिशि अद्‌भुत ज्योति मय, जगमगात सुख पाय ।।

महल की शोभा

भीतर कोट वोट अति पावन। चिंता मणि मय भूमि सुहावन ।।
चहु दिशि योजन चार सुहावा। सो अवधैंद्र भवन श्रुति गावा ।।
पच चौक राजत अति नीके। कौशलसुता राजमहिषी के ।।
पूरव चौक सखी वहु राजैं। वेत पाणि रक्षण हित काजैं ।।
दक्षिण राज किंकरी दासी। महल टहल नित निकट सुपासी ।।
पश्चिम चौक सैन की शाला। राजति तहा सुमगल वाला ।।
रघुवर धाय पुत्र सव पाले। पान पान मुख वहु विधि लाले ।।
उत्तर चौक करत सव सेवा। राजत रग राज कुल देवा ।।

कुल गुरु नृप पुत्रन सहित, वधुन सहित रनिवास।
ज्ञाति वर्ग मत्री मुदित, पूजत सहित हुलास ।।

अन्तःपुर का वर्णन

पुनि तह ते षोडश सहचरी। गाइ उठी प्रीतम रग भरी ।।
तिन ते अलि नव अष्ट सुहाई। निज निज थल गावत छवि छाई ।।
अत पुर जह सिय पिय राजैं। शोभा कहत शेष श्रुति लाजैं ।।
रतन जडित परयक सुहावा। स्वर्ण रत्न मणि खचित सुपावा ।।
विविध विचित्र चित्र रग राजैं। निरखत अलिवलि सहित समाजैं ।।
अति अद्‌भुत उपमा छविछाये। श्रुति संहिता पुराणन गाये ।।
तेहि ऊपर अति ललित विछोना। क्षीर फेन सम कोमल लोना ।।
तेहि ऊपर सुमनन की शोभा। कहत न वनै देखि मन लोभा ।।

चित्र विचित्र अनी न रचि, सेज सुमन पच रग।
लाल लाडिली रस भरे, सोवत दोउ हित सग ॥

छतुरी ललित ललाम, राजत वर परयक कर ॥
चहुदिशि मुक्ता दाम, विशद काति झालरि ललित ॥

कनक दड वर चारि सुहावन। रचित अरुण मणि अति मन भावन ॥
अति सुदर सनेह सुख खानी। कहत सुकरि सद ग्रन्थ बखानी ॥
अद्‌भुत रग काति सुखरासी। कुज महल छवि प्रभा प्रकासी ॥
गज मुक्तन की झालरि झमकै। मणिमय दीप ज्योति मधि चमकै ॥
झीने पट अति परदा परे। पवन प्रसग व्यजन शिर ढरे ॥
तेहि चारिउ दिशि फरस बिछाये। कनक तारमणि जडित सुहाये ॥
कहु अति कोमल बिछे गलीचा। सुमनन की रचना बिच बीचा ॥
कहु कचन की चौकी वरी। झारी श्री सरयू जल भरी ॥

शीतल मधुर सुगध सुख, स्वाद विशद रस रूप।
तृषा हरन मगल करन, आनद भरन अनूप ॥

रत्न जडित बहु वरे कटोरा। बहु मेवन युत स्वाद न थोरा ॥
पान दान वीरिन ते भरे। अगिणित भाति सुरभि कहु धरे ॥
पुनि तेहि पीछे परदा डारे। तह नृत्यत उठि सखी सवारे ॥
प्रथम वरन अरु अष्टम जोरी। पुनि जह ते षोडस सहचरी ॥
तेहि पीछे ललना बहु राजै। निज निज सौ जलि ये सब भ्राजै ॥
कोउ ताम्बूल लिये कोउ झारी। कोउ सुमनन शृगार सवारी ॥
रग रग के गजरा लीन्हे। प्रीतम मग चितवति चित दीन्हे ॥
अन्तहपुर की धुनि सुनि पाई। निज निज थलनि नचौ सब जाई ॥

कुज कुज ते अलि अमित, विविध सौज के साज।
चन्दन अगर सुगध सुभ, सुमन सुमगल काज ॥
युगल लाल प्रिय कुज सुख, नित नव विमल विहार।
पच भावरति युगल मति, वर्णत लहत न पार ॥

यहि विधि लखि जागे रघुराई। पुनि परदा इक दीन उठाई ॥
जागे प्रीतम निशि रग भीने। अरसपरस शृगार सब कीन्हे ॥

लसत लडैती लाल दोउ, मिथिल सनेह सुअग।
दपति सपति परस्पर, समर समर रसरग ॥

मगल थार अनेक विधि, लाल लाड़िली पास।
आगे धरि मगल अमित, गावहि सहित हुलास ॥
सुहृद सुजान सुशील सब, जे प्रभु रूप अपार।
कोउ न राम सम दूसरो, नेह निवाहन हार ॥

राम कुवर छवि देखन लागी। अग अग श्याम रूप अनुरागी ॥
त्रिदश वर्ष मुग्धा को श्यामा। मध्या काम केलि विश्रामा ॥
कोउ वय सधि केलि प्रिय नारी। युगल रग रमु रूप विहारी ॥
कोउ नित नवल लाल मुख चाहे। यहि विधि प्रीति रीति निरवाहे ॥
गद गद कठ रोम सुरभगा। लहत अष्ट सात्विक कोउ अगा ॥
सबकी प्रीति रीति जिय जानत। तन मन वचन लाल सन मानत ॥

अन्तःपुर में सखियो की सेवा

अन्त पुर की गली सुहाई। तेहि मग बहु ललना चलि आई ॥
चतुर शिरोमणि सिय सुख पाई। भगिनी सब समीप बैठाई ॥
जरकस पट परदा अति झीनो। स्वर्ण सूत्र मणि खचित नवीनो ॥
तेहि भीतर बैठी सब राजहि। रति शत कोटि देखि छवि लाजहि ॥
नव समाज देखहि सुख पाई। श्रवण वचन सुख सुनत सुहाई ॥
रस अगस्य मुख वरणि न जाई। युगल ललित वात्सल्य सुहाई ॥
पिय मुख लखि सिय सग विराजी। निज निज परिकर युत सुख साजी ॥
अग्र भाग सुभगा अति सोहै। सहजा हास विलासन मोहै ॥
श्री सरयू झारी लिये ठाढी। पान दान सुख तुलसी बाढी ॥
कमला विमला चमर ढुरावै। चन्द्र कला कछु तान सुनावै ॥
और सबै निज टहल सुधारै। ठाढी दपति चमर सवारै ॥

जेहि जेहि अग की माधुरी मे मन लाग्यो जास।
सोइ सोइ अग निरखत सकल, मन मे परम हुलास ॥

कोउ दपति चितवनि को निरखै। मद हसनि मनु आनद बरखै ॥

यहि विधि सबके नयन थकि, रहे माधुरी माहि ॥
सो लखि दपति कोर दृग, अरस परस मुस्क्याहि ॥
कुज कुज प्रति सहचरी, आवत नावत माथ।
सन्मानत मृदु वचन कहि, लखि छवि होत सनाथ ॥

भोजन के समय

प्रथम मधुर रस पच ग्रास करि। भोजन करन लगे आनद भरि ॥

[illegible]

नेह-प्रकाश

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कामा केशि किशोरिका काचि कोशला कालि।
कञ्जा क्षीर कलावती कञ्जलोचना आलि॥
कुञ्जा कलिका कोकिला काशि कृपाला जानि।
कल्याणी गम कुकुमा कृपा पूरणा मानि॥
कृष्ण शारिका कामदा कृपावती सुखरूप।
चन्द्रा चन्द्रकला अली चन्द्राननी अनूप।
चम्पक बरणी चन्द्रिका चारु दरशना बाल।
चारुद तीरु चकोरिका पुनि गण चम्पक माल॥
देव वर्णिनी देविका देव रूपिणी नारि।
देवी दुर्गा दामिनी दैवज्ञा उरधारि॥
गनि ज्ञाना गुण सागरा ज्ञप्ति गुणज्ञातीय।
नन्दा नवला-सी नवल नागरि अति कमनीय॥
प्रेमा परमा पावनी प्रेमप्रदा तिहि ठौर।
प्रियबदा प्रज्ञा परा भनि प्रौढा अलि और॥
भाव विदा भावनि भवा भासि भावरा भीरु।
मुग्धा मुदा मनोरमा सखि मृग सावा छीरु॥
मोद दायिका माधवी मृग नाभी शिर नाइ।
मानिनि माधुरि मगला मान कोविदा गाइ॥
रहसज्ञा रस रूपिणी रम्या रामा लेखि।
और रमा रतिवर्द्धिनी रोहा उर्णि विशेखि॥
शान्ता सुखदा स्वच्छता सीमन्तिनि उर आनि।
श्यामा सती सु मध्यमा साधु मतीहि बखानि॥
शृंगारा चतुरा सुरा सेसा हसिका केशि।
सुरा सुन्दरी शारदा मनि सामवी सुदेशि॥
सुरभि मरूपा सारगा सज्ञा नारु सुनामि।
शान्ति रूपिणी शकरी सुप्रिया सुच्छा भामि॥

सखी और दासी में भेद

तुल्य वेश गुण रूप सखि न्यून किंकरी जानि।
गति बल धन सुख सबनि को एक मैथिली मानि॥

दया दृष्टि सर्वेश्वरी दइ सेवा जो जाहि।
भरी प्रेम आनन्द रस सखी करत सो ताहि॥

केश प्रसाधन करहि कोउ सुरभि सुतेल चटाइ।
पहिरावहि धूपति वसन कोऊ उबटि नहवाइ॥

कोउ अलि विविध सुगन्ध युत रचहि वेष शृंगार।
उष्ण असन बहु रसन दै वारि सुरभि हिम सार॥

बीरी ललित सवारि अलि दुहू ललन कर देहि।
बड़ भागिन ताम्बूल कोउ झुकिय सारि कर लेहि॥

गहे सो चामर छत्र कोउ क्रीडन गन्ध रसाल।
वसन विभूषण आदि रस कोउ कुसुमन की माल॥

ठाढी अलि चहुँ ओर को रचहिं बिछौना बान।
धरहिं वाद्य पुनि करहिं कोउ उघटि मृत्य सुर गान॥

रीझि अली दुहु ललन छवि निरखि वलैया लेहिं।
राई लोन उतारि पुनि वारि अपन पौ देहिं॥

अन गनती गनतीन मैं निपटहु कपट निहारि।
सिय कीनी चेरी चरन नारि नवावत नारि॥

तिन मधि विहरत रग भरे नवल किशोर किशोरि।
नेक न न्यारे होत कहुँ बधे प्रेम की डोरि॥

मुख छवि मिलि इक मुकुर मैं करूँ निरखत दृग कोर।
कबहुँक इक टक परसपर ह्वै रहे चन्द्र चकोर॥

असुवन अन्तर करत लखि पिय दरशन बिच आइ।
निन्दत दोउ आनन्द को ललन हिये अकुलाइ॥

कबहुँ नेह के भार भरि लपटि लटकि रहे दोउ।
छके प्रेम मादक पिये रहत न तन सुधि कोउ॥

कबहुँ कुवर दोउ परसपर जिनकर करत सिंगार।
बीरी खात खवात पुनि बहु विधि करत विहार॥

कबहुँ केलि कन्दुक गहत कहुँ पासिन सतरज।
कबहुँक हित बतिया करत बटत मञ्जुरस पुञ्ज॥

श्री रामजी के वचन सीताजी के प्रति

किये सपथ कहुँ तोहिं प्राणप्रिया निज हीय की।
अस न अपन पौ मोहिं जैसे प्रिय तुम लगति हौ॥
मिलौ कोटि ब्रह्माड हूँ अस न मोहिं आनन्द।
होतु जु तब मुख कमल को पान करत मकरन्द॥
श्रवण नैन मन तुम बसे और न कछू सुहात।
तेरी हित चितवनि उपर वारे सब सुख जात॥
मेरे हिय आनन्द को तुम ही प्रिये निदान।
हौ जिय की जीवन जरी प्रानन हू के प्रान॥
निरखत तुव मुख कज छवि पलक न परत सुहाइ।
धन्य अपन पौ गनत हौ हौ तुमसो धन पाय॥
तेरे किंकरि वर्ग को हौ हौ सदा अधीन।
देउ अपनपौ दीन ह्वै मैं न गनौ कछु दीन॥
प्रेम भरे प्रिय वचन सुनि प्रिया मधुर मुसुक्याय॥
वारि विभूषण वचन पर लिये लाल उर लाय॥

रस-विलास

रग रगीले लाल रग रगीली लाडिली।
विहरत नैन विशाल रग रगीली अलिन मैं॥
बहु सुगन्ध कुसुमन रची दुग्ध फेन सम सैन।
ऐन मैन मन अलिन यह रचै मैन को ऐन॥
सैन साल मोहित भरे तापर पौढत आइ।
रस मन वचन अगम्य सो कहौ कौन पै जाइ॥
नील पीत छवि सो भरे पहिरे वसन सुरग।
जनु दम्पति यह रूप ह्वै परसत प्यारे अग॥
नील पीत नव वसन छवि हिलि मिलि भय यक रग।
हरे हरे अलि कहत हैं यह धरि सिय पिय अग॥
रस विलसत पीतम सुखहि चिर निशि चाह प्रवीन।
चन्द्रकला चन्द्रहि निरखि मधुर जन्त्र सुरकीन।
सुख निद्रा पौढे अरध नारी स्वर से होय।
प्रेम समाधि लगी मनौ सखि जानत सुख सोय॥

अलि कुर कुट धुनि सुनि डरो रविहि देत यह टेर।
अहि गुरुजन ऐहैं इहाँ भलो नही यह वेर॥

अमल सेज पर कमल से दृगन सलोने गात।
निशि हुलसे विलसे लसे अलसे उठे विभाति॥

जगे कुवर रस रग मगे पगे परसपर प्रेम।
उमगे गलबहियाँ लगे पगे कि मरकत हेम॥

कहि पिय पिय प्यारी बिवस नहिं तम बसन सम्हार।
घूमित दृग दोउ झुकि रहे रस मतवारे लाल॥

महा प्रेम आवे सते भय तन मय आकार।
हौं प्रीतम हौ ही प्रिया यह रहि गयो विचारि॥

प्रेम-विलास

उलटि वढी तब प्रीति नवल लड़ैती लाल हिय।
कै वह्रुरचौ वह रीति प्रेम स्वाद वहु विध लहे॥

नेह सरोवर कुवर दोउ रहे फूलि नव कज।
अनुरागी अलि अलिन के लपटे लोचन मञ्जु॥

दम्पति प्रेम पयोघि मै जो दृग देत सुभाइ।
सुधि वुधि सब विसरत तहाँ रहे सु विस्मै पाय॥

कवहुँक सुन्दर डोल महि राजत युगल किशोर।
अद्भुत छवि वाढी तहाँ ठाढी अलि चहुँ ओर॥

हिलि मिलि झूलत डोल दोउ अलि हिय हरने लाल।
लसी युगल गल एक ही सुसम कुसुम मय माल॥

सुन्दर गलवहियाँ दिये लालन लसे अनूप।
तन मन प्रान कपोल दृग मिलत भये इक रूप॥

गौर श्याम विचरत पये मनहुँ किहैं इक देह।
सौहैं मन मोहैं ललन कोहैं हरतिय नेह॥

पिय कुण्डल तिय अलक सो कर कंकण सौ माल।
मन सो मन दृग दृगन सो रहे उरझि दोउ लाल॥

यद्यपि दम्पति परसपर सदा प्रेम रस लीन।
रहे अपन पौ हारि कै पै पिय अधिक अधीन॥

श्याम बरण अम्बरन को सुकृत सराहत लाल।
छराहरा अग राग भो चाहत नैन बिशाल॥

जो हिमहूँ को नाम सी कोउ उचरत सुख कन्द।
तिहि मुख की निसि दिवस हित चितै रहत रघुनन्द॥

जनक नन्दनी नाम नित हित हिय भरिजो लेत।
ताके हाथ अधीन ह्वै लाल अपन पौ देत॥

प्राण पियारी ललित पग धरत फिरत जिहि ठौर।
ताहि दृगन हित बिवश ह्वै लावत नवल किशोर॥

हार पदिक कुण्डल तिलक कबहुँ अक तन तीय।
छिन छिन विनही टरे रहत आय सवारत पीय॥

कबहुँ उडावत भ्रमर पिय हाकत कबहुँ बयार।
प्राण पिया हसि गहत कर कहत अली बलिहार॥

रूप-विलास

कुवर सावरे गौर हिय हरन दोउ लाडले।
नवल रसिक सिरमौर रूप भरे बिहरत रहत॥

अग राग दै अलिन मिलि किये ललन तन गौर।
इक छवि ह्वै प्रीतम प्रिया ललित लसे इक ठौर॥

कुसुम क्रीट कवरी गुही रग कुम-कुम मुख कज।
अजन अजित युगल दृग नाशा बेसरि मञ्जु॥

श्रुति कुण्डल भल दशन दुति अरुण अधर छवि ऐन।
हिन सौ हसि बोलहि पिय हिय हरने मृदु बैन॥

भुज गर उर कटि कुसुम मय धरि भूषण पट पीत।
पायन नव नूपुर कहे ललित लसे दोउ मीत॥

एक चित्त कोउ एक वय एक नैह इक प्राण।
एक रूप इक वेश ह्वै क्रीडत कुवर सुजान॥

रीझि चितै चित चकित ह्वै रूप जलधि सी वाल।
वारत लाल तमाल छिति अक माल दै माल॥

सव अपने भूपण वमन अपने ही कर लाल।
लाडिलि अग वनाइ छवि निरखहि नैन विशाल॥

कबहुँ अचानक आय दृग मूरति नवल किशोर।
छल से गहि लीनो मनो निज हिय हरने चोर॥

कबहुँ निहारत नृत्य सुख ललन आइ तिहि गेह।
जहँ चातुर आतुर अली गावत पिय नव नेह॥

कबहुँ तहाँ हिय उमगि दोउ कुवर करत कल गान।
अली रूप रागिनि तहाँ वारत अपने प्राण॥

कबहुँ चितै दोउ परसपर रूप जलधि से गात।
रीझत वारत अपन पौ कहत विवस ह्वै जात॥

सखियो के वचन जानकी के प्रति

करहिं अली रस पान जिनके जीवन कुवर दोउ।
वारहिं तन मन प्रान निरखि निरखि नव नेह छवि॥

इहि विधि विलसैं रैनि दिन युगल कुवर रस रासि।
दिव्य अमल आनन्द मय परे प्रेम की पासि॥

समय पाय सिय मिलन हित आइ गुरु पुर नारि।
रहसि कहत चित चकित ह्वै छवि सौ भाग्य निहारि॥

एरी सिय बरणौ कहा तव सौभाग्य अपार।
लग्यौ रहत बहु रूप धरि हरि जाने आधार॥

नयन मीन कच्छप उरज अरु नृसिंह कटि ठौर।
कृष्ण केश हिय राम बलि वावन तो सम और॥

कोटि कोटि ब्रह्माड को एकै ईश्वर जोइ।
तेरी हित जीवन सिये चहे निरन्तर सोइ॥

ब्रह्म शक्र शिव मुनिन के जो जीवन धन पीय।
ताकी तू जीवन जरी शील सागरी सीय॥

ब्रह्म रुद्र सुर गण सबै रहत जासु बस दीन।
सो पिय मुख निरखत रहे सिय तेरे आधीन॥

वात कहत रसकेलि की ढिग गुरजन लजि जीय।
दे निज भूषण नगन मुख कह्यौ मौन शुक सीय॥

सखी वचन राम के प्रति

तव आनन दृग अर्पि सिय आनन जागत तीय।
तेरी आनजु कहत ह्यौ भल बस कीन्हे पीय॥

तेरी छवि देखत बिबस वारि सुसर्व सुसीय।
आतुर चितवत और कुछ इत उत चितवत पीय॥

सिय जानी रानी तुही सुख खानी व प्रवीन।
मानी छवि पानी किये रस दानी दृग मीन॥

हौ वारी सौभाग्य पर जनक दुलारी बाल।
चेरी चेरी कौ चहै मुख तेरी को लाल॥

सर्वस अर्पो तोहिं पिय तू चित लियो चुराय।
तौ तौ बिन उनके अली नहिं कछु सीय सुहाय॥

म्याइ प्रेम मान्दक प्रबल तें प्रिय सुधि बिसराइ।
करि बस बाधे गुनन सो तऊ तुही मन भाइ॥

बधे एकहू ठौर कोउ सो परबस ह्वै दीन।
सब अगन लालन बधे क्यो न होइ आधीन॥

बन्ध्य जीवत रसन सो बध्यो हृदय बल तैन।
अलि जानकित्वच परस रस रूप बधे दृग नैन॥

सीता की छवि

अरुण वरण तब चरण नख है कि तरुणि शिर मौर।
अनुरागी दृग लाल के वसे आय इहि ठौर॥

तो वक जावक रग छवि निरखति अलि अनुराग।
मनु मन भावन प्रेम रस पावत पायन लाग॥

गति गायनि पायनि परसि करि नूपुर झनकार।
पिय हिय हरने मन्त्र को करत सुचारु उचार॥

जघ युगल तव जनक जे अकि ग्रह उत्सव रम्भ।
पिया प्रेम कै भवन कै किधौ सुन्दर वरखम्भ॥

गुरु नितम्ब कटि सिंह मिलि पट गौतमी प्रवाह।
किंकिण मुनि गण अमर निज मन अन्हवावत नाह॥

नाभि गभीर कि भ्रमर यह नेह निरजगा माहिं।
तामह पिय मन मगन ह्वै नेकहु निकरयौ नाहिं॥

है अलि सुन्दरि उरज युग रहे तव उरजु प्रकाश।
नवल नेह के फन्द द्वै अतिपिय सुख की रासि॥

लस्यो श्याम तब तन कस्यो कंचुकि बसन बनाय।
राखे हैं मनो प्राण पति हिये लगाय दुराय॥

सिय तेरे गोरे गरे पोति जोति छवि छाय।
मनहुँ रगीले लाल की भुजा रही लपटाय॥

कुसुमति भूषण नगन युत भुज वल्लरी सुवास।
लालन बीच तमाल के कन्ध पर कियो निवास॥

चकत तरौना भौह युग अलिवलि दृग मृग जोर।
रदन अमी कण वदन तव शशिरथ पीय चकोर॥

रघुवर मन रजन निपुण गजन मद रस मैन।
कजन पर खजन किधौं अजन अजित नैन॥

नथ मुक्ता झलकत पगे नाशा स्वास सुवास।
उरझि परचौ यह पीय मन मनहुँ प्रेम के पास॥

तव अलि छलकत अलक अकि रस शृगारिक धार।
श्याम भये रग भीजि तिहि प्रीतम प्राण अधार॥

सव दिशि कचन मय करत तव तन जोति अनूप।
मनु झरिझरि अगन परै अग रमावै रूप॥

सिय तब रूप अपार पिय पियत न नैन अघाय।
भये चहत सुर राज से सियरैं अति अकुलाय॥

रूप भाग्य गुण भार नव योवन मारहि पाइ।
क्यों सहिहैं दृग भार तो निरखत नाह डराइ॥

वारि अपन पौ दृगन तैं डरि अलि कछू कहून।
रहत उतारत हीय माँहि पियहू राई लून॥

सर्व सवारत विवश ह्वै तेरी छविहि निहारि।
वारि वारि पीवत रहत वारि वारि पिय बारि॥

तू सिय पिय के रग रगी रगे पीय तव रंग।
रहे अली इक रूप ह्वै ज्यो जल मिले तरग॥

कवहुँ कहत पुर बधुन सो निज हिय हित की वात
स्वामिनि के गुण गुण सुमरि किंकरि गात न मात॥

प्रभाव वर्णन

धरै सीय पद ध्यान यहि विधि मञ्जु समाज सुख।
बसहि पीय के प्राण प्रेम प्रगट तेहि भक्ति मैं॥
सिय मूरति जेहि हिय वसी तापहि नैन विशाल।
उर राने आवत चले पारावत से लाल॥
जनक सुता सम देवता कह्यो कौन जग और।
जाके बस रघुवीर पिय ब्रह्म रुद्र शिर मौर॥
योग यत्र तप नेम व्रत त्याग त्यागिये दूरि।
होय अनन्य सो सेइये श्री जानकि पद धूरि॥
होब अल्प कृशसेव बिनु दीन जानि करुनेह।
सकल सुकृत मिलि सीय पद धूरि भूरि फल देह॥
उमा रमा सरस्वति सची जिहि बिभूति के रूप।
जयति सिया आह्लादिनी शक्ति शक्ति गण भूप॥
ए अलि 'नेह प्रकाशिका' बचन हिये मैं राखि।

ध्यान-मञ्जरी

बाल अली जी

सामान्य परिचय—जैन प्रेस लखनऊ मे ई० स० १९०८ में मुद्रित तथा सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वाले द्वारा प्रकाशित। स० १७२६ के फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी को यह ग्रन्थ लिखा गया—जैसा नीचे लिखे पद से स्पष्ट है—

सत्रह मै षडविंश वरष मास फाल्गुनि।
शुक्ल पक्ष पञ्चमी अमर शुभवार लग्नप्रति।
तेहि अवसर यह 'ध्यान मञ्जरी' प्रगट भईहै।
परम सुमगल करनि वरनि वर मोदमयी है।

विषय—'ध्यान मञ्जरी' काव्य और साधना दोनो ही दृष्टियो से रामावत शृंगारोपासना का एक परम मूल्यवान ग्रन्थ है। विशुद्ध साहित्य की दृष्टि से भी यह प्रथम कोटि की एक विशिष्ट रचना है। ऐसी साफ-सुथरी मुहावरेदार भाषा का प्रयोग, भावना की ऐसी तीव्रता और सूक्ष्मातिसूक्ष्म रस-भावना का विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है। यह नि सकोच कहा जा सकता है कि युगल सरकार श्री सीताराम के ध्यान का ऐसा ग्रन्थ दूसरा है नही, है नही। कनक भवन विहारी त्रैलोक्यसुन्दर भगवान् राम तथा उनकी प्राणेश्वरी जानकी के रूप, रग, वेश, अलकार

का ऐसा सजीव वर्णन इतनी सजीली भाषा में देखने को नही मिलता। यही कारण है कि शृंगार उपासना के रसिक साधको में इस ग्रन्थ का विशेष आदर है, और बडी श्रद्धा भक्ति और प्रीति से इसका अनुशीलन एव अभ्यास होता है। इसमें कुल २७३ पद हैं।

उदाहरण—

पहिरैं तट हरियार वसन सुन्दर तन सोहैं।
प्रतिबिम्बित बिधु बदन कञ्ज लोचन मन मोहैं॥

कनक भीत नग लगें सघन जगमगे सुहाए।
मनहुँ अगार अपार नैन पाये मन भाये॥

द्वै लोचन प्रभु रूप निरखि हिय तृप्ति न होई।
ताते त्यागि निमेष सहस दृग देखत सोई॥

तिन पर पानिप भरे जरे कारन मुक्ता अस।
प्रेमानन्द उदोत होत नयनन अंसुआ जस॥

नग नग प्रति प्रतिबिम्ब युगल झलकत छवि पावै।
मनहुँ भवन निज अग सुखद बिस्व रूप दिखावै॥

तहँ इक परम प्रकाश रत्नमय वर सिंहासन।
तहँ सहस्र दल कमल कोटि तम तोम विनासन॥

लसत चारु चहुँ ओर करणिका अति छवि छाजै।
तहँ सुन्दर रघुवीर रसिक सिरमौर विराजै॥

सुद्ध सच्चिदानन्द कन्द वर विग्रह जाको।
देही देह विभाग आहि सो नाहिन ताको॥

ताही तनकी प्रभा ब्रह्म व्यापक जग जोहे।
घनीभूत जिमि तरनि तेज सव तिमिर विपोहे॥

श्याम वरन तन सीस जरकसी पाग रही फवि।
नव नीरद तै निकसि प्रात जनु प्रगट भयो रवि॥

श्री मुख पर लिय झलक अलक असल में घुघरारे।
रहे घेरि नव कञ्ज मधुप सौरभ मतवारे॥

चित चितवत हरि लेहिं सोह अस सावर भौंहे।
दृग दीपन के ऊपर परति जनु काजर सोहैं॥

केसरि तिलक ललाट पट न छवि परत विशेख।
ललित कसौटी उपर मनहुँ नव कुन्दन रेखैं॥

पलक किधौ सिय रूप पिवन के अधरहिं सोहैं।
तहँ सुन्दर रघुवीर बरन बरुणी मनमोहैं॥
मनहुँ पीय की जीह बरणि नहिं सकति सीय छवि।
सहस सर नय धरि कहन सो चहत नैन कवि॥
पलक मोहिनी पखा वाटि मखतूल छोरहैं।
प्राण प्रिया पर करत पवन जनु नव किशोर हैं॥
बडरे नैन चकोर जोर सदृश छवि पावैं।
श्री जानकि मुख चन्द्र चन्द्रिका पीन जघावैं॥
उन्नत नाशा मनहुँ स्वास श्रुति सिद्ध दरी हैं।
नागरि अग सुबास रमन को विमल गरी हैं॥
अग्र सुमुक्त मञ्जु अधर अमृत अधिकारी।
मनहुँ प्रिया मन किधौ कञ्ज पर कवि छवि भारी॥
श्रवण कि भाजन युगल अमल मरकत मणि राजैं।
लिये लडैती वचन अमृत पीवन के काजैं॥
तहँ कुण्डल छवि भरे विविध मणि जडे लसत हैं।
जनु युग मदन मयूर नीलगिरि सिखर बसत हैं॥
झलकत ललित कपोल गोल अस सावर पिय के।
मनहुँ अमल आदरश परम मन भावते सिय के॥
तिन मधि कुण्डल जुगल ज्योति जगमगत लसत अस।
चपल जमुन जल माझ भानु प्रतिविम्ब परत जस॥
अधर सुरग समीप दन्त पगति नवली हैं।
जपाकुसुम पर लसत मनहुँ मुक्ता अवली हैं॥
कोमल अमल अलोल सरस रसना मन मोहैं।
मनहुँ कमल दल तुल्य रमा मन्दिर मैं सोहैं॥
किधौं चतुर सिय सखी मोद सिय मन उपजावति।
मधुर भावती बात वहत हसि तिनहिं रिझावति॥
गिरा गभीर कि गरज होत आनन्द मेह की।
सीचि वढावत वेगि वेलि हिय नव सनेह की॥
हसत लसत ताम्बूल वदन सो गन्ध सकेलें।
जनु फूल्यो हृद कमल उठत सौरभ की रैलें॥

चिबुकारुण सुखमा अपार झलकत मुखझाई।
मनहुँ कि व्यापक ब्रह्म ज्योति यह वेद न गाई॥
कम्बु कण्ठवर रेख लसत अवधेश सुवन की।
करी जानि छवि सीव लीक जनु त्रय त्रिभुवन की॥
अल्प उदर पर ललित रोम राजी राजत अस।
सुन्दर मूरति रचत दई विधि सूत रेख जस॥
उलही किधौ सिंगार वेलि चह मदन सुहाई।
नाभि कूप के सो सलिल सो सीचि वढाई॥
अकि अतिही कटि छीन जानि आधारहि दीनी।
वहुरि सुता पर त्रिवलि वन्ध दैके दृढ कीनी॥
जन दुख हरन नितम्ब चक्रवर लसत सुदरसन।
उपरि झलक कटि वसन तासु पर तेज पुञ्ज मनु॥
सोहत जानुर जघ अघ्रि सव अग रस भीने।
मानहु करि कर जुगल नाल विनु कमल नलीने॥
चरन अंगुरिनख सोह देखि कवि रहै मुख मूदे।
कमल दलनि पर अमल लगी जनु स्वाति कि बूदे॥
पीत वसन तन लसत परत दृगहू रपटी हैं।
नव घन पीतम अग मनहुँ चपला लपटी है॥
किधौ सिय रूप तरग रग रगि पीत भयो है।
छिन न तजत यह जानि प्रेम पथ रसिक नयो है॥
वाम अग नव रग भरी जानकि सुठि सोहै।
रूप अलौकिक वरनि कहन को कविवर कोहै॥
जा विनु रघुवर ध्यान कल्प भरि जो नर करही।
प्रभु नहि होत प्रसन्न वृथा श्रम करि पचि मरही॥
जा रस की अनुमात्र छीट जाके हिय लागी।
वसीभूत तिहि सग रहत प्रभु रस अनुरागी॥
ता रस मय अग अग अमल सुन्दर वर सिय के।
परम उपासक गम्य प्रान जीवन धन प्रिय के॥
जघ जुगल किधौं रँभ खँभ किधौं सोह धामको।
चिदानन्द घन मात्र ध्यान इक गम्य राम को॥

गुर नितम्ब कटि छीत मनहुँ मृगराज नयो है।
यह गुर सिंह मिलाप बारहे वरष भयो है॥
विविध चरन को सेय बसन कटि तट परिधाने।
मनहुँ कि थिय अभिलाष कोटि तन सो लपटाने॥
त्रिवली अमल अनग सरित त्रय धार समानहि।
अकि छवि जलधि तरग किधौं योवन सोय नहि॥
अलप उदर पर अमल रोम राजी छवि पाई॥
जनु उत ते इक सरल अलक की झलकत झाई॥
अकि तकि अमृत कुम्भ चली करि पाति पपीली।
उमगि श्रवत शृगार धार हिय में कि रँगीली॥
किधौं पिय मन खजरीट रमत भूवनि नष रेषनि।
किधौं हरि मन बस करन मन्त्र लिखि सूक्षम लखनि।
तिहि मिलि मुक्ता माल लाल गुन पोहि बनाई।
नागरि अग जगमगति भिन्न रग सोह सोहाई॥
जनु सरस्वति सुर सरित मिलि रवि जा छवि देनी।
मय पावन पिय नयन न्हाइ इहि ललित त्रिबेनी॥
अगिनित हार हमेल और उर चौकि जरी मनि।
कनक विविध मणि भाल माल बर कुसुम रही बनि॥
तुग उरोजनि बनी नील कचुकि कसि भारी।
काम वाज सिर कुलहकि जोवन गजकि अम्यारी॥
करतल अचल सुहाग भाग की राजत रेखैं।
बाचत है नित नाह नेह सो त्यागि निमेखै॥
सौरभ मुरग सुठौनि लसत अगुरी अस करकी।
काम नृपति मर पञ्च कली किधौ नव केसरि की॥
गौर चिबुक पर तनक चिन्ह देखियत मेचक छवि।
जनु कचन के पीठ बैठि रसराज रह्यौ फवि॥
किधौं निश पति निशि सुवन मोद सो गोद खिलावें।
किधौं मधुप सुत कञ्ज गन्ध पीवत न अघावें॥
सुधा मदन के माझ रह्यौ किधौ राहु दन्त चभि।
किधौं रसिक मनि पीय मीय को लोभ लग्यो खुभि॥

अरुण सुधाधर अधर जग न उपमा कोउ तिन सम।
पल्लव जया विगन्ध कठिन विद्रुम कहिये किम ।।
बर्तुल ललित कपोल नाह मन नैन बसही।
मनु मूरति धरि रूप भूप के आसन लसही ।।

लगन पचीसी

श्री कृपानिवास जी कृत

सामान्य परिचय—१ लगन पचीसी—ज्ञाना अली के शिष्य रामकिशोर शरण जी की प्रेरणा से सेठ लक्ष्मीचन्द छोटेलाल वम्बई वाले ने सन् १९०१ में लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस में छपवाया। इसमें विहाग, सोरठा, काफी, जैजेवन्ती, टोडी, खम्भाच, झिझौटी आदि रागो मे श्री सीताराम की परस्पर प्रणय प्रीति का वर्णन है। यह सवत् १९५७ मे लिखी गई, ऐसा इसकी पुष्पिका से पता चलता है। कुल ४० पद और पृष्ठ २९ है। भाषा मे पञ्जावीपन है।

विषय—लगन की पीर, लगन की चोट ही इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। प्रीति से प्रीति का ही शोधन होता है। जगत की वासनाओ में मन की जो सहज आसक्ति है, उसका परिमार्जन भगवान् के चरणो में गहरी ममता-प्रीति-आसक्ति से ही हो सकता है। और कोई उपाय है नही, हो नही सकता। पदो में इश्क, आशिक, माशूक, महबूब, जुल्फ, दरद, लगन, दिवाना, दिल, दिलदार, ख्वाव आदि शब्द प्रचुर मात्रा मे व्यवहृत हुए है। सम्भव है सूफी प्रभाव के कारण ही अथवा उर्दू फारसी का ज्ञान होने के कारण। परन्तु सारी पद्धति आशिक-माशूक वाली है जो ध्यान देने की वस्तु है। वार-वार इस बात का सकेत है कि इश्कमजाजी ही पलट कर इश्कहकीकी हो जाता है। कतिपय उदाहरण —

(१)

सुन री सखी उस इश्क की कहानी।
दिल दरदी दिलदार दरश विन देखि नजर भर करत दिवानी।
दिन अरु रात बात प्यारे की जात गई पर हाथ बिकानी।
कृपानिवास श्री राम सजन की सूरति हेरि मैं हार हिरानी।।

(२)

कोइ सूनो दरद दिवाने।
वेदरदी सो लगन लगी है चले दरद को घाते।।
दरद उठत बैठत मे दरद हि, दरद हि दिन अरु राते।
बोलनि चितवनि दरद भरी सी दरदमान मुसकाते।।

दरद मेखला पहिर फकीरी अब सुख होय कहाँ ते।
दरद गये से कौन काम की दरदहि भरे कुशलाते।।
दरद वदीनी दरद सुनावा दरद हमारे हाथे।
कृपानिवास दरद सो जीवनि ये ही लगन की हाते।।

(३)

लगन निगोडी मेरे पैंडे माई क्यो परी री।
काटत कलेजो काती धरकत निसु दिन छाती।
नाथी कर के हालो मानो ताती शूली पै धरी री।।

नाहि नगर में न्यावरी कोइ नेही जन को।
वधे लगन के फदन मे उत करत कैद फिर मन को।।
मृदु नवनीत अनल धरतावत कुलिश किठन नहि छेरै।
मेरे मृगन के वान चलावे गज रिपु उर नहि नेरै।।
भ्रमर बास बसि बसै केतकी पुनि कुस कटक फोरे।
भरे लगन की सारम रस सौ फिर क्यौ सारस रौरै।।
लगन पेंच सो खेंच लियो मन फिर हा हा क्यो कूकै।
लगन अगन जर भय कोयले फिर अहिरन क्यो हूकै।
प्रीति पाय भर के फिर कैसे बिरह बलाय बढावै।।
करै घायल प्यारी चितवनि लगि दुरि क्यो जहुर लगावै।।
मित्र सुधाकर अग्नि चवावे लगन चकोर बिचारै।
कृपा निवास निशाफल विन नित नेही हाय पुकारै।।

लगन निवाहे ही वनि आवै।
भाव कुभाव खवाव जान दे नेही नाम कहावै।।
दृग अटके मन सौंपि दियो जव पीतम हाथ बिकावै।
अपनो मन न रह्यो भयो परवस कैसो ही न्याव चुकावै।।
तन दहु द्रवन पवन हसि उघरे तदपि लगन ललचावै।
शीश उतारि चरण ठुकरावै तव निज भाग सिहावै।
अवगुण वहुत सुगुण नहि रचक तौ उनके गुण गावै।
नेहु निसोत नवल प्यारे को लाज दाग क्यो लावै।
कौडी प्राण गये कछु हानि न लाल रतन जो पावै।।
कुल सुग मुक्ति सुजात जान दै लगन न तलक गवावै।
कृपानिवास प्रीत प्यारो को छोडिन लोग हसावै।।

चोट लगी हूँ री राम लगन की।
प्राण सुध न तन सुध न सुध न रही वदन प्रगट कर प्रीत अगन की।
औचकि उचकि चषन मग पैठी मूरति अति बर बरण गगन की ।।
छीन सुथान विरान करी मोहिं निपट अटपटी बान ठगनि की।
लाज जरी मरजाद टरी सब छाय परी अनुराग दृगन की।
कृपानिवास उसास हाय के पगन कहाँ जहाँ पगन दगन की ।।

कोई प्यारे फकीर दिवाने।
इश्क अमल दो प्याला पीवत आठ पहर मस्ताने ।।
घूमत खरे चलति मतिवारे बोलत मन बौराने ।।
कहर मेहर मे सदा खुशाली दिलभर देखि लुभाने ।।
चस्म भरी सूरत सावलदी साजन हाथ विकाने।
गई हसँ रौवें वर रावे चुप ज्यो रहत अपाने ।।
वे महिरम घर बार के सब हसि हसि दै दै ताने।
कृपा निवास हुए दुनियाँ विच कोइ घायल पहिचाने ।।

लगन निगोडी मेरे पैडै माई क्यो परी री ।।
काटत कलेजो काती धरकत निसु दिन छाती।
नाथी कर के हालो मानो ताती शूली पै धरी री।
जहर मिलावत नीकै नई नई बात वनावति।
खैचति कठोर हलावति वंधुवासी में करीरी।
कुल शुद लाज भागी दुख भर पीर जागी ।।
अदिया लगोही लागी महा विष सो भरी री।
कृपानिवासी कही घर की न वन की भई गई।
नहिं वारे गरने प्रीतम प्यारी सग गरी री ।।
माई काहू के न लागो हेली चोट लगन की।
सीरी सीरी लागै आगी धिरी धीरी सुलगत पागे।
फिर जागै भारी जरनी अगिनि की।
जरे पै लगावत लोन वरजत चारा कौन मौन
धरि मोहन वैठे जानत न मनकी।
जानी को जनाये जी की कहत सराहे नीकी
पीकी रुचि ऐसी ही की फीकी कहै मन की।
लगति न मानी वैरनी निपट कठिनता अहिरनता
पुनि कुटावती मेहरन दुख सुख वन की।

तीखी तीखी छैनी छौलैं फिर फिर फूके तौले
पर हाथ बेंचति मौले जौले चेरी जिनकी।
करखनि फन्दनि बाधी लैं धन व्रत नियमादि
लगन लहर उदमादी दादी हैं ठगन की।
जव लगि लागति नाही तब लगि कुशल विहाई
कृपानिवास बिकाई पगन द्रगन की।

लगन निगोडी लगत सुखारी फिर पाछे दुखदाई री।
अखियन सो मिल गढ में पैठे सब घर ले अपनाई री॥
लाज मर्याद नेम व्रत धीरज थाने सबल सिपाही री।
छीनें शस्तर पकरि निकाई आपु करे ठकुराई री॥
मन सो भूप सुबस कर गर्वित फेरे देश दोहाई री।
आपु चहू दिशि निडर किलोलत नेही को दुबराई री॥
लड्डुवा के मिम देत धतूरा बहुत करैं मितताई री।
कृपानिवास प्रीत बश स्यानी को नाही बिकलाई री॥

लगन जाल हैं काल प्रगति कहो उलझी किन सुरझाई री।
सर्बस खोइ होय मन बिहरनि जिन यह लगन लगाई री॥
मति चेतन बवरी करि राखे नेही मन बिकलाई री।
यौवन जुरमे जाय मिलैं जनु सीरी पवन सुहाई री॥
बाढै रोग कहा कहौं सजनी भटकि मरैं तनुबाई री।
घन लौं गरजनि लागति प्यारी मोर सुमन ललचाई री॥
पावैं मारति औलनि गोलनि सो जानी निठुराई री।
देत जुवां क्यो दाँव पहिल की फिर लूटकुल तल गाई री॥
करत फकीर अमीरन के सुत घर घर भीख मगाई री।
कृपानिवास परी गर मेरे दुख दो भा सुख दाई री॥

लगन गरीवी गर्व गमायो भई दीन मतिहारी री।
चलिन सकौ थकि द्वार सजन के सुख दुख चाह विसारी री॥
काम क्रोध मद मोह विसर गये काज लाज कुल डारी री।
मातु पिता सुत वन्धु मित्र मो घरवर तजि भई न्यारी री॥
कर्म करो नहिं मर्म भुलावो योग भोग जग टारी री।
प्रीतम विन उझको नहिं औरन गाठी लगन हमारी री॥
मन की दौर जहा लगि सिमटी अटकी इक मो यारी री।
जनें जनें सो प्यार करैं सो जन्म जन्म की ख्वारी री॥

औरन को आदर विष जानो सुधा सजन किरकारी री।
और मिले घरदौर न मिलि हो प्रीतम पौरि पुकारी री॥
हा हा खाई हाइ फिर हो हो हारि हारि हिय हारी री।
कृपानिवास उपास राम सिया तन मन धन सब हारी री॥

लगन जरी कर प्यार सुघाई सूघत भई दिवानी री।
लहर चढी कछु ख्वाब जनाया दिल भर गर लिपटानी री॥
लपटनि कपट निपट दुखदाई तवाबुद ज्यो पानी री।
जहर कहर मे देत सुन्योरी दियो मेहर दिलजानी री॥
जानि पियो मन सजन हाथ को झीनें स्वाद लुभानी री।
लालन के घर लगन कमाई लग वारनि उरझानी री॥
जौन लगे चित कौन करे कृत नेही यह गुजरानी री।
कृपानिवास दुकान लगन की स्यानी कौन विकानी री॥

मिली तन प्यार सो प्यारी खुली मन इश्क गुलजारी।
सखी सों श्याम की वातें। कही है जो हुई राते॥
मिला था ख्वाव मे अलमस्त धरा था रीझ छाती दस्त।
उठी मैं चमक मन वहरमन देखा सेज का मरहम।
हुआ मन हाल दरहाला मिलैं जालम जुल्फ वाला।
न जानो चश्म दुखदाई खुशी में डाल फिकराई।
लगे वेदर्द मासूका परी मैं दर्द वस कूका।
कृपानिवास दिन रतिया लगी हैं राम की वतिया॥

लगन.लगी जव जोर पियारे और मिलन मे लहना क्यारे।
दिल मिला दिलदार के दिल सो और मिलन में लहना क्यारे।
लाख छोड खाक तन मे पाक ह्वै मन चहना क्यारे।
कृपानिवास राम आशिक ह्वै फेर दुनिया मे रहना क्यारे॥

अनन्य चिंतामणि

श्री कृपानिवास जी कृत

अनन्य चिन्तामणि

हस्तलिखित प्रति 'प्रमोद रहस्य वन' अयोध्या मे प्राप्त। आरभ में सभी प्रकार के साधनो के फल का निर्णय किया है। यम, नियम, आसन, षड्चक्रभेदन तथा अमृतपान का वर्णन है। फिर ज्ञान-वैराग्य का उल्लेख है। फिर द्वैत, अद्वैत, विशिष्ट मत-मतान्तरो का निर्णय है। योग, ज्ञान

आदि साधनो से माया नही छोडती। फिर पञ्च भाव और पञ्च रहस्य का प्रकरण है। इसके उपरान्त 'स्वसुख' और 'तत्सुख' का प्रसग है और उसके जीने का वर्णन है। हनुमान जी गुरु है। उनके सूक्ष्म रूप का नाम कृपा सहचरी है। इसके अनन्तर 'प्राप्ति' का आनन्द विधान है और स्थूल-सूक्ष्म का विवेचन। इसके पश्चात् तमो गुण नाश का उपाय वर्णित है। इसके बाद भूत, प्रेत, देवादिको की उपासना का फल है। फिर 'अनन्य' का लक्षण है। 'अनन्यता' मे श्री हनुमान जी उदाहरण है। षट् प्रकार की अनन्य निष्ठा के द्वारा ही इष्टि प्राप्ति होती है। जैसे चातक स्वाती, अनन्यता के नामानन्यता, वेशानन्यता, इष्टानन्यता, वागनन्यता, प्रसादानन्यता, वृत्ति अनन्यता।

ऐश्वर्य और माधुर्य मे ऐश्वर्य के आस्वदन के उपरान्त ही माधुर्य का आस्वादन होता है। इसके उपरान्त है 'युगल स्वरूप निर्णय'। युगल स्वरूप मे सीता-राम-तत्त्व का भाव निरूपण है। इसके अनन्तर विश्व रूप की नित्यता का निरूपण है। इसके अनन्तर अनन्य शरणागति के स्वरूप का निरूपण है। आदर्श भक्त के लक्षणो में प्रीति, प्रतीति, अचाह, अशकाशील, सचाई, सरलता, सुबक, गुरुमुख, दृढता, सुवद, सवाद (साराहरी) चतुर, सत्यवाद, सुरसिकता, रोचकता, अनालस, आनन्दी, अनमोची, दयालुता, प्रतिपालक, उदार, कृपालु, अमानी, मानद, दानी, अमद, अकोही, एकाती, अदभी, भावुक, निर्मलता, त्यागी, अनुरागी, प्रिय, मोहममता-शून्य, मुक्त है। विशेष विस्तार से इन लक्षणो का वर्णन है। 'शृगार' के सुख का वर्णन अन्त मे विस्तार से वर्णन है। विरह की दस अवस्थाओ का वर्णन है।

रामरसामृतसिंधु

अन्त में 'परा भक्ति' आती है। कुल मिला कर १६ प्रवाह है, आदि।

पूर्वरचित भगवान् राम के चरित्र का विशेष वर्णन—हनुमान जी जनकपुर मे पुष्पवाटिका मे साथ है। चित्रकूट प्रसग में किशोरीजी के आग्रह पर वन-विहार के लिए चले है। देवताओ ने वहाँ प्रार्थना की कि दुष्टो का वध कैसे होगा ? कलह की वार्ता नही। केवट का प्रसग भी मिथिला जाते ही आता है।

(हस्तलिखित प्रति श्री हनुमत्-निवास (अयोध्या) मे महात्मा श्री रामकिशोर शरण जी के निजी पुस्तकालय मे प्राप्त।)

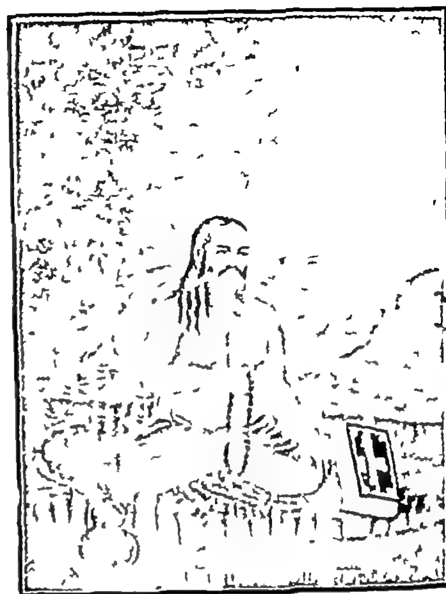
खुले पत्रो में

प्रथम प्रवाह	७२	पन्ने
द्वितीय ,,	४२	,,
तृतीय ,,	९४	,,
चतुर्थ ,,	२४	,,
पचम ,,	२८	,,

रामभक्तिके रसिकोपासक



श्रीआण्डाल (रंगनायकी)



स्वामी श्रीअग्रदासजी



श्रीरामचरणदासजी महाराज



स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजी

गीताप्रेस, गोरखपुर

षष्ठ	प्रवाह	२०	पन्ने
सप्तम्	,,	१८	,,
अष्टम्	,,	२४	,,
नवम्	,,	२४	,,
दशम्	,,	२१	,,
एकादश	,,	३२	,,
द्वादश	,,	१४	,,
त्रयोदश	,,	१४	,,
चर्तुदश	,,	२४	,,
पचदश	,,	२३	,,
षोडश	,,	११	,,

प्रत्येक प्रवाह मे अनेक तरगे है। छद अनेक प्रकार के है—वैताल, हरिगीतिका, मनोरमी, कवित्त, दोहे, चौपाई, सोरठा आदि हैं।

'रामरसामृत सिधु' में रसिको की उपासना तथा सुख का स्वरूप के ही विशेष रूप से वर्णन है। युगल रास विलास के आह्लाद, सुखानुभूति का विशेष वर्णन है। आठवें प्रवाह में चित्रकूट का लीला-विहार और रास का वर्णन वडा ही भव्य है। चित्रकूट मे योगमाया के चमत्कारी प्रभाव से सभी देवता सखीरूप में रास में सम्मिलित होते है। युगल महारस के पिलाने-वाले परम गुरु श्री हनुमत लाल जी हैं।

रास-पद्धति

महाराज कृपानिवास जी कृत

सामान्य परिचय—लखनऊ के प० घासीराम के देशोपकारक प्रेस मे सन् १९१० मे मुद्रित तथा सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचद द्वारा प्रकाशित। इस ग्रथ मे कुल पृष्ठ ५५ और लगभग १५० पद है जो भिन्न-भिन्न रागो मे लिखे हुए है।

विषय—ठीक श्रीमद्भागवत की रासपचाध्यायी के आधार पर श्री राम रास के प्रसग का वर्णन हुआ है। लगता है श्री कृपानिवास जी ने ठीक राधाकृष्ण रास के आधार पर सीताराम रास का प्रकरण बाँवा है और प्राकृतिक शोभा का वर्णन भी अपने ढग का अद्वितीय है। भाषा साफ-सुथरी और कई स्थानो मे पजाबी पुट लिये हुए है। फिर भी इस प्रकार राम-रास का सागोपाग वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। रसिक साधना मे कृपानिवास जी के पदो का वडा सम्मान है। अवश्य ही ये अनुभवी रासरसिक सत थे। श्री जानकी जी का मान-वर्णन करने मे कई अपूर्व सफलता मिलती है।

राम रस रग सो सग सिया प्यारी रास मडल मधि सोहैं।
वनि ठनि रूप सिरोमनि सोहनि कोटि मदन रति मोहैं ॥
जैसी ये सरद निसा छकि चादनी जुगल चद छबि जोहैं।
कृपानिवास विलास मगन मन कहनि कुशल कवि कोहैं ॥

नवल रसीले लाल रास रस में खरे।
सहचरि असनि धरि भुज झमकनि कवहु ठमकि पै गलै धरै।
रूप झौक झुकि परति सखी जन झमकि धरै मद में भरै ॥
वक बिलोकनि चपला चौकनि कोमलता छिन मे न हरै।
अलिअवलि छवि कलित चहो दिस कवि को मिस उपमा न सरै।
कृपानिवास श्री जानकीवल्लभ नैननि ते न टरै।

निरषि छवि अटकि रहे दृग मेरे।
छकित छबीली छविन छबीले मगन रसीले हेरे।
मद हसन टुक लसन दसन की कसन परै उर झेरे।
तिरछी झाकनि वडी वडी आँखनि लाखनि के मन घेरे।
रास विहारी विहारनि प्यारी घूमत मदन घुमेरे।
कृपानिवास श्री जानकीवल्लभ नीके नैन अएरे ॥

निर्तत री रग भीने रास में।
मदन गहल मद महल विहारी दोउ गरवहिया दीन्हे ॥
उघटत छद प्रवध गीत गति नटवर कला प्रवीने।
नूपुर नवल नवल मुख गावत तान मधुर स्वर झीने ॥
अलकनि हलनि चलनि पलकनि की मलकनि अगन गीने।
कृपानिवास नवल कुजनि रम सिय जू राम नवीने ॥

रग भरे राम रसिक रसवस करि प्यारी रास भवन रस माते।
सुगति विहार उमग अनगति अग अग सरसाते ॥
किकनी नूपुर वलय मुखर कर लोचन रति इतराते।
कृपानिवास विलास विलासी सुदर सग सुहाते ॥

हरि विन को जाने मेरे मन की।
आठ पहर मोहि कल न परत है प्यास वढी दरसन की।
लगन चोट लागी तन वल की हलकी चोटै घन की।
कृपानिवास श्री राम रसिक अव सुधि लीजै विरहन की ॥

उर मे उठत रैन दिन हूकै।
लगन अगनि जरि भई हो कोयला जरी बरी फिर फूकै॥
मरम मारसो मरी रही मै नई मार नहि चूकै।
कृपानिवास श्री राम रसिक सुनि मो बिरहनि कूकै॥

द्रुम द्रुम बूझ थकी वन हेरत प्यारी बैठी आय पुलनिपर।
तरु बिन कल्पलता मानो मुरझी झुकि झुकि परति सिथल धर॥
सखि जन धारि सभारि पबन ढर श्रम कण हर कोई गहि पट कटिकर।
कृपानिवास कहति कहा दुरिया राम रसिक मेरो मनहर॥

मेरो मन हरी लीनो हेली रसिक साँवरे चोर।
चतुर दृगन सो मिलि उर धसि करि कसि कसि लगनि मरोर॥
हसि करि वसि करि रसि करि मो सन लाज सवनि की रोर।
कृपानिवास राम छैला के फेल फसाई मे जोर॥

प्यारी ऐसे अन बोलनो कवहु न कीजिये ललन मनावै हसि बोलिए।
अपने चित सो प्रीतम के चित नित नयो हित क्यो न तोलिए॥
विना दोष कहा रोप वढावो रस मे विष नही घोलिए।
कृपानिवास सिया मन अटके पिया घूघट पट खोलिए॥

पिय प्यारी वसि प्यार रास रस झुलेरी।
रहसि हिंडोरै लसन जुगल छवि जन उपमा झूलैरी।
चद्रकलादि झुलावति गावति फरकत अग दुलैरी।
कृपानिवास जानकीवल्लभ निरखि जुगल छवि फूलैरी॥

राज कुवर मेरे सग लग्योरी।
जहा जहा जाउं तहा तहा लखाउ प्रेम विवस रस रहत पग्योरी॥
सोय रहौं स्वपने चमकावै जागि उठौ तो मृदु मुसकावै।
हसि हेरो तव फूल मगल तन रोस करौ तव हाहा खावै॥
वेस दुराय दुरो परिवन में दिष्ट चुराय वदन पट खोलै।
पग परसत अपराध छिपावत मन हरनी मधुबीनो बोलै॥
भवन छिपो खिरकी खरकावै पाय अकेली अक भरै री।
सरजू जाऊ न्हान मिस पीछै आयसु ना न्हान कौतिक करेरी॥
हारिब सो गृह आगे मेरे गुन गावै हसि बीन बजावै।
कृपानिवास राम रसिया वर रसिकनि हित नित रस बरपावै॥

उरझ रहे वा रसि कर पेचन सों।
राम रसिक पिया प्यारी के।
नाहिं सभारत रस मतवारो वस में पन्यो मतिवारी के।
नासा चढनि बिलोकनि तिखी भीज गये रसवारी के।
कृपानिवास मान मनोरथ उघरत प्रान बिहारी के।
मोहि सोवन दै रैन रही थोरी प्यारे।
सब निस सग अनग रमाई अगनि आलस भारे।
प्रीतम प्रीत की रीत न जानो स्वारथ मीत निहारे।
कृपानिवास सिया सु कुवारी हस कछु नैन ततारे।।

भावना-पचीसी

कृपानिवास कृत

कृपानिवास जी कृत भावना पचीसी सिद्धान्त और साधना की दृष्टि से एक अन पुस्तक है। सपूर्ण ग्रथ दोहो में है। आरभ मे श्री जानकी जी की सखियो के नाम और उनकी तदनन्तर श्री रामजी की सखियो के नाम और उनकी सेवा का विवरण है। पहला १२ दो और दूसरा २१ दोहो मे है। इसके पश्चात् प्रात श्रृगार का वर्णन भोग, षोडशोपचार तथा फिर भावना अर्थात् मानसिक पूजा का प्रकरण है।

श्रीजानकी जी की सखियां और उनकी सेवा

प्रथमहि श्री प्रसाद जू, सकल सखिन सिरमौर।
जिनके कर विहरत सदा, दपति श्यामल गौर।।

चन्द्र कला गुन आगरी, रहस विचक्षन जान।
सुरुचि लाडिली लाल की, सेवत समै समान।।

विमला विमल विहार मै, रहत सदा लवलीन।
रहस सपदा लाल की, प्रगटति चाह नवीन।।

मदन कला रस मदन को, सदन जुगुल रस हेतु।
वदन प्रशमा को करै, अडिग भाव रस खेत।।

विश्व मोहनी एक रस, मोहि रही पद कज।
प्रिय वल्लभ की माधुरी, भरी धरी दृग पुज।।

उर्मिला उर अति सुख बसै, पिय प्यारी अनुकूल।
जुगुल वदन निरखत खिले, चन्द्र कमोदनि फूल।।

चम्पकला रस चौपकी, मानौ भरी भंडार।
लाल लाडिली सुख सदा, देखत नित्य विहार॥

रूप लता विधि रूप की, पर्म उपासक एक।
राम जानकी महल की, टहल जु करन विवेक॥

अष्ट सखी ये मुख्य हैं, ओर सखी कहु अन्त।
इनकी कृपा कटाक्ष ते, शुद्ध भये वहु जन्तु॥

जो चाहैं सिय लाल की, रहस माधुरी केल।
तौ सव आस विहाय कै, कीजै इनकी मेल॥

श्री प्रसाद प्रसाद करि, अष्ट सखी गुन गाय।
अलि निवास जिनकी मया, महल माधुरी पाय॥

प्रथम पाठ इनको करै, पीछे और कराय।
रहसि माधुरी उर फुरै, सहल महल कौ जाय॥

श्रीरामजी की सखियाँ और सेवा

प्रथम चारु शीला सुभग, गान कला सु प्रवीन।
जुगुल केलि रसना रसित, राम रहस रसलीन॥

हेमा कर वीरी सदा, हसि दपति मुख देत।
सपति राग सुहाग की, सौभागिनि उर हेत॥

क्षेमा समै प्रवन्ध कर, वसन विचित्र वनाय।
सुरुचि सुहावन सुखद सव, पिय प्यारी पहिराय॥

सखी पद्म गगा सुभग, भूषन सेवत अग।
सदा विभूषित आप तन, जुगुल माधुरी रग॥

अलि सुलोचना चित्रवित, अजन तिलक सवारि।
अग रासि सिय लाल के, करि जीवति शृगार॥

सखी वरारोहा हरषि, भोजन युगल जिमाय।
प्रान प्राननी प्रान सुख, राखति प्रान लगाय॥

लक्षमणा मन लक्षगुन, पुष्प विभूषन साजि।
विहसि विहसि पहिरावही, सिय वल्लभ महाराज॥

सुभगा सुभग सिरोमनि, सेज सोहाई सेव।
सिय वल्लभ सुख सुरति रस, सकल जानि साभेव॥

अष्ट सखी ये लाल की मुख्य जनाई जानि।
अलि निवास इनकी मया, महल माधुरी पानि॥

सेज सदन मनि सेज रचि, समय सरिस सुख साज।
हसि जनाय पधराय दोउ, सुमिरहु सुरति समाज॥

पिअ प्यारी सुख रस रसै, वसै सखी चहुओर।
दृग भोगी तत्सुख लहैं, कृपा रहसि मतिवौर॥

भोजन भोग विहार सुख, सद्गुरु सेस अहार।
सदा भावना भाव वस, समै समै अनुसार॥

सुरति प्रान दृग ध्यान धरि, जौ लौ प्रीति विहार।
सुरुचि समुझि सामीप झुकि, पुनि सब सौज सम्हार॥

लाड सुभोग जिमा वही, आर्त्त आरती साज।
लाड लडावात सेज सजि, पौढावैं महाराज॥

जुगुल चरन सेवैं सुखद, दृग प्राननि सो लाय।
कोमल पद प्रीतम प्रिया, कोमल करमन भाय॥

सदा भावना लीन यह, मीन जथा जल प्यार।
और साधना सब तजै, भजै कृपा सुख सार॥

भोग पचीसी पर्म सुख, पढि निति प्रीति प्रकास।
भाई मन पाई रसहिं, गाई कृपानिवास॥

श्री कृपानिवास जी की

पदावली

श्रीज्ञाना इमी के शिष्य महात्मा रामकिशोरशरण जी की प्रेरणा से छोटे लाल लक्ष्मीचद ववईवाले ने प्रकाशित किया। इस सग्रह मे लगभग चार सौ पद है और प्रात जागरण से ले कर शयन तक के भिन्न-भिन्न समयो और लीलाओ के पद हैं।

रमिकोपानक कवियो मे कृपानिवास जी विशिष्ट पद के अधिकारी है। इन्हे उतने हलके ढग से नही लिया जा सकता जिस ढग मे आचार्य शुक्ल जी ने अपने इतिहास मे लिया है। अपने निजी आग्रह (दुराग्रह ?) के कारण भी कभी-कभी उत्तम मे उत्तम वस्तु कुरूप और अभद्र दीखती है। इमीलिए यह वैज्ञानिक एव निष्पक्ष दृष्टि नही कही जा सकती। अस्तु श्री कृपानिवास के पदो मे स्पष्ट है कि वे इम रस रहस्य के एक परम अनुभवी सत एव सफल कवि हैं। भाषा वहुत ही सुथरी, भाव वडे ही मरस।

उदाहरण—

सुभग सेज सदन रग राजत सियलाल सग रस अनग जीत जग प्रात लसे प्यारे।
मन स्वरूप मोहनिशि चद किधौ रोही सि ललनि छटा सोहा सिसुदर उपहारे।।
दोऊ लाल गसि रसाल प्रातकाल नहिं सभाल उभै चद्र प्रेमजाल सोवै मतवारे।
चहुओर सखि चकोर उझकै छवि ठौर ठौर चमचमात नैन भोर शर्द रैनितारे।।
छूटे दरि परद वन्द अगर सुरभि अति सुगध गुजत अलिबृद वृद सुख समन्द सारे।
सकल सखि चौप चमकि चाहि छकित रस कि रहति वार उझकि उछकि द्वार लगि सभारे।
औसर सुख समझि खरी रसविनोद विफुलभारी आलस तन देखि डरी मधुर भाव पारेउ सिमटी।
श्री प्रसाद आगे सब समाज पाय लगे कृपानिवास भाग जगे पलक कछु उघारे।।
जागे जब युगुल लाल आलस बसि छबि रसाल निरखि दृगनि सब सिहाल प्रात सुख बधाई।
बिपुरन कल कुचित कच सुमन विविध लसत सुरुचि उडगण लै तिमर कल चद शरनि आई।
आलस मद अरुण नैन घुरनि तन पकज अपन लैन वास भ्रमर माल भृकुटी सुघराई।
बदन मदन मद सु निघन रदन छदन बिब कदन मगन अग मुरत तुरत सुरति मुख जभाई।
दोऊ जन भुज अशधरी शियल अगालिगन करी मनु तमाल कनक लता शाखा लपटाई।
दशन छद कपोल कलित चुवनि शशि मध्य ललित मनहुं सुरति शारद की प्रगटी चतुराई।
नखन चिह्न श्याम अग शोभा मथि अति अनग मनु तमाल ललमुनी रैनि की बसाई।
बिगलित गलमाल ठरनि मुक्ता झरि सेज परनि स्वाति बूद प्रात शरद धरति सिंघुमाई।
सारी शिर पेंच ढरे विविधि वसन फरकि परे परस्परनि प्यार भरे रति शृगार छाई।
वर उरोज नगन खरे देखि दृगनि श्याम हरे मदन कलश सुरस भरे लालन ललचाई।
मधुर बैन श्रवत मैन अलसानी अलि चलति सैन रैन की कमाई प्रिय नैननि बतराई।
गोर रग श्याम रग शारद प्रतिबिब गगनि कालीदी जनु दीप दाम श्याम गौरताई।।
प्यार निरार भरि सुमोद करि विनोद पिया गोद रगरसिकरैनि क्रिया साधि अक ल्याई।
प्राणपति सुजीव निरस पीवनि अनुराग भरी हरी रूप सुखमा सुख पाय तन समाई।
कछुक लाज सुरस काज निरखि निकट सखी समाज छवि विराज नवल दोउ मुरकि दृग नवाई।
श्री प्रसाद जानकी जु वल्लभ सुख दानकी जु कृपानिवास प्राण की जु पारस निधिपाई।।

रग रगीले दोउ सोय जगेरी।
बिथुरी अलकै अलसी पलकै रग सनेह सुरग पगेरी।
मद रस छके विराजत लालन ललना के रस रग ठगेरी।
कृपानिवास श्री जानकी वल्लभ सखियन के दृग निरखि परोरी।।

नवल छबीले दोउ सोय जगेरी।
अकथ कथों कछु छबि सुघराई।
गौर श्याम भद्र श्याम गौरि मैं बिंवतनु तरत बरन पर छाई।।
दृग अजन अधरन पर सोहैं कुच केसरि पिय उर लपटाई।
कचवर पेच औ चिरति झुलन बेसरि सरस समै बलखाई।।
सुरति समर बरबीर बिजय परलोचन घूमत युत अरुनाई।
कृपानिवास विलासनि सिया जू वल्लभ सो मृदुकहि मुसकाई।।

भोरहिं छबि प्रीतम के मन भाई।
सब रस भरी उमग बढ़ावति हसि हसि लाल जगाई।।
अजन खजन सुकर बनावत वसन सुगध भिगाई।
चोलसकेर सुभग तजु बैठी कुच दै पानि लजाई।।
पोछत वदन मदन रस सरसे प्रीतम प्रीत सवाई।
कुच कुमलाई कली उठावत चुटकी चटक जभाई।
अलक सवारत पलक उधारत सकल सौज अलसाई।।
पिया की गोद विनोद विहारनि चमकि अग अगराई।
नैंन उघारि सखिन सो बोलति लालन सो मुसक्याई।
कृपानिवास श्री जानकी प्यारी प्यार प्रिया उर लाई।।

सखी कछु कहि नहिं जात री।
जब देखौं तब लाल लालची छिन छिन हाहा खात री।।
रस लपट सपुट कर मोही भोई मधुरी बात री।
जो वीती चितमित नहिं पइये हित हिय माझ समात री।।
सुख सो दुख दुख सो सुख जानो हाहा लाल सिहात री।
कृपानिवाम विलासनि चचल अचल दै मुसक्यात री।।

कुछ अकथ कथा है आजु की।
हसि प्रीतम चोली कम खोली वोली नाहिंन लाज की।।
बोलत हित चित यतन उपावै गावै विनय स्वकाज की।
अक निशक वक करधारी हारी हाहा हाज की।।
भुज भरी लई दई दई करिते पति पोपी रतिराज की।
कृपानिवास विलास रमाई भाई सुरति समाज की।।

पिय के नैंन प्रिया छवि उरझे सिया दृग पिय छवि लागे।
मनु द्वै रूप मरोवर मीनन मदन पलटि मुख रागे।।

प्रीतम प्राण वसैं प्यारी वश प्यारी पिया के आगे।
कहि लालन मैं सर्वसु तुम्हरो मैं तुम्हरी वड भागे।
तुम्हरी मया वड भाग विलासनि विलसहु सुख मन मागे॥
लाल रावरो हित सु अमोलक मन सब हेतन त्यागे।
तुमसो लाल निहाल चरण लगि मानो भाग सुभागे॥
राज रावरी वस्तु प्राण तन पगे रहो जिमि पागे।
यह सुख सुधा सदा कोई पीवै कोई भूले विष दागे।
कृपानिवास प्रसाद स्वाद सो प्यायो जन निशि जागे॥

महारस भीनी रग भरी जोरी।
सिय अनुराग पगे पिय सुन्दर पिय सिय राग निवोरी॥
सिय की मया विचारत घूमैं पिय की रहसि समुझ मन मोरी।
मिली श्यामता गौर युगल तन मृग मद केसरि घोरी॥
छवि की छटा सी दमक दमकनि दामिनि हसनि मनोरी।
रस आनन्द मधुर झर इक रस सखि मन भर सरसोरी॥
गर भुज माल सु लाल लड़ावति अली लडावति प्रिय लडकोरी।
कृपानिवास श्री जानकी वल्लभ मोहिय ते न कदापि टरोरी॥

सदा चिरजीवो रग भरी जोरी।
सदा विहार करो रग मदिर रग किशोर किशोरी॥
सदा सुहागनि के अनुरागनि रगे रहो वडभाग वटोरी।
पिय को प्राण वसो सिय सुन्दरि सिय मन श्याम वसोरी॥
पिया की चाह सुचात्रि कलो रह्यो सिया की मया स्वाति वरसोरी।
सिय मुख चद सुधारस द्रवो नित पिय की चादि चकोरी॥
हमरे नैन प्राण की सर्वसु अधिक अधिक सुख रस सरसोरी।
कृपानिवास उपास महल की टहल लगी सो लगोरी॥

सिय राम जु को ध्यान मेरे निशिदिन रह माई।
युगल वदन सुखमा सदन मदन अति लुभाई॥
कीट मुकुट चद्रकोर जटि मणि मुक्ताई।
कुडल कल करनफूल झूमक झुमकाई॥
भाल युगल दुतिय चन्द्र श्री अमन्द छाई।
विकट भृकुटि मदन चाप चारि चरि चढाई॥
युग कपोल अलक झलक मेंचक वलखाई।
मनु दुरेफ मालकज मकरद लुभाई॥

खजन दृगन सैंन दैन मैंन मद चुराई।
नवल नथ मुहाग युगल नासिका सुहाई॥
अधरारुन बिंब लजित दशन पाति पाई।
कल कपोल वोल मधुर सुमन मनु झराई॥
चिवुक बिंदु मिथुन मिंदु लसत श्यामताई।
जनु मिलाप कियो राहु बसी मित्रताई॥
सुभग भाल पदिक हार कठो तिमनाई।
ग्रीव ललित सीव सुभग भूषण सघनाई॥
श्याम भुजा अगदादि ककनि जटताई।
गवरि भुजनि वल यादिक भूषण सुघराई॥
जावक युत जान हस्त पान अरुनताई।
पुष्प लिये गौर श्याम वीरी जु बनाई॥
उर सुगन्ध कर्पूरादि मलय केसराई।
युगल उदर सुघर सकत कहि न सुभगताई॥
रोम पाति मधुप अवलि लै सुबास धाई।
गग ययुन धार वही नाभि अलि घुमाई॥
किंकिनी नवीन छुद्र घटिका सजाई।
मधुर मुखरवीन मनौ कामरति बजाई॥
नूपुर वर पायल पद गुल्फ वर्तुरताई।
युगल पद सरोज अलिनि मनु सुर सरसाई॥
गौर श्याम सुरस धान काम रति लजाई॥
अग अग नवल रग नवलहि तरुनाई।
कृपानिवास आस सुमति खास टहल लाई॥

सेज सुख सोये सावर गोरि।
प्राण वपुप मन लगन गोद मुख सिमटि भये एक ठौरि॥
लपटि भुजातन मोहति मानो नेह लती सुख द्रुम निमकोरि।
पलक लगी वर वदन मनोहर मीन सुधासर वोरि॥
सीतल मन्द सुगन्ध सुचित मैं समय समझ गुन कोरि।
कृपानिवास सियापद पकज सेवनि नैन निहोरि॥

युगल रस को रनि गाय सुनावै।
प्रेम भरी सुख भरी सो सहचरी निज हेत जनावै॥
कवहु सुनै न बैन मन तनसो कवहु मुकर पद पावै।

समय समय सुख टहल महल की हितु सब लाड लडावैं ।।
अगम अगोचर गोचर करि है अवक बचन दरसावैं।
चिनमय रस चिर पिय प्यारी को रसिक उपासिनु प्यावैं ।।
सिय पिय सुख जन गुन प्रतिपालन अपने भाय वढावैं।
कृपानिवास अली अलबेली सबकी चाह वढावैं ।।

समय सुहावनि सुन्दर जोरी।
सजी नवल तन सुरुचि सखी जन धन लो श्याम सिया दुति गोरी ।।
नव भूषण नव वसन मनोहर नवल किशोर किशोरी।
प्राणन माल सजी अलवेली फूल फरैं फल जनक ररोरी ।।
रूप सिंहासन बिछे वसन पर गरवहिया पद टोरी।
परम उदार उपासिन के हित छवि श्रृगार सदा यक ठोरी ।।
अष्ट भवन की सखी सिमटि सब वनि ठाढी चहुओरी।
पीवत युगल माधुरी नैननि मतिवारी रग वोरी ।।
कोई बोलनि कोई चितवनि सो रति कोई मुसकन कियोरी।
कृपानिवास पिय सिय सो लगि आखे मुरी नहि मोरी ।।

सदा सुहागनि जनक किशोरी।
आनद कन्द चन्द कैरव कुल वरपाये भल भाग करोरी ।।
मव धनु भजन जे नृप गउर वन वन वनेह निहोरी।
अड अनेक चड यश गावत सो नागर वस प्रेम ठगोरी ।।
काल करास कप भुव फेरन अनुहर देव अकोरी।
जो गुन निर्गुन सगुन गुन सागर सिय गुन रसित रसिक मनि सोरी ।।
शारद उमा शची रति कमला चरन सेव सकोरी।
ज्यो हुतास कनिका रवि ऊपर वात मिलै मवै गति ओरी ।।
पति की प्रान प्रान की सर्वसु सर्वसु की वसतोरी।
ते जन मन क्रम वचन सिया पद रति प्रसस तिन निगम वढघोरी ।।
शील स्वरूप सहज गुन मदिर अतर श्याम लसै तन गोरी।
कृपानिवास राम प्यारी छवि मो नैन ते छिन न टरोरी ।।

आज बने राम सिया सुदर सुघर वर रसके रसिक रसदान।
रस की प्रवीण लिये वीन नवीन सिया पिया रस पुलकि ले तान ।।
रसही की रीझ रस भीज भेजाय रहे रस भरि जै जै धूनि रसकर गान।
रस के विलास रसहास निवास अली रसभरी जोरी पर वारो तन प्रान ।।

हेली री रग धाम रगीले प्यारे शोभित सिया सग राम।
सुरग सिंहासन पर रग राजे दोउ अग अग पै वारो कोटि सतकाम ।।
सुरग समाज बन्यो रग सो वितान तन्यो रग रसराज राज रग ददाम।
कृपानिवास प्यारे रग रस रासभरे रग मिल गवर सुरग घनश्याम ।।

देखो भाई रग भरे पिया सोहत रग भरी सिया अगबाम।
रग भरी बतिया रिया रगीली नरबर रग कोटिक रग अभिराम ।।
रग सो अभग सर भवन तरग ढरि चरसो सहेलि पर रग ललाम।
रग विलास निवास अली मिलि झिलि रहे रगरि भुज दाम ।।

रग महल दोउ राजत रग रसीले।
लावन लक अकन की सानिधि भुज असनि गुन सीले ।।
नैन की बतरावनि भावनि लावनि बोलनि बदन हसीले।
उरहित भाव मिले रुचि बरणित करि नित केलि कबीले ।।
सखि जनमन की प्रीति चातुरी मिली जुहरत रति सो रतीले।
कृपानिवास श्री जानकी बल्लभ रहसि उपासिक हीले ।।

मेरो मन सु पथिक मग भूल पर्‌योरी।
प्यारी तन कानन बहुरगनि अगनि अग अनग फस्योरी ।।
राजी रोम सघन द्रुम छबिमय लता जाल फासे कौन टरयोरी।
त्रिवली सरिता उचसैन कुच मध्य गुफा बसि नहिं निकस्योरी ।।
खजन करि लसै सु मनोहर बिपुल कटाक्ष सु मृगनि मखोरी।
ज्यो वन सिंह सुछद फिरै गज धीरज नेम कुमान दरयोरी ।।
वाल व्याल सखि ताल कपोलनि करन कज मकरद धरयोरी।
भौंहे मधुप पाति आवति शर खजन मारग अटक परयोरी ।।
जयति प्रसाद सुनो अटवी सुख रूपचन्द बरपोप हरयोरी।
कृपानिवास विलासनि सिय कृपा बिचरो वन मन मैन डरयोरी ।।

नीवी करषत वरजत प्यारी।
रस लपट सपुट कर जोरत पद परसत पुनि लै बलिहारी ।।
वदन घुमाय सिहाय महाजट तडित ज्यो चमकत वक निहारी।
तलपट राय मचाय धूम रम हसि हसि कृपानिवास सियहारी ।।

करो मुभग सुख मद मतिवारी।
मुघरि उघरि उज्ज्वल रस तेरे मेरो मन होरो अधिकारी ।।
परम उदारनि मरन रावरी मृदुल चित्त मोहित हितकारी।
कृपानिवास विलास भरी सिय पिय को मन वमरस विस्तारी ।।

पिय हसि रसरस कंचुकि खोलैं।
चमक निवारति पानि लाडली मुरकि मुरकि मुख बोलैं ॥
टुकरह्यो सखी सखी कछु गावति भावन मदन विलोलैं।
कटि गहि लटकि हटकती सुदरि अधरनि परसि कपोलैं॥
तलपटुराय लाय उरसो उर कोक कलानि किलोलैं।
कृपानिवास विलासी दपति सपति रास वढोलैं॥

पौढे सुख सैन रैन रंग महल मैं।
सुरति सरोवर हस हसनी करत किलोल मद मदन गहल मैं॥
अरी पान वलपीय जीय की सुजीवनि ग्रीवनि भुज भरि सुघर सहल मैं।
अधर अधर धर सकुच परस्पर भयो है मिलन मानो आज यहल मैं॥
सोतल मद सुगन्ध पवन जह वहत भवन सुख सरस चहल मैं।
जयति जानकी रमन कमल पद अली निवास नित रहत रहल मैं॥

दोउ सुख झाँकै झरोषनि अलियां।
सैंन किलोलत लोल रसिक मन मैन वढ्यो ज्यो रैन सुघुलिया॥
उघरे अग सग जगु राजत जनु सर पंकज कचन कलिया।
उर उर अरत दरत केसर वर करत बिनोद विपुल मद रसिया॥
परिरभन चुवन रस संनत चपला मूकपन हलिया।
कृपानिवास बिलास विलोकति आस सखी जनमन की सुफलियां॥

जयति रति खेतवर युगल सोभावनी।
दलि तन वसन की लसन अद्‌भुत वसै हसै सुकुमार रसभार जीति अनी॥
वियुर कच अग जनु कज वन मधुप गन पिवत मकरद सुख कंद सुखमा घनी।
नखनि रद छत प्रगट निघट उपमा जदपि तदपि कहि व्याज रसराज चूडामना॥
फूल घन अरुन जनु तड़ित मिल भासई नील द्रुम लपटि जत सुमन कंचन तनी।
कीधौ पादप लतालाल मुनिया वसी शशी मुख महि जु वहु आय पूजत घनी॥
मियुन तन एक सखि देखि चकृत नवल कमल केसर लिये रैन रति द्युति सनी।
जयति श्री प्रसाद सुख स्वाद रसरास रलि पलति सुनिवास नहिं जात महिमा भनी॥

पिय मिल करत विलास विलासनि माधुरी।
महा विहार विहारनि प्रगटे सुघर रसिक मनिका जुरी॥
वपुष घुमाय फिराय चक्रवत विक्रम विकट प्रकासुरी॥
कदुक कलन ललन ललचाये चलन चातुरी आजुरी॥

जत्र जराय सिहाय शुकल हो हसत लजावसि हातुरी।
जयति जानकी रवन केलि रस अलि निवास अलि आसुरी॥

ये री ये सुख मदिर सेज रसीले सोये।
प्रीतम अक लिये रस सागर मनु निस केसर पक जगोये॥
पिय उर भुज शृगार सरोवर परमा वेल बिमोये।
बदन उभय जनु सदन सुधाकर मिलत सुप्रेम समोये॥
गवर श्याम पद मिश्रित राजे मनु सुप्रिया गन होये।
कृपानिवास बिलासी दपति मै निज नैन पोये॥

श्री स्वामी जनक राजकिशोरी शरण
'श्री रसिक अली'

(१) सिद्धान्त मुक्तावली

रामरसामृत के लोलुपो के हितार्थ सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचद बम्बई वाले ने जैन प्रेस लखनऊ में इसे १९०७ ई० सन् में छपवा कर प्रकाशित किया। इसमें कुल ५२ पृष्ठ और १५७ दोहे सोरठे है।

विषय—आरभ में गुरु वदना है फिर रामरूप की कृष्णरूप से विशेष मोहकता का वर्णन है। कृष्ण के बाल रूप को देख कर भी पूतना ने विष से मिला अपना स्तन्य पिला दिया परन्तु उधर शूर्पणखा शत्रु की वहिन होती हुई भी राम के त्रिभुवनमोहन रूप पर मुग्ध हो उन्हें पति रूप में वरण करना चाहती है। कृष्ण के रूप पर तो स्त्रिया ही मुग्ध हुई परन्तु राम के रूप पर दण्डकारण्य के तपस्वी मुनि भी आसक्त हो कर उनका आलिंगन करना चाहते है। इस प्रकार राम का रूप परम मनोहारी है।

इसके अनन्तर दास दासी, सखा सखी भाव का वैशिष्ट्य दिखलाया गया है। होली, रास, हिंडोलना, महल और शृगार मे जो सेवा-भाव प्रिय लगे उसे ही ग्रहण कर तत्सवध से भावित हो कर निरतर प्रेमरस मे छके रहना चाहिए।

तत्पश्चात् साधन, भाव और प्रेम का प्रसग है। इन तीनो को बडी ही भावपूर्ण व्याख्या है उदाहरण सहित। फिर निष्ठा के भेद तथा प्रीतिरीति का स्वरूप विधान निश्चित किया गया है। भक्तिरस का वर्णन करते समय आश्रय आलवन का प्रकरण वडे विस्तार से आया है तथा रसो में दास्य, सखी वात्सल्य, शृगार का सविशेष वर्णन है। अभिप्राय यह कि रसिकोपासना के सिद्धान्त का वडा ही भव्य मनोज्ञ ग्रथ है और यहा गागर मे सागर की उक्ति घटित होती है।

सिद्धान्तानन्यतरगिणी

हस्तलिखित प्रति प्रमोद रहस्य भवन अयोध्या में प्राप्त है। इसमे कुल १६ तरग और ५५० दोहे है। इसमे भावना का ही विषय मुख्य रूप से आया है।

अमर रामायण (सस्कृत मे)—लगभग ४००० श्लोक है। कनक महल, अष्टयाम, भावना तथा रससाधना का यह प्रमुख ग्रथ माना जाता है ।

रहस्य रत्नमाला—रसिक वल्लभ शरण जी का रस पर दोहे, चौपाइयो मे।

सिद्धांत चौंतीसी—सिद्धान्त के ३४ दोहे ।

होलिका विनोद—१३ कवित्त । सीताराम की

कवितावली

श्री जानकी करुणा भरण

अध्यायत्रयी

दोहावली

सिद्धान्त मुक्तावली

श्री रसिक अलीकृत

ज्ञानी योगिन करत सग ये तजि रसिकन सग।
सूख गर्त्त सेवन करत शठ तजि पावन गग॥

ज्ञान योग आश्रय करत त्यागि के भक्ति उदार।
वालिस छाह ववूर की वैठत तजि सहकार॥

शीस नवै सियराम को जीह जपै सियराम।
हृदय ध्यान सियराम को नही और सन काम॥

नारि मोह लखि पुरुष वर पुरुष मोह लखि नारि।
तहा न अनहोनी कछू कवि बुध कहत विचारि॥

होनी होनी होइ तह अद्भुतता नहि जान।
अनहोनी तह होइ कछु अद्भुत क्रिया वखान॥

अनहोनी सोइ जानिये पुरुष रूप निधि देखि।
मोहय पुरुष वधुत्व करि अद्भुतता सोइ लेखि॥

सोगति दडक विपिन मुनि भइ रघुवरहि निकारि।
याते अद्भुत रूप श्री रामहि को निरधारि॥

अद्भुत रूप निहारि कै सव जिय होत सुमोह।
विषतन प्यावत पूतना नेक न ल्याई छोह॥

रिपु भगनी पुनि राक्षसी जाकर मनुज अहार।
मगन भई लखि राम छवि करन चही भरतार॥

खरदूषन आदिक सकल मोहे राम निहार।
लडे सो निज इच्छा नही जिय वीरत्व विचार॥

ऐसे रघुवर रूप निधि सो मोहे सिय देखि।
पटतर ताकहु पाइये अति अद्भुत छबि लेखि॥

उमा रमा ब्रह्मानि सिया महल सेवत सदा।
शारद चतुर सुजानि नित कृत चरित सुगावही॥

यथा अवध मिथिला तथा सुख सुखमा मरयाद।
इनहिं सदा उर धारिये त्याग सबै ह्मिसाद॥

प्रकृती अरु सब तत्व तें भिन्न जीव निज रूप।
सो प्रभु सो नातो विसरि पर्‌यो मोह तम कूप॥

पुनि सोइ रसिकन सग करि लहै यथारथ ज्ञान।
नातो सिय रघुनन्द सौ निज स्वरूप पहिचान॥

दास दासि अरु सखि सखा इनमें निज रुचि एक।
नातो करि सिय राम सो सेवै भाव विवेक॥

होरी रास हिंडोलना महलन अरु सिकार।
इन्ह लीलन की भावना करे निज भावनुसार॥

बसै अवध मिथिलाथवा त्यागि सकल जिस आस।
मिलिहैं सिय रघुनन्द मोहि अस करि दृढ विश्वास॥

पूजे नहि वहु देवता विधि निषेध नहिं कर्म।
सरण भरोसो एक दृढ़ यह सरणागति धर्म॥

सो पुनि त्रिधा बखानिये साधन भावरु प्रेम।
साधन सोई जानिये यामे बहुविधि नेम॥

श्रद्धा अरु विश्रम पुनि निज सजाति कर सग।
भजन प्रक्रिया धारना निष्टा रुची अभग॥

पुनि अनर्थकर त्याग सव यह लक्षण उर आनु।
प्रथमहि साधन भक्ति के ताकरि भाव वखानु॥

क्रियारभ के प्रथम ही उपजे उर आनन्द।
क्रिया विषै दुख सहनता फसै न आलस फन्द॥

ए तीनो वुध कहत है श्रद्धा के अनुभाव।
श्रद्धा सम्पति होय घर तव वस्तू की चाव॥

सुनि लखि नहिं लौकीक में दरशन ही आम्नाय।
सो सुनि चित्त साची गहै सो विश्वास सुभाय॥

जामे करिये भाव पुनि सोइ परीक्षा लाग।
वहु विधि चित्त उदवेग ही तदपि तासु नहिं त्याग॥

यह निष्टा अनुभाव लखि जाके उर में होय।
ताको कछु सशय नहिं मिलै रामसिय दोय॥

जामे प्रीति लगाइये लखि कछु तिहि विपरीत।
जिय अभाव आवै नही सो निष्टा की रीति॥

दरश परस में सुख वढ विनु दरशन दुख भूरि।
यह रुचिकै अनुभाव सखि करै न रघुवर दूरि॥

भाव भक्ति तव जानिये यह जिय होय सुभाय।
क्षमा विरक्ति अमानता काल वृथा नहिं जाय॥

मिलन आसरजु वद्ध चित पुनि उत्कठा जान।
आसक्ति तद्‌गुण कथन प्रीति वसत अस्थान॥

नाम गाम मे रुचि सदा यह नव लक्षण होइ।
सिय रघुनन्दन मिलन को अधिकारी लखु सोइ॥

विघ्न अनेकन होइ तौ प्रीति रीति नहिं हान।
आसक्ती नित नव वढै सो लखु प्रेम प्रधान॥

स्नेह सुलक्षण जानिये चित्त द्रवित लखि होय।
तन धन विलग न मानही तजे विछेदक जोय॥

सिय रघुवर सम्वन्ध करि दुख सो सुख इव भास।
सिय रघुवर सम्वन्ध विन सुख सो दुख निवास॥

यह लक्षण अनुराग के अनुरागी उर जान।
ताको करि सतसग पुनि अपनेहु उर आन॥

लखु लक्षण यह प्रणय के दृढ विश्वास जु होय।
वाढै उर अति सख्यता निज समता सखि कोय॥

लखु उपासना द्विविधि सो ऐश्वर्जाशिय एक।
द्वितिये माधुर्याशिया धरै यथा रूचेक॥

द्विभुज परात्पर रामसिय रासादिक करि युक्त।
ध्यावै नित गोलोक सो ऐश्वर्याशिय उक्त॥

तथा अवध में ध्यावही रासादिक बहुरग।
बीच बीच मिथिला गवन चहू बन्धु मिलि सग।।

माधुर्य्या सोइ जानहु रसल जनन सुख मूल।
करै सदा सोइ भावना गहि लक्षण अनुकूल।।

पूर्व कहे ते प्रणय युत अष्ट सात्विका जान।
तनमन को यो धो भई ताहि सात्विका मान।।

असन पर अलके लसत भुज अगद छबि देत।
छरो छबीलौ फेट मे चित्त चुराये लेत।।

सजन सफरी से चपल अनियारे युग वान।
जनु युवती एती हतन भौंह चाप सधान।।

ललित कसन कटि वसन की ललित तलटकनी चाल।
ललित धनुष करसर धरनि ललिताई निधिलाल।।

ललिताई रघुनन्द की सो आलम्ब विभाव।
ललित रसाश्रित जनन को मिलन सदा मनुचाव।।

कोकिल शब्द बसत ऋतु सो उद्दीपन जानु।
मन्द हसनि दृग फेरनी सो अनुभाव बखानु।।

पूर्व कहे ते सात्विका सवै सुदिप्ता जानु।
उग्र अरु आलस्य विनु सचारिहु अनुमानु।।

अस्थाई प्रिय तारती प्रणय प्रेम अरुनेह।
अनुराग अस परम पर वारत तन मन गेह।।

दशा वियोग प्रयोग में पूर्वक ही दश सोय।
अव रस रिपुता मीतता कहौं जस होय।।

मैत्री शान्ति रु दास्य के अरस परस सो जानु।
वत्सल सख्य तटस्थ दोउ सुचि सपल अनुमानु।।

सख्य अरु शृगार दोउ अरस परस लखु मीत।
शाति रु वत्सल दोउ यह सुचि सो अति विपरीत।।

वनिता वृन्दन मध्य जव रघुवर करत विलास।
सुचि अरु अद्भुत हास्य यह तीनो रसन निवास।।

अन्दोल रहस्य दीपिका

श्री रसिक अली कृत

यह श्री जनकराज किशोरी शरण श्री रसिक अलिजी की परम मधुर रसमयी रचना है। ई० सन् १९०७ मे जैन प्रेस, लखनऊ मे छपा। कुल पृष्ठ १६ और छद ४३ है।

विपय—वडी ही भाव भरी कवित्वपूर्ण भापा मे आदोल रहस्य के रस का वर्णन किया गया है। भाषा बडी ही सजीव, सरस, सशक्त। प्रिया प्रीतम के परस्पर लाने लडाने का बडा ही मनोहारी वर्णन है। सखियो ने शृगार के जो साज सजाये है वह भी देखते ही बनता है। हिंडोले पर झूलते होने के कारण प्रिया प्रीतम के मुखमण्डल पर जो श्रमकण आ गये हैं उनकी छवि भी कैसी निराली है। अन्त में इस शृगार-साधक प्रेमी कवि ने कह दिया है कि लाल की यह ललित लीला त्रिगुणमयी माया से परे की वस्तु है, वहा पुरुप नही पहुँच सकता, वहाँ केवल 'अली' को अधिकार है।

उदाहरण—

वाढचो अधिक रस झूलना सखि छकी सव रस रूप।
खसी वसन कचुकि कसन छूटत टूटत हार अनूप॥

सो मुक्तामणि विस्तरन पर कोमल चरण चुभि जाय।
भय मानि ले सव दासिका जल माझि देत वहाय॥

पीतम प्रिया मुख श्रम सलिल कन पोछि हित सुख लेत।
जनु नागराज सुइदु अरचत सुध साधन हेत।।

जव लाडिली कटि लचकि मचकति झुकति पिय की वोर
तव जात बलि वलि लाडली गति होत चद चकोर।

जव परसि वात उरोज अचल उड़त सिय सकुचाय।
पुनि हेरि पिय तन नमित चखरहि रसन दसन दवाय॥

लखि हाव पियउर भाव सरसत चाव चित उमगात।
सो निरखि दपति सुख सरस अलि मुदित उमगी गात॥

हिय हार उरझे दुहुन के त्यौं अली झोटा देत।
सुरझे न झोकनि झपटि लपटी नवल पिय रसलेत॥

लखि श्रमित सव झूलनि पिया प्यारी लई भरि अक।
ले गोद पिय झूलन लगे लखि छके वदन मयक॥

भीगे अलिन के चोल चूदरि चुवन लागे रग।
झीने सुपट लोग लिपट दरसाइ त्यो अलि अग॥

मृगी ज्यो सब ठगी नागरि रहि विरह तन घेरि।
मिलन चाहति लाल अक निसक हारी हेरि॥
ललित लीला लाल सिय की त्रिगुन माया पार।
पुरुष तह पहुचे नही केवल अली अधिकार॥
रसिक अलि जीवन यही ध्यावै रटै दिन रैन।
विनु जुगल रस लीला लखे छिन पल हिये किमि चैन॥

पञ्चशतक

श्री रामचरणदास 'करुणासिन्धु' जी

रसिकोपासको में शिरोमणि महात्मा रामचरणदास जी के लिखे 'पञ्चशतक' में (१) विवेक शतक, (२) वैराग्य शतक, (३) उपासना शतक, (४) विरह शतक और (५) नाम शतक सम्मिलित है। श्रृगारोपासना मे एक प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में इसका आदर है। सिद्धान्त ग्रन्थो मे यह पञ्चशतक सर्वमान्य है। इन ग्रन्थो से स्पष्ट ही पता चलता है कि महात्मा रामचरण-दास जी रसिकोपासना के अनुभवी और विद्वान् सन्त थे। ज्ञान और निष्ठा का ऐसा मणिकाचन सयोग दुर्लभ है।

विवेक शतक

(२) राम रसामृत खण्ड

हस्तलिखित प्रति रहस्य प्रमोदभवन अयोध्या में प्राप्त। इसमे वैराग्य, सन्तो की पहिचान ...तो का वर्णन अन्त मे रसका प्रकरण है। कुल चार खण्डो में समाप्त होता है। ...सना शतक,' और 'विरह शतक' से कुछ उदाहरण दिये जा रहे है—

नीच कर्म करने ... गुपनखा मति कूरि।
राम रूप लखि ... ...ट भाव भय दूरि॥
...ई पूतना कृष्ण ... नीच के काम।
...न लखि कृत ... ...पको न तेहि काम॥
...वजाइ ... मोहि वृज नारि।
...रन ... भय राम निहारि॥
... बहु गुन जाने जाइ।
... पेड भरे रम पाइ॥

राम चरन दुख मिटत है, ज्यो विरही अतिहीर।
राम विरह सर हिय लगे, तन भरि कसकत पीर॥

राम चरन मदिरादि मद, रहत घरी दुइ जाम।
विरह अनल उतरै नही, जव लगि मिलहि न राम॥

राम चरन जे अर्ध जड, सुरति नयन सब पेखि।
विरह अन्ध तन धाम धन, तेहि कछु परै न देखि॥

राम चरन जे धीर जग सुनै, सयन के फेर।
राम बिरह नहि सुन कछू कर्म धर्म श्रुति टेर॥

ज्ञान ध्यान जप जोग तप, जो सुधर्म श्रुतिसार।
राम चरन प्रभु विरह विनु, ज्यो विधवा शृगार॥

राम चरन विरही त्रिधा, मोर चकोर सुमीन।
सुनि यक लखि यक लीन यक, निज निज प्रेमहि पीन॥

राम चरन रविमनि श्रवत, निरषि विरहिनी पीव।
अग्नि निरषि जिमि घृत द्रवत राम रूप लखि जीव॥

प्रेम सराहिये मीन को, विछुरत प्रीतम नीर।
राम चरन तलफत मरे, तिमि जिय विन रघुवीर॥

कव होइहि सजोग अस, दीप रूप प्रभु तोर।
राम चरन देखत मरहि, मन पतंग होइ मोर॥

राम चरन कव तव गुनन, मनन करिहि मन रोक।
जिमि कामिनी मनहि मन, त्यागि लोक परलोक॥

जथा जतन विनु लगत मन, तिय सुत तन धनधाम।
राम चरन यहि भाँति मन, कव लागिहि पद राम॥

वुधि निश्चै तव जानिये, राम चरन दृढ होइ।
यथा सती पिय सग दै, जगत नेह सव पोइ॥

तुमहि लगावहु तव लगे, मम सूरत रघुनाथ।
राम चरन कठ पूतरी, नचै सूत्र धर हाथ॥

कव नैननि भरि देखिहौं, राम रूप प्रति अग।
राम चरन जिमि दीप छवि लखि मरि जात पतग॥

कव रसना रामहि रटहि, जथा कूररि विहग।
राम चरन चातक रटत, वारह मास अभंग॥

सब कहँ फूल बसत सुख, अगिन लूक सम सोहि।
सकल सुजोग कुयोग भव, रामलला विन तोहि॥

रसमालिका

श्री रामचरणदास जी

सुप्रसिद्ध रसिकाचार्य श्री रामचरणदास जी महाराज 'श्री करुणसिंह जी' रचित (रसमालिका), रसिकोपासना के गले का हार है। इसमें परधाम, पर स्वरूप, पर रस, पर मन्त्र, ब्रह्म, जीव, भक्ति, योग, ज्ञान, वैराग्य, सत्सग, प्रेम तथा लीला बिहार का रहस्य बडे ही गम्भीर एव रहस्यपूर्ण ढग से वर्णित है। इसे श्री भरतशरण जी (श्री विश्वम्भरप्रसाद जी माथुर, भू० पू० प्रोफेसर गवर्नमेण्ट कालेज, अजमेर) ने प्रकाशित किया है। रसिकोपासना का सिद्धान्त एव उसके विनियाग की प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिए यह ग्रन्थ परम उपयोगी सिद्ध होगा। कथा यो है कि एक समय ब्रह्मलोक में चारो वेद अपने पारस्परिक सत्सग में ब्रह्म का निरूपण करते हुए इस बात का निर्णय नही कर सके कि ब्रह्म का स्वरूप सगुण है या निर्गुण। अन्त मे चारो ही मिल कर शेष भगवान् के पास पहुँचे। शेष भगवान् ने लक्ष्मण जी के स्वरूप मे उन्हे दर्शन दिये। फिर वेदो के प्रश्न करने पर आपने परधाम, परस्वरूप, पर मन्त्र, पर रस, क्षर, अक्षर, सगुण और अगुण इन नौ प्रश्नो का स्पष्ट रूप से विवेचन करते हुए वेदो का सशय दूर किया। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ मे ब्रह्म, जीव, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग और सत्सग आदि गूढ़ विषयो का भी सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। तात्पर्य यह कि भक्तिपथ-प्रदर्शक शृगार रस से ओतप्रोत यह ग्रन्थरत्न अपने ढग का निराला ही है। शब्दावली बडी ही गम्भीर और भाव बडे ही गहन है। बिना अच्छी तरह डुबकी लगाये इस ग्रन्थ का भाव पकड मे नही आता। कुल ग्रन्थ १५ अवकाशो मे विभक्त हैं और प्रत्येक अवकाश मे भिन्न-भिन्न प्रकरण है।

सिद्धान्त

श्री तुलसी शृगार गुप्त रस दास्य बखानी।
यही चोट रहि गई प्राप्ति में रस बिलगानी॥
सोई आनि रस वपु धरयो अग्र स्वामी के पथ लहे।
टीका रचि निज ग्रन्थ के प्रगट रास रस निर्वहे॥

राम नाम वन्दौ यदपि मुख ते कहा न जाय।
ज्यो तिय निज पति नाम को कहत वहुत सकुचाय॥

तासु मध्य आमीन भक्ति महारानी जू।
दहिने भुअग परमीठ जुगल छवि खानी जू॥
चरनन लगेऊ स्वरूप राग मगल करि।
नहमी शिर महि नाइ चरण रज हिय धरि॥

शिर चन्द्रिका किरीट अमित शशि रवि छवि।
जनु शशि रस कहँ पियति वेनि नागिनि कवि॥

हस वन्धु मुख लुब्ध अलक अलि अलि जनु।
भृकुटि कुटिल छवि हरे कोटि मनसिज धनु॥

दिव्य जलज सम नयन श्रवण लगि सोहहीं।
जेहि चितवनि की कृपा सुजन जिय जोहही॥

करण फूल मनि कनी वनी अवरनि गति।
विपुल दिवस निशि राज छपहि विन्दुन प्रति॥

जुगल वदन छवि धाम कोटि शशि छवि इमि।
मानिक मनि ढिग पोत होत द्युति त्यो जिमि॥

तिलक अधर रद विंव हास अद्भुत लसै।
जनु घन रवि शिशु जलज मध्य दामिनि वसै॥

वेसर स्वच्छ वुलाक अवर पर हलकई।
जनु वृहस्पति दिवि शुक्र हृदय शशि ललकई॥

चिवुक कपोल अमोल गरे मुक्तावलि।
राम चरण छवि अलख लखहिं सग की अलि॥

परम रुचिर अगद ककन मुद्री वर।
शोभा छवि सु श्रृंगार सुभग तिन कर घर॥

हार वीच वैजति पदिक उर पर वनु।
धनु जुग मंडल नषतहि शशि मडल जनु॥

सारी किनारी जनेऊ अमर धनु कह हसै।
जनु दामिनि कै दमकि जमुन विच थिर लसै॥

कटि अवरन पट दिव्य उभय तन मे फवै।
सग छवि अलख अनूठि तुच्छ उपमा सवै॥

नाभि दिव्य द्विज राज अमी हृद अलि जिमि।
रवि नन्दिनी छवि भ्रमर करै छवि तह किमि॥

त्रिवलि रेख छवि सीव मूत्र किंकिनि फवि।
मनहुँ महा छवि छेकि हसति त्रिभुवन छवि॥

कटि पर वर पट एक जुगनु शोभा अमि।
मरकत गिरि उर तडित मनहु पूरन शशि॥

विधु मधु गण्डहि मण्डि चरण नूपुर धुनि।
जनु अलि स्वरन कञ्ज पर रमतापुही गुनि॥
नख मयक सुत लाल वनज दल पर लसै।
मनहु स्वेत अलि मौन पियत अनुभव रसै॥
कोटिन विमल निशेश नखन प्रति वारिये।
जावक अनुपम अमल तडित द्युति कारिये॥
पगतल अमृत सिन्धु चिन्ह तेहि चर जनु।
कोइ सखि जन जिय मीन पीन तेहि रस मनु॥
हनुमत शिव शुक सनक हमौ पाँचो सखी।
रहहि सदा प्रभु निकट करहि आज्ञा लखी॥
सकल चिन्ह हिय वसहि प्रगट एकै दुई।
सेवि धर्म यह परम रहहि पिय मन छुई॥
लाडिली लालन तनु छवि सम उपमा इमि।
रवि ढिगि अमित खद्योत दीप द्युति हत जिमि॥
मानिक मनि जहँ पोत गुज द्युति किमि जगे।
कोटिन सर हरि सर सम कहत लज्जा लगे॥
जुगल रूप द्वै द्वै कर कमल सचल सर।
राम चरण किमि कहै कृपिन सुर पुर घर॥
मनि श्रेणी वेनी वनी जनु अहिनी अनी मुक्तन कसी।
घन गिरि जनु शशि कुण्ड कहँ उडि चलिय झुकि रस की रसी॥
भृकुटी कुटिल अलि कञ्ज चप मुख इन्दु सर विगसित मनो।
विहसित अधर रद हृद छवि जनु दाम शशि भीतर वनो॥
जुग वीर जनु तेहि तीर कचन कमठ शिशु निकसे वसे।
मुख कञ्ज पर वेसर मनहु चित लाल सित अलि होइ लसे।
को कहै छवि छाके रसिक नति मूक मय रस ते भरी।
प्रति अग कोटिन वारिये जग करनि रक्षक ले करी॥

वन विहार

सब राहस माज बनाये वन विहरत सो रस पाये।
वहु रग के फूल उतारी वन माल गुहै पिय प्यारी॥

वहु भूषण सुमन बनावे रचि प्रीतम को पहिरावे।
प्रभु निज कर फूल उतारी वहु कचुकि हार संवारी॥
सव सखियन को पहिरावे सखि फूलन माग गुहावे।
रचि सेत सुमन वहु सारी सुचि रग विरगी किनारी॥
प्रभु निज कर वर पहिराई मुख दिव्य सुगन्व लगाई।
सब दिव्य अलकृत सोहैं रस रास वसन्त रच्यो हैं॥

वसन्त विहार

खेलत वसन्त लाडिली लाल, सुख सिन्धु उमगि आनन्द माल।
वन अद्भुत अति जहँ नित वसन्त, प्रभु विहरत लीन्हें सखि अनन्त॥
तन लसत स्वेत पट सुभग अग, जनु वाल हस वस वीच गग।
हसि रग विविध डारत कृपालू, जनु कुन्द लतन्ह पर वैठे लाल॥
सव सखिय सुमन ले विविध रग, एक रचि वितान मोहित अनग।
सर सुमन सिहासन रचि वनाइ, छवि कहत कोटि शारद लजाय॥
तेहि पर सखियन वैठाय श्याम, लज्जित प्रति अगन्ह कोटि काम।
तहँ नाचत सखि करि विविध गान, धुवुकत मृदग धमकत निशान॥
वीना तमूर नेदुर उपग, रस भरिय भेरि वाजत मुचग।
नूपुर ककन किकिनी सुराल, गति थेइ थेइ थेइ थेइ उठत ताल॥
गावहि अनूठि रागिनि रसाल, सुनि रस वस विहसत उठे लाल।
रस हेतु धरे प्रभु अमित रूप, एक ओर भई सखी छवि अनूप॥
पिय ओर चलहि पिचकारि चारु, सखी और अवीरन परी मारु।
भई कीच अगर कुकुम सुरग, सुख सिन्धु वढेउ आनन्द तरग॥
एक सखिय नाम हेमा प्रवीन, चलि रस छल करि प्रभु पकरि लीन।
कोइ हार पीताम्वर लिये छीन, कोइ निज उर प्रभु उर डारि दीन॥
कोइ चुवत मुख लालन लडाइ, कोइ हसत पान वत्सल लगाइ।
मिलि प्रीतम सखि अल्हाद रूप, रचि राम चरण राहस अनूप॥
मनि भूमि पर लगे नचन गति जगमगति प्रति छाही वनी।
जनु छवि शृगार मनोज रति लजि चुनि पगतर सजि अनी॥

सखियों का नृत्य

मनि तरु लतन्ह जगमगति जनु देखत चपल तिर्पित नही।
सखि नचहि मुद्राकार प्रभु विच वीच करते कर गही॥

बहु ताल बाजहि चरण चचल मुरत कर मुख चष हुए।
मुक्ता कलिय नूपुर खसे जनु अमिय सर बहु शशि उए॥
दहु ओर बाजन सदि बजावहि रमसिहा घुघु घद्धघू।
भभ भेरि वज तड तड नफीर निशान घधकहि डक घू॥
सहनाई पिय पिय गुमकि गुम मृदग झनझन झाझही।
तम्बूर जग मुचग करतालादि अनगन बाजही॥
तरु सुमन वर्षहि श्रम अकर्षहि सकल हर्षहि रस भरे।
सोलहहि जिन शृगार रस भरि अपर रस बाहिर धरे॥

शृंगार

श्रम कन मुख सोहँ कमल कोश मोती मनु।
तेहि उपर अरुण रज परम अनूपम को मनु॥
मेचक कच अलि जनु कमल बदन पर झुकि झिले।
शशि राहु मनहु दुइ कुटिल समर तजि नइ मिले॥
रतनन भरि झारी जल सुगन्ध सखि लीन्हे जू।
निज प्रभु मुख धोइ सुख मूरति चित दीन्हे जू॥
कोउ भुज गहि ठाढ़ी कोइ सखि अग अगोछे जू।
कोइ व्यजन करै कोइ अचल ते मुख पौछै जू॥
कोइ कुण्डल अलके उरझि गई निरुवारे जू।
कोइ मुकुट सुधारै भूषण टूट सवारै जू॥
कोइ कसहि पीताम्बर अग सुगन्व लगावै जू।
कोइ चँवर ढुरावै मधुर-मधुर कोइ गावै जू॥
सखियन के भूषन निज कर लाल सुधारी जू।
फूलन रचि चौकी सखि प्रभु कहँ बैठारी जू॥
कोइ चरण प्रक्षाले धूप दीप करै प्यारी जू।
छप्पन विधि भोजन लाइ सखी न्यारी न्यारी जू॥
फल फूल मूल दल अभिनिन्दिक बहु लावै जू।
प्रभु सखिन पवावहि सखिय देइ प्रभु पावै जू॥
रस पाइ परस्पर लै आचमन सु पान जू।
करै दिव्य आरती बाजन धुनि धुनि गान जू॥
एक सुमन सेज रचित प्रीतम को पौढाई जू।
सखि पाय पलोटहि कुल पद परसि लडाई जू॥
हसि हसि सब मागहि राम दान पुनि दीजे जू॥
प्रभु राम चरण उठि जल विहार कछु कीजै जू॥

नृत्य-विहार

नाचत नट नागर सुख सागर उमग्यो री।
लालन मुख विमल इन्दु मेचक उर चिबुक बिन्दु॥
सखि मुख चष विमल कज तज गति विगस्यो री॥
भृकुटि कुटिल चचरीक थिरकत रसिक लीक॥
गान विच अलि अलीक तजि ढिग निकस्यो री॥
कर कर गहि ललिय लाल झूमत गज मत्त माल।
लचकत कटि ग्रीव चरण हिरि फिरि चलत्योरी॥
अलकैं ललकैं कपोल कुण्डल हलकैं कलोल।
जनु शशि उर रचिहिं डोल राहु रवि झूल्योरी॥
यहि विधि गये सरयु तीर तीर पुञ्ज वन गभीर।
पुञ्ज सुमन पुञ्ज भ्रमरि गुजत जन ज्योरी॥
युग तट मणि मय पवित्र चित्रित श्रेणी विचित्र।
प्रभु मन भव जल सनेत्र करुण रस भरयोरी॥
नील रतन मानिक जनु सेज शयन मानिक फनु।
जुन वन भव प्रभु रवि अलि रसन रट रस्योरी॥
सुमति कहति सूरति वलि मूरति दिखराऊ अचलि।
राम चरण जग तजि लखु भवन मैंसि क्योरी॥

जल क्रीड़ा

परि लेलि प्रभु मानस ललिय ललि लाल कोतूहल रची।
जल केलि क्रीडा श्रीड जहँ अह्लाद क्रीडा कल मची॥
जलजात कर उच्छरित जल जलजात फैंकहिं अलि लची।
तेहि सग भ्रमरि उड़ाहि गुजत देखि कवि शारद नची॥
जनु पुर शशि टूटहिं विथकि अहि वाल तेहि रस लूटही।
जनु स्वरन सपुट वेष्टि रस अलि आलि चपरि लै जूटही॥
प्रभु लेत पुनि फैंकत लगत जनु अमिय घट भरि फूटही।
जिमि राम चरण हवाय सिय पुर काम रति कर छूटही॥
यहि विधि जल केलि हेलि खेलत पिय पियारी।
उमगत आनन्द माल हसत धरत ललिय लाल।
अधर अधर परसत मुख दरसत सुषमा री॥
मिलित लाल अलक बक बेसरि अरुझेउ तटक।
अलि कच कुण्डल बुलाक अरुझेउ उपमा री॥

जनु जुग विधु चष कुरग गुरु द्वौ रवि अरि अनग।
अहि रजु कसि बीच वैर सब तजि सुख भारी॥
बहु सखि निरुवारित करताल हस बजावती।
बहु व्यग राग गावती मन भावति नहिं न्यारी॥
कर ते कर जोरि सकल निर्त्तत्त जल उपर चपल।
चरन चलत छुवत छटकि नूपुर रवकारी॥
रत्नालकृत विचित्र जगमग जल विच पवित्र।
जनु घन दिवि तडित विपुल दमकत दुतिवारी॥
छुम छुम थेइ थेइ तरग गावति पिय सग सग।
चलित लजित जग अनग वाजत करतारी॥
अद्भुत राहस अनूप देखहि कोइ सखि स्वरूप।
राम चरण देखैं किमि नयन अन्ध चारी॥

हिंडोला

झूलत लाडिली लाल हिंडोले।
नील सघन पल्लव तरु शोभित जनु वितान घन माल
गर्जहि मधुर मधुर पिय मन लै कोकिल शब्द सुराल।
वरषत मेह झरत तरु अमृत बोलत मोर रसाल।
श्री सरयू उमगत उज्ज्वल जल लहरि उठत मानो जाल॥

त्रिविध पवन निन्दक मारुत चल पट फहरात सु लाल।
पद कर भूषन तडित नखत शशि निन्दत धनु सुरपाल॥
वहु सखि सग सग झूलति है बहुरि झुलावति बाल।
गावहि मधुर लाल मन मोहैं करहिं विविध रस ख्याल॥

मनहुँ मदन रति के व्याहन कहँ साजि सकल निज ताल।
लाल विहारि देखि वन भूलेऊ विसरि गयो सब हाल॥
यह रस राशि रसिक कोइ सखि मोइ निशि दिन रहति निहाल॥
रामचरण यह छाडि कहै कछु कारिख तेहि मुख भाल॥

दास रूप नहि मिलत रहत ढिग चाह कछू नहि।
तीन मुक्ति फल एक एक यहि रहेउ चारि गहि॥
तदपि त्रिगुण विन तजे दास पद कवहु होइ सिधि।
जो वनिता पति लहै पिता कुल रहै कवन विधि॥

मकल धर्म भये दूरि दागि भइ व्रज युवती जव।
जप तप व्रत नेमादि नाश यह दाम होइ तव॥

विन जागे नहिं दास दास यह होइ काहि लखि।
विना लखे कहुँ प्रीति प्रीति विनु प्रेम सके भखि॥
विना प्रेम की भक्ति हेतु घृत वारि मथइ जड़।
विन सतसग गवार यथा जग चतुर होइ वड॥
जहा आस नहिं दास दास जहँ आस न है इमि।
श्री रामचरण रवि रैनि एक स्थान उदय किमि॥
टाकी शब्द अनूप वज्र घाटी धरि फोरै।
शशि प्रति जल विन पवन दीप यहि विधि चित जोरै॥
तहँ सरवर इक अमी सहस दल कमल प्रेम रस।
जेहि जन को जिय भंवर पियत जग तेहि गुलाम वस॥

अष्टयाम पूजा विधि

श्री रामचरण जी कृत

[अगस्त्य सहिता के मूल श्लोको का पद्यमय भाष्य। मंगला आरती से लेकर शयन तक के पद। लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस से सन् १९०१ ई० मे छपाकर छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बईवाले ने प्रकाशित किया।]

सखियों और सीता का शृंगार

कोइ जल कनक महावर दइ पग पीय के।
जनु मरकत मणि पत्र लिखति यश सीय के॥
जनक लली पद जावक चित्र लोल दई।
कनक पत्र जनु लिखति राम मन मोल लई॥
सिय पग पीठ धवल मणि एक ढिगन कनु।
वाल हंस सब कञ्ज कोश वोडी जनु॥
विवलि नूपुर सिय पग रतन कनक कर।
मनहुँ विचित्र भ्रमर अलि लाल कमल पर॥
नूपुर तीन अवलि पग राम सोनकर।
मनहुँ पराग भरे अलि नील कमल पर॥
सिय नूपुर तर गेज कनक दुहलर बर।
नूपुर पर पैंजनी बनी शोभा घर॥

नूपुर ऊपर गोडहरा जानकी पीय के।
जात रूप मणि चुनित चुनित तस सीय के॥
पग शृंगार करें चतुरी श्यामा सखी।
कोई कहै जेहि बस भयो राम रामा लखी॥
सिय को छील रसालत पाँच त्रै एक ही।
स्वर्ण खोल भरि मोति जडाव लरन गुही॥
जानकी कटि जगमगति नील पट पर छई।
मनहुँ सप्तरिखि नारि बलाहक पर उई॥
रामचन्द्र कटि घेर तीनि लर किंकिणी।
नील शृंग मध्य प्रात सुरुज जनु दामिनी॥
जानकि कटि मण्डल त्रय किंकिणी घनि गुही।
मनहुँ शुक्र की माल सूत्र दामिनि पुही॥
किंकिणि तर कटि सूत्र उभय शोभा असी।
कनक तमाल लता तरु दामिनि जालसी॥
ललिय लाल कटि सूत्र युगल सखि रचि भरी।
राम चरण शृंगार छवि जनु मेखल करी॥

श्री राम जी का शृंगार

श्री राम जू के कण्ठ कण्ठा लसत अतिशय गजमनी।
त्रैकोण कौस्तुभ उर लसै रवि कोटि शशि दुति सो घनी॥
कौस्तुभ तरे वर गुंज कञ्चन मणि कनिन अद्भुत बनी।
उद्योत रवि शतकोटि हृद पर पदिक शोभा भनी।
नाभी तरे वरमाल मोहन कनक बिद्रुम ललागे।
वैजन्ति माला किंकिणी तर लागि रतन पचरंग जगे॥
श्री कृष्ण नीलारुण धवल पीता पिद्रौ लर जगमगे।
शृंगार कृत वनमाल रवि ससि ग्रीवते अरु पग लगे॥
कञ्चन धौत इव कल सुमन पट कलित जरावन गुहि तजे।
नव नील घन नखतन्ह नव ग्रह तडित शशि रवि बहुलजे॥

सखियों द्वारा सीता और राम का शृंगार

कोइ सखि सिय भ्रू मध्य सुभग सेंदुर करै।
मनहुँ अमल शशि शिखर दिव्य दीपक धरै॥

राम भाल तिलकोर्द्ध गोरोचन रेख दुई।
पीत मनहुँ घन शिखर तडित जग मग छुई॥
कोइ सखि सिय कच झारहिं रुचिर माग गुहि।
शीश श्रवण लगि मध्य मिलित मोती पुही॥
टीका सिय जू के भाल श्रवण लगि पर ठटी।
पट्टा कार कनक नवरत्न कनिन जटी॥
टीका पर चन्द्रिका राम दिशि झुकि रह्यो।
रवि शशि बहु त्रिभुवन उपमा कछु नहिं लह्यो॥
सप्त शृंग यक मध्य किरीट राम शिर।
मणि जटित रवि कोटि चन्द मिलि नहिं थिर॥
राम अलक घुघुरारि कपोलन लगि लसैं।
मनहुँ लुब्ध अलि कमल भोर पीवत रसैं॥
सिय सेंदुर टीका भाल वेंडी वनु।
कनक शृंग पर केतु दुइज शशि शुक्र जनु॥
बेंदी वनी अनूप श्रवणता टकनु।
जनु शशि हृदय दुकूल कमठ शिशु कचन॥
राम श्रवण कुडल मकराकृत लोल जू।
जनु, तमाल तरु झूलत मथन हिंडोल जू॥
कोटिन रवि पर तेज कोटि शीतल शशि।
जनक लली की बोर तेज शीतल तसि॥
अति सुन्दर सिय के अम्बक काजल वनो।
अरुण कजं के कोष श्याम रेखा मनो॥
काजल देंहि सखी दुइ लोचन श्याम के।
जेहि विधि जनक लली के तेंहि विधि राम के॥
सीता मुख अधरारुण पर वेसरि हलैं।
जनु मयक सुत अरुण कज दलन पर चलैं॥
राम बुलाक मनोहर चिवुक विन्दु कई।
पीत सकल छवि छेकि छाप जनु करि दई॥
नील विन्दु सीता जू के चिवुक सखी करी।
वशीकरण जनु यन्त्र राम चितहित धरी॥

पहुची वलय बहूटा मणि कनक जरावही।
सीता भुज द्वौ मूल सखी पहिरावहिं॥

राम भुजन बाजू बलय मुनि मन मोहिका।
खडुवा पहुची ककन मणिन मुद्रिका॥

सिय पछुवा चूरी ककरण मुदरी छल्ला।
बक आदि बहु भूषण कनक मणिन कला॥

पीताम्बर मणि कनक छोर मोतिन छजै।
शरद प्रात रबि तडित तप्त कचन लजै॥

ललिय लाल के भूषण अगिणित को कही।
राम चरण सखि जानहिं जो लखि छकि रही॥

जेहि सखि कुज राम सिय जाही।
तह तह पूजन सखिय कराही॥
जानकि रसिक जानकी सगे।
बन बिहरहिं कमु कुजन रगे।
विहरत सुख जानकी बिहारी॥

आवत रास बिहारी देखो सखि।
सरयू तीर शृगार विपिन ते अति अनूप छबि न्यारी॥
सीताराम मनोहर जोरी चितवन की बलिहारी।
कुडल अलक हलक बुलाक की दलकत हृदय हमारी॥
सग सखी सौहैं अलबेली बनी ठनी छबिकारी।
सुमन सिंगार किये नखशिख लौं निजकर श्याम सवारी॥
प्रभु आगे सखि खेलत आवें फूलन गेद उछारी॥
झुकि झुकि लेत परस्पर फेकहिं लखि अनन्द पिय प्यारी॥
आये दम्पति रामचरण सखि सुमन सिंगार उतारी।
नदशिख मणि भूषण सिंगार करि सिंहासन बैठारी॥

राजित सिय रघुवीर सिंहासन।
कोटिन भानु प्रकास सिंहासन कोटिन शशि सम सीर॥
कोटि काम रति दुति निन्दत द्वौ श्यामल गौर शरीर।
मणि वहु भाति विभूपण शोभित पीत नीलवर चीर॥
वहु मखि धूप की युक्ति वनावहिं वहु दीप सजीर।
वहु मखि रचि नैवेद्य वनावहि वहु मखि लीन्हे नीर॥

वहु सखि मुख मज्जन पट लीन्हे वहु सखि लीन्हे वीर।
वहु सखि छत्र व्यजन चामर लीन्हे वहु सदि करत समीर॥
वहु सखि वाजन विविव वजावहिं ताल देहि वहु धीर।
राम चरण सखि गौरी गावहि मधुरे स्वर गंभीर॥
प्रथम चरण तल पुनि नख जावक नूपुर वारह वानकी।
सखि आरति करे प्रिय प्राण की निरखहिं छवि राम सुजान की॥
पुनि किंकिणि कटि सूत्र मनोहर वहुरि अवर चष पान की।
दम्पति मुख सखि शशि चकोर थभि पुनि सर्वाग प्रनाम की॥
पुन किरीट चद्रिका निरखि पुनि राम चरण सखि पान की।
अगि अग छवि सुधापान करि रामलाल अरु जानकी॥

अलि छवि देखु किशोर किशोरी।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दनी तरु शृगार युग रूप फरो री॥
केकि कठ द्युति श्याम रामतन कचन धौत जानकी गोरी।
रामचन्द्र कर शर धनु राजत सिय कर कमल गेंद छवि छोरी।
रामचन्द्र कटि काव पिताम्वर सारी नील सीय तन गोरी॥
मनहु राम सारी होइ सिय तन सिय पट पीत राम तन कोरी॥
को छवि कहै विभूषण भूषित को अस जो सखि मन न हरो री।
युगल मनोहर अग अग प्रति वारो छवि रति काम करोरी॥
वहु सखि निकट ठाढि सेवा वहु नृत्य तान स्वर गान भरोरी।
रामचरण सनकादि शेष शुक शिव हनुमत मत यहै धरोरी॥

अति प्रेम मगन तनमन भीजै सखि आरति सैन सुरुचि कीजै।
युगल चद सव के सन्मुख नित चित चकोर भयो मदन रतीजै॥
सीताराम सुधा छवि निधि मह चलत मीन इव चख लीजै।
अग अग लखि रूपसार शशि नयन मगन रह रह पीजै॥
वहु सखि ठाढि साज सव साजे वाजन ताल गान मधुरीजै।
रामचरण सखि करत आरती मन क्रम वचन अर्पि दीजै॥

सैंन चलिय पिया मोर राम सिय।
सकल सखी मुख चद विलोकहिं रैनि गई वहु तेरि॥
अलसाने लखि नयन उनीदे सहजा सखी निहोरि।
ललिय लाल सोवनार चलहु वलि सकल सखी करजोरि॥
सुनि सखि वचन उठे पिय प्यारी उतरि सिंहासन सोरे।
सखियन राम सीय जु के भूषण हर शिर हमि कछु छोरे॥

पहुची वलय बहूटा मणि कनक जरावही।
सीता भुज द्वौ मूल सखी पहिरावहिं॥

राम भुजन बाजू बलय मुनि मन मोहिका।
खडुवा पहुची ककन मणिन मुद्रिका॥

सिय पछुवा चूरी ककरण मुदरी छल्ला।
बक आदि बहु भूषण कनक मणिन कला॥

पीताम्बर मणि कनक छोर मोतिन छजै।
शरद प्रात रबि तड़ित तप्त कचन लजै॥

ललिय लाल के भूषण अगिणित को कही।
राम चरण सखि जानहिं जो लखि छकि रही॥

जेहि सखि कुज राम सिय जाही।
तह तह पूजन सखिय कराही॥
जानकि रसिक जानकी सगे।
बन बिहरहिं कमु कुजन रगे।
बिहरत सुख जानकी बिहारी॥

आवत रास बिहारी देखो सखि।
सरयू तीर शृगार विपिन ते अति अनूप छबि न्यारी॥
सीताराम मनोहर जोरी चितवन की वलिहारी।
कुडल अलक हलक बुलाक की दलकत हृदय हमारी॥
सग सखी सौहैं अलबेली बनी ठनी छबिकारी।
सुमन सिंगार किये नखशिख लौं निजकर श्याम सवारी॥
प्रभु आगे सखि खेलत आवे फूलन गेंद उछारी॥
झुकि झुकि लेत परस्पर फेकहिं लखि अनन्द पिय प्यारी॥
आये दम्पति रामचरण सखि सुमन सिंगार उतारी।
नदशिख मणि भूषण सिंगार करि सिंहासन बैठारी॥

राजित सिय रघुबीर सिंहासन।
कोटिन भानु प्रकास सिंहासन कोटिन शशि सम सीर॥
कोटि काम रति दुति निन्दत द्वौ श्यामल गौर शरीर।
मणि वहु भांति विभूपण शोभित पीत नीलवर चीर॥
वहु सखि धूप की युक्ति बनावहिं वहु दीप सजीर।
वहु सखि रचि नैवेद्य बनावहिं वहु सखि लीन्हे नीर॥

वहु सखि मुख मज्जन पट लीन्हे वहु सखि लीन्हे वीर।
बहु सखि छत्र व्यजन चामर लीन्हे वहु सदि करत समीर।।
वहु सखि वाजन विविध बजावहि ताल देहिं वहु धीर।
राम चरण सखि गौरी गावहि मधुरे स्वर गभीर।।
प्रथम चरण तल पुनि नख जावक नूपुर वारह बानकी।
सखि आरति करे प्रिय प्राण की निरखहिं छवि राम सुजान की।।
पुनि किंकिणि कटि सूत्र मनोहर बहुरि अधर चप पान की।
दम्पति मुख सखि शशि चकोर थभि पुनि सर्वांग प्रनाम की।।
पुन किरीट चद्रिका निरखि पुनि राम चरण सखि पान की।
अगि अग छवि सुधापान करि रामलाल अरु जानकी।।

अलि छवि देखु किशोर किशोरी।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दनी तरु शृगार युग रूप फरो री।।
केकि कठ द्युति श्याम रामतन कचन धौत जानकी गोरी।
रामचन्द्र कर शर धनु राजत सिय कर कमल गेंद छवि छोरी।
रामचन्द्र कटि काछ पिताम्बर सारी नील सीय तन गोरी।।
मनहु राम सारी होइ सिय तन सिय पट पीत राम तन कोरी।।
को छवि कहै बिभूषण भूषित को अस जो सखि मन न हरो री।
युगल मनोहर अग अग प्रति वारो छवि रति काम करोरी।।
वहु सखि निकट ठाढि सेवा बहु नृत्य तान स्वर गान भरोरी।
रामचरण सनकादि शेष शुक शिव हनुमत मत यहै धरोरी।।
अति प्रेम मगन तनमन भीजै सखि आरति सैन सुरुचि कीजै।
युगल चद सव के सन्मुख नित चित चकोर भयो मदन रतीजै।।
सीताराम सुधा छवि निधि, मह चलत मीन इव चख लीजै।
अग अग लखि रूपसार शशि नयन मगन रह रह पीजै।।
वहु सखि ठाढि साज मब साजे वाजन ताल गान मधुरीजै।
रामचरण सखि करत आरती मन क्रम वचन अर्पि दीजै।।

सैन चलिय पिया मोर राम सिय।
सकल सखी मुख चद विलोकहिं रैनि गई वहु तेरि।।
अलसाने लखि नयन उनीदे सहजा सखी निहोरि।
ललिय लाल सोवनार चलहु वलि सकल सखी करजोरि।।
सुनि सखि वचन उठे पिय प्यारी उतरि सिंहासन सोरे।
सखियन राम सीय जु के भूषण हर शिर हंसि कछु छोरे।।

भूपण बसन उतारि राखि सखि सैन विभूषण थोरे।
सीय राम सोवनार चले सुख सखियन अति उमगोरे॥
मणिमय पलग ढिगन मुक्तावलि सेज बद कसि डोरे।
राम चरण उछीर गेंदुआ पै फेन सेज पौढे रे॥

सयन कियो पिय प्यारी सेज सुख।
विविधि रग मणि मय मदिर मैं जगमगात उजियारी॥
मदन मजरी की आयसु सखि प्रथमहिं सेज सवारी।
दिव्य सुगन्ध सुमन चहु ढिग रचि विविध रग फुलवारी॥
सीताराम अराम कीन सखि ठाढि नीर भरे झारी।
चतुर सखी पद पदुम पलोटहिं राहस बात उचारी॥
बीरा पीक दान सखि लीन्हें सयन भोग भरे थारी।
वाजन पच बजाव पच सखि सप्त स्वरन रसकारी॥
अद्द नीद सुख सोइ रहे रघुनन्दन जनक दुलारी।
रामचरण सखि वहु चौकी रहि बहु निज महल पधारी॥

श्री जीवाराम 'जुगल-प्रिया' जी

(१) युगलप्रिया पदावली

श्री जीवाराम युगलप्रिया के प्रेम भरे गीतो का यह सग्रह लक्ष्मीनारायण प्रेस, मुरादाबाद में सम्वत् १९५९ सावन वदी १३ को छपा। इसमें विशेषत सावन, फागुन के झूले और होली के पद हैं जिनमे श्री सीताजी तथा श्री रामजी के प्रणय विहार, रास, झूला के दृश्य विशेप रूप में वर्णित हैं। अनेक राग रागिनियो के पद है भाषा में पूर्वीपन है। उर्दू फारसी के शब्द आये हैं परन्तु अपेक्षाकृत कम। कुल १०७ पद है और पृष्ठ ५६।

विपय—युगल लीला विहार, रास विलास कनक भवन, सरयू तट की कुजो मे तथा सखियों सहित नाना विधि होली के आनन्दोल्लास और सावन में झूलन विहार। इसके अतिरिक्त श्री युगल प्रियाजी के दो और ग्रथ हैं। **शृगार रहस्य दीपिका और अष्टायाम**। यहाँ हम पदावली से कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है।

ये जागे श्याम सिया सग रग भरे रग महल कनक भवन शैन कुज धाम।
अलसौहैं सौहैं नैन झपको है मोहैं मैन अग अग सुरत समर छाम॥
निज कुज ते छटा सी छवि पुज पुज आई चन्द्रकलादिक वाम।
वीना मृदग उपग कठतार चग मिलित चरित गावती ललाम॥
यह रस रग समाज विलोकत विसरयो है सव मन काम।
युगलप्रिया मगनाई रसिकन धन मिलन हेतु रटत युगलनाम॥

मैं वारी युगल पर वारी।
दशरथ जू के श्याम सलोने गोरी श्री जनक दुलारी॥
नवल निकुज नवल वनिता चहुदिशा लसति अति प्यारी।
गान सरस वीना मृदग धुनि युगलप्रिया वलिहारी॥

नई लगन ललन तोसे लागी।
या मिथिला की आवनि मैं तेरी विपुल अली छवि पागी॥
लै चलु पिय प्रमोद वन में जहा ऋतु वसत अनुरागी।
अवध रगमणि महल काचनी युगलप्रिया वडभागी॥
चले दोउ कुज सरयू तट को सखिन सग अलसाने दिये गलवाही।
वियुरित अलकावली मुखारविन्द शोभित सुखमा सनेह रसिकन
दृग कज मजु प्रफुलित जनु युगलभानु प्रगटे वनमाही।
छप तस्करादि जेते रसिक भाव दुखित रहे सूख्यो हृदवारि रासध्यान नाही॥
युगलप्रिया रसिकन के हृदयवारि रास ध्यान।
वैठक सजि पुलकत आनन्द रोम रोम असुजाही॥
लाडिली वनी अलवेली वना मतवारो।
श्री मिथिलेश कुमारि सरस छवि दशरथ राज दुलारी॥
श्यामल गौर नखशिख सुख माठनि अग अग छवि भारी।
युगलप्रिया दरशन के मनोरथ तलफत प्राण हमारो॥

जादू भरी राम तुमरी नजरिया।
जेहि चितवत तेहि वसकरि राखत सुन्दर श्याम रामवनु धरिया॥
जुलफन युत मुख चन्द्र प्रकाशित नासामणि लटकन मनहरिया।
युगलप्रिया मिथिला पुर वासिन फसी जाल विच मानो मछरिया॥

प्यारी जू होरी खेलन आई श्री सरयू तट कुज अनूपम धाम।
वीना मृदग मुरचग उपग सौ गावै रगीली वरवाम॥
प्रीतम आये धाय ज्यो अनग छाये प्यारी भाल दै गुलाल वैठे यकठाम।
युगलप्रिया दोउ मूठी गुलाल भरत सव समाज अग ललाम॥

खेलै श्री सरयू तट मे रग रगीली फाग री।
पुर कहु ओर प्रमोद वनी मणि कचन भूमि विभागरी।
तिनमे पूरव दिशि मिथिला सम्वन्ध सदा अनुरागरी॥
चारुशिला कमला विमलादिक चन्द्रकला गुन आगरी।
देति सुधारि लली लालन कर कुकुम पिचकारी नागरी॥

याही ते तत्सुख स्व सुखी सम्बन्ध टहल प्रिय लागरी।
जे यहि रीति प्रीति मे हुलसत युगलप्रिया बड भाग री॥

हो हो खेलत दशरथ लाल रगीली आजु रगीली फाग।
ललना कनक भवन श्रीरग महल विच नजर अबीरी बाग॥
विपुल कुज चहु दिशा अलीगन चन्द्रकलादि विभाग।
सजि श्रृगार वसन भूषन पिय प्यारी परम सुहाग॥
नहरें लगीहौ दै रगन श्री सरजू अनुराग।
भरि डारत पिचकारी पियपर सिय कुमकुमा पराग॥
चद्रकला भिजोई दई अग पिय सिर केसरि पाग।
प्यारी करतारी मनहारी वलिहारी प्रियलाग॥
यह लीला लहरी अवलोकनि भजनि प्रेम तडाग।
अग्र स्वामि पथ लह्यौ अमित सुख जुगल प्रिया बडभाग॥

आजु खेलो रग होरी सइया आपु खेलो रग होरी हो।
दशरथ राज कुमार छैल तुम कालि करी वरजोरी हो॥
तुम रघुवश कुमार लाडिले मैं निमि वश किशोरी हो।
कौन बात मे घटी हमारे यूथप सखी करोरी हो॥
रूप गुनन में नागर प्यारे हौ नागरि कछु थोरी हो।
जुगलप्रिया मुस्कात छबीली रग महल की पोरी हो॥

आजा पियरवा रसिक रघुनन्दन।
रसिक राय रसिकन हिय चन्दन॥
याहि कुज मिलि रसिक रगीली।
आनि जुरी विमलादि छवीली॥
हमरो कुज मग माहि रसीलो।
तनिक विलबि सरस रस पी लो॥
सुनि अलि वचन लाल मुस्काये।
मिलि तेहि सग लली ढिग आये॥
याही में तत सुख स्व सुख लखायो।
जुगलप्रिया सेवा मन भायो॥

भवरा सवलिया रामा हो गोरी कमल सिय प्यारी।
एक सखी अवध पुर आई पाती सुगन्ध पहुचाई॥
वाचत ही मन विकल भयो आये गाधिसुवन उपकारी।
ल्याये चरित्र वन पावन कीन्हो सुर मुनि मन भावन॥

धनुष कथा सुनि हर्ष भये मुनि सग चलनि मतवारी ॥
आये मिथिला सर संयाही छवि जल अथाह जेहि माही।
अलिगन दल लखि मुदित परम मकरंद पान फुलवारी ॥
यह रसिक जनन के दाया जव होय रहित छल छाया।
तव ही लोचन मगन छवि छावत जुगलप्रिया वलिहारी ॥

गलवहिया दिये वैठे दोऊ आय सरजू कुंज पुलिन मन भाये।
मनिन जडित कचन की अवनी विपिन प्रमोद प्रमाद रसाये ॥
चहु दिशि अलि गन लसत निकाये।
निरखि निरखि नैन नेह वढाये ॥
सीस चद्रिका क्रीट सुहाये।
कुसुमी वसन भूषन छवि छाये ॥
देत परस्पर पान खवाये।
मधुर मधुर वतिया वतराये ॥
रूप सुधा पीवत न अघाये।
अघटित प्रीति वरनि नहि जाये ॥
युगल प्रिया यह दपति की छबि निरखत नैन रह्यौ मडराये ॥

उमड़ि उमडि आई वादरि कारी।
दशरथ नदन जनक लली जू वैठे सखिन संग महल अटारी ॥
कुसुमी वसन युगल तन राजत जगमगात भूषन उजियारी।
अलकैं विथुरि रही मुख ऊपर मुकुट चद्रिका लटक सवारी ॥
चद्रावती मृदग टकोरति चद्रा तानपूर करतारी।
चद्रकला जू वीन वजावत गावत उमग भरे पिय प्यारी ॥
अधिक प्रवाह वढ्यो सरयू को भरे प्रमोद विलोकत वारी।
युगलप्रिया रसिकन के सपति अगम निरखि रतिपति वलिहारी ॥

रग झूले अवध विहारी हो सरयू तट सग लिये सिय प्यारी।
सावन कुज सुहावन पावन रतन भूमि हरियारी ॥
निज निज कुजन ते वनि आई नित्य सखी अविकारी।
गावहि सरसाती बरसाती दरशाती सुख भारी ॥
कवहु झुलावत प्यारी प्रीतम कवहू प्रीतम प्यारी।
युगलप्रिया रसमात परस्पर दपति लीला धारी ॥

रसिक दोऊ झूलत सरयू तीर।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दिनी श्यामल गौर शरीर।

राजत छबि मैं रतन हिंढोला तापर बोलत कीर॥
गावहिं छवि अवलोकि प्रेम भरि चहुदिशि सखिन की भीर।
बाजत वीन मुचग उपग मृदग ताल अति धीर।
युगलप्रिया अति सुख वर्षत जब लेत तान गभीर॥

जागे दोउ भोर प्रीतम प्यारी सीय सुकुमारी।
आलस भरे अैडात परसपर अखिया अति चित चोर॥
नाशामणि वेसरि अधरन पर हलत सरस दुहु ओर।
मनहु शुक्र सुर सुर गुरु विचरत है कुजकोष के कोर॥
रूप गर्विता नवनागरि पिय नागर श्याम किशोर।
युगलप्रिया दोऊ अवधविहारी जो कछु कहिय सो थोर॥

आज चल देखोरी आली श्रीराम रसिक पिय रास रच्यो सुखदाई।
रास भूषन वसन श्याम सलोने अग लो नील ली सगलोनी अली समुदाई॥
वीना मृदग मुचग कठतार चग वाजत ईमन राग परम सोहाई।
युगलप्रिया गान करहिं चद्रकला लाल प्यारी उमगि तनछाई॥

सियावर सावरे छबि देखि।
रहत न तन मन सुधि कछु सजनी लगत न नैन निमेखि॥
सजि सिंगार परस्पर दोऊ गलबाही वर वेखि।
युगलप्रिया अलि चद्र कलादिक सुफल सजीवन लेखि॥

झूमि झूमि छायो रस अखिया।
गरजन मेह नेह वोलनि मैं नवघन श्याम राम जिन लखिया॥
दामिनि सी दमकति अग अगनि गौरव रन चहुदिशि लस सखिया।
युगलप्रिया हिय नटत रसिक जन ज्यो मयूरिशिर पर करि पखिया॥

खेलत वसत रसिकाधिराज।
रघुनन्दन सिय सग अलि समाज॥
नव अग अग वर वसन साज।
वाजै मृदग अरु विविधि वाज॥
तह अलिगन गावै सरस राग।
रागी जन मन अनुराग जाग॥
कहे चद्रकला सुनिये जू लाल।
प्रमदा वन फूल्यो द्रुम रसाल॥
सजि दोऊ चलिये सत रग।
मन मोहन दोउ मिलि येक सग॥

आये जहा वन मध्य धाम।
आयत विशाल सुखमा ललाम॥
तेहि मध्य कुंज बैठे जू आय।
तब चंद्रकला वीना वजाय॥
नाचन लागी अलि विविधि भाग।
गावहि वसत अति सरस चाव॥
ऋतुराज सहचरी वेष कीन्ह।
मेवा भरि थारन साज दीन्ह॥
फूलन सिंगार किये अपने हाथ।
निरषत छवि ह्वै रहे अति सनाथ॥
तब युगलप्रिया रुचि समय पाय।
झोरी गुलाल होरी मनाय॥

उज्ज्वल उत्कंठा-विलास

श्री युगलानन्यशरण 'हेमलता' जी

(१) उज्ज्वल उत्कण्ठा विलास

सुमधुर मनभावन दोहो मे श्री जनकराज किशोरी जी तथा श्री दशरथराज किशोर जी युगल सरकार के सरस नाम, रूप, गुण, धाम और लीला की उज्ज्वल उत्कठा से परिपूर्ण श्री युगलानन्य शरण जी महाराज की यह पुस्तक पुस्तक भडार लहेरिया-सराय (दरभगा) से प्रकाशित हुई है। अत में दी हुई 'पुष्पिका' से पता चलता है कि सवत् १९७२ भाद्र शुक्ल अष्टमी भौमवार को इस ग्रथ का लिखना पूरा हुआ था। सपूर्ण ग्रथ दोहो मे है।

विषय—आरभ में ७० दोहो मे नामोत्कठा है, फिर ९४ दोहो मे रूपोत्कठा है, तदनन्तर ३४ दोहों मे गुणोत्कठा है, तदनन्तर ३७ दोहो मे धामोत्कठा है और अन्त में १६० दोहो मे लीलोत्कठा है। इस प्रकार कुल मिला कर ३९५ दोहो का यह ग्रथ रसिकोपासना के आधार ग्रंथों में सर्वसम्मान्य एव उपजीव्य ग्रथ के रूप मे पूजार्ह माना जाता है।

उदाहरण—

लोक-वेद वचन विपुल विरस विचारि बिसारि।
जपिहौ जीवन नाम वसु याम मनादिक वारि॥

नवल नेहनिधि नाम मधि मीन समान सुलीन।
रहिहौ हाय हिराय हिय हर सायत पन पीन॥

महा मधुरता नाम सुख सागर रसना चाखि।
भुक्ति मुक्ति-अभिलाष तृन-राख मानिहौं राखि॥

झाई कलित कपोल मिलि महा मोद मन देत।
युगलानन्य शरन - हृदै - हारी सब सुधि लेत॥

युगल किशोर-चतुर-चरन-गहि गति रति-दृग-दैन।
निरखि हरखि उपमा निखिल हसि पैहो चख चैन॥

प्रीतम - प्रानप्रिया पगे - प्रेम परस्पर पेखि।
धन्य अपनपौ मानिहो तृन - सम त्रिभुवन देखि॥

अग अग पर वारिये अमित अनग - गुमान।
पल प्रति छवि शतगुन नवल लखि लहिहो सुखखान॥

श्री सीता - सुख प्रद - सुगुन सुधा सहस मधुरेश।
रसि - रसि रस हरखाइहो निदरि नेह - भव - वेस॥

सुन्दरता - माधुर्यता - सुकुमारता - सुवेष।
महा मोद निधि गुनन मधि ह्वैहौ मगन निमेष॥

श्री सिय - स्वामिनि - सग सुख - सुखमा - सागर श्याम।
दिव्य - भव्य - नितनव्य गुन गैहो तजि धन - धाम॥

मन वच बपु श्री धाम मधि कब बसिहो सुख-सग।
देखत दृग दुति दिव्य महि मोद मयी रग - रग॥

श्री सीतावर रस रसिक तरु तृण गुल्म लतान।
निरखि नेह युत नाचिहो सविहाय भुव - मान॥

लोक लाज कुल काज को समुझि सुमन विष रूप।
वसिहो विमला विमल वुधि बलित लखत युग रूप॥

कबहूँ कनक निकेत रति हेतु माझ ललचाय।
मरस मजातिन सग सुठि सजिहो चित परचाय॥

धाम दरस देखत दृगन चलिहै कबहुँ प्रवाह।
आपा - पर विसराय सुधि अचल चित्त चख चाह॥

अहो भाग अनुराग मम मानुष - वपु प्रिय पाय।
अचल वाम - सरयू - सुतट विषम विकार विहाय॥

मान प्रतिष्ठा धूरि - सम ऋधि - सिधि धूर - समान।
अनत वडाई विष निरखि बसिहो धाम प्रधान॥

अष्ट कुञ्ज कमनीय चहुँ ओर चारु चित चोर।
निरखि निछावरि होइहै तन मन रग रस वोर॥

ललना ललित संवारि तन अतन निबारि सचेत।
कवहुँ युगल छवि हेरिहो बसि श्री कनक निकेत॥

सुमन सेज मुद मन्द सद सदन सैन रस हूप।
लोचन लगन लगाय कव तकि छकिहों गत धूप॥

चहुँ ओर झम झम झनक नूपुर किंकन बीन।
सुभग सहचरिन मधुर धुनि कव सुनहो निति लीन॥

रग महल मधि मोद निधि ललित लाडिली लाल।
पगे परस्पर प्यार कव लखिहों होय निहाल॥

कवहुँ हेरिहो नैन निज अति अलसाने अग।
प्रिया प्रेम परतन्त्र पिय सिय समेत रसि रग॥

उन्मद दृग राते रहस अरस निवारन नैन।
निरखि हरषि वलि जाइहो सुनि सरसाने बैन॥

प्रेम प्रमोद महा मदन मद माते दोऊ प्रात।
झुकनि परस्पर प्यार पगि जोहि मोहिहो गात॥

आलस रस वस वर वचन सुमन सचन सुख सार।
उर उमंग उमगाय कव सुनि ह्वै हो वलिहारि॥

सिथिल वसन भूपन लसन युगल ललन विपरीति।
कौन सुदिन अनुपम निरखि पैहो प्रीति प्रतीति॥

श्री यूथेश्वरि साथ युग जीवन रूप अनूप।
पट उघारि लखिहो कवहुँ परि उछाह-रस-कूप॥

रसावेश उरझनि उरसि उज्ज्वल लगन लगाय।
विकल वपुष मंगल असन कर वैहो उमगाय॥

गौर श्याम अभिराम मृदु मूरति मोद निवान।
सखिन समूह सु मध्य में लखि छकिहो पगि प्रान॥

श्री सहचरी समाज युत शुचि शृगार निकुञ्ज।
कवहुँ जात दृग जोहिहो करि चञ्चल चित लुज॥

श्री रसराज मधुर सदन माझ मनोहर जोरि।
सजि शृगार विलोकहि सव सन नाता तोरि॥

रग रंग भूषन वसन नख-शिख रचि रुचि सग।
मुकुर देय कर कज मधि निरखैहो सोमग।

तामधि सिंहासन सुधरावे। दिव्य मनिनमय बसन धरावे ॥
श्री सियिवर मूरति मन हरनी। ध्यावे तहा सहज सुख भरनी ॥
नख शिख नवल अग रस सागर। चिनमय करै सदा मति आगर ॥
भूषन सुभग अग प्रति जो हैं। निरखि निरखि पुनि-पुनि मन मोहैं ॥
परम दिव्य कल्यान गुनाकर। श्री सीतापति रूप प्रभा कर ॥
याही भाँति सदा मन लावे। कबहूँ प्रेम विवश प्रगटावे ॥
भक्ति योग सहकारी सोया। होय ज्ञान निर्मल पद जोया ॥
लहै मुक्ति कैवल्य प्रधान। छूटै त्रिविध वासना मान ॥
यद्यपि ज्ञान सुसाधन नीका। तदपि कठिन गाहक निज जीका ॥

इन्द्रिन के निग्रह बिना, दुर्लभ ज्ञान सुजान।
ताहू में आयू अलप, ताते भजन प्रमान ॥

हाय हमेशा हिये रहावे। नैनन नीर प्रभाव बहावे ॥
खान पान मानादिक त्यागे। निशिदिन नाह मिलन अनुरागे ॥

पति पत्नी स्वामी अनुग, पिता पुत्र सम्बन्ध।
धर्मी धम शरीर अरु, सुभग शरीरि निबन्ध ॥
शेषी शेष नियाम्य अरु, न्यामक रक्षक रक्ष।
तिमि आधाराधेय ते, व्यापक व्याप्य समक्ष ॥
भोग्य भोगता एक रस, शक्ताशक्त निहारु।
परिपूरन पूरन रहित, ज्ञाता अज्ञ बिचारु ॥
सकल वासना हीन अरु, अमित वासना पीन।
निज पर दृढ सम्बन्ध इमि, जानत परम प्रवीन ॥

यद्यपि सब सम्बन्ध अनूपा। तद्यपि पति पत्नी सुख रूपा ॥
याहि माहि अति प्रीति प्रकासे। निरावरन प्रीतम रस भासे ॥
स्वर्ग मोक्ष अभिलाष विसारी। केवल ललन मिलन पन धारी ॥
वपु चौवीस तत्त्व कृत त्यागी। समुझि हिये तर प्रभु अनुरागी ॥
श्री सियाराम मिलन अभिलाषे। मायिक गुन गति श्रम विन नाषे ॥
प्रान सुषमना द्वार निकारी। भाल भेदि गये धाम खरारी ॥
केवल सूषमना से गमनो। विधि वैभवदिशि ते अति विमनो ॥
अर्चिरादि पय होय प्रवीना। रवि मगल छेद्यो अति क्षीना ॥
प्रकृति आवरन उतरि वहोरी। विरजा सरित लख्यो रग बोरी ॥
तेहि सरि मज्जन करि वड भागी। लिंग देह सब विधि तेहि त्यागी ॥
कारन तन वासना विनासी। शुद्ध भयो बहु विधि सुखरासी ॥

विरजा पार भयो अनयासा। निज सकल्प सहित गत आसा॥
अमल अमानव कर पर परस्यो। महाप्रेम सागर सुद सरस्यो॥
त्रिगुन रहित वपु विरज विवासी। दिव्य भव्य आनन्द निवासी॥
सदा प्रकास रूप सुचि सुन्दर। जेहि लखि लज्जित अमित पुरन्दर॥
हियवर रूप प्रकास सोहावन। भाजन भयो छयो छविछावन॥
मनि सोपान द्वार ह्वै नेही। चढ्यौ बढ्यौ हिय हर्ष अदेही॥
निरख्यौ नैन मनोहर जोरी। गौर श्याम अद्भुत रग वोरी॥
धनुष वाण कर कञ्ज विराजै। नख शिख नवल विभूषन साजै॥
कुण्डल क्रीट चन्द्रिका सोही। जेहि छवि छटा निरखि मति मोही॥
अग अग सौन्दर्य सोहावन। उपमा निखिल रहित मन भावन॥
सखी सहचरी अमित सुदासी। चहुँ दिशि चमक रही चपलासी॥
नाना सौज लिये कर माही। निरखि रही प्रीतम गल-वाही॥
यहि विधि सिय वल्लभ छवि देखी। यकटक रह्यौ नैन अनमेखी॥
मियवर अति सनेह युत ताही। सकल भाँति अति प्रीति सराही॥
मम चित्त चाह रही अतिभारी। कव लखिहौ परिकर प्रियकारी॥
तब आवन इत अद्भुत भयो। मोद प्रमोद मोहि अति नयो॥
वड भागी सोई अनुरागी। जो मम निकट आय छलि पागी॥
या विधि तुगल किशोर सुधानिधि। वानी विमल कही सब विधि सिधि॥
सदा मोद मन्दिर रस लहिये। परिचर्या निज रुचि वस कहिये॥
अमित रूप धरि सेवा कीजै। यथा योग्य अभिनव सुख पीजै॥

मधुर मनोहर चरित वर, दम्पति केलि कलान।
निरखै हरखै एक रस, परिहरि अमित विधान॥

श्री जानकी सनेह हुलास शतक

श्री युगलानन्यशरण जी

(३) श्री जानकी सनेह हुलास शतक

इस ग्रन्थ मे महात्मा श्री युगलानन्यशरण जी ने श्रीराम से वढकर श्री जानकी जी की महिमा नाम प्रभाव, रहस्य का वर्णन किया है। महात्मा श्री युगलानन्यशरण जी राम की अपेक्षा जानकी के प्रति अधिक आसक्त है, अधिक अनुरक्त है। उन्होने अपने अनुभव के आधार पर सुन्दर, सरल, सरस दोहो मे अपनी भावना को वडे ही सजीले ढग से व्यक्त किया है। वे कहते है कि सारा विश्व राम का नाम जपता है परन्तु स्वय राम श्री जानकीजी का नाम जपते है और उनके रूप का ध्यान करते है, उनके चिन्तन मनन निदिध्यासन की केन्द्र विन्दु श्री जानकी महारानी

ही हैं। युगलानन्यशरण जी की अनन्यता की, इस छोटे-से ग्रन्थ में बड़ी ही भव्य मनोज्ञ अभिव्यक्ति हुई है जो सहज प्रभाव डालती है।

महा मधुर रस धाम श्री सीता नाम ललाम।
झलक सुमन भासत कबहुँ होत जोत अभिराम॥

रसने तू नव नागरी गुननन आगरी नाम।
क्यो न भजै सकोच तजि सजि मन मोद ललाम॥

सखी किंकरी भाव भल धारि सुर सने नित्त।
रमो निरन्तर नाम सिय निज हिय खोल सुचित्त॥

पर पति मगध नव नागरी रचत जौन विधि नेह।
चलत बदत सोवत सोई इमि कब नाम सनेह॥

रूप जीविका वप यथा पल पल सजत सिंगार।
मम मन कबहूँ नाम छवि सजि है सरस सवार॥

तैल धार सम एक रस स्वास स्वास प्रति नाम।
रटौं हटौं पथ असत से बसौ रग निज धाम॥

दीप सिखा निर्वात जल लहर हीन तेहि भाँति।
कब ह्वै है मन नाम जप जोग रहित भव भ्रान्ति॥

यथा विषय परिनाम में बिसर जात सुधि देह।
सुमिरत श्री सिय नाम गुन कब इमि होय सनेह॥

अन्ध नयन श्रुति बधिर वर वानी मूक सुपाय।
याहू ते सत गुन हरष कबहूँ नाम गुन गाय॥

श्री सरजू तट पुलिन मधि निसा उजारी माह।
हे सिय कहि कब विवस ह्वै रहिहो दुति द्रुम छाह॥

लता लवग कदम्ब तर तर दृग पुलकित गात।
जयति जानकी सुजय जय जपिहो तजि जग नात॥

श्री रघुनन्दन नान मित करे जो कोटि उचार।
ताते अधिक प्रसन्न पिय सुनि सिय एकहु बार॥

जानकि वल्लभ नाम अति मधुर रसिक उर ऐन।
वमे हमेशे तोम तम समन करन चित्त चैन॥

जो भीजै रम राज रस अरम अनेक विहाय।
तिनको केवल जानकी वल्लभ नाम सहाय॥

प्रीतम की जीवन जरी रसिकन की सुर वेनु।
भक्त अनन्यन की लता सुर तरु सिय पदरेनु॥
वार वार वर विनय करि याचत श्री सिय देहु।
लोक उभय आसा रहित निज पिय नाम सनेहु॥
भुक्ति मुक्ति की कामना रही न रचक हीय।
जूठन खाय अघाय नित नाम रटो सिय पीय॥

संत सुख प्रकाशिका पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी

(४) सन्त सुख प्रकाशिका पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी महाराज के मधुर रस भरे पदो का यह सग्रह सन् १९१७ मे लखनऊ स्टीम प्रिंटिंग प्रेस मे छपा। इसमे प्रेमस्वरूप भाववश्य भगवान् रामचन्द्र के प्रति रसिक भक्त हृदय का प्रणय निवेदन है जो अपनी सरसता और सहज प्रभावशालीनता के कारण पाठको के मन को मुट्ठी मे कर लेता है। श्री युगलानन्यशरण जी की पदावली मे प्राय सूफी शब्दावलियो की भरमार है। इश्क, आशिक, महवूव, जुल्फ, जुल्म, सितम, जख्म, दर्द, आह, फरियाद, वफा, जफा, यार, आदि शब्द इन्हें विशेष प्रिय है और छूटकर ये इन शब्दो का व्यवहार करते है।

विलगि जनि होइयो हो पहलू प्यारे।
सजनी सिय सुन्दरी सग सुख सेज सोहावन सोइयो हो।
युगल अनन्य अली मद मत्त दृग दोऊ दिलवर छवि जोइयो हो॥
निठुर पन प्यारे उचित न लागे।
तुम विन छन छन छैल छवीले मिलन मनोरथ जागे॥
दृग देखन ही दरद दिवानी दिल दुसमन दिन दागे।
युगल अनन्य अली अपनी लखि के कारन तृन त्यागे॥

सब मे परि पूरन राम न तिलभरि खाली।
जित जो ही जिकिरि जमाय वही वनमाली॥
अखियन में चश्मा चाह धरे रहु प्यारे।
सव विश्व विलास प्रकाश रूप उजियारे॥
नहि नेकु विषमता लेश देश दुति धारे॥
समता सुचि शहर निवास सजे सुख सारे।
तन मन वन पर्वत बीच फैलि रही लाली॥

नगारा नेह का नित बाजत आठो याम।
सुनत श्रवन सुख रस जस दायक भायक भल छवि धाम॥
केकी कोकिल बीन सुधा से अधिक मधुर धुनि ग्राम।
जो नहिं सुन्यो स्वाद मय इह धुनि लह्यौ न तिन विश्राम॥
जग ठग जड वचक तेई जन जो नहिं सुमिरयौ नाम।
युगल अनन्य रहित सशय अब मन पायो आराम॥

मोरी तोरी लागी लगन रघुबीर।
जानत जीवन जहान जहा लगि पगि रहि मति गति गीर।
सपनेहुँ शौक जौक दूजी नहिं पल पल प्रिय पथपीर॥
जोइ जीवन धन चाह चारु चित सोइ सुखि सुगन गभीर।
युगल अनन्य शरन घायल दिल निरखत सरयू नीर॥

कैसे भूलि गई वर बतिया।
शरन सयुत सौंपत सुख ठौर ठौर प्रिय पतियाँ।
सकल जीव निज जानि दया दृग देखत तजि गुनगतियाँ॥
हौ तेरी तूही मेरो पति दृढ प्रतीति छकि छतियाँ।
युगल अनन्य शरन अन्तर उर रुचत नही जस जतियाँ॥

रसीले लाला लागि गई तोसे प्रीति।
जिय जानत पहिचानत प्रीतम विरहिन रति रुचि रीति।
चाह अथाह हमेश बढत चित रुचत न गज विपरीति॥
काहू सग रग निकसे नहिं छोड्यौ नीति अनीति।
युगल अनन्य शरन मिलि हौं प्रिय बढी प्रबल परतीति॥

पीके पियाला पिया परचैहौ।
पल पल प्रेम बढाय गाय गुन रस निधि छवि अरचैहौ।
मनमति गुनि गुरु ज्ञान ध्यान सब साधन हित खरचैहौ॥
नाह नेह बिन देह गेह कुल खेह समुझि न रचैहौ।
युगल अनन्य शरन सतगुरु श्री राम चारु चरचैहौ॥

अब हम भई सोहागिनि साची।
कृपा करी कोशल पति प्रीतम मधुर मोह घत भाँची॥
बिसरी विषय विभूति वासना नासी जगमति काची।
नूतन नेह बाधि नूपुर पद परा प्रीति युत नाची॥
मावन मकल निवारि नेम करि युगल नाम मनराची।
युगल अनन्य शरन मीतावर रहस भावना याची॥

जानकी रमन पियारे तुमसन लगन लगायो।
कठिन गाठि नहिं छुटत छुटाये समुझि सनेह समाया॥
रसिकन सग रग पहिचान्यो पाँचो वपुष भुलाया।
मत मतान्त सव देखि चुकी सत सुख सपनेहुँ नहिं पाया॥
अव जनि श्याम और नहिं भासे रहे छोह छवि छाया।
युगल अनन्य शरन वन्दी पिय सपदि कीजिये दाया॥

बेदरदी दरद क्यो जाने हो।
याके हिये न व्यापी ऐसी ताते दुख नहिं माने॥
जाके पायबे आय न भासी सो हसि हाँसी ठाने।
मौन रही तो रह्यौ जात नहिं वोलत डोलत प्राने॥
हार रही कछु यतन न लागे ऐसो व्यथा समाने।
युगल अनन्य शरन हरसायत उर बेधत दृग वाने॥

केहि विधि विरह बुझावो सखीरी केहि विधि प्रीतम दर्शन पावो।
शिथिल रहत अग अग विरह वस दरद भरी अकुलावो।
औचक उठि वेहोश देवानी पिय पिय कहि विलखावो॥
कवहूँ अचानक हाय हिये करि जीवन स्मृतक कहावो।
कहुँ सुधि पाय झरोखन झाँकति पथिकन से वतरावो॥
ना जानो कौनी विरमायो यह गुनि हिय पछितावो।
युगल अनन्य धारि धीरज कहुँ ललन ललित गुन गावो॥

अन्यरीति

कासे कहो को माने हमारी।
अपने जान चतुर स्यानी तू मेरे मत मतिमन्द गवारी॥
लग्यो न चाव चाद प्रीतम रस अवही तो भोरी सुकुमारी।
घायल भई न पिय गुन रचक ताही ते देती गनिगारी॥
जव मिलि हेरि लिहै रसिया से टव करि मौन रहेगी प्यारी।
युगलानन्य दसा न नू कतर वरनत शरम सकोच अपारी॥

वरपत वुन्द विरह वरवारी।
करकत करक करेजो कामिनि कहि न सकत हिय हारी।
गरजि गरजि गरबी गाहक जिय जारत जस डर डारी॥
चहुँ दिशि चमचमात वैरिनि यह मदन कृपा न करारी।
मान मरोर लिये मादक छकि मन्द मयूर पुकारी॥

जहँ तहँ छाय रहे दुख दायक विरहिनि एक विचारी।
युगल अनन्य शरन सिय पिय विनु वेदन अकथ अपारी।।

वरषा ऋतु रस बरसावै।
विरहिनि हिय हाय बसावै।
पल पल पिय मृदु मधुर मोहनी मूरति हित ललचावै।
मन्द गरजि गुनगान करत बादर मिस जस प्रकटावै।।
चपला चमकि देखाय दाह दिल दूनो दरद दिवावै।
युगल अनन्य शरन सिय पिय छवि छटा छला वछवावै।।

पिय और सुरतिया लागी।
अब न सोहात सदन मजनी।
उमत उमग रक अन्तर उर दरश चाह चित जागी।
विस भाव चाव चरचा चल अचल दरद दिल दागी।
युगल अनन्य शरन सिय वल्लभ भेटिये छवि अनुरागी।।

सरयू तट वास सजावो।
निज नेह निशान बजावो।
लखि ललना लोभ लजावो।
गुरु सन्तन शरन सजावो।
दृग जात रग रुचि लावो।
इत उत की कुमति घोलावो।
सिय श्याम सनेह समावो।
गुन नाम निरन्तर गावो।
चित चोरन रूपहि ध्यावो।
मत परमानन्द सोहावो।
बहु बाद विखाद तजावो।
समता सुख शहरहिं जावो।
नहि अनत अनन्य लोभावो।

कैसे भीजे हमारा हियरा।
प्रभु प्रतिकूल क्रिया करनी मम होय रह्यौ रातम तियरा।।
श्रुति सम्मत सुख धाम रामघन श्याम निरन्तर नियरा।
दरश परश विन हाय वढत नित अथिर अधिक दिल दियरा।।
शरनागत पावक पन प्रियतम बैन ऐन मुद सियरा।
युगल अनन्य विना पाये पति वपु खरग अति पियरा।।

रामभक्तिके रसिकोपासक



स्वामी श्रीजानकीवरशरणजी



स्वामी श्रीरामवल्लभाशरणजी



बाबा श्रीगोमतीदासजी



स्वामी श्रीसियासखीजी

श्री सीताराम नाम परत्व पदावली

स्वामी युगलानन्यशरण जी

(५) श्री सीताराम नाम परत्व पदावली

नाम की महिमा और रस पर एक बहुत ही प्रामाणिक अनुभव सिद्ध ग्रन्थ। राम नाम का मद पीनेवाले की मदहोशी का बड़ा ही भव्य चित्रण। समस्त ग्रन्थ यहाँ से वहाँ तक अनुभव के रस में पगा हुआ है। लखनऊ स्टीम प्रिंटिंग प्रेस में कार्तिक शुक्ल १९६९ वि० में मुद्रित तथा प्रकाशित।

नाम नेम छेम प्रेम हेम झलक दाई।
रटत हटत हाय फटत मोह पटल काई॥

अटल पद प्रवेश जटिल जीवन घन देश वेश पेश प्रीति उदित होत जोत जगमगाई।
मन मति गति गमन दूर नूर पूरहिय हजूर रहस सत सहस्त्र शुचि सरूप दृग देखाई।
युग अनन्य परम प्रिय प्रसन्न तासु मूल फूल भूल शूल समन स्वाद सतत सरसाई॥

राम नाम मधुर सुरस पीवत पति पावै।
युग युग प्रति प्रभा पुज सयुत सरसावै॥
सद विलास भास खास सु छवि छटा छावै।
लहर लय ललाम आम अनुपम अनुभावै।
युग अनन्य युगल रूप निकट नित सोहावै॥

झुकता हुआ आता है दिल शरसार नाम में।
इसको पिला दिया कोई जन जहू जाम मे॥
चरचा चली इस बात की सब ख़ासो आम में॥
क्या खूब रहस नीद से सोता अराम में।
ताकत नही है और की जो जावै धाम मे॥
खुरशेद से भी ज्यादे रौशन मोकाम मे।
मुझको दिया दया ही मे वरवास वाम मे॥
तकलीफ फंद फानी न रहती है धाम में।
खुद ख्याल युग्म खो गया फसियाद दाम मे॥

रटन रस रसिया विरले देखे।
जिनके प्रान अधार नाम सुख सारन तजहि निमेषे॥
विमल वरन हिय हरन हार करि परिहरि विषय विशेषै।
अगुन सगुन युग रूप एक जिय लखहि अलेख सुवेषे॥

पगे प्रेम पन प्यार पीन तन अतन हीन बिन रेखे।
युगल अनन्य शरन तिनकी सुचि सोहबति चाह परेखे॥

पर प्रभु मिलत नामहि जपे।
देखिये दृग दिव्य द्युति करि श्रुति सुग्रथन थपे॥
महा मोह मदादि मन भव से न सश्रिति कपे।
होंहि नहि सन्मुख कदाचित विहग पति अहि खपे॥
गगन शब्द अनूप मधिमन मगन छन प्रति छपे।
छवि अकथ छकि जकि जात आतम मरम गुरुमुख तपे।
होय युगल अनन्य जीवन अटल नहि भवन पे॥

सुमिरत नाम रग रस मिले।
सरस सुखमा सुचि सुरभि सग मिलित हिय सुख खिले॥
लोभ लालच दभ दुर्मति तृगुन ग्राहन गिले।
दमक दस धापरा रस रूपा हृदैथलु घिले॥
गौर श्याम स्वरूप नख सिख भाव सनमुख पिले।
युग अनन्य शरन परम प्रिय रहस रुचि दृग रिले॥

सीताराम नाम से सनेह सजावो।
पाय परम पद प्रीति प्रभा पति श्रुति मति लौकिक लाज लजावो॥
परम परेस प्रान प्रीतम सतसग सुरग अभग छजावो।
नाम परत्व विभव अनुपम गुन सुनत गुनत रुचि शान पजावो॥
योग विरति वर बोध भक्ति मय अनुछन करत कलेश भजावो।
युगलानन्य शरन सुधाम बसि नौबति नेह निशक बजावो॥

राम रस पीवत जौन सुभागी।
तिनके भाग अदाग सराहत सुर मुनीश अनुरागी॥
लाय लाय लय लगन मगन मन अतन तीन तम त्यागी।
होय रहे मद होश जोश छकि परा प्रीति मति पागी।
युगल अनन्य शरन साचे सद शौकी विमल विरागी॥

राम नाम मत्रसार प्यार सजि उचारो।
भावन समुदाय हाय हित हिय विचारो॥
शुद्ध शाति सुचि सुभाव सतत धियधारो।
सीतापति पर परेश हुकुम पल न टारो॥

विशद वेद बैन सुरित समुझत दुखदारो।
संत गुन अनत शरन सावित निरधारो॥
रहित मान शान सपद सेवन सु विचारो।
दुख सुख सम सुमति मन न करत तिमिर तारो।
युग अनन्य शरन विषम वादन निरवारो॥

राम नाम अति प्यारो हमारो।
सोचो शब्द स्वभाविक रसनिधि नेह निवाहन हारो॥
पारस मनि चिंता चय सुर तरु काम धेनु अगनित नितवारो।
अतरत्यागि निरन्तर निशिदिन काहू भाति करव नहिं न्यारो॥
अपर भरोश सदोश कोश दुख दारिद दाह दशोदिसि धारो।
चाखि चाखि हिय हरषि हरषि निज नाम सुधारस साझ सवारो॥
युगल अनन्य शरन सद्‌गुरु की कृपा कटाक्ष पाय उजियारो॥

भजिये युगल नाम अनूप।
है इहै रस रहस वीज सुसंत श्रुति नहिं रूप॥
प्रीति प्रनय प्रतीत पूरन सहित ध्यान स्वरूप।
रसिक सग उमग युतकरि छाडु भव भ्रम धूप॥
सहज अनुभव अमल भासत नसत कर्म कुरूप।
सुहृद साधु सुशील गुन गहि लहि सुमत सतरूप।
युग अनन्य शरन सुधारस सुभग सुमिरन भूप॥

मीठी लगे मोहिं अपने पिया को नाम अनूपम रग भरो जी।
अपर ठौर नहिं प्रीति वढत कछु छनछन मेरो हीय हरो जी॥
चारिउ फल के चाहन सपनेहु सुख सपति जगभार परोजी।
साधन सिद्ध नाम केवल दृढ मन वच करम सुबूझि धरो जी॥
विना अयास रुच्छ नाना मत सागर सहजहि सहज तरो जी।
युगल अनन्य शरन सतत सुख अति विचित्र तरभाव भरो जी॥

प्रथम नाम अभिराम रूप सुख सागर गुरु ते पावै।
रसना रटन लगाय हृदय अहलाद विशेष वढावै॥
तजे नाम श्रम श्रम वरनाश्रम कर्मा कर्म वहावै।
गहे सर्वदा प्रीति रीति रस सहज स्वरूप समावै॥
मौन हमेश रहे जग से सव वाद विखाद भुलावै।
नाम अखड धार हरदम शमदम सनेह सरसावै।
युगल अनन्य शरन मर भीजन वस्तु विलास वतावै॥

मति मेरी अलसानी सुमिरत नाम रगीलो।
पीके प्रेम पियूष माधुरी नाना रस निरसानी॥
रैन नीद दिन चैन चित्त बिच विह्वलता बिलखानी।
मिले मधुर महबूब मिलापी नव मुद मगल मानी।
युगल अनन्य जानकी जीवन नाम निसा सरसानी॥

हमारी तेरी लागी है प्रीति अखड।
किसही तरह न छूटि जागी शीश होय सत खड॥
बिसरै हौं सब सुख माया मय आमय सखि ब्रह्मड।
सतगुरु सत सु शब्द श्रवन करि पगिहौ प्रेम प्रचड।
युगल अनन्य शरन रहिहौं इत प्रभु बल पाय उदड॥

कबहु दिशि मे रि हू हेरि ये लाल।
मैं प्यासी प्रीतम पुनीत रस कीजिये जलद निहाल॥
निठुराई फावित न होत पिय सरस सुभाव रसाल।
उर आकुल अति रहत मिले बिन कठिन करेजे साल॥
केवल आस राख रोई नित रसिक रीति प्रतिपाल।
युगल अनन्य शरन अपनाइये सब बिधि सियबर हाल॥

सवत सत उन्नीस पर, एको त्रिसति जानि।
जेष्ठ मास सित पक्ष पुनि, तिथि चौदशि अनुमानि॥

लषन कोट कौशल पुरी, सहसधार के तीर।
राम वल्लभा शरन लिखि, नाम पदावलि धीर॥

श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली

श्री युगलानन्य शरण जी

(६) श्री प्रेम परत्व प्रभा दोहावली

श्री युगलानन्य शरण जी 'हेमलता जी' के प्रेमविषयक दोहो का सग्रह श्री लवकुशशरण जी ने किया और चर्च मिशन प्रेस (गोरखपुर) में २२ वी नवम्बर, सन् १९१६ ई० मे छपा। आरभ मे जो गुरु-परपरा है, वह यो है—

श्री जीवाराम—'युगलप्रिया' जी
।
श्री युगलानन्य शरण जी हेमलताजी
।
श्री जानकीवर शरण 'प्रीतिलताजी'
।
श्री रामवल्लभाशरण 'युगलविहारी जी'

श्री लवकुशशरण लीला विहारी जी

इस सग्रह मे विरह-ज्वर, रूप-लालसा,प्रणय-विहार, लीला रसास्वादन,अष्टयाम भावना, रूपसुषमा, और अन्त में सूफी शैली पर विरह वेदना एव प्रणय निवेदन है। भाषा प्रवाहमयी है। श्री युगलानन्य शरण जी की समस्त रचनाओ में सूफी शब्दावली ध्यान देने योग्य है। इस सप्रदाय के अधिकाश सत साधकों मे सूफी शैली के दर्शन होते हैं, परन्तु युगलानन्य शरणजी की रचनाओ मे वह विशेष रूप में उभर आई है। सभव है उनकी आरभिक शिक्षा-दीक्षा उर्दू-फारसी की हो या यह भी सभव है कि उन्होंने प्रेम का आस्वादन और अनुभव उसी प्रकार किया हो जैसा सूफियो में मिलता है। जो हो, भाषा बड़ी साफ, प्रवाहमयी, सुपुष्ट और शक्ति-सम्पन्न है। भाव और भाषा की सशक्तता और सरसता और उसकी व्यजकता का जैसा भव्य परिचय युगलानन्यजी के पदो में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

उदाहरण—

विरह-ज्वर

सीताराम सु विरह की जेहि अतर लगि चोट।
श्री युगलानन्य शरन तिन्हें रहत न प्रभु सुख वोट॥

प्रीतम कठिन कृपान से मति अन्तर उरभार।
सुमन मांझ सूरति सजन जिन्ह लागै तित धार॥

हाय हमारे रैन दिन किन दुखात कहौं काहि।
विना सिया वर दरद दिल वूझन हारउ नाहिं॥

विरहिनि कर कति पलहिं पल करि करि सूरति श्याम।
कौन भाति लालन मिलौ हौ अभागिनी वाम॥

हर हमेश मद मस्त रहु गहु गुरु ज्ञान महान।
जपु जग जीवन नाम नित हित चित्त सहित महान॥

वैनतेय सत कोटि सम सवल नाम जिय जानु।
विपुल वासना पन्नगन समन करन द्रुत भानु॥

आखरिआ झाई परी वाट निहारि निहारि।
जी भरिआ छालोपरी नाम पुकारि पुकारि॥

नयन मयन सरसेस रस अयन सयन रस राज।
रयन अयन छाके छटे छटा छवीली आज॥

नाम नेह विन वृथा सव पथ सप्रदा मीत।
प्रान विना वपु नीर विन सर नृप विरहित नीत॥

अउवल इश्क कथा सुने धुने नेह सह माथ।
गुने सरुचि चित बीच सोइ सुख सुर सुन्दर गाथ॥

उठे दरद तब जरद तन हरद बराबर होय।
गरद मिशाल बिहाल नित हित हर साइत जोय॥

दरस पिआस निरास सब स्वास स्वास प्रतिनाम।
रटे घटे पल पाव नहिं कबहू बिरह ललाम॥

देखे बिना बियोग ज्वर ज्वाल जले सब अग।
कब शीतल दृग होयगो निरखि जुगल छबि अग॥

दशा दिवानी रात दिन बदत बहकते बैन।
होत बिना घूमत फिरे छन छन टपकत नैन॥

जाति पाति कुल वेद पथ सकल बिहाय अनेम।
निस दिन पिय के कर बिकी रुकी न प्रीतम प्रेम॥

हेरत तब महबूब छबि छाई छटा रसाल।
लखत लखत नख सिख मधुर भई लीन सुधि त्याग॥

जग जीवन सुख सिंधु श्री पद पकज प्रिय अक।
युगलानन्य निहारि निज नयन निहाल निशक॥

एक एक आभा भरन भुवन आभरन अक।
चारेक दृग दरशन महाराज होत नर रक॥

नख सिख निरखत ही रहो नवल ललन गुन गाय।
विपम विशिष लागे नही सौष सरस सरसाय॥

सिय वल्लभ समवन्ध शुभ सेशी शेष विचार।
देही देह अखड नित नाता नेह निहार॥

पाच क्लेश व्यापै नही चित न होय विक्षेप।
जो जगमग सतसग मिले तन मन सन निर्लेप॥

हे सिय वर तव इश्क में मुझे तकार पकार।
गहे ग्हत त्यागत नही विह्वल करौं पुकार॥

दवा दरद दूरी करन है समीप तव श्याम।
अवि रहित दरपन मुझे दरसाइय अभिराम॥

जुगल किशोर विहार रस भीने महल मझार।
दिये लाम वे परस्पर स्वादत सुरस अपार॥

चितवत तीर सुपीर हर बून्द न बरस्यो हाय।
भौंह कमानहिं से निकसि बेधि कियो नहिं हाय॥

मेह मनोहर मोद मय वचन विलास विचित्र।
कबहू पिय बरसाइये जनि बूझिये कुमित्र॥

रैन जानिग जपिये युगल वरन विशद रस राशि।
लहिये लाह अमोल मनि प्रीतम परम प्रकाशि॥

सूरति सरस सजाय सुचि सार शब्द सद सग।
रमिये राग अदाग युत मिटे मनोज प्रसग॥

दर्शन सर्सन सरस सुख हरसन मागहु जाय।
नर्सन कछुक न होयगो बर्सन उमर बिताय॥

गुन गावे रोवैं रैन जागे त्यागे तीन।
हिय पागे पागे न कछु भागे भव मग दीन॥

निखिल विश्व को मूल जो अधिष्ठान दुति खान।
मूल बन्ध सुमिरन सहित सोहैं समुझ सुजान॥

खजन गजन नयन नव व्यजंस विनहिं सोहात।
निरखत नेह सनेह सह मोल विनाहिं विकात॥

निज निज मन सन्तन कह्यो प्रभु परतत्व प्रचार।
काहू बीच न भेद कछु सब मत सुख प्रद सार॥

प्रभु भावैं सोई करै दास स्वतंत्र न होय।
निज इच्छा नहिं राखिये रहिये सनमुख जोय॥

कामिनि कठिन पिशाचनी रुधिर चूसि सब लेय।
नेम प्रेम रस गधहू हिये न आवन देय॥

कहर लहर जस जहर मुद मेहर सहर नव नैन।
नजर नेह कबहू करैं मोहू पर प्रद चैन॥

सपदि सप्रेम विलोक दृग कुन्डल दुति दिलदार।
युगलानन्य शरन तहा अटकि प्रान वपु वार॥

विपति बराबर हर्ष नहिं जेहि जुत सुमिरन नाम।
धिग सुख सपति सपन सम विसरावत श्री राम॥

चित्त वृत्ति रोके कुशल असल समाधि अनाधि।
श्री युगलानन्य शरन कहू कीजै साधन साधि॥

हौं सिय बर हाथन बिक्यौं होनी होय सो होय।
इत उत कतहू झाकिहौं प्रभु दरवाजे सोय।।

सिद्धाई सूली सहस समुझे सन्त सुजान।
नाम अमल माते रहैं जहै जहान बितान।।

अष्टयाम-भावना

नाम अमी मानस रमी शादा गमी समान।
काम कमी सश्रिति समी जमी प्रीति प्रतिभान।।

निवछावरि मनि गन करो प्रतिपल स्वास न पाय।
युगलानन्य न विसारिये प्रभु रस दहि नहवाय।।

घटिक शेप निसा रहे उत्थापन सिय लाल।
मगल भोग सुआरती अवलोकन छबि लाल।।

ता पाछे मजन सुभग शृगारादि रसाल।
करि कुतूहल जुगल मिलि लखि दृग होहु निहाल।।

घटिक चार प्रयत यह करे भावना नित्य।
दृढ विराग सु सनेह सह करि थिर वचल नित्य।।

बल्लभ भोग सु आरती सत रजादिक केलि।
निरखे प्रहर सुदिन चढे तक मुद मगल मेलि।।

राज भोग साला सरस भोजन नाना भाति।
केलि कुतूहल लखि छके जुगल जगामग काति।।

चिन्तन करे सप्रीति रुचि मध्य दिवस लो सैन।
मन वच पार विलास वर कृपा प्राप्य रस अैन।।

प्रेमावेस सु जुगल छवि निरखे सहित उछाह।
सखी सु परिकर रग रगी गावे गीत उमाह।।

पुनि सर उपवन निकट कल केलि विलोकन फूल।
घटि द्वै एक आनन्द अति वरसत महा अतूल।।

चारि घटी पुनि सुचि सभा सदन लाडिली लाल।
नेह न्याव निरनय ग्हस कर्राहि प्रमभ्र विसाल।।

जूथेश्वरी समाज सव वैठी निज निज ठौर।
गान तान उत्सव परम वचन रचन रस गौर।।

सन्ध्या समय सु सौज सुठि भोग राग रस स्वाद।
घटिका चारि सुप्रेम नित कीजे समय सुयाद।।

सखी सु परिकर आरती करहिं अनेक प्रकार।
महा मोद मगल कुतुक कोलाहल सुख सार।।

रस मय मधुर बिहार वर रास कुज सुख पुज।
अर्घ निशा लो लगन करि ध्याइय करि मन लुज।।

व्यारु विसद विनोद युत विविध प्रकार कराय।
सैन कुज रचना रचे सुमन विचित्र विछाय।।

गावत मगल रहस गुन पौढाये सिय लाल।
निज निवास थल गवन करि चितै रहस रसाल।।

शेष निशा रसकेलि सुख अनुभव अमल सगम्य।
कृपा विवस कोउ यक रसिक पावहिं अपर नरम्य।।

या विधि आठउ याम छकि रहे भावना धारि।
सुधि बुधि लोक अरु वेद को पथ फलादिक वारि।।

कहे कहावे रस नही विन ध्याये छवि सार।
ताते सव सन नात तजि भजिये युगल उदार।।

यह उज्वल रस रहस की विसद भावना गोय।
सदा सुमन मधि ध्याइये सुचि चित चौगुन चोय।।

सीताराम सुनाम जपि करे महा मुद प्राप्त।
रहस अकथ कथिये कथं वरजहिं सब विधि आप्त।।

सीताराम परात्पर प्रेम प्रवोधक नाम।
साधन साध्य स्वरूप श्रम समन करन गुन ग्राम।।

मन चाहे कतहू चले रसना हिले न जाय।
प्रभु कृपाल करिहै कृपा शमिहै सश्रित ताय।।

रूप-सुषमा

अमल कमल कर परस्पर परसन प्रीति प्रकाश।
युगलानन्य अली सुमन सुमन करन प्रतिकाश।।

वडभागी रागी रसिक वसिक विनोद विहार।
लखि लखि चखि रस रूप छवि कलित कपोल वहार।।

चिबुक चारु चमकन चतुर चखन चाहि चित वैन।
चपल चाह चूरन करन हरन हृदय तम मैन॥

कहा गुलाब कली कहा कठिन कठ कित कूर।
कोमल कमल चिबुक कहा अनुछन नित नव नूर॥

चिबुक चटक पर बिन्दु बर पीत श्याम अभिराम।
प्रीतम प्रिया स्वरूप जनु लिये ललित आराम॥

सरस श्याम प्रिय पीतबर बिन्दु युगल रसखान।
युगलानन्य सनेह सजि लखत रहो बसुमान॥

युगलकिशोर स्वरूप चित चोर बिन्दु बिच बित्त।
पल प्रति लगन लगाय के लगवाइय सह हित्त॥

श्री सीताबर विधु वदन बनज बदत बहु लाज।
वेद न बिदुल बिकार युत कहो सुष्ट मुख साज॥

कहा कलक निकेत किल कला कलित लाचार।
युगलानन्य सुमुख प्रभा पल प्रति अगम अपार॥

लहर कहर जस जहर मुद मेहर सहर श्री वैन।
युगलानन्य निहारिये छावत छबि चित चैन॥

अग अग प्रतिबिम्ब परि दरपन से सब गात।
बहु आभरन निवारि के भूषन जाने जात॥

जब जब जन्मो कर्म वस तब तब सिय पिय प्रीति।
बढे धाम बरबाश सह सुमिरत नाम सनीति॥

श्री सीता रामीय विनु भए भयानक भीति।
बिनु सत कौनहु भाति नही दिन दिन गति बिपरीति॥

निर्मोही मेरा मेहरबान हरबान हुआ सब तौर।
किस के पास गुजारिये अपना हाल सजौर॥

अपना हाल सजौर दौर दिलवर तक मेरी।
जिसके केर मे विकी भली विधि तिसकी चेरी॥

हर यक तरफ निगाह किया दुनियाजिय टोही।
करुणा करिय कृपाल न अब हूजे निर्मोही॥

दीजे सिय वल्लभ सतस अवध सहर वर बास।
अथवा श्री कामद निट सुभग विचित्र निवास॥

सुभग विचित्र निवास खास निज महल सोहावन।
सर्वोपर आनद सदन पावन ते पावन।।

विरति भजन सपन्न चित्त अनुछन मम कीजे।
युगलानन्य सुनास नेह निरमल नित दीजे।।

मन मैदा सम पीसिये रचित रुचि तर अभ्यास।
लगन कराही शौक सुचि सरयी सुरस हुलास।।

यद्यपि परदा परी बीच से चेरी छेरी।
श्री युगलानन्य सुप्रीति तऊ प्रभु तेरी मेरी।।

निर्वाहो निज नेह नव निर्मल नीरद स्याम।
अवगाहो मेरो मधुर मानस हस ललाम।।

आशिक औ माशूक हमारा नाम है।
समुझे फाशिक लोग न जोरत वाम है।।

एक जाति सब तौर गौर के किये से।
हरि हा युगलानन्य नाम रस रसना पिये से।।

नाम अमी रस मिला फेर आजार क्या।
राम महल मे गये बहुरि बाजार क्या।।

चखा स्वाद सत बरन फिरि आम अनार क्या।
हरि हा भया सु दौलतवत कहो शिर भार क्या।।

अमल अनूपम असल नाम श्री राम है।
और अमित सुनु नाम सो सदृश गुलाम है।।

किया खूब सा परख शषु दूकान में।
हरि हा लिया ललाम सुनाम राम रसखान मे।।

किया फकीरी साच फेरि डर कौन का।
लिया नामनिज मुख्य काम क्या गौण का।।

दिया तसद्दुक भाल लाल के वास्ते।
हरि हा युगलानन्य खटक बिना आशिक रास्ते।।

चिवुक चारु चमकन चतुर चखन चाहि चित वैन।
चपल चाह चूरन करन हरन हृदय तम मैन॥

कहा गुलाब कली कहा कठिन कठ कित कूर।
कोमल कमल चिबुक कहा अनुछन नित नव नूर॥

चिवुक चटक पर विन्दु बर पीत श्याम अभिराम।
प्रीतम प्रिया स्वरूप जनु लिये ललित आराम॥

सरस श्याम प्रिय पीतबर बिन्दु युगल रसखान।
युगलानन्य सनेह सजि लखत रहो बसुमान॥

युगलकिशोर स्वरूप चित चोर बिन्दु विच बित्त।
पल प्रति लगन लगाय के लगवाइय सह हित्त॥

श्री सीतावर विधु वदन बनज बदत बहु लाज।
वेद न विदुल विकार युत कहो सुष्ट मुख साज॥

कहा कलक निकेत किल कला कलित लाचार।
युगलानन्य सुमुख प्रभा पल प्रति अगम अपार॥

लहर कहर जस जहर मुद मेहर सहर श्री वैन।
युगलानन्य निहारिये छावत छबि चित चैन॥

अग अग प्रतिबिम्ब परि दरपन से सब गात।
वहु आभरन निवारि के भूषन जाने जात॥

जव जव जन्मो कर्म वस तव तब सिय पिय प्रीत्ति।
वढे धाम वरवाश सह सुमिरत नाम सनीति॥

श्री सीता रामीय विनु भए भयानक भीति।
विनु सत कौनहु भाति नही दिन दिन गति विपरीति॥

निर्मोही मेरा मेहरवान हरवान हुआ सव तौर।
किम के पास गुजारिये अपना हाल सजौर॥

अपना हाल सजौर दौर दिलवर तक मेरी।
जिसके केर में विकी भली विधि तिसकी चेरी॥

हर यक तरफ निगाह किया दुनियाजिय टोही।
करुणा करिय कृपाल न अव हूजे निर्मोही॥

दीजे सिय वल्लभ मतसा अवव सहर बर वास।
अथवा श्री कामद निट सुभग विचित्र निवास॥

सुभग विचित्र निवास खास निज महल सोहावन।
सर्वोपर आनंद सदन पावन ते पावन॥

विरति भजन संपन्न चित्त अनुछन मम कीजे।
युगलानन्य सुनास नेह निरमल नित दीजे॥

मन मैदा सम पीसिये रचित रुचि तर अभ्यास।
लगन कराही शौक सुचि सरयी सुरस हुलास॥

यद्यपि परदा परी बीच से चेरी छेरी।
श्री युगलानन्य सुप्रीति तऊ प्रभु तेरी मेरी॥

निर्वाहो निज नेह नव निर्मल नीरद स्याम।
अवगाहो मेरो मधुर मानस हस ललाम॥

आशिक औ माशूक हमारा नाम है।
समुझे फाशिक लोग न जोरत वाम है॥

एक जाति सब तौर गौर के किये से।
हरि हा युगलानन्य नाम रस रसना पिये से॥

नाम अमी रस मिला फेर आजार क्या।
राम महल मे गये वहुरि वाजार क्या॥

चखा स्वाद सत वरन फिरि आम अनार क्या।
हरि हा भया सु दौलतवत कहो शिर भार क्या॥

अमल अनूपम असल नाम श्री राम है।
और अमित सुनु नाम सो सदृश गुलाम है॥

किया खूब सा परख शषु दूकान में।
हरि हा लिया ललाम सुनाम राम रसखान में॥

किया फकीरी साच फेरि डर कौन का।
लिया नामनिज मुख्य काम क्या गौण का॥

दिया तसदुक माल लाल के वास्ते।
हरि हा युगलानन्य खटक विना आशिक रास्ते॥

श्री युगलविनोद विलास

युगल-विहार

'युगल विनोद विलास' संहिता के पंचम अध्याय का सरस काव्य में अनुवाद है। यह अपने ढंग का अद्वितीय ग्रंथ है। रसिकोपासकों में इस ग्रंथरत्न का बहुत आदर है।

जुगल विचित्र विहार किधौं कल हंस हंसनी।
किधौं मत्त मातंग कलित करनी प्रसंसिनी॥

किधौं कामिनी काम किधौं यामिनी चंदवर।
किधौं सजल घन दाम नीर अन्तर विनोद कर॥

किधौं अमल अनुराग रूप रस भूप सुतन धरि।
क्रीडत कुंवर किसोर किसोरी व्याज साज करि॥

सखिन सहित घनश्याम राम अभिराम नवल तन।
रसिक मनोरथ मधुर कामदायक प्रसन्न मन॥

नवल नाजनी नारि कंज कर गहि गरुर गुनि।
प्रीतम परम रसज्ञ रचत कौतुक अनेक पुनि॥

अति अगाध जल बीच डारि हरषत काहू पिय।
तिमि काचित वर वाम पकरि वित वसन करत हिय॥

रस निधि निज वर बाहु जंत्र यन्त्रित ललना करि।
मगन होत छवि जोत परम प्रगटत सुधारि धरि॥

कैतव कुशल अजव नायिका एक कंज दृग।
निपतित प्रीतम अंग अमल मानो मनोज मृग॥

किधौं सचीपति सुमति नवल नग लपि समान घन।
गिरत छटा छवि सहित रहित आमर्ष हर्ष मन॥

किधौं सजीली स्वर्णलता सुर द्रुम सनेह तजि।
अमल तमाल अनूप रंग रमनीय आप भजि॥

काचित कला निकेत वाम कूदत स्वतंत्र जल।
गहत लाल कर कंज जाय औचक असक कल॥

प्रीतम प्रेम प्रकासि परम पंडिता रहस मधि।
ललिन समेत अथाह नीर मज्जति विचित्र विधि॥

ललित लडैती लाल सखिन सम्पन्न परस्पर।
नवल नीर कन कंज करन सींचत विचित्र तर॥

कोमल कर पद कज मजु आघात सरस सुचि।
करहिं केलि कमनीय रमन रमनी समेत रुचि॥

महा मधुर धुनि छाय रही चहु ओर विलच्छन।
सखिन सहित सिय श्याम नवल रस समर अनुच्छन॥

कोउ सहचरी सनेह सनी लषि ललित उर स्थल।
मृदु तर सुपद सरोज हनत क्रीड़ा रस विह्वल॥

काचित सषी सलोन ललन दै अकमाल अति।
समुझि विपुल भय नीर मध्य मज्जन हित डरपति॥

अति चातुरी रचाय एक आली अलवेली।
गहि प्रीतम प्रिय अग गई वन बीच अकेली॥

काचित सखी सरोज मुखी अति सवल धारमधि।
पड़ी वडी हैरान हीय व्याकुल न रच सुधि॥

तरल तरगन सग वसन विलगान न जानति।
बहुरि होस हिय लाय विपुल क्रीडा मन मानति॥

सरस सकोच सजाय निकट प्रीतम न जात तिय।
कोउ अलिक गहि वाहिं विहसि सनमुख कीन्ही पिय॥

तव क्रीड़ा सपन्न वाम मज्जति अतर जल।
निरषि नवल निज नैन नाह दीन्ही सुवसन भल॥

रसिक सिरोमनि श्याम राम अभिराम नेह निधि।
जुगल करज दै चिवुक वीच चुम्बन करि वहु विधि॥

कलित कपोल अमोल वाम निज प्रिय संजुत करि।
चाखत सुधा समूह अधर रस अति उमग भरि॥

जिमि चञ्चल पन छोडि चतुर चञ्चरी कञ्ज रस।
पीतव परम प्रमोद पाय घूमत सनेह वस॥

यहि विधि विपुल विहार सहचरि सग रग रचि।
करि सनेह रस लीन मीन मन हरन स्वाद सुचि॥

जल क्रीडा कमनीय निकर परिकर विशेष सजि।
भीने नवल निचोल सरस सिर सह आनन भजि॥

हेम मनोहर वरन छोभ वर वसन सुतन छवि।
दम्पति नेह नवीन परम प्रतिभा भसिति कवि॥

परिहेल प्रभु मानस ललीय लाल कौतूहल रची।
जलकेलि क्रीडा क्रोड जहँ अहलाद क्रीडा कलमची।।

जलजात कर उच्छरित जल जलजात फेंकहिं अलि चली।
तेहिं सग भ्रमर उडाहि गुजत देखि कवि शारद नची।।
जनु पूर शशि टूटहिं विथकि अहिवाल तेहिं रस लूटही।
जनु स्वरन सम्पुट वेष्टिरस अलि अलि चपरि लै जूटही।।
प्रभु लेत पुनि फेंकत लगत जनु अमिय घट भरि फूटहिं।
जिमि रामचरण हवाइ सीयपुर काम रति कर छूटहिं।।

यहि विधि जलकेलि हेलि खेलत पिय प्यारी।
उमगत आनन्द माल हमत धरत ललिय लाल, अधर अधर परसत मुख दरसत सुषमारी
मिलित लाल अलक वक वेमरि अरुझेउ तटक अलि कच कुडल बुलाक अरुझेउ उपमारी।।
जनु जुग विवु चख कुरग,गुरु द्वौ रवि अलि अनग अहि रजकसि वीच वैर सव तजग सुखमारी।
कोउ सखि निरुआरति करताल हसि वजावति वहु व्यग राग गवति मन भावनि नहिं न्यारी।।
करते कर जोरि सकल निरतत जल उपर चपल, चरण चलत छुअत छटक नूपुर रवकारी।
रत्ना लकृत विचित्र जगमग जल विच पवित्रैं जनु घन दिवि तडित विपुल दमकति दुतिवारी।।
छुम छुम थेइ थेइ तरग गावत पिय सग सग चलत लजत गज अनग वाजत करतारी।।
अद्भुत राहम अनूप देखहिं कोई सखी सरूप, श्रीरामचरण देखहिं किमि नयन अन्ध चारी।।

वहुताल वाजहिं चरण चञ्चल मुरत कर मुख चप छुये।
मुक्ता कलीय नूपुर खसे जनु अमियशर वहु शशि उये।।
युग युग सखी विच विच एक मध्य राम नितंत।
मगीत ताण्डवी सुगन्व गति अनेक ल्याई।।
गावत पट् राग राम रागिनि स्वर ताल ग्राम।
मव धरि मखि रूप गाम रास हेतु आई।।
श्री जानकी रघुनन्दन मन भावति भई ब्रह्म रैंन।
श्री राम चरण मकल जीव परमानन्द पाई।।
यद्यपि अली अपार, मुख्य गनी गन नायिका।
द्वै हजार हजार, एक एक सखी के किंकरी।।

उभय प्रवोधक रामायण

श्री वनादास कृत

महात्मा बनादासजी

महात्मा वनादास जी के अनेक ग्रन्थो का पता अव लगा है। उनमें माधन की ही विशेपता है—ज्ञान वैराग्य, भक्ति, नाम स्मरण, पवित्र जीवन का ही प्रकरण विशेप रूप मे

आया है। महात्मा वनादास जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि बाहर वाहर से उनकी दास्य भक्ति है पर अन्तर के अन्तर मे मधुरा भक्ति है। अवध के अधिकाश महात्माओं की साधना का यही रहस्य है।

उभय प्रबोधक रामायण—लखनऊ के मुन्शी नवलकिशोर के छापेखाने मे दिसम्बर सन् १८९२ ई० मे छपा—'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता' तथा 'रामायण शतकोटि अपारा' के अनुसार श्री वनादास जी को 'उभय प्रबोधक रामायण' में सात काण्ड श्री गोस्वामीजी के सात काण्ड से सर्वथा भिन्न है। इनके सात काण्ड के नाम हैं—मूलखण्ड, गुण खण्ड, नाम खण्ड, अयोध्या खण्ड, विपिन खण्ड, विहार खण्ड, ज्ञान खण्ड और शान्ति खण्ड। इसमे दोहा, चौपाई, सोरठा, छन्द, कवित्तादि अनेक प्रकार के ललित छन्द है। भाषा वडी ही शुद्ध साधु और शुचि है। वनादास जी एक पहुँचे हुए सन्त थे यह उनकी रचनाओ से स्पष्ट है और इनकी शैली वडी ही मनोहर एव प्रभावमयी है। पाठक के मन को वह सहज ही गिरफ्तार कर लेती है और कालरिज के 'ऐंशिएट मैरिनर' की भाँति पाठक पर कथा का जादू का-सा असर होता है। शेष भाग मे तो कथा रामचरित मानस के अनुसार ही चलती है परन्तु विहार खण्ड मे भगवान् राम वन से लौटने के वाद एक वार जनकपुर जाते है और वहाँ से लौटकर काशी मे काशीराज के सम्मान्य अतिथि होते है। यह सर्वथा नयी उद्भावना है। भक्तों ने भगवान् की जिस किसी लीला का जिस रीति से साक्षात्कार किया वैसे ही वर्णन कर दिया है इसमें शका के लिए कोई अवकाश नही है।

ऊपर कहा जा चुका है कि बनादास जी की मधुरोपासना परम गुह्य है एवं गोपनीय भी। अतएव मुख्यत. उनके ग्रन्थो मे ज्ञान वैराग्य के आधार पर भक्ति की प्रस्थापना ही विशेष रूप से परिलक्षित होती है पर जहाँ तहाँ अप्रकट रूप मे अनायास अन्तर की गुप्त धारा भी व्यक्त हो गई है जैसे—

इत उत घूमति वाग मृगा खग विटप निहारति।
लगी सुरति रघुवीर मूरति ते नेक न टारति॥
सीता वूझति सखिन नाम तरू लता विटप कर।
चहति न नेक विछोह प्रीति पथ दृढि अति तत्पर॥
कहूँ कहूँ प्रगटत दुरत प्रभु सीता जनु सूर शसि।
कह वनादास वल्ली लता जलद पटल तट पर सुअसि॥

राम वाम कर सुमन गिरधौ धोखे सो भूतल।
रह्यौ न पूजा योग लेन पुनि लगे फूल दल॥
अन्तर्यामी सकल सदा जनकी रुचि राखै।
शारद शेश गणेश निगम नारद अस भाखै॥
प्रीति रीति पहिचानि वो त्रिभुवन तीनिउ काल महँ।
कह वनादास रघुनाथ सम कवहूँ ना उन कतहुँ कह॥

सिया राम हिय मध्य राम सिय के उर माही।
थप्यो पुष्ट तेहि काल तुष्ट आयो दोउ पाही।।
नख शिख देख तरु पउ भय जनु मुकुरहिं छाया।
तदपि न मानत तृप्त काल अति अलि लखि पाया।।

युक्ति वचन सखिय न कहिये ऐहैं यहि बेर नित।
आजु ते प्रतिदिन नेम करि गिरिजा पूजिन लाय चित।।

हीय बनी उपमान तिहूँ पुर राम बना हमरे मन भावै।
दम्पति आसन एक बिराजे तजो रति कोटि मनोज दवावै।।
सावल गोर सोहात मनोहर तोष नही जेति ते शिव पावै।
दास बना धृग जीवन है असि मूरति से जो सनेह न लावै।।

राम सिया अवलोकनिचारु विचारु किये न कोऊ लखि पावै।
गूढ सनेह न जात लखो सुठि शील सकोच हिये में दुरावै।।
दोउ परस्पर भाव बढावत ताको कहाँ उपमा कवि लावै।
दास बना अति भाग्य के भाजन जाके हिये यह मूरति आवै।।

काम करि शावक के कर से अजानु बाहु उर सुठि बृहदशु यज्ञ पीत धारी है।
राजै भुज अगद औ ककण कनक कर जटित मणिन मुद्रिका कि छवि न्यारी है।।
राते अरबिन्द कर जानु पीन काम साथ मघनि रोमावली सो लागै अति प्यारी है।
वनादास कटि सिंह चरण कमल चारि श्याम गौर जोडी अग अग शोभा क्यारी है।।

भाग्य सराहै सवै अपनी जो समय तेहि में अवलोकन हारे।
सावल गौर वनी वर जोरी वसू निशि वासर नैन हमारे।।
सुकृत पूरे सवै भली भाँति से दास वना उर माँहि विचारे।
पाके समान अहै अजहूँ प्रभु के यश लागत जाहि पियारे।।

नाना मणि जटित मुकुट हेम शीश सोहै भानु से प्रकाश काक पक्ष छवि न्यारी है।
मेचक कुञ्जित नागछौना ज्यो लटकि रहे लपटि लपटि लागे जोहे अति प्यारी है।।
कँघो अलि अवलिन उपमा अनूठो मिलै आठो किये कवि जन जानौ छवि क्यारी है।
वनादास कुण्डल कनक लोल राजै श्रौण मीन छटा छाँटि डारे जाने जासु यारी है।।

वक भ्रुव कञ्ज नैन मुख छवि ऐन मानो मैन किये जाहि दिशि स्वाद तिन पाये है।
तिलक विशाल भाल तडित कि द्युति निन्दै अल्पउ भैरेख जनु अचल सुभाये है।।
अधर दशन अति अरुण अनोखी आशै विम्वाफल दाडिम न पटतर आये है।
गोले है कपोल मन मोल लेत विना वित वना दास नासा शुक तुड हिल जाये है।।

चन्द मुख मन्द मन्द हसत हरत मन हर दम टरत तन ही से अति नीके है।
चोखी है चिवुक चित चोरि लेत वार वार वनादास द्युति मरकत मणि फीके है॥
कम्बु ग्रीव शोभा सीव लागति अतीव प्रिय हरि कन्ध जोहे जिन रहे निति ठीके है।
उभै भुज भारी कर कंकण केयूर युत करज ललित धनु वाण अति ठीके है॥

उर सुठि वृहद प्रसून मुक्त माल भ्राजै तुलसी सु दल युत यज्ञ पीत भली है।
भृगु चर्ण रमा रेख त्रिवली विशेष छवि नाभि है गभीर जनु लाखो मन छली है॥
सिंह कटि तूण पटपीत है कनक काति तडित विनिंदित सुरति सुठि सली है।
वनादास जामा लाल ललित लगाये कोर वोर छोर जोहे जाय जाकी मति हली है॥

जानु युग काम भाथ केरा तरु तुच्छ लागै जागै जीव सोत रोमावली जे जोहे है।
कोटिन मदन कोक दन रूप अग अग भूप वर्षा को ऐसो कौन देखि मोहे है॥
गुल्फ छवि गूढ है करुढ पैनि काय मुनि कमल चरण माहि चित्त जिन पोहे है।
वनादास मन है मतग जोर जग अति पग होत तबै अग अग लेत कोहे है॥

कनक भवन सिया रमण विहार थल रचना न कहै योग गिरा मूक लई है।
सखी सीय सग में शिंगार शुभ अग अग शची रति मान भग मानो करि दई है॥
तहाँ पै सिंहासन प्रकास न वरणि जात निरखि लजात भानु हेम मणि मई है॥
जोडी श्याम गौर विराजमान ताहि पर वनादास नख शिख शोभा सरसई है॥

मानहुँ तमाल तरु निकट कनक बेलि लई है सकेलि छवि चौदह भुवन की।
जाल की सुअंग पै अनेक रति भग होत कोटिन अनग व्याजु नृपति सुवन की॥
वनादास ऐसे ध्यान सदा जे परायण है ताहि मुक्ति आश नहि रह त्रिभुवन की॥
मन क्रम वचन निशोच भये सोर्य जन जाको है भरोस एक दारिददुवन की॥

मुकुट शिर हेम का भ्राजै मनो द्युति भानु लाजे है।
छटा जुलफौ कि अति नोदी निरखि त्रै ताप भाजे है॥
लसै घुघुवारि लट लोनी निरखि चित चोरि जाते हैं।
लटक उरजाहि के आवै नही फिरि कछु सोहाते है॥
श्रवन में राजत मोती अनोखी पैन प्यारी है।
जिगर के जुल्प को काटै छटा अति ही नियारी है॥
वक्र भ्रुव नैन रतनारे सुभग अवलोकनि भाई है।
तिलक शुचि भाल मे भ्राजी मनहुँ चित को चोराई है॥
अधर अरुणार शुभ नासा दशन की कान्ति नीकी है।
हसनि मृदु भावती ही को छटा दाडिम की फीकी है॥
चन्द्र मुख श्याम के जेहि लगै तेहि त्रय लोक हल्का है।
निरखि मन तोष नहि पावै नही तहँ मूल पल्का है॥

चिवुक चित चोर अति लेवै गरे अर्थ रेख प्यारे हैं।
कन्ध केहरि के सुठि लाजै वृषभ से भूरि भारे हैं॥
गरे गज राग रुरे हैं विपुल मणि के न मोहै को।
उभै भुज काम करि करसे तिन्हें मूरख न जोहै को॥
बना इस ध्यान मे रमता तिन्हें हरि से, जुदाई क्या।
जो आशिक पाक है दिल के उन्हें जग में बडाई क्या॥

कमर केहरि से अति चोखी सुमन कर माल लीन्हे हैं।
छटा पट पीट की ज्यारी कोउ जन चित दीन्हे हैं॥
जवै युग जानु को पेखै कहाँ कैवल्य बासा है।
कमल पद को न जोहे जे तिन्ह यमलोक श्रासा है॥
दिशा बायें पै सिय राजै सबै उपमा टटोरी है।
न पटतर ताहि ले दीन्ही अधिक नृप की किशोरी है॥

बना कुर्बान चरणो पै कहनि औरह निज बहोवै।
वचन के ज्ञान की झल्की पलटि ताही कि पति खोवै॥

सीताराम झूला विलास

श्री रसरगमणि जी

श्री सीताराम झूला विलास इसे छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने जैन प्रेस लखनऊ मे जुलाई सन् १८९९ मे मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इस मे २५ पद झूला के और ५ पद नौका-विहार एव जल-विहार के हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ कवित्त मे है और भाषा साधारणत पुष्ट एव मार्जित है। झूलन के पदो मे लीला-विहार का एक ही चित्र बार बार आया है, सीताजी राम को झुला रही है, राम सीताजी को। फिर दोनो को सखियाँ झुलाती है और युगल मिलन का रस लेती है। नौका-विहार या जल-विहार के पदो में भी एक ही दृश्य बार बार आया है। फिर भी कुल मिला कर यह ग्रन्थ रसिक साधना का एक अनमोल रत्न है।

उदाहरण—

सावन सघन घन गगन मैं दरसत बरसत बारि घोर घहरि घमकि कै।
दिनहूँ न दीसत दिनेस ननिसीस निसि दुरत विदिसि दिसि दामिनी दमकि कै॥
राम रस धाम सिया सग रसरगमनी झुकि झुकि झोकन सो झूलत झमकि कै।
डरि मुसक्याय कहै कण्ठ लपटाय प्यारी लीजै रस रसे रसे रसिक रमकि कै॥

रसिकाधिराज राम पिया सिया प्यारी वग रग की उमग बरसावै रस झूलि झूलि।
झोका जो लगावै झुकि झुकि मिलि जावे दोऊ अति सुख पावें रहि जावे मान भूलि भूलि॥

आली गीत गावे हाव भाव दरसावे प्रिया प्रीत मैं रिझावे नाचै नई गति पूलि पूलि ।।
सावन सोहावन प्रमोद वन पावन मैं लषत हिंडोरा रसरगमनी फूलि फूलि ।।
छाय छाय आये चहूँ ओर घनघोर करि सोर जोर बरसे मधुरझरी लाय लाय ।
लाय लाय गलबाँह राजत नवेली नाह सखिया झुलावे झुकि झुकि नाचे गाय गाय ।।
गाय गाय बोले मानो कोकिला मधुप कीर सरजू के तीर तरुफूले नीर पाय पाय ।
पाय पाय पान मुसुक्याय रघुराय सीय झूलैं रसरगमनी मनमोद छाय छाय ।।

करत सिय रघुबर बारि विहार ।
सखिन सखन जुत जुगल सलोने सरस परसपर पागे प्यार ।
नई नाव छवि छई वितानन कलवल चलत सरजु जलधार ।।
लसत हिंडोर किसोर किसोरी कोरी नार्चाहि गाय मलार ।
भादो घन बरसत भरदर भल दोउ दल भरि खेलहि पिचकार ।।
दपति निरपि हसत निवसत छलि उर रसरगमनी अगार ।।

श्री रामनाम यश विलास

श्री रामरूप यश विलास

श्री राम रस रग मणि जी भगवान् राम के नाम और रूप के यश के वर्णन कवित्त रूप मे इस सग्रह में प्राप्त है। पण्डित घासीराम त्रिपाठी के देशोपकारक प्रेस लखनऊ में सवत् १९६५ अर्थात् सन् १९०० में मुद्रित हुआ। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह एक उत्तम रचना है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं —

राम पिता सुखदा सुत भ्रात सु मातु सनेह जुता यसुजाम है।
राम सु मीत विनीत सखा सु पुनीत सिखावत मन्त्र सु नाम है ।।
राम सु देह के पालक मालक दीन दयाल सु देत अराम है।
रामहिं प्रान के प्रान सु जीवन जीवहुँ के रसरग श्रीराम है ।।

रामही को दास मैं हौं रामही की आस मोहिं,
राम दुख नास मम वास खास धाम हौं ।।
रामही की पूजा मेरे राम विन दूजा नाहिं,
सीताराम शरण रहौं मैं आठो जाम हौ ।।
रामही को ध्यान मेरे रामही को ज्ञान,
रसरग सख्य अभिमान राम को गुलाम हौ ।।
राजपद ठाम मेरे रामही को काम मेरे,
मागो सीताराम ही सो रट सो राम राम हौं ।।

जाग मेरे राम भूरि भाग मेरे राम,
गीत राम मेरे राम अनुराग 'रसराम' हैं।
धीर मेरे राम बरबीर मेरे राम,
हर पीर मेरे राम धनु तीर धर श्याम हैं।।
दानी मेरे राम सत्यबानी मेरे राम,
सिया रानी रतराम सुख खानी शील धाम हैं।
पात मेरे राम मञ्जु मात मेरे राम,
भल भ्रात मेरे राम सर बस रामनाम हैं।।

देह मेरे राम सु विदेह मेरे राम,
गुन गेह मेरे राम प्रदनेह मेह श्याम हैं।
रग मेरे राम भव भग कारी राम,
सुभ अग मेरे राम बसै सग बसु जाम है।
स्वामी मेरे राम ब्रह्म नामी मेरे राम,
हियधामी मेरे राम सखा साँचे 'रसराम' हैं।
तात मेरे राम मञ्जु मात मेरे राम,
भल भ्रात मेरे राम सरबस रामनाम हैं।।

कीजिये कृपा कृपाल निर हेतु रसराम,
सुमिरौं सनेह बस रामनाम रोय रोय।
मानस के विमल विलोचननि वार बार,
जुग पद मख जोति जग मग जोय जोय।।
वान्त भम विपे सुख दुख विसराय,
पराभक्ति तोप पाय ध्याऊँ सान्ति सुख सोय।
मीताराम अहौ जन झूठ साँच आपही को,
आप अपनाय जेली पाप ताप धोय धोय।।

दीन बन्धु जानि राम रावरे को बन्धु मानौ,
ताते मोहिं केहूँ भाँति आपौ मानि लीजिए।
आपही के माने मन मानैगो प्रमोद मीत,
मेटि भव भीति प्यारे साँची प्रीति दीजिए।।
बैन नाम नेह लीन रूप सिन्धु नैन मीन,
होवे प्रेम पीन त्यों अदीन सुखी कीजिए।
खीजिए न दोप देखि रीझिए कृपाल राम,
बसि उर धाम रम रग बन्धु कीजिए।।

श्री सरयू रस-रंग लहरी तथा अवध पञ्चक

श्री रसरंगमणि

श्री रसरगमणि जी के इस ग्रन्थ मे श्री सरयू जी की महिमा का बडी भव्य भाषा मे वर्णन हुआ है। सीताराम के लीला विहार की दिव्य रम्य स्थली श्री सरयू जी की गुणावली गाते कवि कभी थकता ही नही।

उदाहरण —

लेत मुख नाम राम गग रस रग मनी,
देत सुख सग भारी भवभीति भूलती।
सरद ससी के कल किरनैं समान,
तुग तरल तरग ताके ताप निरमूलती॥
परसत पाथ सीतानाथ अनुराग बाग,
बेलि रसकेलि उप फैलि फलि फूलती।
सरजू के कूल कौन पूछै रिद्धि सिद्धि भुक्ति,
मुक्ति झुड झाउन के झारन मे झूलती॥

जे वाशिष्टी मिष्ट वारि कुल इष्ट हमारी।
अवलोकत अनइष्ट हरनि सुख करनि अपारी॥
जयति कोशला कलित ललित धारा धरनीया।
द्रवरूपा रघुबीर कृपा भवदुख दरनीया॥
जय जननी रस रग मनि जगमग जग जाहिर चरित।
जय रघुवर दृग जलजजा जय जय जय सरजू सरित॥

जैंमे सब नामन मैं रामनाम मुख्य पुनि,
रूपन मैं जैसे राम रूप अभिराम है।
सास्त्रन मैं जैसे रामायण सुवेद सार,
वेदन के मध्य जैसे वेद वर साम है॥
सरितन माहिं जैसे सरजू सिरोमणि है,
भक्तन मैं जैसे हनुमन्त जितकाम है।
तैसे सब धामन के मवि रसराम निवी,
धामाधिप अवध ललाम रामधाम है॥

श्री सीताराण शोभावली प्रेम पदावली

श्री सीतारामशरण रामरसरगमणि

श्री रामरसरगमणि जी का ८० पृष्ठो का यह ग्रन्थ देशोपकारक प्रेस लखनऊ से सन् १९०२ ई० मे श्री सीताराम शरण भगवान्प्रसाद जी की प्रेरणा से छपा। इसकी पूरी प्रति अब मिलती नही, एक खण्डित प्रति मिली है। ये पुस्तके ऐसे कागज पर छपी है कि इन्हें हाथ लगाते ही टूट-टूट जाती है। और इसलिए, बहुत सँभालकर इन्हे पढना होता है। मधुर रस के प्रेमसागर में डुबकी लगानेवाले रामरस रग मणि जी की यह पुस्तक साहित्य, साधना और सिद्धान्त सभी दृष्टियो से परम उपयोगी है एव इस सम्प्रदाय की रस साधना को समझने में बहुत अधिक सहायक है। आरम्भ मे श्री सीताजी का नखशिख-वर्णन है जो बडा ही मनोहारी एव जीवन्त है। इसके अनन्तर श्री रामजी के अग-प्रत्यग का विशद एव रससिक्त वर्णन है। फिर पावस के झूलनविहार और फिर वसन्तविहार है। अन्त मे रासोत्सव का बडा ही मनोहारी प्रकरण है। यह नि सकोच कहा जा सकता है कि रामरसरगमणि जी को इस कृति मे अपूर्व सफलता मिली है।

माग वर्णन

सिर चन्द्रिका चारु लसी रसरगमनी लखि के चखमे बड भाग है।
जोति जगै गुहि मोगिन की वर ज्यो तम तोम में तारे उजाग है॥
जाहि मनाय उमादि रमा नितही निज माग को मागे सोहाग है।
सेदुर पूरित भूरि भरी छवि सीय सोहागिनि की शुभ माग है॥

वेनी वर्णन

नागिन की उपमा अनुरागिन के मन में नहिं भावति देनी।
कञ्चन शैल सिंगार कि धार किधो रसरगमनी अलि श्रेनी॥
रेशम लाल गुही सित फूल लसी ज्यो महा सुखमा की त्रिवेनी।
वल्लभ की विरची अति वेस विदेह लली की विराजति वेनी॥

लिलार वर्णन

उज्ज्वल चारु सु चन्दन चित्रित वन्दन विन्दु अमन्द उदार है।
भाग को भाजन माजन प्रेम को हेम पटा कि सोहाग आगार है॥
अर्ध शशी कि वसीकर जन्त्र परेमहुँ को वसकार अपार है।
शोभा घनी रसरग मनी मिथिलेश लली को ललाम लिलार है॥

नयन वर्णन

खञ्जन मान - विभञ्जन श्यामल कञ्ज मनो सुखमा सरसी के।
भौंह कमान विलोक निवान विभाव भरे मनहारक पीके॥

कोमल कोटि कृपा कि कटाक्ष मनी रसरंग पै कारक नीके।
राघव रञ्जन रञ्जित अञ्जन मञ्जु विशाल विलोचन सी के॥

नासिका वर्णन

सुक नासिक ते सिय नासिक नीक लखे रति लाजि रही लचि कै।
वर बेसरि बेस विराजि रही झुलनी छवि छाजि रही नचि कै॥
रस रग मनी मवुरे अधरान बीरी सु भ्राजि रही रचि कै।
मुसुक्यान सु जान पिया हिय में सुख सम्पति साजि रही सचि कै॥

मुख वर्णन

वन्धुक विद्रुम विम्व जपा अरुने मधुरे अधरान पै वारौ।
दामिनि दाडिम कुन्द कली दमना वलि के दुति पै वलिहारौ॥
बैनन पै रसरग मनी पिक बैन निछावरि को करि डारौ॥
आनन पै सिय के शशि कोटिन दूर पवारि कै वारि उतारौ॥

कण्ठ वर्णन

कोमल औ कल स्वच्छ झलाझल राजित रेख महा छवि सीवाँ।
भूषन भूरि लसै रसरंग मनी मुकता के अमोल अतीवा॥
केलि कला कि अदा उन मीलनि हीलनि राम सुजान कि जीवा।
कम्बु कपोति सु कण्ठ लजै लखि कै रघुनन्दन गोरिक ग्रीवा॥

हाथ वर्णन

चारु महा सुकमार सुढार हरै दुति हेम तथा ताड़िता की।
कञ्ज मृनाल रसाल किधो युग धार लसै सुखमा सरिता की॥
दैनि अभै सुख लोक उभै रसरग मनी सम कल्प लता की।
राम पिया गर की वरहार सी बाहुँ उदार विदेह सुता की॥

रम्भ सु दुन्दुभि सिंह सुधाकर श्री फल के उपमेय जे अग है।
आन ते नाहि न जानि सकै न वखानि सकै सुमणीरसरग है॥
जानत केवल रामहि एक कहै न सोऊ कोई और के सग है।
याही विचार उचार भयो सिय की सुखमा को समास प्रसग है॥

सर्व देह वर्णन

सोन सो सुन्दरताई ससी सितलाई सोहाई प्रभा अमली की।
दामिनि ओप मनीरसरग मृदुल सुगन्धिहुँ चम्प कली की॥

कल्पलता सी लसै लहरानि अनूपम लाल तमाल रली की।
ज्यो छवि गेह सनेह की दीप दिप दुति देह बिदेह लली की।।

सारी वर्णन

झीन रगीन नवीन नितै ज्यो सिंगार घटा सुखमा बरसाती।
कञ्चन तार किनारी रची कल श्यामल राम छटा दरसाती।।
ताहि ते प्यारी जु प्यार समेत सदा निज अगन सो परसाती।
क्यो बरनै रसरग मनी जस सारी सिया तन मे सरसाती।।

पदपकज वर्णन

लाल रसाल महा उर मण्डित दासन के दुख दोष बिनासी।
शारद सिन्धु सुता गिरिजा जिन को नित पूजहि प्रेम प्रकासी।।
वेद को मूल सो नूपुर नाद जगै नखजोति सुब्रह्म प्रभासी।
राम प्रिया पद कञ्ज तेई रसरग मनी हिय कञ्ज निवासी।।

अगुलि राम प्रिया पद कञ्ज की मञ्जुल मगल की कर वाहै।
नासन दासन के दुख के नख भूरि सुभागन के भर वाहै।।
रेख प्रकास भरे रसरग मनी तम मोहमयी हरवा है।
व्योम के तारन हूँ तें अपार अधीन के तारन ज्यो तरवा है।।

है दसहूँ उपनीपद - सार कि तेज दसौ अवतार के भ्राजै।
कै दसहूँ दिग पालन भालन के वर मानिक ये छवि छाजै।।
ऐकि प्रकाश स्वरूप लगी पग सो दसधा भगती सुख साजै।
की रसरग मनी सिय - पायन के सु दसौ नख सुन्दर राजै।।

ावस

सरयू के कूला विरचित झूला झूलत सिय रघुराज आली।
रिमझिमि रिमझिमि वरसत वदरा भीजत सिय सारी पिय चदरा जलकण
मुखन विराज आली।।
लै पटकर रघुवर पटरानी विहसि परस्पर पोछत पानी लखि सुख सुखी
समाज आली।
गावहि सखी सोहावन सावन सुनि रसरगमणी मनभावन अति आनन्दित
आज आली।।

झूलन

झूलत राम लाल अलवेलो।
लीन्हें सिय ललना अलवेली रमकत सनो सनेह नवेलो॥
मिलि गोरी गावत गरवोली हंसत हंसावत लहि मुद मेलो।
परिकर दृगन प्रमोद वढावत करि रसरग मणी रस खेलो॥

झूलत सिय स्वामिनि महरानी।
श्री महराज कुमार झुलावत सजि सनेह सनमानी॥
प्रीतम प्रीति प्रवल मखि प्यारी पग प्रमोद मुसक्यानी।
लखि रसरग मणी दुहुँ अखियाँ छवि सुख सिन्धु समानी॥

झूलत राम सिया रस रसिकैं।
रस भरि गाय गवावत हिलिमिलि हिय सर सावत हसिकैं॥
खात खवावत पान पानकरि अधर सुधारस फसिकैं।
रस झूलनि रस रगमणी यह निरखत हियो हुलसि कैं॥

मलार

झुकि झुकि सीताराम सु झूलैं।
सावन सरयू तट प्रमोद वन घन वरसत अनूकूलैं॥
कल कामिनी कछोटा कसि कसि दोउ दिशि हसि हसि हूलैं।
मिलि मलार गावत सिय पिय सखि सुनि सुरतिय तन भूलैं॥
अञ्चल माल सुधारि सनेही लखि चञ्चल दृग फूलैं।
प्यारिहुँ अलक सम्हारि लहैं रस रग मणी मुद मूलैं॥

झूलत रसिक राज रघुनन्दन।
झोकत विहसि विलोकत प्यारो प्यारी आनन चन्द॥
झझकि झमकि झुकि पियँ कहँ वरजहिं अलवेली हसि मन्द।
लाल ललकि रस रग मनी उर लावत लहि आनन्द॥

आली री को झूलैं इन संग।
नाजुकता न विलोकत परकी झोकत अधिक उमंग।
रसिकराज कहवावत पैं नहिं आवत रस गति ढग॥
पियकर जोरि निहोरि हसायो छायो प्रेम उतंग।
मणि रस रग रामसिय अगन वारत अमित अनग॥

रघुबर झूलत प्यारी सग।
रुचि लखि ललित झुलावत गावत राग मलार तरग।
हसत हसावत पान खवावत खात सनेह उमग॥
आवत भवर उडावत कर सौ बसन सम्हारत अग।
दम्पति प्रीति रीति पर वारत तन मनमणिरसरग॥

झूलत रघुवर प्राण पियारी।
प्राणनाथ असन भुज धारी॥
सावन सरयू तट फुलवारी॥
लहर बिलोकि परै जहँ भारी॥
नभ घनघटा घेरि आई कारी॥
गरजत बरसत रिमि झिमि बारी॥
हरित भूमि तरुलता अपारी॥
बोलत दादुर खग मनहारी॥
सखि नख शिख सिगार सवारी॥
गावहि रागिनि मधुर मलारी॥
बाज बजाय नटहि दै तारी॥
निरखि युगल छवि होहि सुखारी॥
झोकि झुलावत अवध बिहारी॥
सिय डरपै पिय ओर निहारी॥
छवि छाके दोउ देह बिसारी॥
लखि रसरग मणी बलिहारी॥

कजरी

देखो देखो जी हिंगोरा झूले युगल मिले।
लोनी मिथिलेश लली लसी चपकली मानो रघुनन्दनील अरविन्द से खिले॥
मन्द मन्द वुन्द परे मन्द मन्द झूलें दोऊ मन्द हसि हेरें सुखसिधु मे हिले।
प्रेम की उमग भरे सग रसरगमणी वारि कै अनग झाकी झाकत झिले॥

झूलत सिय रघुराज दुलारे।
वन प्रमोद वर सरित किनारे॥
गरजि गरजि बरसत घन कारे।
चातक मोर मोर किल कारे।
बसन सुरग अग दोउ धारे॥

तन जगमग भूषन उजियारे।
हिलि मिल गावहिं राग मलारे॥

बडे बडे बूद वरसि रहे बदरा।
सिय पिय झूलि रहे रस भीने भीजे सुरग चूनरि चदरा॥
लखि रसरग मनी दपति छवि मुर्‌यो स बाम काम कदरा॥

हिंडोरे झूलत युगल किशोरे।
बरषत घन हरषत सिय पिय हिय निरखत नयनन कोरे।
बस रसरगमणी मनमोरे रमकनि थोरे थोरे॥

रसिक वर हरि लीन्हो मन मोरा।
नवल उमग सग सिय लीन्हें झूलत रग हिंडोरा॥
हसि हसि सियदिशि झुकि चित चोरत तिवत नयन मरोरा।
रूपधनी रसरगमनी उर वस्यो बीर बरजोरा॥

रसत रघुवीर सिय सरद सुख रास मैं।
सरद वन मजु मधि सरद कल कुज जह फूलि रहिं मल्लिका गुज अलि वास मैं॥
सरद श्रृगार सजि सरद सखि यत्र धरि सरद पद गान करि नर्चाहिं स हुलास मैं।
सरद की सुभग निसि सरद चादनि बिलसि सरद शशि अमल अति उदित अकास मैं।
सरद शशि सरिस सिय राम मुख अमृत छवि पियत रसरग दृग प्रेमपगि प्यास मैं॥

शोभा वनी सिया दुलही की।
तन दुति कुद करै कुन्दन दुति मुख माधुरी चन्दते नीकी॥
लोचन ललित कज ते मजुल अजन भरे मनहु छवि पीकी।
सोहत सव भूषन गोरे तन तैसी लसनि चारु चुनरी की॥
अति सुन्दर सेंदुर पूरित शिर मन मोहति सुखमा मौरी की।
बसत हिए रसरग मनी सिय-रघुवर जोरी भावति जी की॥

छोरो लला ककन सिय जू को।
एकहिं कर सुझावो सलोने यामे प्रमान नही कर दू को॥
छोरत छैल न छूटै छवीली विहसति करि पट ओट कछू को॥
कह सखि सियपद गहो लाल अव यह न धनुष जो कियो युग टूको॥
सुनि मुसक्याय वदत रघुवर मन भावै सो आज कहो जनि चूको।
मुरझाये रसरंगमणी प्रभु गिरह नेह उरझाय वधू को॥

बसन्त

बर पीत बरन आयो बसन्त।
सजे पीत साज सब सियाकन्त॥
बन पीत लता कुसुमित रसाल।
मधिमहल पीत मणि को विशाल॥
भये पीत युगल करि अग राग।
पहिरे सारी पट पीत पाग॥
किये पीत उभय परिकर सिंगार।
पकवान पीत भरि कनक थार॥
दपति जिमाय जलपीत प्याय।
दै पीत पान पुनि अतरलाय॥
करि पीत आरती बदि पाय।
नटै पीत राग सु बसन्त गाय॥
धरि पीत वसन भरतादि भाय।
शुचि सदा जो हारहिं मुदित आय॥
रचि माली मालिनि डालि पीत।
ल्याए जनु पठयो मदन मीत॥
बदी जन बालक बृन्द वृन्द।
ऋतु पीत सु बरनन पढहिं छन्द॥
गुनि समय सु आयसु सबहिं दीन।
सिय पिय लगे खेलन प्रीति लीन॥
सुर निरखि सुमन बरषत अनन्त।
रसरगमणी जय जय भनन्त॥

आज सिया पिया खेलत होरी।
श्यामल कौशल लाल रमीले जनक लाडिली गोरी॥
पगे प्रीति रस रीति विराजत सखी सखा दुहु ओरी।
मारहिं मूठि गुलाल गेंद सुम पिचकन केसर घोरी॥
गावत गीत गारिदै दोउ दल युगल हसत मुख मोरी।
बरजोरी करि रघुनन्दन को गहि लिए राज किसोरी॥
कहि जय जय अलि गठ जोरी दोउ पधराए यक ठोरी।
निरखि गाम रसरगमणी मुख शशि भई आंखि चकोरी॥

होरी खेलिए रघुराई सिया स्वामिनि सुखदाई।
राज किशोर जोर जनि कीजै दीजै मुद मधुराई॥
हरषित हिय हिय हरन हारिए पीजिए प्रीति अघाई रसिक रसनद उमगाई॥
लाल कपोल गुलाल मलाइय चुवन दै मुसक्याई।
अंजन नयन निरजन नेही मन रजन अवाई कज खजन लजवाई॥
नव नागर नाचिए नई गति प्यारी के गुनगाई।
सिया संग रसरगमणी प्रभु बैठि वदन दिखराई हमे आनद वढाई॥

किए सिय राम शृंगार फुलनमई।
फुल वगला तरे लसत युग सुख भरे फूलि हिय हसत अनुराग दृग उमगई।
फूल आभरन पट फूलचन्द्रिका मुकुट फूल गुही अलक लट ललित मुख छवि छई।
फूल को गुच्छ सिय फूल धनुवान पिय लिए लखि जियत दोउ द्रुहन की द्रुति नई॥
फूलि रहि कुज कल चलत सुभगवि जल रचित युगत फूल सु फुहार भई सितलई।
वरदि सुर फूल उर हरखि रसरगमणी निरखि सियराम छवि करत दृग सुफलई॥

वसो मेरे नयनन मे सियराम।
गोरी जनककिशोरी श्यामा रघुवर सुन्दर श्याम॥
नखशिख भूषन वसन सवारे छवि कोटिन रति काम।
लखन छत्र युग चवर भरत रिपु दवन दाहिने वाम॥
हनुमत वीजत व्यजन लसत सब परिकर ललित ललाम।
कमल नयन विहसत दपति रसरगमणी मुद धाम॥

राजत सिय रघुराज आज री।
सिंहासन पर गौर श्याम तन निमिकुल रघुकुल सीस ताजरी॥
चवर लिये दुहु ओर भरत रिपु दमन लषन धरे छत्र छाजरी।
हनुमत व्यजन करत कर अग छड़ी गहे रह्यो सुजस गाजरी॥
धनुसर असि चर्मादि विभीषन सुग्रीवादिक करन भ्राजरी।
जय जय जस रसरगमणी कहि करत सुमन झरि सुरस माजरी॥

राजत राम सिय रस मीन।
युगल सिरन किरीट कुडल मकर सुखमा पीन॥
सखि झषाकृत कल कपोलन चित्ररचना कीन।
चपल दृगन समेत देखे प्रगट द्वादश मीन॥
वनी एकहि वेपकी वलि आज सु छवि नवीन।
लखत परिकर प्रेम पगि रसराममणि सुख लीन॥

श्री रामशत बन्दना

श्री सीताराम शरण राम रसरग मणि

शृगार स्वरूप श्री सीताराम के वर दुलहिन वेश की बार बार मधुर भावमयी वदना। दोहे रस मे शराबोर है। अन्त मे पाच सवैये कवित्त हैं जो 'लालमा' परक हैं और उद्धव के 'आसामहो चरणरेणुजुषामह स्या' तथा रसखान के 'जो पशु हो तो' की याद दिलाते हैं।

वन्दौं दूलह वेष दुति सिय दुलहिनि युत राम।
गौरि श्याम रसरगमणि जन-मन पूरण काम।।

बन्दौं वर दुलहिनि सकल आए अवध दुआर।
मुदित मातु परिछन करहिं सुख रसरग अपार।।

वन्दौं सिंहासन लसे दुलहिनि दूलह चारि।
पूजहिं अम्ब कदम्ब लखि रसरगहु वलिहारि।।

वन्दौं सीताकान्त सुख रस शृगार स्वरूप।
रसिकराज रस रगमणि सखा सुबधु अनूप।।

वन्दौ भरताग्रज मधुर प्रेम सख्य रस रूप।
कृपा सिन्धु रसरगमणि बधु अखिल रस भूप।।

बन्दौं सीताराम प्रभु सुख रस रग प्रदानि।
गिरा अर्थ जल बीचि सम भिन्न अभिन्न सुमानि।।

वन्दौं दशरथनन्द शुभ गुण मन्दिर रस रग।
सिय हिय चन्दन चन्द मुख सुन्दर अमित अनग।।

वन्दौं पितु आज्ञा निरत लखन राम सिय सग।
अवध राज तजि बन गवन करन हरपि रस रग।।

वन्दौं सखा निपाद के नव नेही रघुराय।
तेहिं भेटे रस रगमणि प्राण सरिस हिय लाय।।

वन्दौं अवध विहारि प्रभु सियविहारि सुख धाम।
हिय विहारि रस रगमणि मुनि मनहारी राम।।

वन्दौं रघुपति राजपति रसपति पति-रम रग।
गति पति पति पति जगतपति रति पति शत मम अग।।

वन्दौं श्री रघुवीर वर दयादान कर वीर।
धर्मवीर रसरग मणि युद्धवीर मतिधीर।।

बन्दौं राघव राम रस रूप राशि रस रग।
रघुनन्दन राजीव दृग राज सुता सिय सग॥
बन्दौं भक्ति सुभक्त जन भक्त प्राण प्रिय राम।
सप्रदाय शरणागती तिलक तुलसिका दाम॥

हे विधि जौ करिए खग वृक्ष मृगादि तौ औध विपीन मझार को।
ह्वै जल जतु जिऔ पै पिऔं बरवारि सुखी सरजू सरि धार को॥
वाहन श्वान वनाइय जो तो सवारी सिकारी श्री राजकुमार को।
जो नर तो रस रगमणी करु प्यार सखा रघुनन्दन यार को॥

अत्यज तो अवधेश को खास सफा करो भोर दुआर अगार को।
सूद्र तो सार करो सिय पीय को वैश्य बनो पुर औध वजार को॥
जो द्विज तो रविवश गुरू कुल ह्वै पढो राम विवाह सुचार को।
छत्रि तो श्री रघुवशहि मे रसरगमणी सखा राघव यार को॥

राम सखा रसरगमणी अलि है सिय के पद पंकज प्यार को।
है लघु वधु सु लच्छन लाल को ते नित लालत देत पुलार को॥
है रिपुशाल को वाल सहोदर भाइ सबै भरतादि कुमार को।
श्री अवधेश औ अम्बन को अति छोट सुढोट है गोद खेलार को॥

पायन को पेखि पुनि नखखन परेखि युग जंघा जानु जोहि लाग्यो लक ललचाय कै।
नाभी में नहाय आयो उर मे उरायन सो भेटि भुजदड गह्यो ग्रीवा गुणगाय कै॥
चाहिकै चिवुक को निवुकि रसरगमणी, वदन विलोकि भयो विवस वनाय कै।
लोचन निहारि रामचन्द्रजू के मेरो मन जकरिगो जुलुफ जजीरन मे जाय कै॥

पद कज परसि पराग ते पुनीत भयो जोहि नख जोति जाय नूपुर मे कसिगो।
ऊरु अवलोकि कटि किंकिनी सु-पीत पट ताकि त्रिवली को नाभि सुवासरा धसिगो॥
कढिकै उदर उर वाहु रसरगमणी भेंटि ग्रीवा भूषन चिवुक विन्दु वसिगो।
गचतै चित्त मेरो रघुनन्दन वदन चन्द चाहत चलन मन्द हासि फासि फसिगो॥

श्री राम रस रंग बिलास

अयोध्यानिवासी श्री सीतारामशरण रामरस रंगमणि जी का "रामरसरंगविलास" सिद्धान्त, साधना और साहित्य की दृष्टि से एक अनमोल मणि है। हितचिंतक प्रेस रामघाट वनारस सिटी से आषाढ सवत १९६७ मे छपा। आरभ मे मंगलाचरण, इप्ट वदना, गुरुवदना के १२ श्लोक हैं और उसके बाद आठ कवित्तो मे आचार्य की वदना है। इसके अनन्तर श्री रामनाम का यश, श्रीराम का रूपरस, श्री राम की कृपाभिलाषा, श्री रामायण की कथा (सार रूप में, अतिशय

सक्षिप्त), श्री राम के प्रति अनन्यता, श्री राम का माधुर्य, पुन नाम प्रभाव, श्री राम का नखशिख वर्णन, श्री सीता जी का गुण प्रभाव वर्णन, आदि विषय इस ग्रथ मे कुल १८५ कवित्तो मे वर्णित है। भाषा बहुत साफ, सरल एव मार्जित है। सिद्धान्त और साधना की दृष्टि से यह ग्रथ बड़े महत्त्व का है।

उदाहरण—

लोचन लाल के लोभी अली ललि कज विलोचन श्यामल फूले।
आनन श्री रघुनन्द कौ चन्द सिया चख चारु चकोरक भूले।।
जानकि जानकि जानकि जान पियारी के प्रीतम प्रान समूले।
यो रसरगमणी के हिया सेजिया वसिया रसिया सम तूले।।

श्री राम का ध्यान वर्णन

पायन को पेखि पुनि नखन परेखि युग जघा जानु जोहि लाग्यो लक ललचाय कै।
नाभी मे नहाय आयो उरमे उरायन सो भेंटि भुजदड गह्यो ग्रीवा गुणगाय कै।।
चाहिकै चिवुक को निवुकि रसरगमणी वदन विलोकि भयो विवस वनाय कै।
लोचन निहारि रामचन्द्रजू के मेरो मन जकरिगो जुलुफ जजीरन में जाय कै।।

पद कज परसि पराग ते पुनीत भयो जोहि नख जोति जाय नूपुर मे कसिगो।
उरु अवलोकि कटि किंकिनी सु पीत पट ताकि त्रिवली को नाभि सुधासर धसिगो।।
कढिकै उदर उर वाहु रसरगमणी भेंटि ग्रीवा भूषन चिवुक निन्दु वसिगो।
चितै चित्त मेरो रघुनन्दन वदन चन्द चाहत चलन मन्द हासी फासी फसिगो।।

श्री सीता जी का ध्यान वर्णन

आनन श्री शशि कोटिन की सुखमा सुखसार सिंगार सनी है।
श्री फल चपक वधुक कुन्द से अगन वाग वहार वनी है।।
कज मुखजन गजन नैन रमा रति जाके छटा कि कनी है।
राम धना धन प्रान ममा सियजू रसरगमणी कि वनी है।।

श्री सीताजी का प्रभाव वर्णन

करुणा वसीली भक्त जीव की उसीली,
भव दुख की नसीली वेद विदित जसीली है।
वदन गशीली शोभा मदन लसीली,
रस रग गुमशीली मति प्रीति दरशीली है।।
मन्द विहसीली मजु गौरवगसीली,
पिय हिय हुलसीली राम रसकी रसीली है।

दिव्य गुणशीली नव्य नेह की कसीली,
भव्य सुख पर सीली सिय स्वामिनी सुशीली है ॥

प्रणत उधारणी है बिगरी सुधारणी है,
दिव्य गुण कारणी है टारनी कलेसकी।
औगुन बिसारणी है भक्त काज सारणी है,
सुख को पसारणी है प्यारनी परेश की ॥
महल विहारनी है सोरहौ सिंगारनी है,
राम मनहारनी है धारणी रसेश की।
रसरंग तारनी कृपा की कोर ढारनी है,
विरुद प्रचारनी है सिया जू हमेश की ॥

प्यारी नैन प्यारे बसै प्यारे नैन प्यारी बसें,
उभै नैन चोरिवे को उभै नैन चोर है।
मुख मिथिलेश जा को मधुर मयक मोहे,
अवध किशोर चारु चतुर चकोर है ॥
राम घनश्याम मंजु बैन मोद दैन धुनि,
सुनि स्वामिनी को मन नाचै मत्तमोर है।
शोभा मकरन्द रसरगमणी मृग फूले,
युगल लहि नेह भानु मोर हैं ॥

कनक भवन में प्रिया प्रीतम की झांकी

सेत अगराग लाए रामलाल बसे गौर गोरी,
श्री किशोरी जोरी एक ही प्रभा की है।
सीस ताज चन्द्रिकादि भूषन विराजे लाजें,
अग लखि शोभा काम रति औ रमा की है ॥
आनन पै अमित हजार चन्द्र बलिहार,
नैन निहार मार-मारनि मना की है।
छाकी रसरगमणी सुखमा सिंगारता की,
कनक भवन प्रिया प्रीतम की झाकी है ॥

राम झाँकी विलास

श्री राम रसरगमणि जी के इस छोटे-से ग्रंथ मे भगवान श्री राम के शैशव से लेकर सिंहासनासीन होने तक के समस्त रूपो की झाँकियाँ है जो दर्शनीय है। काव्य का सौष्ठव और

भावो की सुकुमारता इन झाँकियो को और भी मधुर बना देती है। यह ग्रथ स० १९६६ वि० के ज्येष्ठ श० पचमी को पूरा हुआ था जैसा इसकी पुष्पिका से पता चलता है।

श्याम अग बसन सुरग सोहै सग बधु नाचत तुरग चाल चलत चलाकी है।
ककन करन रसरगमणी माल उर भाल मे तिलक मजु मौर शिर ढाँकी है॥
चन्दन मुख मन्द मन्द हँसनि आनन्द भरी नैन अरबिन्द छवि फन्द मनसा की है।
झाकी जेहि झाकी यह बाकी रही ताकी कहा राम दुलहा की बर बाकी बनी झाकी है॥

बारिद बरन बपु बिज्जु सो बसन बन्यो बाण बाणासनवत बाहु बीरता की हैं।
बिविध बिभूषन बिशाल बनमाल बनी बाम मे बिराजती त्यो बेटी बसुधा की हैं॥
बिधु सो बदन बर बारिज बिलोचन है बिहसनि बडी बाधा बिदरनि बाकी है।
बसै रसरग के बनज बुधि बोध बीच बिश्व बीर रामकी बिमल बाकी झाकी है॥

सीता तडिता के तन बसन समान घन घनश्याम तन घट दुति तडिता की है।
मानो कल नील कज शील पुज सिया नैन लाल कजहू ते मजु आँखैं रसिया की है॥
पैखै रसरगमणी शोभा दोऊ दोहुँन की मद मुसक्यात मोद प्रीति मति छाकी है।
तीनौ लोक झाकी बुधि कतहू न झाकी अस राघव सिया की जस बाकी बर झाकी है॥

जुगल किशोर गौर श्यामल सनेह सने ललित सुबा हुकल कठन कसे रहै।
केलिके उछाह छवि छाके दोऊ दोहुन के लूटत अनन्द लीला लोभित लसे रहै॥
फेरत विलोचन विलोल त्यो विनोद माते राते रसरगमणि हेरत हँसे रहै।
आनद के कद दोऊ चद रघुनद सिय सरस हमारे हिया कमल बसे रहै॥

सियबर केलि पदावली

श्री ज्ञानाअलि सहचरिजी

सियबर केलि पदावली

रसिकोपासको का यह परम प्रिय ग्रथ भगवान रामचन्द्र और भगवती जानकी महारानी के परस्पर अरसपरस, आमोद-प्रमोद तथा लीलाविलास और प्रणय विहार का एक उत्कृष्ट आकर ग्रथ है। इस शाखा के उपासको मे इसका विशिष्ट आदर है। ज्ञाना अलिजी ने आरभ में अपने स्वरूप का परिचय दिया है। यह आत्म परिचय परम रहस्यमय है और प्रेम में भगवान और भक्त का कितना प्रगाढ रसमय अपनत्व हो सकता है उसका बहुत ही भव्य निदर्शन है। तदनन्तर राम जन्म की बधाई और जानकी जन्म की बधाई के पद है। इसके पश्चात् 'लगन' की बडी ही मार्मिक व्याख्या है। यह व्याख्या साहित्यिक दृष्टि मे भी विशेष उल्लेखनीय है। इसके बाद बारहमासा और षट् ऋतु में युगल सरकार के अरस परस, झूलन, नृत्य, वन विहार, जल विहार, होली के पद है। प्राकृतिक छटा की पृष्ठ भूमि मे इन नानाविध लीलाओ का जो स्वरूप ज्ञाना अलि ने प्रस्तुत किया

है वह साहित्य और साधना दोनो ही दृष्टियो से सर्वोत्कृष्ट है। इस प्रकार इस ग्रथ मे ४०८ पद है। अन्त में अष्टयाम सेवा कुज द्वादश विलास पदावली है जिसमे इस उपासना का तत्त्व बहुत सक्षेप मे, सार रूप में वर्णित है। यह ग्रथ इस उपासना के लोगो में परम आदरणीय है और साहित्यिक दृष्टि से भी अन्यतम है, इसलिए इसका विशेष परिचय उदाहरणो द्वारा देने की चेष्टा हो रही है।

यह ग्रथ मुशी नवलकिशोर के छापाखाने मे सन् १९१४ ईसवी मे छपा। स्वय लेखक ने ग्रथ के अत मे लिखा है—

अगहन सुदी सुदूर तिथि शनिवासर सुख मूल।
पवन सुवन दिन जन्म कर जानि समय मनु कूल॥
सियवर केलि पदावली ग्रथ समापित कीन।
ज्ञाना अलि श्री अवधपुर भक्ति निछावरि लीन॥

अपनी विनय का परिचय भी अन्त मे ज्ञाना अलि सहचरि जी ने कितने भोले शब्दो मे दिया है—

रूप माधुरी गुण कथन नाम युगल अभिराम।
धाम अवध मिथिला कथा यह जीवन विश्राम॥
ताते कछु मन मनन करि ज्यो त्यो मन समुझाय।
गाय लाडली लाल यश निज मति सरिस्स सोहाय॥
पिंगल काव्य न कोप गति गण अरु अगण न होस।
यह सेवा फल सिय कृपा निश्चय परम भरोस॥
हे स्वामिनि सिय प्राणप्रिय प्रिय वल्लभा किशोरि।
रघुवर सियवर रूप निधि गुण निधि मय गति तोरि॥

हे जीवन धन लाडिली
हे नृप लालन मीत।
हे मन भावन भामिनी।
दीजै युग पद प्रीत॥
हे नट नागर नागरी,
छवि आगरि गुण खानि।
हे शरणागत रक्षिका
निज चेरी करि जानि॥
हे शशि वदनी छवि सुधा
अधराधर मृदु वैन।

पिय चकोर चित लुब्ध नित,
पियत माधुरी नैन॥
हे सुखमाकर साँवरे,
श्याम सलोने लाल।
मृगनयनी छबिजाल में।
फँसे रहौं ज्यो माल॥
हे गुण गाहक नेह निधि
जग जीवन विश्राम।
सियारमण सुखमा भवन
वड भागी सुखघाम॥
हे रसिकन जीवनजरी
युग युग पूरणचन्द।
घटौ वढौ कवहूँ नही
नित्य सच्चिदानन्द॥

आत्म परिचय

चन्द्रकान्ति मम मातुपितु, शत्रूजित नृप जान।
चारुशिला भगिनी बडी, ताकी अनुचरि मान॥
ज्ञा कहिये जो गोप्य रस, ना निश्चय जिय जान।
ताकी शरणागत भई, ज्ञाना अली वखान॥
अष्ट सखी सिय मुख्य है, तिनमह ज्ञाना जोय।
ताकी सहचरि द्वितिय वपु, ज्ञाना अली सो होय॥
ज्ञाना ज्ञान न जान कछु, ना निषेध करि दीन।
केवल मियवर शरण गहि, तासो गुनत प्रवीन॥
ज्ञान अखण्ड अनादि अज, जनकलली को पीय।
तासो वरी निशक ह्वै, ज्ञाना सहचरि सीय॥
अज अखड श्री रामवर, मूरति विश्व निवास।
तासो वरि गुरु कृपाकरि, ज्ञाना ज्ञान प्रकास॥
श्री मिथिला नैहर समुझि, मासुर अवधहि जानि।
दोउ घर मुखद मुसर्वदा, रहिहौं जह मनमानि॥

राम जन्म की बधाई

वारे के श्याम सनेहिया सुनिये नृपलाल।
सूरति प्यासी अखिया अति बिरह विहाल॥
मिठि मिठि बतिया प्यारी चितवनि छबि जाल।
ज्ञाना अलि बिहसनि तेरी निशिदिन हियशाल॥
चतुर चूडामणि प्यारो नृपराज दुलारो।
बोलैं मधुर रस बतिया यौवन मतवारो॥
चितवनि शर विपसानी जानी हो गुमानि।
ज्ञाना अलि पिय मन वसिया रसिया चितचोर॥
रसियाने कैसी कीन्ही वावरि करि दीन्हि।
इकतौ मैं वारी भोरी दूजे वय थोरि॥
जुलमी जगत उजियारो कारो नृपबारो।
ज्ञाना अलि पिय छवि प्यासी सियचरण उपासी॥

श्री जानकी जन्म की बधाई

तित नई नइ आनद बधाई।
बड़े भाग नृप भवन भले दिन सुता भई सुख दाई॥
निमि कुल सुधा समुद्र रमासी प्रगट भई सुखमा गुणा रासी।
असुरन मारि सुरन की जीवन विश्व विगद यशछाई।
जीवन जरी जगत की स्वामिनि अग अग छवि द्युति बहु दामिनि॥
उमा रमारति देखि लली छवि तनमन धन वलिजाई॥
सुन्दरि सव गुणखानि सलोनी ऐसी कहू भई नहिं होनी।
नवषट चारि अठारह चौदह ज्ञाना अलि यशगाई।

सखी री आजु भई मन भाई।
सब गुण खानि सलोनी सुन्दरि बेटि सुनैना जाई॥
बहुत दिनन नृप शिव धनु पूज्यो सो फल प्रगट देखाई।
पुर प्रमोद केहि भाति सराहौ रानी कोखि जुडाई॥
सुनि सखि वचन साजि सव मगल मणि गण विपुल लुटाई।
गज गामिनि दामिनि सी दमकत उर प्रमोद अनमाई॥
जाको निगम नेति कहि गावत शकर हृदय चोराई।
ज्ञाना अलि तेहि प्रगट देखियत निमिकुल सुयश बढाई॥

लगन

लगन लागि मोरी तोरी बारे के सनेहिया श्याम।
लाज गई गृह काज न भावै सुधि बुधि भइ मोरी॥

सोई जानै जाके लगी, बिना लगे क्या होय।
लगन विना पिय नहि मिलै, कोटि करै जो कोय॥

लगन हमारे श्याम सो, जाको लागी होय।
ज्ञाना अलि सोई सगो, और नही जग कोय॥

को जानै पिय पीर तुम्हे विनु नव योवन जोरी॥
लगन करो तो लागि रहौ, तन मन आठौ याम।
लगन में तोरो क्या लगै, केवल सुमिरन राम॥

लगन विना लाखो यतन, करि पचि मरै अयान।
लगन लगी जाके हिये, सो अति चतुर सयान॥

आशिक भई पिया अपने पर यामे क्या चोरी॥

परि लखै पीतम सोई, सदा जिये सो जीव।
लगन सोई लागी रहै, ज्यो चातक जल पीव॥
प्रीति परीक्षा जानिये, पिय विनु कछु न सोहाय।
पीर सहै पिय पिय कहै, परी परी पछिताय॥
ज्ञानाअलि छवि फन्द परी हो कसी प्रेम डोरी॥

सवलिया ने ना जानो क्या कीन।
सुधि वुधि सब हरि लीन॥
नेकु चितै चित चोरि मोरि मुख जनु जादू करि दीन।
छलि करि विवश कीन मन भावन चतुराई में पीन॥

लगन विना मन नहि लगै, जप तप कछु न सोहाय।
लगन विना दृढ प्रीति नहि, ज्ञानाअलि पछिताय॥
विवश भई छवि सरस पिया, लखि जाहि गुणन प्रवीन॥

रसिक शिरोमणि सावरो, मेरो जीवन प्रान।
चेरी ह्वै तेरी रहो, यह मेरे मनमान॥
ज्ञानाअलि अववेश लल्न छवि लखि को न होय अधीन॥

सवलिया हो लगन लगी दिन रैन।
जब लागी तब काहु न जानी अब लागी दुख दैन।

भौह कमान नयन रतनारे मनहूँ मदन शर पैन ॥
फिरत विहाल हाल कासौ कहौ विनु देखे नहिं चैन।
ज्ञानाअलि दिशि नेकु चितौ हसि करि कटाक्ष मृदु सैन ॥

सिया बर हो कैसि लगाई प्रीति।
प्रीति लगाय निठुर ह्वै बैठे किन सिखई यह रीति।
कासो कहौ सुनै को मेरी यह तेरी अनरीति।
ज्ञानाअलि ऐसी नहिं चहिये ज्यो वारु की भीति ॥

प्रीति की रीति नियारी करु थारी।
प्रीति सराहन योग मीन को बिनु जल मरण विचारी ॥
ज्यो चातक स्वाती जल चाहत पियत न सुरसरि बारी।
ज्ञानाअलि सियवर मन भावत जग सब लगत उजारी ॥

कहौ सजनी श्याम सुन्दर की बातें।
जासो कटै दिन रातै ॥
जबते गये कुवर मिथिलाते विरह जरावत गातै।
कहँ वह हसनि विलोकति तिरछनि बोलन चलनि सोहातै ॥
चरवण पान पीक झुकि डारनि मन्द मन्द मुसुकातै।
घरि पल छिन छिन कल्प सरिस दिन यामिनि मोहिं विहातै ॥
ज्ञानाअलि कब सो दिन ऐहे सुनिहो अवधते आतै ॥

दृगन भरि श्याम सुरति विनु देखे।
होत न चित मे चैन सखी री बीतत पलक कलप के लेखें।
जब आवत भुज अस घरनि सुधि होत हिये विच विरह विशेखे।
करकत हिये हहरि हारी हौ प्राण रहो अवशेखे ॥
सुन्दर मधुर माधुरी मूरति मधुर मनोहर बेखे।
ज्ञानाअलि दिल्दार यार विनु दुखी सुखी छवि पेखे ॥

हमारी सुधि लीजै राजिव नैन।
दृग भरि हेरि फेरि असन भुज लावो हिये सुख दैन ॥
ललकत मन छिन छिन मिलिबे को विनु देखे नहिं चैन।
आरत हरण वेद यश गावत क्यो न सुनौ मम बैन ॥
रूप सुधा छवि दृगन पिआवो करि कटाक्ष मृदु सैन।
ज्ञानाअलि पिय विरह बावरी नहिं सोहात दिन रैन ॥

अवध नृप ललन बिना रतिया।
नहिं भावै बतिया जरै नित छतिया।।
पीतम रसिया वे दिल बिच बसियाहो।
हाथ नहिं आवै सदा तरसावे लखै को घतिया।।
ज्ञानाअलि गलियन आवै।
नइ नइ तानै गावै दृगन दरशावै करै रस बतिया।।

दरस रस प्यास पिया तेरी।
रसिक रसखानि सकल सुखदानि अरज मेरी।।
दिल का मेहर वे जाहिर जग उजियारा।
अवध नृप प्यारा प्रेमवश हारा विहसि हेरी।।
ज्ञानाअलि माधुरि तेरी सुख सुखमा की ढेरी।
जानि सिय चेरी कञ्जकर फेरी राखु नेरी।।

जानि हो गुमानि मैंने तेरि मुसुकानी।
भौंहे चाप सधानि नयन शर मारत तकि तकि तानी।।
करकत हिय विच घाव न सूझै कासो कहौ मैं बखानी।
ज्ञानाअलि दिल्दार यार की घाते सब मनमानी।।

पावस पिय मिलन आश सुनि सुनि घन धुनि अकाश दरशत पिय छवि प्रकाश मन मयूर नाचे री।
दामिनि दमकत न थोर रिमि झिमि बरसत झकोर कोकिला कलाप मधुर दादुर धुनि भाचे री।।
झिंगुर झुम झननननन पवन चलत सुसननननन लेत तान तूतननननन सप्त स्वरन साचे री।
ज्ञानाअलि चित विलास पावस ऋतु पिय निवास आये लखि हिय हुलास बिरह जरनि बाचे री।।

ललना नवेलि लाल मनहुँ नवल तरु तमाल आलवाल कनक बेलि चहूँ ओर छाई है।
सुन्दर मुख छवि रसाल चितवत लखि दृग निहाल अनुपम छवि हृदय शाल जीवन धन पाई है।।
प्यारी छवि नवल जाल प्रियतम मन फसि मराल मुक्तागुन मञ्जुमाल निशि दिन यश गाई है।
ज्ञानाअलि चित चकोर प्रियतम दृग दृगन जोर पीवत छवि रम न थोर क्षण क्षण सरसाई है।।

सखि उमडि घुमडि डरवावे।
कारे कारे बदरा गरजि गरजि करि प्रियतम छवि दरशावे।।
पिय पिय रटत पपीहा प्यारी दादुर मोर शोर सुनिकै झनन झनन झींगुर झनकारै त्रिविध पवन सरसावे।
अति अधियारी कारि बिजुलि चमक न्यारि घुम घननन घहरावे।।
बरसत बारि सुखकारि मनहारि भारि घन घमण्ड करि छावे।
आवन अगाढ सुनि पिय मन भावन को मन अनन्द सुख पावे।।
प्रेम तृण अकुरन विन दरसन लागे ज्ञाना अलि अति मन भावै।।

देखो कारे कारे बदरा प्यारे।
मनहुँ पिया घनश्याम मिलन को उमगि चले मतवारे॥
घूमि घूमि महि लूमि झूमि करि घनननन घहरावै।
बडे बडे बूदन बरसै उमडि चले नदनारे॥
महि हरियाइ भाइ द्रुमन सुमन शोभा सरयु पुलिन छवि छाई।
घन घोर शोर सुनि मो कुहुँकन लागे नचत महा सुख भारे।
देखि ऋतु पावस सरस सरसानि हिय पिय प्यारी मन भावै।
ज्ञानाअलि कनक अटारि चढि हेरि जब गावत स्वरन सम्हारे॥

अरज मोरि मानिले प्यारी पिय सग ऋतु सुख लीजिये।
अबकी पावस सुख मरसावत मन भावन वग कीजिये॥
नइ नइ तानन गाय रगभरि अवराधर रस पीजिये।
मुख मयक छवि सुधा सरोवर चप चकोर सखि लीजिये॥
श्री प्रमोदवन लता निकुञ्जनि प्रियतम रुचि सुख दीजिये।
ज्ञानाअलि मन भावन पिय सग सरस परस सुख भीजिये॥

रसिक भये सिय रूप लखि, रसिया नाम कहाय।
तासो रसिकन के हिये, सिय वर रूप सुहाय॥
यक टक रहत निहारी॥
प्राण के हरैया दोऊ चित्त के चोरैया सजनी छवि दरशैया लखि शोभा न्यारी

प्रिय छवि मे प्यारी रगी, तासो श्यामा नाम।
प्यारी छवि मे पिय रगे, तासो प्रियतम श्याम दोउ रसिक विहारी॥
लखि पिय प्यारि शोभा ज्ञानाअलि मनलोभा जम्यो उर प्रेम गोभा फिरै मतवारी॥

रसिक रस झूलिये झुलना मधुर मधुर हुलना।
डरपत हिय कम्पत तन प्रियतम वयस मधुर तुलना॥
वयस मधुर सुखमा सदन, मदन कोटि छवि अग।
सुख सागर नागर नवल, नवला नवल उमंग॥
सुन्दरि श्यामा श्याम मनोहर अग अग छवि खुलना।
रसिक राज रघुराज सुत, रस लोभी रस खान।
रस गाहक रस वस करन, रसिकन जीवन प्रान॥
ज्ञानाअलि वलिहारि तुम्हारी क्या भूले भुलना॥

सजनी सावन सरस सोहावन।
झूलन आई पिय प्यारे सग सिय प्यारी छवि छावन

नव तरु लता मधुर मृदु कुजन मधुर मधुर ध्वनि सुनत सोहावन
नतट मयूर कोकिला गावत मन भावन चितचावन ॥
नील पीत घन तड़ित बरन तन मदन कोटि रति छवि सरसावन।
ज्ञानाअलि बलि बलि झूलन लखि गहि पिय कटिपट दावन ॥

रिमि झिमि बुदन बरसत बारी।
बन प्रमोद सरयू तट विहरत रघुबर सिय सुकुमारी ॥
ज्यो ज्यो भीजत सुरग पाग पिय त्यो त्यो सिय तन सारी।
झीने वसन अग अग भीने वह सुख सरस बयारी।
दुति दमकत दामिनि घन गरजत डरपि अक पिय धारी।
ज्ञानाअलि पावस उमग रसिकियो वश करि मतवारी ॥

रसिक दोउ रहसि रहसि झूलैं।
सरस ऋतु पावस सुख मूलैं ॥
नवल तरु लता ललित दरसैं।
उमड घन घटा अटा परसैं ॥
वडे वडे बूदन नित बरसैं।
झुलावे झूलैं सुख सरसैं ॥

अलि चपलावलि अचल ह्वै, पिय प्रियतम घन पाय।
नित नव सुख वरसन लगी, झूलन गाय बजाय ॥

सुनत पिय प्यारी चित्त फूलैं।
नवल सिय रसिक लाल झाकी ॥
बिलोकनि अलवेली वाकी ॥
नेकु जेहि ओर बिहसि ताकी।
सोई वडभागिनि मति पाकी ॥

श्री सरयू तट निकट ही, सोम श्रवन वट छाह।
नाह नेह ज्ञानाअली, वढ़त धरे गलबाह ॥
यही सुख प्रियतम अनुकूलैं ॥

सिय रसिक विहारी झूलैं।
सावन कुञ्ज सरित सरयू तट वन प्रमोद मुद मूलैं।
नख सिख सुमन सिंगार मजोरी अवध चन्द्र चन्द्रानानि गोरी निवछावरि रति मदन करोरी तेहि सम एकन तूलैं।
सिय झूलैं पिय झूमि झुलावैं निरखि निरखि छवि वलि वलि जावैं मन भावैं कटि लचकनि मचनि हरपि हरत हिय शूलैं ॥

जागरि वयस शिरोमणि सारी सिय प्यारी सब राज कुमारी लिये सोज ठाढी चहुँ ओरनि सेवा सुख अनुकूलै।
मगनयनी कलकोकिल बयनी गजगमनी सब रति मद मदनी ज्ञानाअलि सब निमि कुल छवनी छिन छिन छवि लखि फूलै।।

वीरे झूलौ रसिक रस वरसौ।
तुम घनश्याम सिया द्युति दामिनि अरस परस तन परसौ।
नवला नवल रूप रसप्यासी छवि अमृत दै दृग सुख सरसौ।।
ज्ञानाअलि गरजी अरजी सुनि भुज असन धरि नित नव दरसौ।

झूलन झूलै नवल रस रसिया।
श्री नृप नन्दन जनकनन्दनी गौर श्याम मृदु मूरति रसिया।।
तरु तमाल जनु कनक वेलि मिलि भुजबली उरझनि मनवसिया।।
ज्ञानाअलि अभिलाष नई नित कीजिय सिय पिय चरणन वसिया।।

रसिक बिहारी सिय सुकुमारी।
वीरे झुलावो गावो प्यारी को रिझावो लै बलिहारी।।
तुम गुण रूप उजागर नागर नागरि नेह सम्हारी।
सिय मुख चन्द्रचकोर चोरपिय छवि अमृत अधिकारी।।
गोय गोद झूलत रस लम्पट रसिकन हित सुखकारी।
ज्ञानाअलि सहचरि यश गावत जागि सुभाग हमारी।।

झमकि झुकि झूकन झूलैरी।
तन गौर श्याम अभिराम राम रमणी छवि खूलैरी।
सजि वसन विभूषण सुमन माल ललना गण गावत पद रसाल
मुख चन्द्र विलोकति भइ निहाल दृग कुमुदिनि फूलैरी।।
कमला कल कोकिल वरत गान विमला बीणागति अति प्रवीण
सुभगा जु सप्तस्वर करि अलाप भुज असन मूलैरी।।
ज्ञानाअलि दम्पति रस विलास नित कनक भवन कुजन प्रकास
भाविक जन जानत हिय हुलास नित यहि सुख तूलैरी।।

अनोखी रसिक पिय प्यारी।
झुलन चली संग सुकुमारी।
सुरंग पिय पाग मनहारी।
चन्द्रिका सीय शिर धारी।
छबीली लाडिली सारी।
श्याम कटि पीत पटवारी।

देव नर नाग नृप वारी।
सबै निमिवश उजियारी।
झुलावै झमकि झुकि झारी।
गगन ध्वनि गान रसकारी।
भयो रसरग अति जारी।
परसपर झूलती नारी।
ज्ञानाअलि निरखि मन भारी।
करौं क्या प्रेमगति न्यारी॥

अवकि सावन सुख सौगुन परमौ पिय प्यारी सग झूलत दरसो।
श्री प्रमोद बनलता निकुजनि कहि न सिराय माधुरी बरसो॥
सिय दामिनि घनश्याम मनोहर नवल उमग अग भुज परसो।
नवला नवल झुलावै गावै मधुर मधुर ध्वनि सातो स्वर सो॥
घन ध्वनि दामिनि दमकि दशौ दिशि पकरि श्याम श्यामा कर करसो।
ज्ञानाअलि पावस सुखमा सुख पिय प्यारी सग निशिदिन सरसो॥

झुलावैं झूलैं झुकि झेली।
झनन झनन झीगुर झनकारे अति कौतुक केली।
उमडि घन घुमडि घेरि छाये।
ज्ञानाअलि सावन मनभावन नित नव सुख रेली॥

नवल दोउ झमकि झूमि झूले।
नवल हिंडोल कुञ्ज द्रुम फूले श्री सरयू कूले॥
नवल तन भूषण छवि पावै।
नवल वसन नव नेह परस्पर सखियन सुख मूले॥
नवल नवला वहु सग सोहै।
नखशिख रूप अनूप मोहावन स्वामिनि सम तूले॥
नवल घन चहूँ ओर छाये।
ज्ञानाअलि रस भाव वृष्टि लखि मिटि गइ हिय शूले॥

हिय विच खटकैरि सजनी निशि दिन पिय की बात।
सावन आवन ह्यो मन भावन मो दिन बीते जात॥
झुलिहो झूमि झमकि झुकि पिय सग परसि मनोहर गात।
ज्ञानाअलि अभिलाष मिलन की आइ मिले मुसुकात॥

रसिया ना मानै सजनी झूलत मन न अघाय।
सोवत सजनी अपने भवनवा औचक मोहि जगाय॥

वन प्रमोद कुजन कुञ्जन मे नित उठि झूलत आय।
ज्ञानाअलि सिय पिय सग झुलिहो अभय निशान बजाय॥

प्यारे दोउ हिलि मिलि झलै सखी नवल हिंडोर।
सावन सुभग सोहावन राजेत घन गरजत अति शोर॥
दादुर मोर पपीहा बोलत सुनि ललकत मन मोर।
प्रियतम प्राणप्रिया तन हेरत सिय निरखत पिय ओर।
दोउ असन भुज धरे परस्पर रति मनमथ चितचोर॥
सीतारमण राम रमणी सिय नेह भरे छवि फूलै।
ज्ञानाअलि लखि युगल छैल छवि तन मन धन सुधि भूलै॥

नवल रसिक झूले प्यारी सग लीने।
मनसो मन दृग सो दृग दीने॥
चारुशिला अलि हरषि झुलावे गावें तान नवीने।
बजत मृदग ताल सारगी लेत तान स्वर झीने॥
वढत उमग अग अग क्षण क्षण पिय प्यारी रग भीने।
ज्ञानाअलि छवि निरखित ठाढी सो समाज वितकीने॥

झूलत सिया रघुकुल चन्द।
प्रेम भरि अनुराग बाढ़्यो बदत नाना छन्द॥
हास वीचि विलास उमग्यो शब्द सुखमा कन्द।
पद्मबदनि यह निरखि शोभा देवगण आनन्द॥

झूलत रसिक मणि रघुलाल।
झुण्ड झुडनि चली भामिनि सोह गती मराल।
देखि झूलत सिया सियवर परी छवि के जाल।
देत झोका हरषि उर सब निरखि फूलत बाल।
निरखि नयनन परम शोभा पद्मबदनि निहाल॥

आज प्रियतम सग झूलोगी।
अबकी सखि सावन छवि छावन पिय के हिय फूलोगी।
नभ घन घमण्ड दामिनि दरसै रिमि झिमि बूदन बरसै जियरा तरसै
करिहौ सोय तन रसिया रस तूलोगी।
नव साज समाज सखि सजि कै गृह काज लाज सबही तजिकै मन भावन दावन
कर गहि कै नइ नइ गति खूलोगी।
सुन्दर सुख सानी सिय बतिया ज्ञानाअलि सुनि हुलमत छतिया मनमोहन जोहन
योग दोऊ गोहन लगि हूलोगी॥

सावनवा ऐलोरे झुलनवा झुलिहौ राजनवा।
सावन ऐलोरे छवि दरशैलो सजनी रिमि झिमि बुन्द बरसै लोरे।
ज्ञानाअलि मुद सरसैलो जिय की जरनि बुझैलो मन भावन सुख मैलो रे।

झुलनवा दीजै थोर धीरे झूलौ झुलनवा।
सिय सुकुमारी वे जनक दुलारी प्यारी तुम रघुवंश किशोर।
अधर सुधा रस पीजै पिय प्यारी सुख दीजै लीजै गरवा लगाय पिय झुलनवा मेटै मोर।।
ज्ञानाअलि झूलि झुलावै वहु मदिखन्त्र वजावै कोउ सखि तान सुनावै घन ध्वनि दामिनि शोर।।

आजु रसकेलि मचावोगी।
इन पिय प्यारे को रस बस करि हिय तपनि बुझावोगी।
करि नव सप्त शिंगार मनोहर अग अग भूषण सजिकै
गान बजाय लगाय लाल उर मग मचावोगी।
तनु तनु तुम तुम तननननन छुम छुम छुम छुम छुमछननननन
तदियन दिरना तुम तन दिरना गति दरशावोगी।
सुनि सिय वानी सखिन मोहानी हिय हरषानी मन ललचानी।
ज्ञानाअलि यश गाय गाय सिय पिय मन भावोगी।

नटत नटवर नटि नागरिया।
सग सोहै अनोखी नवल वाल गुण गुण रूप उजागरिया।
लखि शरद रैनि छवि छाय रही प्रियतम प्यारी गलबाह गही।
मुख निरखि निरखि हिय हरखि हरखि नृत्यत सखि सागरिया।
मुख मयक रस पान करै मुसुकान परस्पर प्रान हरै।
जव उघटत सगीत गीत भई रस बस वावरिया।
क्षण क्षण नई नई गति लावे दोउ मिलि गावें स्वरन मिलावें।
ज्ञानाअलि गुण गावे मन भावे पिय प्यारी छवि आगरिया।।

सजन दृगन लेत मन मयनन।
सुख सागर नागर छवि आगर प्रेम विवश कहि कहि मृदु वयनन।
पिय वल्लभा प्राणधन जीवन जा विनु निशिदिन क्षण पल चयनन।
त्यो चकोर चित चोर वदन शशि पियत सुधा छवि रस भरि नयनन।
जग जीवन जानकी रमण छवि कवि कोविद गावत मति पयनन।
ज्ञानाअलि दोउ छके रूप रस सुख सुखमा अग अग भरि पयनन।।

रसकेलि कलोल अमोल लोल दोउ कनक अजिर नृत्यन रसिया।
आवेश रतन मिथिलेश लली छवि छैल छबीली मन वसिया।।

सम वयस किशोरी सहचरिया दमकै तन दामिनि द्युति लसिया।
गति गान तान लै सप्त स्वरन उघटत सगीत नइ नइ गसिया।।
अनुपम मयक युग मध्य चहूँ दिशि छवि ललना उडूगण दसिया।
ज्ञानाअलि देखत सुख समाज अस को न फसै यहि रस फसिया।।

जगजीवन जानकि जान शरद सुखदानी।
विहरत अशोक वन सग सीय वरदानी।
ज्यो कञ्चनलता तमाल तरुन तरु जानी।
असन भुज लपटी वेलि सदा अरुझानी।।
शिर क्रीट चन्द्रिका धरनि मन्द मुसुकानी।
नखशिख भूपण वर वसन निरखि मनमानी।
सुखमा समुद्र सरि उमगि बही रसखानी।
ज्ञानाअलि पीवत नित तृपा नहिं भानी।।

नृत्यतर सकेलि निधान सखिन संग नीके।
धन जीवन प्राण अधार रसिक जन जी के।।
श्रुति कुण्डल करत कलोल कपोलन पीके।
लखि मुकुट लटक शिर क्रीट अलिन मन वीके।।
अलकावलि अलिमुख कुञ्ज रसिक रस हीके।
रसमत्त भौंह धनु नैन पैन शर ठीके।।
कटि पीताम्बर की कसनि हसनि सगती के।
लखि लगत कोटि नट नटनि मन्दगति फीके।।
अस नटवर वेष वनाय हरत मन सीके।
ज्ञानाअलि ऐसी कौन करति त्रय लीके।।

नित नइ नइ केलि कलोल लोल दोउ वन प्रमोद डोले।
रस लम्पट सुखमा सोहन छवि सोहन मन मोहन प्यारी पियगोह मृदु हसि हसि बोलैं।
चटक चादनी छटा न थोरी पियमुख शशि सिय रसिक चकोरी असन भुजतोलैं।
नव सनेह सुख रस की वतिया हाव भाव दृग फेरनि गतिया रसदतिया खोलैं।
ज्ञानाअलि सिय पिय रसिक विहारी विहरत शरद रैंनि उजियारी सखियन मन मोलैं।।

आजु रस रास तैयारी। सुदिन सग सीय सुकुमारी।
मगल भरि कनक करथारी। कलश कल सुरभिवरवारी।
साजि नव सप्त मनहारी। नवल तन लाल की प्यारी।।
सवै निमिवश उजियारी। सलोनी सुमुखि छवि भारी।।
यन्त्र तन्त्रादि करतारी। सप्त स्वर सहित लयवारी।।

मूर्छना मुरनि हँसिनारी। निरखि मखि मवै मतवारी॥
ज्ञानाअलि सौज सजि सारी। पिया हित मिलन चलि झारी॥

रसिक रस खानी अब हम जानी।
चितवत ही चित्त चोरि भोरि करि मन मृग गति मद भानी।
मुख सुखमा छवि मदन मोहावन बोलत अमृत बानी।
करि मन मधुप अवर रस पीजै यह मेरे मन मानी।
हास विलास रास मण्डल को सुनि मन मुदित जुडानी।
ज्ञानाअलि तजि लोक लाज गृह सियवर हाथ विकानी॥

शरद सुखदानी मेरो छैल गुमानी।
नटवर वेप धरयौ प्यारो सग मकल गुणन की खानी॥
सुन्दर श्याम माधुरी मूरति सिय सुन्दरि पटरानी।
चितवनि हरनि सरनि तन मन धन नहिं राखत कुलकानी॥
उपमा रहित सरस सुखमा छवि देखत मति बौरानी।
बाणी मौन थकित कवि कोविद रूप सुधा मति मानी॥
जुलमी जवर जगत यश जाहिर तिहुँ पुर नाम निशानी।
ज्ञानाअलि जेहि ओर चितै हँसि मो यहि रस लपटानी॥

आयो वसन्त सोहागिनि के हित जाको सोहाग तिहूँ पुर छायो।
और है कौन कहौ जग में जेहि को यश वेद पुराणन गायो॥
सीय सहेलि नवेलि सबै अलवेलि भरी गुण रूप सोहायो।
और कि काह चली सजनी जिन राजकुमारहिं नाच नचायो॥
जाकी कटाक्ष बिलास अनोखि पिया चित चोर को चित्त चोरायो।
ज्ञानाअलि मन भावन को गहि आजु सियाजु को भेंट करायो॥

खेलै वसन्त सिया जु पिया सग अग उमग महा सुकुमारी।
कोटिन राजकुमार कुमारि दुहू दिशि भीर भई अति भारी।
केशरि रग अबीर कुमकुमा धुधि गुलाल छई अधियारी।
एक सो एक महा रगरी पिचकारिन मारे प्रचारि प्रचारी।
रग तरगिनि भावत रग दुहुँ दल कूल समूल उखारी।
लाज भगी भयमानि अभागिनि गावहिं गीत रसीली गारी।
भीजि गये पिय के पट पीत सिया जु कि भीजि गई तन सारी।
ज्ञानाअलि सुख सिन्धु परी नहिं सूझ कछू चहुँ ओर निहारी॥

नवल दोउ खेलत फाग अरे।
रघुनन्दन श्री जनक नन्दनी असन बाहु धरे।
मन सो मन दृग दृगन लरावत कर सो कर पकरे।
अबिर उडावत दोउ मिलि गावत गति स्वर एक करे।
उर लपटावत कर छुटकावत पिय सिय फन्द परे।
ज्ञानाअलि यह युगल माधुरी यकटक ते न टरे।।

प्यारी प्रियतम दृग अलसाने।
उनिदे मनहुँ साझ सरसीरुह रतनारे मदसाने।
क्षण मूदत क्षण खोलत नैना सखियन रुचि पहिचाने।
सुमन सेज मण्डप सुमनन रचि लखि सिय पिय मनमाने।
असन भुजधरि बैठि सेज पर मन्द मन्द मुसुकाने।
ज्ञानाअलि लखि यह दम्पति छवि धन जीवन निज जाने।।

लाडिलि लाल जगे जग जीवन पिय प्यारी दोऊ छवि जाल।
मनहुँ तमाल तरुन तरु के सग लपटी कनक लता सियबाल।।
छूटी केश अलक अरुझानी बिथरि गई मोतिन मणि माल।
असन भुज आलस रसमाते मधुर मधुर बोलत हिय शाल।।
अरस परस मुख चन्द विलोकत क्या वरणौ चितवनि सुख हाल।
ज्ञानाअलि रसिकन जीवन धन अधराधर मधु पियत निहाल।।

पहिरावत पट पीत पिया कटि सियतन गौर श्याम रग सारी।
अग अग भूषण वसन मनोहर सजि कमला विमलादिक नारी।।
बिछी फरस गद्दी तकिया धरि चौपरि खेलत तन मन वारी।।
भूलि गये दोउ खान पान सुधि याम एक दिन चढ्यौ पनिहारी।
ज्ञानाअली कलेवा कुञ्जहि चले क्षुधित सखि प्रेम विचारी।।

युगल चन्द छवि दृगन निहारी।
श्यामा श्याम सिंहासन सुन्दर बैठे सुमन कञ्जकर धारी।
श्याम पीत रग वसन मनोहर गौर श्याम तन जुल्फै कारी।
अरुण कञ्ज दृग वाण भौंह धनु चितवनि जुलुम चलनि मतवारी।
विविध हास कोउ गाय मधुर स्वर बजत जन्त्र मृदु नृत्यत नारी।
डेढ याम दिन चढ्यौ कह्यौ अलि रीझि रसिक सिय सजी सवारी।।
चौंसठि आठ सोरहो बत्तिस चारि यूथ सखि न्यारी न्यारी।
चली शिगार कुञ्ज ज्ञानाअलि युगल नाम जय जयति उचारी।।

आरति सखिन सिंगार सजोरी। सिय प्यारी छवि चन्द चकोरी॥
बैठे सुभग सिंहासन प्रियतम सजल जलद सिय दामिनि कोरी।
बरसत सुधा माधुरी विहसनि भरि भरि पियत दृगन पुट गोरी।
विविध स्वाद मेवा मन रोचक लिये खडी मणि थार भरोरी।
दाख बदाम छोहारा किस्मिस गरी सरस मिश्री रस बोरी।
पाइ श्याम श्यामा सग शोभित नीकी बनी मनोहर जोरी।
अतर पान दै गाय मधुर स्वर बजहि यन्त्र बहु नृत्य रचोरी।
सुमन माल पहिराय नागरी आरति करि बलि बलि तृण तोरी।
लै आदरस देखावत सहचरि ज्ञानाअलि जय जयति मचोरी॥

प्यारी बीण सुनी पिय कानन।
उठे नवल राजीव विलोचन ज्यो मृग सुनि मृदु तानन।
चले जोहारि सभासद गृह गृह प्रियतम खान प्रियाकर पानन।
करि बरखास सियापुर वनि तन परी चोट घन घोर निशानन।
घतिटका चारि चहूँ युग बीते आइ मिले ज्यो तन प्रिय प्रानन।
बैठे लाल लाडिली के सग घन दामिनि उपमा मद भानन।
कियो निहाल लाल ललनन मिलि विविध हास कोउ करि दृग मानन।
ज्ञानाअलि दम्पति विलास रस पियतहि बनै मूक कहि जानन॥

रूप माधुरी, गुणकथन, नाम युगल अभिराम।
धाम अवध मिथिला कथा, यह जीवन विश्राम॥

जानकी नौ रत्न माणिक्य

रामसखे विरचित

समान्य परिचय आरम्भ मे श्री मार्कण्डेय सहिता से हरिहर ब्रह्मादि प्रोक्त श्री जानकी जी की स्तुति प्रार्थना है जिसमें प्राय 'रघुवरस्याके सदा सस्थिताम्' श्री जानकी जी का ध्यान है। इसके अनन्तर रामकी दान लीला का वर्णन है। फिर कवितावली है।

डायमण्ड जुबली प्रेस कानपुर से १८९९ में छपी है। कुल ३७ पृष्ठ है। 'दान लीला के १२ पद है और 'कवितावली' में २५ कवित्त है।

विषय कृष्णलीला के अनुकरण पर दानलीला का वर्णन है तथा कवितावली मे 'फटिक सिला' पर राम द्वारा सीता का श्रृगार, सरयू तट पर सीतारमण का कुञ्ज बिहार, ध्यान के पद, रास विलास, धाम, रूप, लीला ओर नाम की उपासना का सविशेष हृदयहारी मनोमुग्धकारी वर्णन है।

उदाहरण—

आवत पालि ग्राम तैं, नन्दन कुँवरि नवीन।
अवधि लाल दधि दान को, रोकिव रसिक प्रवीन ।।
वन प्रमोद की गैल विच, करिये धनुष निवारि।
रोकन की मम युक्त यह, लहु सव सखा विचारि ।।
करि धनुईयन वारि अव, वैठे सुर तरु की छाह।
राम सखे दीजै दरस, दै सुख की गलिवाह ।।
सुनौ ललन हौ डगर वह, रोकी कैसे आजु।
रघुपति के नर्म सखा, तुम कहियो होइ सुकाज ।।
पानन को रघुनाथ को, दयो नृपति यह देस।
याते सव मग कर लगत पुनि या विपिन विशेस ।।
तुम दधि लै आई सखी, लगिहै अव कछु दान।
वैठे है रघुवश मणि, करिये जाय सनमान ।।

विपिन प्रमोद सो वोरि महा ह्वै आवो दही लै वडी अलवेली।
मानत ना डर काहू को नेकहू पाई अचानक आजु अकेली ।।
दीजौ हमै करि नेग तुहै भावतो चित्त की चोर हौ रूप नवेली।
वात हमारी सुनौ सव कान दै हौ तुम तौ दय जोग सहेली ।।

ग्वालिन जोगन तुम त्रिया, तुम रूप जोग उदार।
हमरी जानि जवात सुनि, को हम करौ विचार ।।

जानत है तस्कारी पतिनी हम आदि अनादि की काहे को खीजिये।
सुन्दर श्री रघुनाथ जू लाडिले वातिनि की चतुराई न कीजिये ।।
तन वन प्राण सवै आगे पिय चाहिये जो कर में अव लीजिये।
वन प्रमोद की कुन्जन मे चलि राम सखे रस भावतो पीजिये ।।

तुम्हरी मृदु मुसक्यानि मे, हम तो गई विकाइ।
राम सखे अव विलम्यिये, वन प्रमोद सुख पाइ ।।

घूम घुमारो गुलाव को घाघरो पीत चमेली की ओढनी झीनी।
कन्जकी लाल कसै कल कचुकी नील जुही की सजा पुजु दीनी ।।
चम्पे को हार कनेरि की चन्द्रिका देखि कै चित्त भई रति हीनी ।।
फटक शिला पै राम सखे पिय फूल सिंगार सिया छवि कीनी ।।

अवध की सहेली अलवेली नवेली आजु ढूढि ढूढि ढूढै फिर तरु तरु पतान मैं।
व्याकुल विरह अग वूडी राम स्याम रग मातल अनग सिरमौर वल वतान मैं ।।

सरयू के तीर निरखि बैठे रघुवीर भेटे बन कुटीर कुञ्ज कुसुम छनान में।
छूटे सिर बार भार राम रागे बार बार हरिहरि गुगान्गी हरी हरी लतान में ।।
अवध के विहारी अवतारी अव तान को राम मवं प्यारो दशरथ कुमार हैं।
सरयू को वासी निवासी ललित कुञ्जन को काछनी को काछे वनमाली सुकुमार हैं।
सीता रमण सुख भवन धनुष धारी सखिन मध्य नटवर सिंगार हैं।
राम को विलासी अविनासी ईश ईसन को कामदा का नाथ सा अनाथ निराधार हैं।
गो लोक लीला चित्रकूट मे विराजति सब मध्य जामें प्रमाद वाटिका सुहात हैं।
विकटाद्रि गोवर्द्धन सरयू नदी आदि उहाकी सुषमा जेती इहाँ झलकात हैं।
रामसखे सूझत न महा मठ अज्ञन को जिनकी मति नित कुमगनि मे विकाति हैं।
नृत्य चरण अकित भूमि नृत्य राघव जू की मन्दाकिनी तीर तहाँ प्रगट दिखात हैं।।
मानो विषै कटक काटि पटकि महीतल नृपनि वैराग जीति विजै हर्षात हैं।
नटक मयूर कीर कोकिला रटक गान वेली सो वितान तार धुजा फहरात हैं।
लटकि लटकि लता प्रतिविम्ब जो हटकी जल उज्ज्वल लहै वाइसी सुहाति हैं।
राम सखे घट की स्याम प्रेम चटकी होत देखें फटक शिला भटक मिटि जाति हैं।।

रामसखे
कृत पदावली

खेमराज श्रीकृष्णदास ने निज वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई में सवत् १९७९ मे मुद्रित कर प्रकाशित कराया। इसमे कुल मिलाकर राम सखे जी के १७५ पदों का सग्रह है, कुल पृष्ठ ५२ हैं। इस सग्रह में भगवान् राम और भगवती सीता की रसमयी लीलाओ का बडा ही भव्य ध्यान है। भाषा साफ सुथरी है और कही-कही उर्दू-फारसी के शब्दो की भरमार है। इस शाखा के उपासको में सूफी प्रभाव स्पष्ट है क्योकि अनेक स्थलो पर सूफी शब्दावली मिलती है। इतना ही नही भाव व्यजना भी लगभग वैसी ही है। इश्क मजाजी की मासलता और हकीकी की सूक्ष्मता का एक साथ दर्शन होता है। कुछ पदो मे 'पछाही' प्रभाव स्पष्ट है तथा कही-कही मारवाडी मिश्रित पञ्जाबी का भी पुट है। लगता है श्रीराम सखे जी बहुश्रुत और बहुज्ञ थे और देश का पर्यटन भी किया था जिससे उन उन स्थानो के प्रभाव उनकी भाषा पर सहज रूप मे परिलक्षित हैं।

भावना की दृष्टि से यह स्वीकार करना पडेगा कि श्री रामसखे जी की सम्बन्ध-भावना सखी भाव की है और बहुत दृढ़ एव पुष्ट है। राम और सीता के विभिन्न अवसरो के रूप और लीला रस का आस्वादन इनके पदो में खूब छक कर किया जा सकता है।

उदाहरण—

राघव भोरही जागे नींद भरी अखियन मन भावन।
बैठे उठि फूलन शय्या पर कोटिन काम लजावन ।।

मृदु मुसक्यात जम्हात सिया तन झुकि झुकी परत सुहावन।
रामसखे या मधुर रूप लख मो जिय अतिहि जिवावन॥

आली मेरी आँखिन लागि गयौ है।
सुन्दर राजकुमार चितै कछु चेटक डारि दयौ है॥
चलि न सकति डग मगत भूमि पगतन मन विवश भयौ है।
रामसखे उर अवध सावरो निशिदिन रहत छयौ है॥

नैन मे आनि समान्यो मेरे अवध पियारो।
मृदु मुसक्याय छोडि जुलफै मुख चेटक सो पढि डारो॥
कहा करौ कित जाउ सखी री चित ते टरत न टारो।
रामसखे घर लगत दुखद अब भयौ मन छवि मतवारो॥

चुनरी रगना भिजावो मै तोरी लैहो वलैयाँ।
वरज्यो मानि अवधेश लाडिले वार बार परौ पैयाँ॥
कोमल कर जु मुरकि जैहै देखो जिन पकरो मोरी वहियाँ।
रामसखे पिय जान देहु अब खीझै सासु घर महियाँ॥

अहो पिय राम पकरि सिय लीन्हो कटि पट सखियन छीनो।
होरी समै रास मण्डल मे मन भायो सो कीनो॥
मुख सो मसलि गुलाल मैथिली अखियन अजन दीनो।
रामसखे लखि अवधलाल प्रभु प्यारी के रग भीनो॥

प्यारे सग होरी खेलत प्यारी।
वन प्रमोद रास मण्डल मे रग मच्यो अतिभारी॥
डारै सिया गुलाल पिया पर पिय छोडे पिचकारी।
रामसखे लखि यह छवि ऊपर प्राणन ते वलिहारी॥

सिय के सपने की पिय वात चलाई।
नेह भरे न्रम सखन सुनावत तिय तिमि दीन्ह दिखाई॥
तोरित तन कर कमल फिरावत सेज निकट चलि आई॥
ओढे नील झीन सारी शिर काम घटा जनु छाई॥
लम्बे केश छुटे एड़िन लौ रस वश लेज जम्हाई॥
वीरी विहसि दई मो आनन मिलि हिय तपनि वुझाई॥
अति सुकुमारि फूलते कोमल मुख विवु निंदित लुनाई॥
झलक तिलक जावक सी सीज्यौ पान पीक गल जाई॥

कोटि कोटि छवि सिन्धु वारिये जा परत्याई॥
चम्प कला चपलाते अद्भुत नैनन रही समाई॥
कैसे मिलै प्रसिद्धि प्रिया वह करौ सो जतन बनाई॥
रामसखे कहि कहि हे मीते सुधि बुधि सब बिसराई॥

रामा मो पै मोहनी डारी डगभरित लोन जाई॥
वन प्रमोद की कुञ्ज गलिन मे मोनन मृदु मुसक्याई॥
तलफत नैन रूप मद प्यासे भये जुडवत मुरझाई।
रामसखे पिय उघर मिलोगी लाक लाज बिलगाई॥

दशरथ जू के श्याम सलोने मुखडा टुक दिखाउ रे।
बिन देखे छिन कल न परत है अखिया रूप पियाउ रे॥
छाडि रोप पिय भेटि अक भरि तन की तपनि बुझाउ रे।
रामसखे सुनि प्राण पियारे जियरा नहिं तरसाउ रे॥

ये दोउ चन्द बसो उर मेरे।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दिनी अरुन कमल कर कमलन फेरे।
चन्द्रवती सिर चमर ढुरावति आसपास ललना गन घेरे॥
बैठे सघन कुञ्ज सरयू तट चन्द्रकला तन हस हस हेरे।
ललित भुजा दिये अंश परसपर झुक रहे केस कपोलन नेरे।
रामसखे छवि कहि न परति तब पान पीक मुख झुक झुकि गेरे॥

मिलि जावो रामा पियारे।
वन प्रमोद में खडी पुकारौ सुनिये रूप उज्यारे॥
सुदर श्याम कमल दल लोचन मो आखिन के तारे॥
रामसखे जल बिनु मछरी ज्यो तलफत प्राण हमारे॥

अब दशरथ जू को लाल हेहली मन मेरो छलि लै गयौ॥
मृदु मुसक्याइ छकाइ कै हेली अखियन में 'छवि छै गयौ॥
टूट गेद मिसि कचुकी हेली अखियन में छवि छै गयौ॥
महा सुघर नृप सावरो करि हेली छल झगर मू ले गयौ॥
अधर सुधारस सिन्धु मे हेली बरबश चित्त डुबै गयौ॥
मोती युत शुक नासिका हेली अरु जिय चिबुक चुभै गयौ॥
उलिगन पान खवाइ के हेली चेरी चारु बनै गयौ॥
पीताम्बर के छोर सो हेली मुख मो हाकि रिझै गयौ॥

जुलफन प्राण फदाय कै हेली दृग शर कठिन गडै गयौ ।।
उर नख छत धनु छाइ ज्यो हेली निज अपनी यश कै गयौ ।।
तब तें कछु भावत नहिं हेली विरह विथा तनु कै गयौ ।।
विकल करी रिपु समर नें हेली हरद बदन वपु ह्वै गयौ ।।
अवध कुँवर की माधुरी हेली कौन देख रसि रै गयौ ।।
कल न परत छिन विनु मिलै हेली पलक पलक कल्प वितै गयौ ।।
बरिहो अवध पिय उधर कै हेली कुल डर सकल भगै गयौ ।।
रामसखे हिय माँह री हेली लगन बीज हठ वै गयौ ।।

फटिक शिला मदाकिनि तीर। विहरत दम्पति रघुपति गीर।
विरचित पुष्प सुभग समीर। गुजत मधुप निकर मधु भीर।
नील वारिधर सुखद शरीर। कुसुम समूह विविध मणि गीर।
जनक सुता छवि निधि गभीर। तडित वरण राजित सुख सीर।
सुमन विभूषण पद मजीर। चन्द्रकला सखि गान सुधीर।
निवसत माल कुन्ज तट नीरं। लता वितान ग्रथित घन थीर।
सहचरि जटित रतन मणि हीर। गावत नटत हरत मन पीर।
सुमन पराग गुलाल अवीर। नृत्य मयूर नाद पिक कीर।
निवसत षट पद कज निधि छीर। विलसत ऋतु पति विरह अधीरं।
जनु रति पति धरि तनु रणवीर। विश्व विजय हित कसि तूणीर।
यह छवि घन करि गोप्य अनीर। रामसखे मन परम कुटीर।

मिल जेंवत पीतम सग सिया दोउ मगल मोद वढावे हो।
कौर परसपर देत चन्द्र मुख मन्द मन्द मुसक्यावे हो।
भोजन विविध परोसत विमला कमला विजन डुलावे हो ।।
शोभा सिन्धु कही न परै कछु माधुरि कुन्ज सुहावे हो ।।
चन्द्रकला सखि झारि लिये कर सरयू जल अचवावै हो।
रामसखे प्रभु थोर प्रसाद रह्यौ अवशेष सुपावै हो ।।

अचमन करत राम पिय प्यारी।
श्यामा पान लिये कर ठाढी रामा लिये जल झारी।
चन्द्रवती खर्का दर्पण लिये चन्द्रकला सुकुमारी।
सुभगा लिये वागौ पीतम कौ सहचरि लिये सिय सारी।
करि अचमन वैठे सुख आसन सकल जनन सुखकारी ।।
रामसखे बलि बल दम्पति छवि सुन्दर बदन निहारी ।।

सौरभ सौर पराग समीर सो चूर पियें मकरंद भरे से।
नील हरे पियरे सितरंग में अंग सुरंग रंगे सुवरे से।।
बोलत बोर झलाझल ओप पै ओपन चोप पै चोप धरे से।
रामसखे रति मैन कि पौरन्हि आय खरे पवरे मधुर में।।

चन्द्रमा भौन जहाँ परियंक पै मैन निकुञ्ज त्रिखण्ड के ऊपर।
दंपति जानकि राम तहाँ नर्म नीन्द भरे दृग जाइ बधू वर।।
सोवें समेत सुतन्त्र समाज ते मंजरी मंत्रै समान भरी उर।
सेवा विधान श्रीराम सखे करें प्रीतम राम तिया तन ह्वै कर।।

सुरभि नीर सुरभित सुमन सुगंभि भोग ताम्बूल।
रामसखे सेवै युगल मैन कुञ्ज दिन तूल।।
विविध केलि वचनादि सव सवविधि पूजि रिझवारि।
रामसखे नीराजहि सभा भवन पगवारि।।

लगत राम प्रिय प्रान तैं तजि न सकति उर त्याइ।
तिय स्वाधीन जुभर्तृका बोवत हरि तेहि पाई।।
कुञ्ज कुञ्ज प्रति राम को ढूंढति सरयू तीर।
नारी यह अभिसारिका धरति न नेकहु धीर।।

नित्य रास मण्डल रघुनाथा। सकल त्रियन को करत सनाथा।
तोषत सवन जासु तस भावा। कृपावन्त रघुनाथ सुभावा।
कहुँ नर्म सखन राम सिंगारैं। पुनि निज नयनन रूप निहारैं।
कहुँ अपनौ सिंगार करावैं। राम कान्ति नर्म सखन दिखावैं।
इन्हैं जु आदि ख्याल बहु खेलैं। नितहि राम रघुबसिन भेलैं।
यह वर ध्यान ताहि उर लागै। सो सव मत तोई लौ त्यागै।

रसिक लक्षण—

चित्त सन्तोष महा धन लीने। रघुबर की लीलन्ह अति भीने।।
रसिक अनन्य न सो मिलि लोभ। उनके पगन धोई मन छोभै।।
जानि नात निज बारहि बारा। राम समान करैं उपचारा।।
सखा सखी ह्वै भाव जु राखै। मधुर चरित राम के भाखै।।
विधि निषेध सब कर्म जु त्यागैं। रहत सदा रघुपति छवि पागैं।।
पूजैं नही पितर बहु देवा। रामहि की भावैं जिय सेवा।।
राखैं एक राम विस्वासा। करैं न त्रिभुवन दूसरि आसा।।

राम कुटंब कुटब निज जानै। सपने जग नातौ नहिं ठानै॥
सीतापति कृत जग सब देखै। योते सब जिय सम करि लेखै॥
त्रिजग योजि आदिक जीवन गन। देहि न दुख काहू बच क्रम मन॥
आये हरष गये नहिं शोका। तृण मान देखै ब्रह्मलोका॥
नृप अरु रक होई किन कोई। रसिक बिना वे त्यागै दोई॥
रसिकन के नित भोजन पावै। रसिकन बिनु भिक्षा चित ल्यावै॥
राखै इक हिम अर्थ गूदरी। जनु बिराग की त्रिया सुन्दरी॥
तुलसी की बारहि गल माला। भक्ति स्वरूपानन्य मराला॥
देहि तिलक निर्मातल चन्दन। हरदी बिन्दु पीत जग बन्दन॥
भृकुटी सन्त सीस पर जन्ता। करै मिही रेखन छविवन्ता॥
बोरि हर्दिका मैं धनुशायक। धरे भुजन छापै रघुनायक॥
एक सूत वस्तर रग पीरा। राखै तन बानौ रघुबीरा॥
राम मन्त्र षड अक्षर काना। करै यही उपदेश प्रधाना॥

दयावान बानी मधुर, त्यागी सहित विवेक।
लीन्हे निज चैतन्य चित, राम रास व्रत एक॥

कटि कोपीन कमण्डल धारी। वन प्रमोद कल कुञ्जन चारी॥
भनै नृत्य राघव जे बानी। राम रसिकता हिय उफनानी॥
राम रास ग्रन्थन मन ल्याई। सुनै सुनावै प्रेम बढाई॥
मन क्रम बचन रास को ध्याना। करै सु निस दिन परम सुजाना॥
बचन रास के पद उच्चारै। मन करि रास धारना धारै॥
तनकरि रास सिंगार बनावै। लखि सिय राम रूप बलिजावै॥

संवत् अष्टादश चतुर, शुक्ल मधुर मधु तीज।
भयो नृत्य राघव मिलन, उद्भव सब रस बीज॥

ज्ञान दरश वैराग्य रवि, भक्ति नजर जब होइ।
रामसखे रघुपति मिलह, तब निज जिय सुख होइ॥

रसिक अनन्य वहै सुख सानी। राम रूप बिनु लखहि न आनी॥
छवि आसक्ति रहहिं मन माही। क्षण पल राघव बिछुरत नाही॥
हेरि क्वऊ सुन्दर नर नारी। राम वियोग करहिं अति भारी॥
वेष नृपति छैलन असवारी। आवत राम ध्यान छवि भारी॥

सुनि कोकिल कर कूक, मृदु नटनि मयूर निहारि।
रामसखे मन करत झप, मिलन राम छवि वारि॥

अरुण पीत रंग लखि छविकारी। मोहहिं कलि शुनि अवध विहारी॥
कहुँ विलोकि नग जटित नगुम्न। अवध्यलालार म्पग चुभत गन॥
सिन्धु सुगन्धि राग मुनि काना। लावत नयनन राम सुजाना॥
लखि श्रावण घन तड़ित शब्द शशि। रह रघुनन्दन विरह चित गशि॥
देखि कुसुम वसन्त ऋतु शोभा। उावत राम प्रेम उर शोभा॥
रसिक अनन्यन कर यह रीती। तेहि उर लगहिं ऐनि अति प्रीती॥
सो सुर पूज्य योनि कोऊ जिय। पाइय जासु जूठ तृप्ति हिय॥
ताकर जूठनि कर जु प्रतापा। करहि मुक्ति जिय विनु तप जापा॥

रसिकन कर जूठन प्रबल, आप करी रघुनाथ।
शबरी के फल जूठ भखि, त्यागि मुनिन कर साथ॥

अद्भुत रत्न पुलिन सरयू तट। झरत तहाँ द्युति सुधा सोम वट॥
नटत राम तहाँ नित्य विहारी। लीन्हे सग सिया सुकुमारी॥
कोटिन सखी सखा नृप घेरे। लिये यन्त्र गावहिं प्रभु नेरे॥
रत्नागिरि तहँ करत उज्यारी। कोटि चन्द्र द्युति तापर वारी॥
हरित पीत सित श्याम सुरंगा। फूले लतन फूल बहु रंगा॥
चम्पक बकुल कदम्ब अशोका। सोहत लगत माधुरी वोका॥
तिन महँ सिया मान अति करही। राम मनाइ अंक पुनि धरहीं॥

हरिचन्दन सन्तान बहु, पारिजात मन्दार।
रामसखे इन तरुन की, कुञ्जै लसति अपार॥

अन्तर ध्यान होहिं क्षण में हरि। ढूंढि लेहिं सिय तबहिं प्रेमकरि॥
अन्तर ध्यान रास महँ प्यारो। लहहिं सखी सु भक्ति करि चारो॥
बहि रंगा अति रंगा प्रेमा। पराभक्ति रसिकन सुख क्षेमा॥
कबहुँ सखी पूजहिं मन लाई। राम वेष सखि कोउ बनाई॥
क्रीट शीश धनुही कर धारहि। तन मन प्राण निरखि छवि वारहिं॥
चमर छत्र व्यजनादिक ढोरहिं। करि प्रणाम हाथन पुनि जोरहिं॥
वहिरंगा यह भक्ति दिखाई। अतिरंगा अब कहत बुझाई॥
कबहूँ सखी ध्यान अति ठानहिं। नयनन मूदि राम हिय आनहिं॥
अतिरंगा यह भक्ति बखानी। प्रेमा और भनत रस सानी॥
कबहुँ सखी ढूढति मिलि पुञ्जन। शब्द रैनि सरयू कर कुञ्जन॥

बूडी राम वियोग हृद, ढूढति व्याकुल अंग।
रामसखे छवि बावरी, बेधी शरन अनंग॥

कबहुँ फूल शय्यन सब हेरहिं। कहि कहि राम पियामुख टेरहिं॥
कहुँ गहि गहि बूझहिं व्यासन रन। राम वियोग नही सुधि बुधि तन॥
डसहिन व्याल रामतिय जानी। झूमति फिरहिं प्रेम रस सानी॥
कोऊ अति विकल प्रेम बश नारी। बोली अस मैं राम विहारी॥
मैं नृप के मणि आगन चारी। मैं भुशुडि सग भुजा पमारी॥
मैं कठोर शकर धनु तोरी। मैं सिय सग कीन्ही गठजोरी॥
मैं रघुपति प्रमोद वन वासी। मैं नटवर वर राम विलासी॥
प्रेमाभक्ति ललित यह गाई। पराभक्ति सुनिये सुखदाई॥
कोउ तिय कहहिं मिलत सुनि गाना। सब मिलि गाइय राम सुजाना॥
तब सब मिलि सरयू तट गावा। करि करि नृत्य रूप दृग छावा॥
रघुनन्दन तब तत्क्षण आये। युवती सकल प्राण से पाये॥
लिये ललित धनुही कर तीरा। जनु अद्भुत कोउ काम शरीरा॥
राम धनुष माधुर्य अपारा। देखि काम निज धनुष विसारा॥
रतन क्रीट घूघुर युत अलकें। पान खात लखि लगत न पलकें॥
कोउ सजनी आसन करि मारी। बैठारत पिय अवध विहारी॥
कोउ तिय कहि अस मौहन तानहिं। हम तुम्हरी गुमराई जानहिं॥
सिया करहिं सोरह शृगारा। रोचन चित अवधेश कुमारा॥
मग सिन्दूर तैल रचित वेनी। चन्दन खौर महा सुख देनी॥
पान खाति बोलति मृदु बयननि। दमकत दशन हरति प्रभु नयननि॥
भूषण जे हिम रतन जडाये। चन्द्रिकादि अग अग मन भाये॥
मणि माणिक जो पटमहँ पोहे। कञ्चन विनु अगनि अति सोहे॥

कसनि कंचुकी घाघरो, इन्हे आदि कछु आनि।
वसन चूदरी श्याम रग, राम सखे छवि खानि॥

फूलमाल मोतिन के गजरा। वलया करण लसत दृग कजरा॥
मुख उर अतर गुलाब लगाये। गुजत भ्रमर सुरभि अति पाये॥
मेंहदी हाथ पगन मा हौरी। देखि देखि भई रति अतिबोरी॥
यह सिय छवि कछु बरणि न जाई। तापर प्रभु नित रहत लुभाई॥
मोरहु करहिं शृगार श्याम घन। मोहन हित अति सिय दामिनि मन॥
जुल्फन तैल खौर सिर चन्दन। मुकुटादिक भूषण दृग अजन॥
बीरा मुख मणि माणिक हारा। चुपरैं अग सुगन्धि उदारा॥
फूल गूथि अग अगन पहरें। मोतिन माल उठत छवि लहरें॥
कछनी कसन इजार सुरगा। वसन पीत पट ओढन अगा॥

अरुण हरित रंग धनुकर सोहहिं। स्वर्ण पंग त्रिमिता गर मोहहिं॥
भनेहु महा वैकुण्ठ सदन पर। नागर गोपुर संग जात वर॥
अवध अवध की अवधि जो वर्णा। लखि प्रेम करि ताकर वर्णा॥
तहँ सरयू मणि घाटन छाई। कहि न जात अद्भुत रचि गई॥
फूले जल थल कमल अनन्ता। वन प्रमोद नित रहत वसन्ता॥
गुंजत भ्रमर कोकिला बोलन। नटत मयूर काम जनु खोलत॥
विनु देखे यह राज लुनाई। पल पल कल्प समान विहाई॥
जव लगि तुम विहरहु खेटक वन। तव लगि हम अति विकल रहहिं मन॥
क्षण क्षण लखहिं झरोखन जाई। सन्ध्या की आवनि सुखदाई॥

नयननि ते नहिं होहु तुम, न्यारो क्षण पर लाल।
रामसखे यह वीती, करहिं सकल मृदु वाल॥

नटहिं राम अरु सिया परस्पर। मोर हम गति लेत गतिनवर॥
सोहत राम सखिन सवि प्यारे। मनहु तडित अंग विच घन तारे॥
बीण मृदंग मुरलिका आदिक। वाजन सखिन बजावहिं स्वादिक॥
गये राम पुनि मोर सुहायो। प्रथम भोग मधुपर्क लगायो॥
पुनि सखियन अस्नान करावा। गोदन ले शृंगार वनावा॥
कोउ कर धूप दीप कोउ रचही। कोउ हिमथार भोग मृदु सचही॥
कोउ सरयू जल कर अचवावन। कोउ ताम्बूल देहि शशि आनन॥
कोउ आरती करहि अति प्रेमा। लखि प्रभु रूप मनावहिं क्षेमा॥
पिय सन्मुख ह्वै बाधति निव्या। मिलन हेतु नववधू सइव्या॥
एक रीति आठहु पटरानी। मिलन चहति प्रभु सौ रति मानी॥
अटकै तहँ घटिका ह्वै चारी। नारि सबै समप्रेम निहारी॥
जाइय अस समझी यह वाता। लखहि न कोउ काहू पहँ जाता॥

जे रघुकुल नृप सखा कहावहि। नृप चरित्र तिनके मनभावहि॥
रासादिक मृगयादिक रंगा। रहहि सदा दोउन के संगा॥
राम तुल्य ऐश्वर्य राज सुख। यद्यपि जियत विलोकि राम मुख॥
कहुँ सजि कै गज पर चढि हर्षहि। प्रभु की गोद वइठि रस वर्षहि॥
कहूँ मानिनी तियन मनावहि। करि बसीठि प्रभु कहुँ जु मिलावहि॥
कहुँ रति दान तियन प्रभु देही। कहुँ व्यजनादिक टहल जु लेही॥
जानि नात निज वारहि वारा। राम समान करहि उपचारा॥
सखा सखी ह्वै भाव ज राखहि। मधुर चरित्र राम करि भाषहि॥

विधि निपेध सव कर्मजु त्यागे। रहत सदा रघुपति छवि पागे॥
कहुँ आपुहि रति पति रति पोषहि। धरि तियन तन अति प्रभु कहँ तोषहिं॥
कहुँ नि तियन आपुरस वोरत। रास ठानि प्रभु जो चित चोरत॥
कहुँ रघुपति सग करि गलवाही। नृत्यत रग महल के माही॥
सिय जो करति केलि प्रभु के सग। चुम्वन मिलन आदि जेते रग॥
प्रभु अरु आपु परस्पर रूपा। पिये नित्य डूवे रस कूपा॥
यह सुख कहँ जो प्रापति होई। अस जग जन कोटिन महँ कोई॥
वैष्णव धर्म जन्म वहु करई। तव यह मारग कहँ अनुसरई॥
तुलसी कर धारहिं गल माला। भक्ति स्वरूपानन्य मराला॥
देहिं तिलक निरमायल चन्दन। हरदी विन्दु पीत जगवन्दन॥
भृकुटी अन्त शीश पर्यन्ता॥ करहिं मिही रेखन छवि वन्ता॥

दयावान वाणी मधुर त्यागी सहित विवेक।
लीन्हे निज चैतन्य चित राम रास व्रत एक॥

सुत दारा वन राज्य सुख मगन जगत जिय मन्द।
राम रास लखि रसिक जन लहत परम आनन्द॥

राघव सग इक सेज रमन नृप सखा प्रिये अति।
तहँ देखत मृदु रूप वढति रघुनाथ मिलन रति॥

वन प्रमोद रस रास छके रस छन्दन सिर्जत॥
जिय ईश्वर निज रूप पाय नित वदत द्वैतमत॥

प्रभु ह्वै अदृष्ट जल कूप तिनके हित प्रकटे निकट।
सव रसिक मुकुट हरितन अघट राम सखे रघुकुल प्रकट॥

अरे दिवाना कहा न माना झूठ भुलाना है पछिताना।
विरादराना मोहव्वत ताना गोपुर जाना नही समाना॥
राम न जाना भजि शैताना फिरि आना पार न पाना।
प्रेम लुभाना जो कछु जाना नही ठिकाना वे भगवाना॥

श्री सीतायन

श्री रामप्रियाशरण प्रेमकली

स्वामी रामप्रियाशरणजी 'प्रेमकली' का लिखा 'सीतायन' ग्रन्थ के दो काण्ड मिलते हैं। वालकाण्ड और मधुर माल्य काण्ड। पहला काण्ड सितम्वर १८९७ मे और दूसरा काण्ड अक्तूवर मे श्री छोटेलाल लक्ष्मीचन्द वम्वईवाले ने लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस मे छपाकर प्रकाशित किया।

वालकाण्ड मे सीता-उर्मिला श्रुतिकीर्ति माण्डवी के जन्म का वर्णन है तथा दैमवज्ञो द्वारा इनके आदि शक्ति जगज्जननी रूप का तत्त्व-विवेचन है। इसमे नित्य युगल रूप का वडा ही भव्य एव मनोहारी वर्णन है साथ ही श्रीराम और सीता का वास्तविक एव तात्त्विक स्वरूप का व्यान है। दिव्यधाम, अयोध्या तथा उसमे कनक भवन का रहस्यमय नित्य रूप का व्यान है और नारद द्वारा जनक को इनके प्रति सवध में भविष्यवाणियाँ है।

रहस्य प्रमोदवन श्री जानकी घाट अयोध्या मे 'सीतायन' की हस्तलिखित प्रति प्राप्त है जिसमें—वालकाण्ड, मधुर काण्ड, जयमाल काण्ड, रगमाल काण्ड, सुखमाल काण्ड, रसाल काण्ड और चन्द्रिका काण्ड—ये सात काण्ड है और क्रमश प्रत्येक काण्ड मे ४१, ३९, १२०, ५५, ३०-२८, ४—इस प्रकार कुल मिलाकर ३१७ पन्ने या ६३८ पृष्ठ है। 'सीतायन' रसिकोपासना का एक प्रधान आकर ग्रन्थ माना जाता है और उसकी इस साधना मे वडी प्रतिष्ठा है।

'सीतायन' के 'मधुर मालकाण्ड' में प्रेमकलीजी ने आत्म परिचय दिया है जो इस प्रकार है–

प्रिया शरण गुरु भावना अरु निज भाव समेत।
युगल नायिका करि कहो प्राप्ति भाव के हेत॥
नेह कली आचार्य मम प्रेम लली मम रूप।
युगल सुनयना की सुता अद्‌भुत युगल स्वरूप॥
वय सन्धिनि मधुराननी परम मनोहर अग।
गौर बरण सिय कुञ्ज मे रहत सदा सिय सग॥
मधुर भावना युगल की अरु श्रृगार रस रीति।
सो सव वर्णन करत हो अति प्रसन्न अति प्रीति॥
द्वितीय मधुरता में कहव सीता जन्म प्रसग।
जवन हेतु जेहि दिन भयो शिशु चरित्र वहुरग॥
वहुरि तेहि दिन जन्म है उर्मिलादि सुकुमारि।
तिन सव को वर्णन करव सुन्दर चरित विचारि॥

षष्ट अष्ट षोडश दल विमला। कमलाकर सिंहासन अमला।
षष्ट अष्ट षोडश मजरि है। चहुँदिशि राजति आनन्द भरिहै॥
तेहि के मध्य सिया अलबेली। अद्‌भुत राजति रूप नवेली॥
श्याम केश मस्तक भरि के है। सूक्ष्म सघन मणि मोति गुहे है॥
भाल विशाल भृकुटि वर बाकी। काम धनुष छवि हरत हराकी॥

कञ्चन मणि मय थार लसत कर आरती।
अमित वेष धरि नाचति गावति भारती॥
वेद न पावत पार नेति कहि कहि रहि गये।
नृप को भाग सराहि मनहिं प्रमुदित भये॥

सघन श्याम चिक्कन कुटिल मस्तक भरि शुठि वार।
जननी निरखत चन्द्र मुख बार बार वलिहार॥

छमछम छननन पगन ते नूपुर वजत अनन्द।
जनक सुनयना सुत्त नवित शिशु लीला करु सीय।
जो यह छवि निरखत नयन चारि मुक्ति अनयीय॥
वेद विदित जो तत्त्व यह जनक सुता सोइ चार।
रानी देखहि छवि मगन मव दिशि सुरति विसारि॥
प्रिया शरण श्री जनक के अजिर सहित सिय आदि।
ज्यहि हिय नैनन मे वसै ब्रह्मात्मक सुख वादि॥
जेहि सीता के अग ते अमित रमा रति होत।
अमित उमा शारद शची तेहि तन की उद्योत॥
रहति सदा पुनि टहल मे क्षण क्षण भृकुटि निहारि।
जेहि समय जम रुचि लखति तेहि क्षण कीन प्रचार॥
मूल प्रकृति जेहि अग है जग जेहि भृकुटि विलाश।
विधि हरिहर जेहि गुण लिये रचिपालत पुनि नाश॥
जिनके चरण सरोज के अकन ते अवतार।
मीनादिक सव रूप है सिय के अमित विहार॥
गोद लै चूम्वति दुलारति भाव होत आपरनि।
चुटकि ध्वनि सुनि नचति अजिर सो सकल सुख अनुशरनि॥
कवहुँ लखि प्रतिविम्ब नाचति कवहुँ चलि गिरि अरनि।
परस्पर खेलति कुंवरि मव किलकि झुकि पुनि डरनि॥
श्री राधा आल्हादि शक्तिनी ज्यहि श्रुति गावै।
कोटिन रति कह मोहि राम आचार्य कहावै॥
मो चन्द्रिका ते होत रूप गुण शील अमित छवि।
विमल अग गौराग देखि ज्यहि लजत वाल रवि॥
नन्द नन्दन के सग मे विविध रास रचना रची।
व्रज गोपी सव सग में सोइ रमा शारद शची॥

बाल बिहार

नखसिख मञ्जु मनोहर ताई। कहि न जाइ अगन रुचिराई॥
विहरति महल मकल मन भावति। कवहूँ हसि हसि ताल वजावति॥
कवहुँ परस्पर नाच नानत्रनि। कवहुँ मधुर स्वर मंगल गावति॥
कवहुँ परस्पर वचन उचारति। कवहुँ मुकुर लै वदन निहारति॥

लखि छवि मगन होइ पुनि जाही। मुकुर हाथ मे त्यागति नाहीं॥
प्रतिबिम्बहि पूछत तुम को है। इतै कहाँ ते आनि बसी है॥
तुम केहि की पुत्री सुकुमारी। नखसिख मञ्जु महा छवि भारी॥
को तव तात कवन तव माता। मोसन कहहु सत्य सब बाता॥
छवि छवि निज प्रतिबिम्ब भुलानी। तेहि छन आइ सुनयना रानी॥
सिय चेतन्य भइ मातु निहारी। यह तो है प्रतिबिम्ब हमारी॥
मैं भूली अपनी परिछाही। यह तो अपर नारि कोउ नाही॥

यहि विधि अमित विहार सुख, करति रहति दिन रैन।
जननी लखि प्रमुदित रहति, अति छवि अति सुख ऐन॥
सकल सुता निमि वंश की, सिय की रुचिहि निहारि।
सब समाज मिलि गइ हरषि, महली राम विहारि॥

जस इत कुअरि मनोहर राजै। तस उत कुअर महा छवि छाजै॥
सब प्रकार सुन्दर चहुँ ओरा। अति प्रसन्न लखि मानस मोरा॥
तिन लखि छवि भइ प्रेम अधीरा। कस क्यो मन उपजी अति पीरा॥
जब लगि अधरन राम चुमइहैं। तब लगि सुख कोइ यतन न पइहैं॥
कोइ के अरुण चूनरी राजै। छवि की खानि मनोहर भ्राजै॥
सिय निज महिमा प्रकट देखाई। सो महि कहत एक नहिं आई॥
लखी राम सिय अद्भुत रूपा। वरणि न जाय सो वात अनूपा॥
तब राजा बहु विनय जनाई। सिय सन्तुष्ट भई सुख पाई॥
पुनि राजा निज प्रश्न सुनाई। कहिय वात सब मोहिं बुझाई॥
सब तें परे पुरुष को अहई। का तेहि नाम कहाँ सो रहई॥
केहि के रचित भवन दशचारी। केहि महँ लीन होत जग सारी॥
सुनि पितु बचन परम हर्षाई। बोली सीता बचन सोहाई॥
सो सम्बाद सुन्दरी तन्त्रा। सीता की वर वाणि विचित्रा॥
तुम को नित्य पिता हम जानी। हमको पुत्री तुमहुँ बखानी॥
सबसे परे पुरुष श्री रामा। श्याम स्वरूप महा सुख धामा॥
हम ते उनते नहिं कछु भेदा। रूप भेद पुनि तत्त्व अभेदा॥

जहँ दोऊ विराजही तौन धाम सुनु तात।
प्रकृति पार गोलोक है तेहि मधि पुर विख्यात॥
नाम अयोध्या भनत श्रुति ब्रह्म बिष्णु शिव ध्यान।
उमा रमा ब्रह्माणि तेहि निशि दिन करत बखान॥

अव सुनु राम ध्यान मन लाई। श्रवण करत अघ पुंज नशाई॥
वन अशोक सरयू तट सोहैं। रचना सकल काम रति मोहैं॥
कंचन भूमि खचित मणि नाना। सत चित आनन्द मय अस्थाना॥
कल्प वृक्ष तहँ परम सोहावन। मूल तले मणि महल सो पावन॥
ताके मध्य वेदिका राजै। चिन्तामणि की कान्ति विराजै॥
सिंहासन मणि मय अति सो है। गज मुक्ता झालर लटको है॥

अयोध्या

राम अनादि सीता अनादि अवध अनादी।
तुम्हरी पुरी अनादि सकल कह वेद के वादी॥
दोउ राय अनादि अवध मिथिला की गादी।
चतुर्वेद षट शास्त्र पुराणादिक प्रतिपादी॥
तुम राजा सब जानतहू तुम्हरे गृह को बात सब।
अपरनि को तव लखि परे तुम्हरी कृपा कटाक्ष जब॥
लीला सकल अनादि जबहि यश रुचि तस करही।
ताकहँ आविर्भाव कहत श्रुति वाक्य न डरही॥
सिया राम पर रूप भक्त सग करहिं विहारा।
भक्तन के वै श्याम गौर युग शरण अधारा॥
सिया उर्मिला नेह अरु प्रेमा। अष्टयाम एक सग सनेमा॥

श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी के कुछ लीथो मे छपे ग्रन्थो का पता लगा है जिनका इस 'रसिक सम्प्रदाय' मे विशेष आदर है—

१ **श्री जानकी मंगल** —श्री जानकी जी के रूप का ध्यान
२ **श्री राम मंगल** — श्री राम जी के रूप का ध्यान, पुन नाम, रूप, लीला, और धाम की दिव्यता पर विचार
३ **भूषण रहस्य** — भगवान् राम और भगवती सीता के शरीर पर सुशोभित विविध शृगार और आभूषणो का विन्यास
४ **अश्विनीकुमार विन्दु**
५. **हनुमत विन्दु**
६. **श्याम लगन**
७. **श्याम सुधा**
८ **जानकी बिन्दु**
९ **कृष्ण सहस्र परिचर्या**

इन नौ ग्रन्थो के अतिरिक्त भी श्री काष्ठ जिह्वा स्वामी लिखित और लीथो मे छपे कुछ और ग्रन्थ भी मिले है—जैसे,

गया बिन्दु, शिसा-व्याख्या (सस्कृत), साख्य तरग और वैराग्य प्रदीप।

वृहद् उपासना रहस्य

श्री प्रेमलताजी

श्री सीतारामजी दोनो एक ही हैं। देखने में दो भासते हैं। केवल भक्तो के हितार्थ हमेशा उभय रूप धारण किये रहते हैं, परस्पर सम्वन्ध दोनो में जल, तरग, गिरा, अर्थ, सुमन, सुगन्ध, रसोई, स्वाद, विम्व, प्रति, मनी, मोल, देह, देही, मेस, सेमी की नाईं हैं।

गर्व करो रघुनन्दन जानि मन माँहि।
अपनी मूरति देखौ सिय की छाँहि॥

श्री सीतारामजी दोनो एक हैं और इनके चरित्र तर्क्य हैं। भाविक लोग कहते हैं कि हे श्री राम लला जी, आप श्री सिया जू के चेरे हैं, इस माधुर्य रस सानी वानी को सुनि मन्द मन्द मुसिकाते मन भाते, बोलते, भाविको के वशीभूत हो रहते हैं। भाववश्य भगवान्, सुख निधान करुणा भवन। इस ग्रन्थ में तो निरे भाव ही भाव भरे हैं। भाविको के ग्रन्थो में अभाव की वात ही नही होती। भगवत के आश्चर्यजन्य चरित्र भागवतो की ही वानी में मिलेंगे अन्यत्र नही। भागवत प्रभु के सग हमेशा विहार करनेवाले हैं। जहाँ वेद-वेदान्ती शास्त्र विद्याभिमानियो की स्वप्न में भी गति नही, तहाँ अन्त पुर मे सखी रूप से भागवत श्री सीतारामजी की देहली नित्य सेवा करते है और नित्य लीला में भी दासादि रूप धरि-धरि प्रभु को परमानन्द देते हैं।

चारु शिला हनुमान पुनि, शम्भु सुशीला आलि।
दोउ तन ते सिय राम पद, सेवहिं आयसु पालि॥
दास सखा बहिरग ते, अन्तर पतनी भाव।
आत्म समर्पी भक्ति करि, मिले प्रभुहिं सहचाव॥

नाम प्रसग

अपर नाम सब विबुध गण, राम नाम सुर राज।
जापक उर अमरावती, राजत सहित समाज॥
अपर नाम अवतार सब, राम नाम सिय राम।
जापक उर श्री जनकपुर, विहरहि जहँ वशु याम॥
कोटिन साधन साधिये, कोटिन जन्म सुधारि।
राम नाम की रटन सम, सुखद न कहत पुरारि॥

रूप प्रसग

एकै पुरुष राम सब नारी। जहाँ लगि दृष्टि परै तनु धारी॥
सब महँ करै रमन सोइ रामा। आतम राम परयौ तेहिनामा॥
हम सब सिय की शक्ति स्वरूपा। सब के पति सोइ राम अनूपा॥
मिथ्या पुरुप सकल हम भाई। भीतर सिय की शक्ति समाई॥
यह विवेक जिन्हि के उर होई। आतम ज्ञानी जानहु सोई॥

सिया अलिनि की को कहै, सुख सुहाग अनुराग।
विधि हरिहर लखि थकि रहे, जानि छोट निज भाग॥
बहुरि त्रिपाद विभूति ये, श्री, भू, लीला, धाम।
अवलोकहु रमनीक अति, अति विस्तरित ललाम॥
विश्व विलास निकुञ्ज अब, अवलोकहु यहि ओर।
नाटक होत जथार्थ जहँ, अति विचित्र चितचोर॥
नित्यानित्य पसार बहु, नूतन छन छन माझ।
उपजत विनसत लखि परै, जिमि जग भोर सु साझ॥

विद्या माया सिय बलराखै। निज बल वृद्धि अविद्या भाखै॥
दोउ माया सिय निज प्रगटाई। लीला हेतु प्रकृति बिलगाई॥
निज निज दल दोउ विरचि सुमाया। करहिं चरित बहु जात न गाया॥
नराकार यक तन इक नारी। बनी उभय दोउ दलनि मझारी॥
लीलाहित आपहि दुइ रूपा। बनी नारि यक पुरुष अनूपा॥
सो जड माया पुरुष न नारी। प्राकृत जो नाना तन धारी॥
तेहि जड बन महँ विद्या माया। पैठि बनी सोइ निजहि भुलाया॥
जड महँ बैठि सुजडनि निहारी। मोती चेतन सक्ति विचारी॥
सनमुख रही विमुख भइ सोई। जड सग मिलि चेतनता खोई॥

हमहम करि दुख सहत अति, विवस मोह मद सार।
भोगहिं निज कृत कर्म फल, फसि जड माया जार॥

विद्या माया कर दल जोई। सियहिं भजत भव सनमुख होई॥
विमुख अविद्या दल दुख रूपा। भयेउ त्यागि सिय चरन अनूपा॥
चढहिं स्वर्ग कहुँ नरकनि परही। सिय पद विमुख विपुल तन धरही॥

जयति जयति सर्वेश्वरी, जन रक्षक सुखदानि।
जय समर्थ अह्लादिनी, सक्ति सील गुन खानि॥

जयति स्वतन्त्र सकल घट वासिनि। जयति सुमुखि अवलोकहु दासिनि॥

जयति नाम तव सब सुख दाता। जन्म मरन नागन दुख त्राता।।
जयति परम परमारथ रूपा। जयति चरित तव अकथ अनूपा।।
छमहु देवि अपराध हमारे। कीन्ह मोह वस जो अघ भारे।।
अब करु कृपा स्वामिनी सोई। कबहूँ हमरे मोह न होई।।
जयति परम पावन सुख मूला। जयति हरन मसृति भ्रम सूला।।
जय सरनागत वत्सल भामिनि। विश्व रूप चेतन बहुनामिनि।।
राम ब्रह्म की प्रान अधारा। जय जन पालक हरन विकारा।।

जयति शान्ति सुखमा सदन, क्षमा सील सर्वज्ञ।
जयति भक्ति प्रद शक्ति पर, सरल स्वभाव कृतज्ञ।।

जयति सखी गन मध्य विहारिनि। जयति सुकीरति जग विस्तारिनि।।
जय मद मोह कोह भ्रम हरनी। असरन सरन दरन जन जरनी।।
पुरुप भाव उर धरि अग्याता। विसरेऊ हम तव पद जलजाता।।
जग करता पालक सहरता। बने रहे हमही धरि नरता।।
अब करि कृपा सरूप लखावा। जानेउ अकथ अनूप प्रभावा।।
यह छवि बसै सदा हमरे मन। अस कहि परे चरन पुनि तिहुँ जन।।
परम कृपालय सिय मुसिकानी। बोली सरल मनोहर बानी।
तुम्ह अतिशय प्रिय तिहुँ जन मोरे। मम महिमा जनि भूलेऊ भोरे।।
जो कछु भौमा तुमहिं सुनाई। जानेउ सत्य सु बात सदाई।।
मनमुख जो पावहिं कवनिउ तन। भजहिं मोहिं धरि सखी भाव मन।।
मम भूपण चन्द्रिका अनूपा। धारहिं ते सब मोर सरूपा।।
बिन्दु चन्द्रिका मुद्रा धारी। पावहिं मोहिं निश्चय नर नारी।।

राम पुरुप यक बाम सब, रमण करैं सब सग।
मोर निकट निवसत सु जिमि, विम्ब श्याम शुचि रग।।

तन छाया इव कबहुँ न तजही। अस विचारि सनमुख मोहि भजही।।
जहाँ देह तहँ छाया रहही। देह बिना छायहि को लहही।।
छाया पुरुष मोर जो रामू। रमन करो तेहि सग वसु जामू।।
छनहुँ न तजत मोहिं मैं तेही। उभय एक जिमि छाया देही।।
जब चाहो तब श्याम सरूपा। प्रगटो पुरुषाकार अनूपा।।
करो. चरित तेहि सग मिलि नाना। भक्ति हित आनन्द निधाना।।
लीला ललित सगुन सुखकारी। पढ़ि सुनि पावहिं जन मोहि झारी।।
सगुन उपासक युगल सरूपा। ध्यावहिं ते न परहिं भवकूपा।।

दशरथ सुत राम सिया, जनक की दुलारी।
नखसिख सोभा अपार, लाजत लखि कोटि मार॥
वरनत छवि वार वार, सारदा उहारी।
भूषन मनि जाल माल, लसत विविध जटित लाल।
नैन कञ्ज ललित भाल, तिलक मोद कारी॥
गौर वरन सियाराम, सुभग अंग मेघ स्याम।
पीत वसन उत ललाम, इत सुनील सारी॥
राजत सुख गुन निवाम, सेवति पद विपुल वाम,
सीता कर कमल राम, धनुष वान धारी॥
सुर नर मुनि धरत ध्यान, कीरति कल करत गान,
प्रान के सुप्रान ब्रह्म, ब्रह्म के अधारी॥
सरन पाल अति उदार, हरन हेतु भूमिभार,
करत चरित विविध सार, वदत वेद चारी॥
'प्रेम लता' सोच त्यागि, युगल चरन कमल पागि,
जपिसु नाम जीह जागि, दमन दोष भारी॥

धाम प्रसंग

गऊ लोक के मध्य सो, अति विस्तरित ललाम।
निवसि जहाँ विहरत सदा, अलिनि सहित सियराम॥

नहिं तहँ कर्म धर्म तप ध्याना। कुजोग जग्य नहिं जप तप ग्याना॥
पूजा पाठ न जादू टोना। तीरथ वरत न साधन मोना॥
जनम मरन नहिं रोग वियोगा। नहिं तहँ पाप पुण्य कर भोगा॥
अहंकार कामादि विकारा। नहिं तहँ प्राकृत विषय विहारा॥
हठ सठता अविचार न रोषू। कपट दम्भ पाखण्ड न दोषू॥
नाना मत न सठता वेषू। राग विराग न ईर्षा द्वेषू॥
जाति वरन नहिं आश्रम चारी। वेद पुरान न इन्दु तमारी॥
पञ्च तत्व उरमिनि खट मन्दा। अष्ट प्रकृति नहिं कोउ दुख द्वन्दा॥
सकल विकार रहित सो धामू। सव लोकनि ते पार ललामू॥
तेहि महँ केवल केलि प्रवाना। सिय सियवर कर कहहिं सुजाना॥

अवलोकहिं वड भागिनी, ललना गन समुदाय।
निवसि संग वसुजाम सुख, तिन्हिकर वरनि न जाय॥

अनन्द अकथ अनूप निकाई। धाम प्रभाव वरनि नहिं जाई॥
कोटिन भवन विसाल सुहाये। जगमगात नहिं जात सुगाये॥

राजहिं ललना गन तिन्हि माही। वृन्द वृन्द सिय की भुज छाही।।
जब जब करत चरित प्रभु नाना। भक्तनि हित सिय राम सुजाना।।
तब तब ते धरि रूप अनूपा। प्रगटहिं सग सुरुचि अनुरूपा।।
गुरु पितु मातु वन्धु परिवारा। वनहिं सखा दामादि अपारा।।
लीला करहिं अमित तन धारी। ललना सिय पिय सुरुचि निहारी।।
खग मृग भूपन वसन सुवासन। हय गज धेनु रथादि सुखासन।।
भवन भण्डार सुपलग विछौना। चमर छत्र मनि मानिक सौना।।

लीला केरि विभूति जो, सव सिय परिकर रूप।
सत चेतन आनन्द मय, त्रिगुनातीत अनूप।।

जेहि विधि रहहिं मुदित सियरामा। सोइ सव अलिगन करहिं सुकामा।।
सियपिय कृपा अलिनि के बीचा। सकल समर्थन जानहिं नीचा।।
जहँ जस योग तहाँ तस रूपा। धरि सावहिं प्रभु काज अनूपा।।
करि कारज पुनि आलिनि अगा। धरि विहरहिं सुख दम्पति सगा।।
पुरुष एक जहँ केवल रामू। अपर सकल तिय गन गुन धामू।।
नित्य विभूति धाम साकेता। नित्य विहार न लखहिं अचेता।।
विहरहिं जहाँ सग सिय रामा। तहँ नहिं अपर पुरुष कर कामा।।
भूषन बसन सेज सुख सामा। सब चेतन अलि रूप ललामा।।
विविध रूप धरि श्री सिय आली। सेवहिं प्रभुहिं प्रेम प्रतिपाली।।

कनक भवन विख्यात जग, राजहिं जहँ सियराम।
तेहि की उपमा योग नहिं, अखिल लोक सुरधाम।।

अलिनि सहित सिय राम कृपाला। करत चरित तेहि माँहि रसाला।।
महल मध्य सुन्दर सर सोहत। निर्मल नीर घाट मन मोहत।।
सावकास चहुँदिसि फुलवारी। लगी ललित बहु भाँति सम्हारी।।
विपुल कुज सुख पुजनि पूरे। मनि दीपक बहु राजत रूरे।।
बिछे पलग बहु घले हिंडोरे। कुज कुज प्रति मोद न थोरे।।
मनिमय चित्र विचित्र अपारा। शोभित भीतिनि विविध प्रकारा।।
जेहि महलनि सियराम निवासा। अकथ तहाँ कर भोग विलासा।।
सेवहिं चरन अमित वर वामा। कहौ प्रधाननि केर सु नामा।।
श्रुति कीरति माडवि उरमीला। कौसिक कमला विमला सीला।।

चन्द्रकला श्री लछिमना, चारुसिला - ससिभाल।
हेमा - छेमा - जामुनी, मदनकला - रसमाल।।

प्रीतिलता श्री युगल विहारिनि। दुग्धवती - सुभगा - सुखकारिनि।।
ग्यान कला - कोविदा - कृपानी। सगुना - सरस्वती - मुदकानी।।

विस्वमोहिनी - मथुरा मीरा। प्रेमप्रभा सु द्वारिका - धीरा॥
ये सब जूथेस्वरी सयानी। सेवहिं दम्पति पद प्रन ठानी॥
कनक भवन के चहुँ दिसि घेरे। इन्ह के सदन सुशोभित नेरे॥
सबके भवननि सुख अनुकूले। भरेउ विपुल प्रद मोद अतूले॥
कुज कुज प्रति अली अपारनि। जूथेस्वरी सुजूथ हजारिनि॥
राजहिं गाजहिं पुर चहुँ फेरे। कचन भवन बने सब केरे॥
सन्तादिक आदिक बन नाना। सोहत सुभग न जात बखाना॥
फूले फर हरे लहराही। विहरहिं ललना गनितिन्हि माही॥

उपासक प्रसंग

युगलोपासक

युगल उपासक चरण की, जे शिर धारहिं धूरि।
तिन्हि कहँ दशहू दिशि कुशल, नशहिं अमगल भूरि॥

युगल उपासक आनन्द रासी। श्री सियराम स्वरूप विलासी॥
कर्म धर्म साधन सुखकारी। करहिं युगल सम्बन्ध विचारी॥
बहुमत बादी पन्थनि वारे। विपुल भरे जग झगरत हारे॥
युगल उपासक दुर्लभ भाई। जिन्हि उरनि बसत सिय रघुराई॥
युगल उपासक चरण सु सेवा। कोटि काम धुक सम सुख देवा॥
जिन्हि के मन दम्पति सियरामा। बसहिं निरन्तर सब सुखधामा॥
तिन्हि कर सग रग सिवकाई। कोटि कल्पतरु सम सुखदाई॥
त्रिगुणातीत वचन वर करणी। युगल उपासक की श्रुति वरणी॥
युगल उपासक कर उपदेशा। जन्म मरण भ्रम हरण कलेशा॥
युगल उपासक जो गुरु करही। सो सम् सो जन श्रम विनु भव निधि तरही॥

मन क्रम वचन विकार तजि, सेवहिं जे सियराम।
तिन्हि की सेवा करहि जे, पावहिं ते मन काम॥

उपासना

पुरुष एक रघुपति अपर, जड चेतन सब जीव।
नारि रूप यह ज्ञाना दृढ, भयेऊ कृपा सिय पीव॥

नरतनु पाइहु आतम ज्ञाना। तजहिं न सज्जन जीव सुजाना॥
नारि पुरुष कवनिऊ तनु धरही। तिय स्वरूप निज सो न विसरही॥
जिन्हि पर कृपा करहिं भगवाना। तिन्हे लखावहिं आतम ज्ञाना॥
युगल रूप सेवा अधिकारा। पावहिं जिन्हि तिय भाव सुप्यारा॥

युगल उपासक मन क्रम बयना। सेवहिं चरण निरखि छवि अयना ॥
वरणो तिन्हि के कछुक सुलक्षन। सकल यथारय कछु प्रतिपक्षन ॥
श्री सियराम युगल अनुरागी। होत उपासक जन वड भागी ॥
युगल भावना रस मन रगा। भलि न करहिं विजातिनि सगा ॥
युगल भाव वर्द्धक जो गाथा। पढहिं सुनहिं भजि सिय रघुनाथा ॥

युगल चरण की आश इक, युगल धाम महँ वास।
रटहिं रटावहि नाम नित, युगल हरण भव त्राम ॥

जग प्रपच ते काम न राखत। युगल रहस्य सुधा रम चाखत ॥
करहिं सजातिनि सग निचन्ता। रटहिं बैठि नतु नाम इकन्ता ॥
कामादिक मद दम्भ विकारा। त्यागि भजहिं सियराम उदारा ॥
इष्ट स्वरूप नाम गुण धामा। जानहिं सवके भेद ललामा ॥
युगल सुभाव ध्यान गुण गाना। करहिं सदा उर आतम ज्ञाना ॥
आठऊ याम भरे अहलादा। रहहिं पाय निज इष्ट प्रसादा ॥
जो कोउ करै सु प्रश्न उपासक। युगल भाव सम्वन्ध प्रकाशक ॥
यथा शक्ति तेहि बोध करावहिं। प्रभु प्रिय हेरि न तत्त्व दुरावहिं ॥

पीत वसन कण्ठी युगल, पीत सु तिलक लिलार।
विन्दु चन्द्रिका मुद्रिका, सहित नाम युग सार ॥

पुरुष भावना जो हिय वारे। दास सखादि तदपि प्रभु प्यारे ॥
गुप्त विहार न देखन आवहिं। हठ वश परेउ दूरि पछितावहिं ॥
हनुमदादि शिव धरि अलि रूपा। निरखहिं गुप्त रहस्य अनूपा ॥
अस विचारि जे चतुर उपासी। हठ तजि धरहिं भाव उर दासी ॥
तन ते दास सखादिक भावा। राखहिं उर तिय भाव सुछावा ॥
हनुमत सम नहिं कोउ प्रभु प्यारे। दास सखादि भावना वारे ॥

चारुशिला हनुमान सोइ, शिवसु सुशीला बाम।
चन्द्रकला श्री भरत पुनि, लखन लक्ष्मिना नाम ॥

देखउ ग्रन्थ खोजि सब भाई। जीव मात्र तिय पति रघुराई ॥

तत सुख विनु न उपासना, विनु उपासना जीव।
बन्धन दे छूटत नही, मिलत न श्री सिय पीव ॥

प्रभुहिं मिलन हित भाव सु नारी। धरि उर सेइय जनक दुलारी ॥
तर्क वितर्क न यहि महँ कीजै। युगल सरूप सेइ सुख लीजै ॥
पति पत्नी कर भाव प्रधाना। रस शृंगार केर सब जाना ॥

जो निज उर यह भाव सुधारहिं। तन दे दास सखादि उचारहिं॥
ते प्रभु प्रिय कछु संशय नाही। आवत जात सु महलनि माही॥
कारण करन सकल रस केरे। रसाधीश शृंगार वडेरे॥

सुखदाई श्री सम्पदा, रामदेव सिय इष्ट।
पति पत्नी सम्बन्ध शुचि, जेहि महँ प्रद सु अभीष्ट॥

पचसंस्कार प्रसग

विनु व्याही जिमि कन्या क्वारी। जानहु सहस खसम की नारी॥
जव वह करै व्याह एक साथा। अरपि अपन पौ जेहि के हाथा॥
होइ एक पति जव तेहि खासा। तव मिथ्या पति होई निराशा॥
तिमि जग जन मनमुखी विलासी। सव देवनि के वने उपासी॥
सवकी पूजा अस्तुति वन्दन। करत मन्द तजि सिय रघुनन्दन॥
प्रभु सम्वन्ध हीन तिमि नाना। भजन भाव रति भगति सु घ्याना॥
जव लगि भजत न सिय रघुराई। गुरुमुख होइ अग वेष सजाई॥
सव देवनि की परिहरि आगा। करत न जव लगि प्रभु विश्वासा॥
तव लगि राम मिलन अति दूरी। वेष विहीन सु भगति अधूरी॥
राम भगति विनु लख चौरासी। मिटति न पावत शुभगति खाशी॥

अष्टयाम भावना प्रसग

संबंध का महत्त्व

वात्सल्य शृंगार वा, सान्ति सख्य अरु दास।
पाँचहु रसिक सुभाव मह, सेवहिं प्रभु पिदव खास॥

विनु सम्वन्ध स्वरूप न जानै। केहि विधि इष्ट सु सेवा ठानै॥
नाम स्वय - सेवा - अधिकारा। भाव - परापति सुख आधारा॥
मातु - तिपा - भगिनी-प्रिय - भ्राता। वस - विचार - महत्त्व सु-नाता॥
रस - अनन्यता - इष्ट - भावना। रीति - रहस्य - प्रवोध - पावना॥
अस्थाई - निज ये सव भेदा। जाने विन न मिटत उर खेदा॥
ये चौवीस सूत्र सुखदाई। इन्ह के भेद भाव वहुताई॥
सम्वन्धनि महँ ये सव वानी। लिखी ललित नहिं जाइ वखानी॥
जो सम्वन्ध लेइ सो जाने। रसिक अनन्य भाव सुख माने॥

श्री वैष्णव सम्वन्ध विनु, प्रभु सेवा अविकार।
सपनेहु पावत नही, करै कोटि उपचार॥

विनु सम्बन्ध लिये तनु जोई। छूटै तो प्रभु लहहि न गोई॥
विनु सम्बन्ध सुग्यान विरागा। व्यर्थ यथा गणिका शृंगारा॥
लवण विना वर व्यजन जैसे। विनु सम्बन्ध सु वैष्णव तैसे॥
विनु सुगन्ध के सुमन नवीना। तिमि वैष्णव सम्बन्ध विहीना॥
विनु सम्बन्ध भजन व्रत कर्मा। होत न वैष्णव कहँ प्रद नर्मा॥
विनु सम्बन्ध सु वैस्नव कच्ना। वेष बनाय न प्रभु रंग रच्ना॥
वेष प्रताप तिलोकनि माही। पूजे जात सु भक्त कहाही॥
विनु सम्बन्ध न स्वामी सेवा। पावहिं वैष्णव सब सुख देवा॥
विनु गौने की व्याही नारी। पति विनु पिहर वहै दुखियारी॥
तिमि श्री वैष्णव वेष सु धारी। विनु सम्बन्ध न मिलत खरारी॥
पाँचौ मुक्ति भक्तिरस भीना। लहहि न जन सम्बन्ध विहीना॥

निज निज रस के ज्ञातनि, खोजि लेइ सम्बन्ध।
सेवा करि मन वचन क्रम, नशै हिये को अन्ध॥

जो अनन्य एकै रस केरे। मन वच क्रम रियवर पद चेरे॥
युगल नामरत गत मद माया। हेतु रहित जीवनि पर दाया॥
ऐसे रसिकनि के पद सोई। भली भाँति सम्बन्ध सु लेई॥
गऊ लोक विच श्री साकेता। नगर अनूपम सोह सचेता॥
कोटिनि भवन विपुल विस्तारा। रचना अद्भुत अकथ अपारा॥
गलिनि गलिनि विरजा की धारे। कल्पतरुनि की लगी कतारे॥
चली बजार लतनि करिछाये। पुरवासी सुचि सुभग सुहाये॥
चहुँदिसि विविध विटप अमराई। विपुल जलाशय वरणि न जाई॥
विपुल विहार सु अस्थल सोहै। जिनहिं देखि सुर मुनि मन मोहै॥
कनक भवन तेहि पुर विच राजै। कोटिनि भानु तेज लखि लाजै॥
अति उतग बहु केतु पताका। फहरत निरखि सुरनि मन थाका॥
ग्यान विराग कर्म करतूती। चलति न जहँ रस केलि विभूती॥

विविधि रगकी जटित मणि, परे झरोखनि जाल।
कलश कगूरा अमित शुचि, सोभित सुखद विशाल॥

वाहिर महलिन की रुचि राई। अद्भुत अकथ कहहुँ किमि गाई॥
भीतर कुज निकुज अनूपा। वने खचित मणि विविधि सरूपा॥
विछे पलग बहु घले हिंडोरे। कुज कुज प्रति मोद न थोरे॥
चौवारिनि चित्राम सुहाये। मणि माणिक मय जाय न गाये॥
परदनि की अनुपम रचनाई। देखत वनै वरणि नहिं जाई॥

मखमलादि मृदु पाट पटोरे। विछे लेत चित वरवश चोरे ।।
जीना ललित न जात वखाने। लघु विशाल सुन्दर सोपाने ।।
दीपक मणिन केर वहु भ्राजैं। भेरि सख धुनि नौवत वाजैं ।।
समय समय अनूकूल अगारा। शोभित सुखद विचित्र उदारा ।।
जव जेहि कुज जहाँ रुचि होई। तव तहँ सुख विहर्राहि प्रभु सोई ।।
चन्द्रकला श्री चारु सुशीला। यूथेश्वरी उभय मन मीला ।।
चन्द्रकला श्री भरत सुजाना। चारुशिला जानहु हनुमाना ।।

कोटिनि यूथ सु अलिनि के, इन्हकर भुज वल पाय।
विहर्राहि सुख साकेत महँ, युगल चरण उरलाय ।।

जहँ देखौ तहँ ललर्नाहि ललना। सेर्वाहि दम्पति त्यार्गाहि पलना ।।
निज निज कुजनि यू५ वनाई। वर्साहि मुदित सिय पिय यश गाई ।।
कुज कुज महँ सिय रघुराई। निवसहि यक यक ढिग सुखदाई ।।
सुनि न रसिक उर अचरज मानहु। सिया अलिनि एकै करि जानहु ।।

विलग विलग सुख देत प्रभु, आलिनि रुचि अनुसार।
जानहि अलि हमर्राहि भवन, राजहि दोउ सरकार ।।

कृपा खानि श्री जानकी, दया सिन्धु रघुनाथ।
वड भागिनि आली सकल, विहर्राहि सम्पति साथ ।।

समय विलोकि सुदम्पति जागे। नयन चहूँ प्रेमालश पागे ।।
वार्राहि वार लेत अगडाई। खोलत मूदत चख सुखदाई ।।
ढाँकत मुख दोउ कहुँ पट टारी। देर्खाहि आलिनि नयन उघारी ।।
अरुझि अरुझि सोवहि कहुँ जार्गाहि। लखि छवि अली सराहति भार्गाहि ।।
जयति जयति कहि परदा टारी। गई कहति ढिग वलि वलिहारी ।।
करि विनती ललि लाल उठाये। तिहूँ दिशि तकिया दै वैठाये ।।
अलसानी छवि नयन निहारी। भई मुदित आरती उतारी ।।
मगल थार दिखाय निछावरि। कीन सुमणि गण पट प्रमोद भरि ।।
उरझेउ लट भुषण सुरछाये। आलिनि अनिर्वाच्य सुख पाये ।।
लेत उवासी दोउ अलसाने। पुनि लखि लखिनि ओर मुसिकाने ।।
हास विलास होत सुखकारी। आलस विगत भये पिय प्यारी ।।
लखहि परस्पर छवि पिय प्यारी। चिवुक निकर धरि गर भुज डारी ।।
कवहुँ परस्पर सिय पिय दोऊ। कर्राहि शृगार लर्खाहि सव कोऊ ।।
येहि विधि कीन्ह शृगार सुहावा। दर्पण लैकर आलि दिखावा ।।
रीझहि निज निज रूप निहारी। उभय परस्पर गर भुज डारी ।।

कुज कुज महँ परमानन्दा। उमगत जात जहा दोउ नन्दा॥
ग्यान कला यहि कुज मझारी। अधिकारिनि सिय पिय की प्यारी॥
धाय आइ चरणनि लपटानी। आपुहि अति बड भागिनि जानी॥
तब श्री प्रीतिलता सुखदाई। सयन कुज महँ चली लिवाई॥
सयन कुज मह सादर जाई। पौढ़ेउ सेज सिया रघुराई॥
स्यामल गौर मनोहर जोरी। सुन्दर सुखद सुवयस किसोरी॥
अवलोकहिं अलिगन चहु ओरी। जनु जुग चन्दहिं निकर चकोरी॥

मधुर मुरब्बा खाय कछु, सुचि जल अचवन कीन्ह।
प्रेमलता अलि विहसि सुख, बीरी निज कर दीन्ह॥

केलि कुज गवने अलि साथा। चली पाय रुख सिय रघुनाथा॥

युगल प्रिया अधिकारिनी, कुज हिंडोर सु माँहि।
समय जानि पठई अली, प्रमुदित दम्पति पाँहि॥

चले हिंडोर कुज हरपाई। लगी संग ललना समुदाई॥

पावस ऋतु धरि विविधि तन, सेवत प्रभु सुख कन्द।
यह रहस्य जानहिं रसिक, कोउ कोउ हृदय अमन्द॥

कबहुँ परस्पर झूलत दोऊ। उपमा योग न त्रिभुवन कोऊ॥
बाढत पेग डरपि सिय प्यारी। लपटहिं पिय अग गर भुज डारी॥
फहरत पट भूषण रव करही। मुक्तनि हार टूटि महि परही॥
छूटी अलकें दोउ दिशि कारी। लहरहिं ललित सु लागहिं प्यारी॥
निरखहिं अली परम बड भागिनि। दम्पति चरण कमल अनुरागिनि॥
कबहूँ प्रीतम सियहिं झूलावत। लखि नखसिख छवि अति सुख पावत॥
कबहुँ चमर कहुँ विजन दुरावत। कबहुँ नचत पिय सिय गुण गावत॥

रासकुज

सुभग सिंहासन सिय रघुवीरा। बैठे सहित सजनि की भीरा॥
रासारम्भ सु आयसु पाई। कीन्ह नाइ शिर अलि समुदाई॥

कमला - विमला - लक्ष्मना, कृपा - कौशिकी बाल।
अघो उवारा - जामुनी, वागमती - शशिभाल॥

गुह्य

रसिकनि ते मागा कर जोरी। सुनहु कृपाल विनय यह मोरी॥
गुप्त केलि दम्पति जो करही। यहि कर ध्यान सिवादिक धर ही॥

रति शालादिक युगल विहारा। दूसर यह सम्बन्ध उदारा॥
कृपापात्र विनु ये जनि भाखौ। मन्त्र समान गुप्त करि राखौ॥
विहरहिं अलिनि सग वशुयामा। कृपासिन्धु दम्पति सियरामा॥
कुञ्जनि कुञ्जनि वननि सु वागनि। विहरत हृदय भरे अनुरागनि॥
येक नारि व्रत प्रभु उर माँही। रहत गुप्त वहु जानत नाही॥

विश्वरूप प्रभु कुञ्ज सव, कुञ्ज रूप ससार।
विहरत श्री सियराम जहँ, सेवत जीव अपार॥
रटहिं नाम तिय भाव उर, धरि दृढ सुजन ललाम।
चिन्तहिं चरित प्रपज तजि, गावहिं ते सियराम॥

रघुराज-विलास

श्री रघुराजसिंह जी

महाराज

नवलकिशोर प्रेस द्वारा १९२४ मे मुद्रित और प्रकाशित।

इसमें, कृष्ण भगवान् और राम के झूलन, प्रेम कहानी, होली के पद हैं। अन्तिम भाग में प्रेमपरक विनय के कुछ भजन हैं।

उदाहरण—

आली सरयू के तीर गडो हिंडोलना झूलत सीताराम।
मन्द - मन्द वरसत घन वुदन।
झरत मनहुँ कलिका नव कुदन॥
हरित वरन आराम छने छन दिशनि दिगनि दीपति दामिनियाँ॥
झमकि झुलाय रही कामिनियाँ।
पिय छवि दृग आराम॥
श्री रघुराज शोक सव विगरो।
पूरण पयो मनोरथ सिगरो॥
आनन्द आठो याम॥

झूलत कुजन भीजि रहे दोउ।
प्रिय मृदु वैननि मोहि गई सिय,
मिय मृदु वैननि मोहि रहे सोउ॥
मिय झझकति हगि करनि मभारति,
सिय के कर पकरत विहसत ओउ।

श्री रघुराज छकी सब सखियाँ,
अखियाँ में नहिं पलक करे कोउ ॥

प्यारी हो आजु सखि रंग - महल मे झूले कनक हिंडोरे।
चहुँकित उमडि घुमडि घन बरषत।
गाय गाय सावन सखि हरषत मंजुल मोरवन शोरे।
फहरत अरुन वसन छवि छहरत।
लचकत लक मचत रंग माचत लागत पवन झकोरे॥
श्री रघुराज सुहावन सावन।
सरस सनेह सरस सरसावन जनक किशोरी अवध किशोरे॥

आवत भीजत दोऊ हो।
सरयू तीर कदम्ब झुलन हित सखि सब कोऊ हो।
बरसत मन्द मन्द घनन बुंदन चुवत अरुण पट हो।
वै पटुका लै ओट करत कर वै गचल तट हो।
छहरि छहरि छिति छन छन छन छवि पुनि पुनि दुरति दिशानन हो।
मनु अघाति नहिं लखि लखि सिय रघुनन्दन आनन हो॥
सुख सरसावन सावन साझ सखी सब सावन गावे हो।
मोर शोर चहुँ ओर सुहावन सिय हुलसावे हो।
कोशल राज अनोख लाडिलो जनक लाडिली जोरी हो।
बसहिं कृष्ण जन मनहिं सदा यह आशा मोरी हो॥

रघुवर कैसी है तेरी नजरिया।
एकहु बार परति जेहिं ऊपर रहत न तनहिं खबरिया॥
हे अवधेश - लला बनरा बनि डोलहु डगर डगरिया।
श्री रघुराज जनकपुर- नारी मोहे झाकि झझरिया॥

लला तुम होहु न आखिन ओट।
एक पलक बिन दरश कलप सम लगत कुलिश सी चोट॥
पीर पराई जानत हो नहिं यह सुभाव है खोट।
श्री रघुराज बिदेह- लली - पिय तजहु निठुरता कोट॥

मेरो मन राम लला-सो अटको।
अब तौ बरबस जाय मिलोगी कोऊ कितेको हटको॥
श्याम - सरूप नैन रतनारे कुटिल अलक मुख लटको।
लघि रघुराजहिं आजु लाज को टूटि गयो री फटको॥

आली सियावर कैसा सलोना।
कोटि मदन-मूरति न्यौछावरि दै दै मुखी चलि भाल दिठौना।
मोर डरत जिय डगर नगर महँ कोऊ सखी करि देइ न टोना॥
हौं तो जाइ ललकि गर लगिहो रँहो न देइ जो मोहिं भरि सोना।
कहर परी यह जनक-शहर-महँ छूटचोरी खान-पान निशि सोना॥
श्री रघुराज मौर वारे पर अव तो हमहिं फकीरनि होना॥

सखि आज अनूपम वेष वन्यो अवधेश-लला मिथिलेश-लली।
दोउ नैनन सैनन चैन करैं रति मैन लजावत शोभ भली॥
अगराग रगे अनुराग रगे शिर चन्द्रिका पाग धरैं विमली।
मुसक्यात वतात अघात न आनन्द कज से पानि मे कज-कली॥
तनु केसरि नीर हनी पिचकी गुरु ग्रीषम ताप हरैं सफली।
रघुराज विराजत राज-लला वलि जात विलोकति मजु अली॥

रघुवर खेलत सिय सग होरी।
सरयू तीर कुज सुख पुजन
भूपित सुखित करोरिन गोरी॥
परम रमनीय वन कलित कचन भवन
वहुत छनछन त्रिविध पवन सुमनोहरो।
कुन्द मुचुकुन्द वहु वृन्द आनन्द कर,
मन्द कर नन्द वन तरुन कुसुमित थरो॥
पुहुमि वहु पुहुम सुपराग - पूरित पृथुल,
झरत कल नल सकल सलिल रग केसरी।
नदत कल कीर कोकिल निकर मोद कर,
सरयू तट करत शीतल सकल सीकरो॥

वीण डफ वेणु मजीर मिरदग,
मुरचग सारग तहँ वजत वहु वाजने।
यूवति अनुराग भरि राग, वहु रागती,
वागती वाग महँ विविधि सुख साजने॥
चलत चामीकरन चारु पिचकारि,
केसरि मच्यो कीच मउलीच वहु रगमे।
नचति जति जति सुगति युवति तति,
रति सहित मेलि सुगुलाल रघुलाल सुउमगमे॥

कुंज बिच सखि कहूँ सखिन बिच कुंज कहुँ,
सखिन बिच सीय कहुँ सीय बिच राम हैं।
मनहुँ कहुँ जलद बिच दामिनी दमकती,
दामिनी बीच कहुँ दिपत घन श्याम हैं।।

चूमती पिय - वदन घूमती मदमती,
झूमती हरि भुजन निदरि सुर-सुन्दरी।
छीनि पिय कर कटक चटक कर धारि,
पहिरावती नेहवश अंगुलिन मुदरी।।
झुकहिं झझकहिं झपहिं जकहिं जुमकहिं जमहिं,
लखहिं ललकहिं लुकहिं हँसहिं हुलसहिं सही।
तकहिं तरकहिं दुरहिं थिरहिं थिरकहिं थरहिं,
वरहिं धावहिं धरहिं रोरिकहिं नहिं कही।।

लपटि कहुँ झपति कहुँ रपटि वहु निपट हटि,
जनक-तनया सहित करत सुविहार हैं।
मध्य सखि मगलहिं निरखि रघुनन्दनहिं,
वारही वार रघुराज वलिहार हैं।।

आली मेरो रघुवर करत सोहाग।
लै कुसुमन वनमाल वनावत विहरत मो सग लाग।।
मो प्रतिविम्ब विलोकि मुकुर महँ तजत तासु अनुराग।
अस रघुराज प्राण प्यारे मो रुसव परम अभाग।।

विलसति रघुवर आलि वसन्ते।
शीतल मन्द सुगन्धि - समीरित सरयू तट दिनान्ते।।
अमल कपोले कुण्डल लोले बिलसत आभा पूरे।
मनसिज केतु बिम्ब इव मनसिज मुकुरत लेन विदूरे।।
कनकासने पीतपट राजित नव - नीरद - मदहारी।
कनक गिराविव मरकत शृंग तदुपरि तिमिरविदारी।।
जनक सुता-वदनद्युति - पूरित पाडुर वदन - विहारी।
रघुवर वदन - नील - विभया हरिताभा जनक कुमारी।।
पवन वशादति सूक्ष्म-सलिल - कण पूरिततनुरतिकामम्।
ज्ञान वमन्तागमसरयूरिव जलै प्रसिंचति रामम्।।
परमविशाल रसाल कुसुमकृत कुंजे मधुकर गुंजे।
सुखयति रघुराजो श्री रघुराज सखिम- समूह - सुखपुंजे।।

भजन रत्नावली

श्री रामनारायणदास

अयोध्या निवासी श्री प० रामनारायणदास के रचे भजनो का यह सुवृहद् सग्रह उनके अनुज श्री माधवदास ने लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस से मुद्रित कराकर छोटेलाल लक्ष्मीचन्द बम्बई वाले द्वारा दिसम्बर १८९९ मे प्रकाशित करवाया। इस सग्रह में विभिन्न समयो और लीलाओ के पद हैं जो सर्वथा राग-रागनियो मे गेय हैं। ग्रन्थ के अन्तिम भाग मे शृगार रस की उपासना के कुछ विशिष्ट पद हैं जिनसे यह पता चलता है कि श्री रामनारायणदास एक बहुत ऊँची निष्ठा के साधक थे और शृगार-साधना मे इनका गहरा प्रवेश था। भाषा मे कही भी पण्डिताऊपन नही है, न व्यर्थ का आडम्बर ही। भाषा बडी चुटीली, भावपूर्ण, सशक्त और प्रभावोत्पादनी हैं। राग-रागनियो का अच्छा ज्ञान है। मधुर रस का सुन्दर अनुभव हैं। भाव-राज्य मे मस्त विचरण करनेवाले अनुभवी सन्तो में प० रामनारायणदास जी का स्थान अन्यतम है। स्मरण रखने की बात यह है कि आपमे कही भी अनावश्यक शृगार-प्रदर्शन का भाव नही आया है। जो कुछ है सहज है, सुन्दर है, सुमधुर है अतएव सुस्वाद्य है। उदाहरण —

भजन रत्नावली

जैसी श्री जनकराज लाडली ललित भ्राजे कोटि रति लखि लाजे रूप कौसी माई है।
तैसे घनश्याम राम सुघट सुशील धाम लाजे लखि कोटि काम उपमा न पाई है॥
रूप से अनूप जोउ वय से विशेष सोउ कुल से कुलीन दोउ सखि सुखधाम हैं।
राम नारायण कहि सखि न विचारो सहि दुलहिनि लाय कहि दूलह श्री राम है॥

प्रभु मैं अनाथ तव शरणे सनाथ भयो दीजे दीनानाथ भक्ति सुन्दर उदार हैं।
दिन प्रति सत साथ राहि दीजे श्रीयानाथ मागो वर जोरि हाथ दया के आगार है॥
मोहिं न भरोसो हाथ ते भरोसो रघुनाथ अहो जगन्नाथ प्रभु तेरोई अधार है।
अनेक अनाथ प्रभु नाथ से सनाथ भए कैसे न सनाथ होउ नारायण नाथ है॥

सीता का रूप

रति मद दवनी कदव तरुणि विच सोहत सिय सजनी।
नख शिख सजि शृगार अनूपम मोहे श्याम धनी॥
कुसुम कलीवर ग्रथित कुचन बीच अरुणी माग बनी।
चन्द्रिक कलित शीस पर सुन्दर शोभा सुभग बनी॥
वेंदी लसित ललाट लसत अति चन्दन खौर बनी।
भृगुटि काम को दड नैनशर कज्जल ललित बनी॥
कनक किंकिणी जडित मोति युत श्रवण फूल सजनी।
ललित कपोल लसत अलकेवर मानहु छौंन फनी॥

राम का रूप

स्मर मद दमन कदंब कुंवर बिच राजो सियावर सोहैं।
नख शिख लौं अंग अनूप माधुरी लखि मुनि मन मोहैं॥
रुचिर चौतनी चमक शीस महुं कुसुम कली गोहैं।
चिक्कन कच घुंघवारे लसत वर अलिगन मिलि सोह॥
केशर तिलक कलित अति भाले कुटिल शुभग भौंहैं।
मानहु काम को दंड सहित वर हाटक शरसोहैं॥
कुंडल कलित जडाउ करण युग नासा मणि सोहैं।
रदन कुन्द अरुणाधर पल्लव हास्य मधुर मोहैं॥
उर वर कनक माल राजत अति मणि मुक्ता पोहैं।
भुज युग अणत जडित वृत सुन्दर कर धनुशर सोहैं॥
नाभी गहर गंभीर उपर वर मालपदिक सोहैं।
कटि पट पीत कनक किंकिणि युत लखि रतिपति मोहैं॥

झुकि झुकि झमकि कदंब विटप तर सखि सिया वर झूले।
जन दुख दमनी मन प्रिय पूरणी श्री सरयू कूले॥
बन प्रमोद उर मोद देत सखि नाना तरु फूले।
चन्दन चम्पक कुंद चमेली लखि रतिपति भूले॥
गुला वास गुलाब कदंब सुगंधे सुर तरु नहिं तूले।
उमडि उमडि घन गरजत सुन्दर वरषत अनुकूले॥
मणिन झडित वर कनक हिंडोले झूलत मन फूले।
कुसुम सिंगार कलित श्री सिय पिय हसत अधर मूले॥
गाय झुलावे झमकि झुकि सजनी लखि मुनि मन डूले।
उर आनंद भरी सब सजनी सुधि बुधि सब भूले॥
को वर्णे छवि छवि पर सजनी नहिं त्रिभुवन तूले।
रामनारायण स्वामि श्यामरो सब के मन कूले॥

शरद ऋतु जान के सारी।
रच्यो सुख रास प्रभु प्यारी॥
धरे मणि मोति की माला।
सोहैं संग सुंदरी बाला॥
नचत बर नागरी राजे।
मधुर धुनि नूपुरे बाजे॥

टेरत बर तान को प्यारे॥
गावत स्वर सुदरी न्यारे।
घुमरि घुमि लेत है घुमरी।
सुधी जव व्याह की सुमरी।
भरी आनन्द मे प्यारी
पकड कर राम को सारी॥
मिले सियराम अँकवारी।
नारायण राम बलिहारी॥

नटत श्री रामसिया मिली जोरी।
धवल सिगार वरे प्रभु प्यारी मोहे सखी वीच सुदर जोरी॥
धवल निशापति सोहे शरद को धवल काति चहु दिशि झलकोरी॥
छुम छुम छुम पग पैंजनिया वाजे ताता थेई थेई वोलत सखियोरी।
ताल ताल मृदग मिलावे आलीगन मधुर मधुर स्वर गावे किशोरी॥
हास विलास भई बस भामिनी देह सुधी विसरी सव कोरी॥
पिया भुज सोहे सीय अक पर सीय भुज सोहे पिय अक भलोरी।
रामनारायण के प्रभु रसिया रस भीनी सुन्दर सखियोरी॥

राघो सिय खेलत होरी।
इत रघुनाथ सखा लिये अनुजन उत मिथिलेश किशोरी।
केशर कीच मची छत ऊपर रग वरसै चहु ओरी॥
चलो सखि देखन सोरी॥
मुख भीजो सिय जनक नदिनी चदन केसर घोरी।
रीझ रीझ दृग आजि लाल के लियो पीतावर छोरी॥
किये सव सुधि वुधि भोरी॥
फगुवा दियो है सकल मन भावन ठाढे युगल कर जोरी।
वदन करत सकल जग वदन चदन भाल लगोरी॥
हसी सव सखि मुख मोरी।
राम जानकी ध्यान वसो हिय गौर श्याम वरजोरी॥
रामदास दपति छवि ऊपर निरखि वदन तृण तोरी।
दृगन से क्षण न टरोरी॥

हम चाकर रघुनाथ कुवर के।
यम के दूत निकट नहि आवें द्वादश तिलक देखि यम डरपे॥
गुरु के वचन ज्ञान दृढ राखो सुमरन भजन सिया रघुवर को॥

तुमहिं याचि प्रभु और न याचो नहिं आश्रित कोउ नारी नर को।
अग्रदास स्वामी पटो लिखायो दशरथ दशरथ सुत के कर को॥

शृंगार प्रदीप

श्री हरिहरप्रसाद

सच्चिदानन्दकन्द परब्रह्म परमेश्वर श्री दशरथनन्दन भगवान् श्री रामचन्द्र जी तथा श्रीमती जनकसुता जगज्जननी श्री जानकी महारानी का शृंगार मनोहर दोहे, कवित्त, सवैये एव पदो मे वर्णन किया है। लेखक ने स्वय अपने को श्री जानकी का कृपापात्र होना स्वीकार किया है। मुशी नवलकिशोर के छापखाने मे सन् १८८६ ई० मे लिथो मे यह छपी। इसकी एक खडित प्रति प्राप्त है जिसमे कुल ११६ पद मिलते हैं। सभव है यह पुस्तक कुछ और बडी हो और अधिक पद उसमे हो। अस्तु। इसमे एक बहुत बडी विशेषता है कि लेखक ने दोहे और पद का क्रम रखा है और इसमे लक्ष्य करने योग्य बात यह है कि लेखक ने दोहे मे तत्त्व की बात अत्यन्त साकेतिक रूप मे कह दी है और पद मे उसे ही भली भाति पल्लवित किया है। दोहे बहुत ही चुस्त भाषा मे है। थोडे से शब्दो मे अधिक-से-अधिक भाव भरने की क्षमता अपूर्व है। दोहे जितने ही साकेतिक है, पद उतने ही व्याख्यात्मक और विवरणात्मक। कुल मिलाकर यह निःसकोच कहा जा सकता है कि शब्दो मे चित्राकण करने की शक्ति विलक्षण है और जहाँ जहाँ श्री जानकी जी के रूप, गुण, वय, शृंगार, लीला, स्वभाव का वर्णन आया है, वहाँ 'कवि का हृदय भावों से भर आता है। श्री जानकी जी की कृपा का प्रसाद कवि को प्राप्त है यह शृंगार प्रदीप' से स्पष्ट है। उदाहरण—

इत कलगी उत चन्द्रिका कुडल तरिवन कान।
सिय सिय वल्लभ मो सदा वसो हिये बिच आन॥

वसौ यह सिय रघुबर को ध्यान।
श्यामल गौर किशोर वयस दोउ जे जानहु की जान॥
लटकत लट लहरत श्रुति कुडल गहनन की झमकान।
आपुस मे हसि हसि कै दोऊ खात खिआवत पान॥
जह बसत नित मह मह महकत लहरत लता बितान।
बिहरत दोउ तेहि सुमन बाग मे अलि कोकिल करगान॥
वहि रहस्य सुख रसको कैसे जानि सकै अज्ञान।
देवहु की जह मति पहुचत नहिं थकि गये वेद पुरान॥

विहरत गलबाही दिये सिय रघुनन्दन भोर।
चहु दिशि ते घेरे फिरत केकी भवर चकोर॥

नक मुक्ता लहरै इतै उत नथ मोती हाल।
विहरत गलवाही दिये निरखहु झाकी हाल॥
जिनके अग प्रसत ते भूषित भूषण होत।
होत सुगन्ध सुगन्ध युत पोतो मोती होत॥
शोभा हू शोभा लहत जिनके अग प्रसग।
विधि हरिहर वाणी रमा उमा होहि लखि दड॥
तिन सिय सिय वल्लभ चरण बार बार शशिनाथ।
चरण धूरि परिकर युगल नयनन माझ लगाय॥
देव सुधा सागर धरयो पद मुक्ता हित जाय।
भाग्य सरिस लहि निज भणित पोतहु दियो मिलाय॥
विधि हरिहर जाकहु जपत रहत त्यागि सब काम।
सो रघुवर मन महु सदा सिय को सुमिरत नाम॥

सिय जू रानिन मे महरानी और सभै रौतानी।
चितवत भौंह खडी कर जोरे इन्द्रानी ब्रह्मानी॥
गौरा पान लगावत रचि रचि रमा खवावत आनी।
आठौ सिद्धि खडी कर जोरे नवनिधि मनहु विकानी॥
कोटिन ब्रह्माडन की प्रभुता रोम रोम अरुझानी॥
जो माया एकै घटि पर सर्वाहि पियावत पानी।
सोउ चाहत जाकी करुणा को वार वार सनमानी॥
जा विनु पातौहिलि न सकत जो सब घट माहु समानी।
सत जनन की इष्ट देवता राम प्रिया जग जानी॥

श्री वन मनही मन मे भावत।
कहत न वनत वनत वह देखत कोउ सुकृती रस पावत॥
रग रगीले फूल सियामय मधुकर प्रेम वढावत।
भासत देखि कुज को अतर सिया चली जनु आवत॥
कवहु केसरिया कवहू चुनरी कवहु नील लहरावत।
कवहु गुलाली महकत पट छवि कुजन मे दरशावत॥
जेहि कारण जप तप को साधत घर तजि मूड़ मुडावत।
याको देखत सोई देवता अनायास उर छावत॥

जैति सिया तडिता वरण मेघ वरण जय राम।
जै सिय रति मद नाशिनी जै रति पति जित साम॥

जयति श्री जानकी राम जोरी।
जगमग तनु गर तन जनु विमल नखत गत वदन पर वारिये शशि करोरी।।
शरद नभ श्याम श्री राम मुनि मन अगमत मनहरन जोतिमी सीय गोरी।।
दोउ मिलि राम की रामता वनि गई जहा कलिकाल की नहि झकोरी।।
भई वडि भीर रघुवीर छवि लखन को झाकि झाकहि तिया तिनकनोरी।
बरत महताव पर परत पाखी यथा प्रेम वश होय रही देह भोरी।।
तहा सिय मातुकी का दशामे कहो देव मे भयल गिग यठ गोरी।
रीति व्यवहार तव कोक है कोक रे थकित गति देखि शशि जनु चकोरी।।

जगमग सिय मडप मे मगल मचि रह्यो।
मगल पुरुष आपुइ जनु इहा नचि रह्यो।।
सोरह विधि शृगार मदन मत मे कहे।
अनायास ते सिय अगन मे मजि रहे।।
अगन की उज्जवलता सो शृगार है।
नित नयो साजै ऐसो याको विचार है।।
शृग नाम अभिमान सो जामे नित्य बढ।
जेहि साजत अगन मे दूनो रग चढ।।
आपुहि मह मह महकत सिय जु को अग है।।
गन्ध लगावनि हारि मनहि मे दग है।।
नील कमल से सिय दृग आपुइ अजिर है।।
अजन साजिन के मन तब लजि रजि रहे।
नित चिक्कन कच सिय के पिय के सनेह भरे।
आलिन तेल लसावति मन सदेह परे।।
सिय अधरन पर लाली मानहु पीक है।
सखि कह पी कहुते यह लाली नीक है।।
अधरन ओठन तर रहि होहु उदास हो।
सोई ऊचो जा मे अमिय को वासहो।।
सिय पायन की लाली लहलह लहकत है।
नाउन लिये महावर लखि लखि अहकत है।।
सियतन पावन उज्ज्वल गग तरग से।
तिनको मज्जन केवल जनकी उमग से।।

आन न यहि सम ताते आनन नाम है।
सिय मुख ही मे अर्थ बनत अभिराम है।।

माया के सब तजे हसनि में समाय रहे।
राम से धीर पुरुष हू जामे लोभाय रहे॥
राम धरे धनुवाण मुरति सिय भौंहन मे।
औ सूरति सिय जू के नयन रिसोहन में॥
कानन मे सिय जू के राम लोभाय रहे।
लोग कहत गये कानन ते वउराय रहे॥
देव नजरि जह हार तितह का ताम की।
चूक सुधारहिं सज्जन पतित गुलाम की॥
झूलत रग हिंडोरना दम्पति भरे उमग।
मेरु शृग राजत मनो घन दामिनि यक सग॥

अवध वाग जस नदन तह ऊचो श्री खड।
कनक हिंडोला तह पर्यो जामे कचन दड॥
जग मग रत्न अनेकन वग वग कचन पीठ।
नाद विन्दु मडल लमै जहं पहुचत नहिं दीठ॥
तापर सिय वर राजत जैमे दामिनि वत।
दोउ दिशि प्रेम झुलावत माजत सुरतइ कत॥
राग समय मडल वध्यो झरन लगे रस वुद।
रोम रोम रस भीनत मिटे ताप दुख दुन्द॥
दोउ परस्पर अमिय से वनि रहे गरके हार।
सुमनन की वरषा भई गरजन की वलिहार॥
वह ककण वह गिर पटा वह मोतिन की माल।
इन्द्र धनुप मडल वना पीतरित खरु लाल॥
श्रवण पुनर्वसु चौकडा नित सावन हिं जनाव।
देखि मोर मन हरपत पहुची जडित जडाव॥
या जोडी पर वारो अपने तन धन प्रान।
पूरण मडल मचि रह्यो वाजत देव निशान॥

साख्य योग वेदात को छाडि छाडि सब जग।
चरण शरण सिय ह्वै रहहु करि मन माह उमग॥

सियाराम चरण चन्द्रिका

कविराज लछिमन

सियाराम चरण चन्द्रिका : जैन प्रेस लखनऊ मे सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचंद बम्बई वाले ने मार्च सन् १९९८ में मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इसमे राम और सीता जी के चरण कमलो का बहुत ही भाव पूर्वक ध्यान है। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से यह ग्रंथ उल्लेख्य है।

उदाहरण—

जुगल सुरग जोग बल के कला मे तल भूपन भुअन सारदा के अवतार मे।
लछिमन नखन बहाली मजु मोती लर तरल तरगं गग अमृत अगार में।।
राव रामचन्द्र मैथिली के चरणाम्वुज पे वैर ही प्रभा जो दान कीरति प्रचार मे।
विज्जु धन भार मे न सिधु वार पार मे न रतन अपार मे न पारस पहार में।।

देव वधूटी लवा वरसे परी किन्नरी मौज मे मगल गावे।
त्यो लछिराम सची सुभ सारदा भाल विसाल पराग लगावे।।
ना गल लीन री देवि दिगग ना नेक प्रणाम अभै वर पावे।
मैथिली श्री रघुनन्दन के पद कज प्रभा भरे पूजन आवे।।

रामचन्द्र चरणाम्बुज त्रिभुअनपाल।
हरन जुगा जुग जन के ज्वर जय जाल।।
श्री रघुवर चरणाम्वुज आनद कद।
ध्यान करत जन जीते जग जम फद।।
सिअ चरणाम्बुज गोरे सज मणि मच।
पारस चितामणि छवि जारत रच।।
रामचन्द्र चरणाम्बुज गज रथ रास।
वरसत नृप सिरही रे मुकुट प्रकास।।
रामचन्द्र पद पावन सावन मास।
बरसत जन वन अमृत अचल अवास।।

श्रीरामचन्द्र विलास

श्रीनवलसिंह 'श्रीशरण' युगल अलि कृत

एक खडित हस्तलिखित प्रति श्री हनुमत् निवास मे महात्मा रामकिशोर शरण जी महाराज के निजी पुस्तकालय मे प्राप्त है। उमा-महेश्वर सवाद मे सम्पूर्ण पोथी है—प्रथम अध्याय मे राम की बारात का वर्णन है—भगवान राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ सपूर्ण मिथिला मे हाथी पर

वैठ कर सब को सुख देते हैं। वहाँ सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियो को लेकर यह शोभा विमान मे वैठे देखते हैं। और फिर, पुरवासियो से मिल कर शोभा देखते हैं। मुनियो की रमणियो ने आरती की, हार पहनाये। उन्हे भी नेग निछावर दी जाती है। दूसरे अध्याय मे वधू-प्रवेश का वर्णन है। इसमे 'मुख दिखाई' का प्रसग बडा ही मधुर है। विवाहोत्तर देवपूजन का वर्णन तीसरे अध्याय मे है। ककन छोडने की लीला तथा मत्स्य वेधन लीला का वर्णन चौथे मे है। मत्स्य-वेधन मे श्री जानकी जी के हाथ मे मछली की डोरी है और राम जी के हाथ मे धनुष। रामजी वेधना चाहते हैं पर सीता जी की कुशलता से मछली वच जाती है। पचम अध्याय मे विलास खड है—इसमे राम और सीता के सभोग विलास का बडा ही मनोहारी वर्णन है। छठे अध्याय मे 'चौठारी' का वर्णन है—जहाँ राम सीता का द्यूत वर्णन है। सातवे अध्याय मे श्री राम जानकी की काम-क्रीडा का वर्णन है। आठवे मे महारानी सभी सखी देवागनाओ के साथ अयोध्या पधारती है। नवे अध्याय मे राम सीता का माधुर्य विहार है। दसवे अध्याय मे सीताकृत पाक वर्णन बडे विस्तार से वर्णित है। ग्यारहवें अध्याय मे परस्पर उपायानोपाहार भेट पत्र-विलेखन का प्रसग है। बारहवें में श्री राम-जानकी का पुन मिथिला गमन है।

सवत् १९०७ शालिवाहन १७६२ मे झाँसी मे यह ग्रन्थ लिखा गया।

उरझे सियपिय नेह जाल री।
रूपरासि सियप्रिय मुल्हादिनी रसिक सनेही नृपति लाल री॥
रदछद रद सुगउ करधारी प्रीति विवस रस सिधु बाल री।
युगल अली जीवो तुर पति रसभोगी दृग निधि बिसाल री॥

सखि री मोको भूलति नहिं सिय प्यारी।
केलि निकुज ललित सज्जा पर प्रिय तमाल ढिग कनक लता री॥
अल वाल सखिजन मडल मनु फूली ललित साखा सुभुजा री।
युगल अली सुमनोरथ फूलवर फूलत फलत सुरहत सदा री॥

सेज हिंडोरो सोवत पिय प्यारी।
गावत गीत झुलावन नागरि रूप रासि जोवन मतवारी॥
मोद सुकुमारि अग सेवा पर पान करत माधुर्य सुधा री॥
चमरी विजन मोरछल कोऊ रूप प्रशसा कर कोई नारी।
चहु दिसि कोटिनि राजकन्या सेवत दपति रूप महा री॥

आजु री सिय छवि अधिक बनी।
निज कर श्री नृप लाल सिंगारी अग अग सोभा अति ही जनी॥
मुक्ता माग सुमन वेणी रचि सीस चद्रिका रचित मनी।

छूटी अलक कपोल उरोजन जनु गिव गीम गुगाज फनी।
नथ मुक्ता अवरो पर राजत मनहु मुधाकन कीग चुनी॥
स्याम वरन कचुकी कलित छवि गल्ल भूषण सुपमा सु तनी।
भुज मुकुमार सोहाय आभरण ललित मुद्रिका जटिल पनी।
लहँगा सुभग किकिनी कटि मे कटक मुहुमक ललित ध्वनी।
युगल अली सीता अग मुख मानिमि वासर हिय नेन मनी॥

भावनामृत-कादम्बिनी

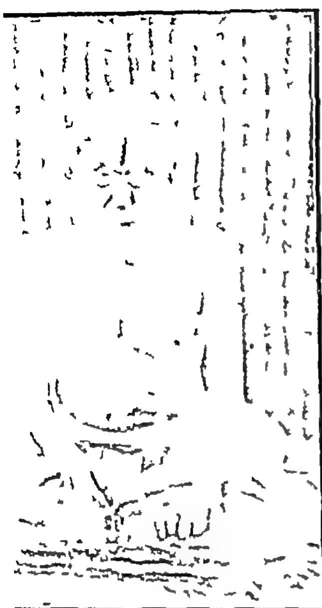
श्री युगलमञ्जरी जी

हस्तलिखित प्रति, श्री हनुमत् निवास मे सुरक्षित—यह रस भावना का मुन्दर ग्रथ है पन्ना ५५। साहित्य की दृष्टि से यह ग्रथ अद्वितीय है। भाषा बडी ही रसमयी रसभरी है—

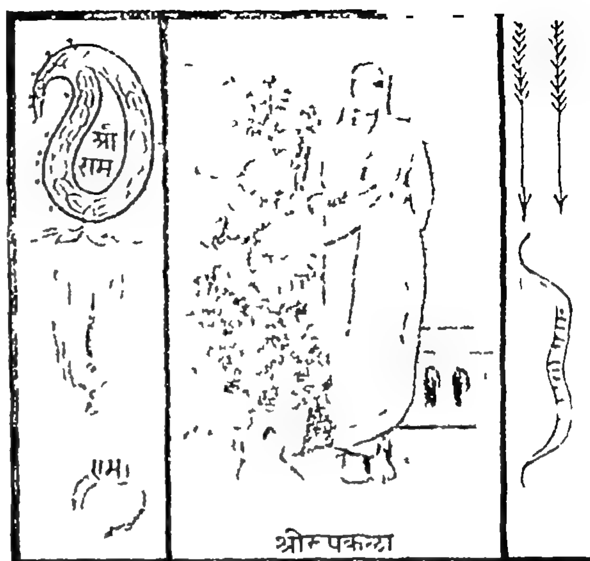
प्रेम विवस हियरे लगत जिया लेतु चुराय।
हँसि हँसि रसवति आकरत भरयो सिंगार सुराय॥
कल कपोल कुण्डल हलक अलक झलक छवि देत।
ललकि ललकि हिय सो लगत पलक चित्त हरि लेत॥
झूमि झूमि झुकि झुकि परत दिये अस भुजमाल।
हँसि हेरन चित चोरही कब देखिहूँ सिय लाल॥
अलकैं उरझी चद मुख दृग कपोल लसि पीक।
अजन अजित रदसुपट सिय पिय अलिय वदीक॥
अलसाते सुदृग मदन सुभाते बैन॥
उठे सुहाते सेज पर कब देखिहूँ अलि नैन॥
करि करि चितन सेज सुख वितई जाम सुरीठि।
तिनको अलि कल परत कम सदै बसिये पिय पीठि॥

उरझी अलकैं कुडलन हार हीय उरझानि।
अग अग उरझे दोऊ उरझी छवि हिय आनि॥
सुरझावन लागीं अली उरझि गए सब अग।
यार झूमि उरझे सदा रसिक हीय दृग सग॥

भली बनी छवि आज की नही कही कछु जात।
मुनि जन तिय करि देतिहूँ, नारिन की का बात॥
छोडि जुलुफ गल बाहि दै हिय गजमुक्ता हार।
दीरघ दृग घायल करत श्री नृपराज कुमार॥



। श्रीसीतारामशरणजी



श्रीरूपकलाजी



। श्रीसियारामशरणजी



स्वामी रामप्रसादजी

सीतावल्लभ लाल की सुछवि विलोकिय तीय।
हँसि हेरत हिय सो लगत भरे नेह कमनीय॥

सुखद सेज पर राजही सेवत सखी समाज।
गौर स्याम सुखमा अयन रसिक सिरोमणि राज॥

समय-रस-र्वाधनी

श्री सियाअली कृत

एक हस्तलिखित प्रति खुले पन्नो मे हनुमत् निवास मे प्राप्त है। कुल ९५ पन्ने है। कुल ग्रन्थ कवित्त सवैयो मे है। आरम्भ में नाम माहात्म्य है। फिर मिथिला माहात्म्य है। तदनन्तर है श्री सीता जी की छवि का वर्णन।

उदाहरण

सोहत नील निचोलनि पै घन अन्तर मे दुति ज्यो चपला की।
गाये अनेक अमोल नगे जिनि छीनि लई छवि चन्द्रकला की॥
प्रेम सखी मुक्तागन रव छलै रै लरै विरची कमला की।
दृष्टि हटी न चली सिया के उरहार विलोकत राम लला की॥

इसके अनन्तर लीला और धाम का वर्णन है। तदनन्तर सीताराम के सयोग का वर्णन है—

प्रात लाल जागे सिया सग रति पागे अग अग छवि पै अनग कोटि वारे है।
रतन पर्जक पर अक धरे प्यारी निधि रक ज्यो निसक छिन होत नहि न्यारे है॥
छूटे वार भार वनमाला उरहार जूटे वार वार घूमे रसमत्त दृग तारे है।
घूमि घूमि जात अलसात ओ जह्मात दोऊ मन्द मुसकात राम सखे प्राणप्यारे है॥
छूटे केश पानपीक मण्डित कपोलन पै लटपटे पाग पेच अटपटे वागे है।
मर्गजी माल वक्ष कुमकुमे लपटाय स्वच्छ अग अग ढीलियो अनग रग पागे है।
भाल पद जावक सौ अकित पिय अवधि लाल रामसखे नई बाल सग अनुरागे है॥

नित्य रासलीला

श्री सियाअली

श्री हनुमत् निवास में पत्राकार प्रति हस्तलिखित, कुल ४१ पन्ने। कवित्त दोहे चौपाइयो मे—आरम्भ मे श्री अयोध्या की शोभा का वडा ही भव्य मनोहर वर्णन। नाना प्रकार के फूलो, फलो, वृक्ष-लताओ, पक्षियो का वडा ही सजीव चित्रण। तदनन्तर महल का महान् मगलमय स्वरूप वर्णन, तथा कुन्जादिको की शोभा विस्तार। फिर युगल मिलन—

सुमन सेज सिंगार रंगीले
करत केलि रंग रूप उज्यारे।
कर कमलन गण्डन दोउ धारे
पीवत रस पिया राजदुलारे।
रंग ललित रगन पर राजत
पुनि सुकलिन कमलन कर वारे।
चूमि रहे दोउ अंग मनोहर
जिमि मधुकर सरोज मतवारे।
विहसि विहसि कछु कहत छबीले
सिया अली अलि सो छवि धारे॥

देखो आली सोभा अनिसैं बनी री
रतन मनिन्ह जुत जडित सिंघासन
तापर जुगल किसोर रागिनी भीजे
अंग सिन्द सुखश्रम ते जनु रवि वाल
सुअभित घणी री ।
हीरन मे सिर क्रीट चन्द्रिका मोतिन की छवि अमित तणी री।
अलकन लोल, कपोलन ऊपर नासा बेसर अलक जणी री।
रद तमोल दुति मैन वार बहु सो छवि कवि को कहत भणी री।
श्रम जल बिन्दु विराजत मुख पर सिया अली अति सुख सो घणी री॥
पीत स्याम औ अरुन कमल पर छलकत स्याम की ओसकणी री।

सीतावर रास रवन नटवर वरवेश वरन
जुवती मन मोद करन निरखो सखि सो री।
अंगन्ह दुकूल कसैं दामिनि द्युति अति सुलसे
भाल तिलक भृकुटि मद अतुलित छवि त्योरी।
चिकन सुनि चिकुरि माह जूही सुमनन सुचाहि
अधर अरुनतरै कपोल धारी दृग बोरी।
कुण्डल मृदु अति अमोल झूमत नागिनि सुलोल
सुन्दर सुकुमार अंग चन्दन सुचि खोरी।
नैन अमल अरि सुमैन विहसत कछु कहत वैन
छवि समुद्र मनो तरंग नासा मनिहि लोरी।
धारे भुज अस ललन नीदत गति हस चलन
सिया मुख ससि दृग चकोर दृग सो दृग जोरी।

सोभित भामिनि सु साथ पिय उर घन तड़ित गात
जिमि भुअग रहि दुराय चन्दन अग कोरी।
भौह कुटिल लसि अपार विन्दा सुखमा की सार
मुख सुचन्द्र माननि मन लाल केरि झोरी॥
खजन दृग जोरि हँसत जोवन मह जोर कसत
अगण प्रति रम लखाय प्रीतम चित चोरी॥
वेणी सुमनन अपार गुही अलिगन सँभार
राखे पीठी दुराय नागिणीपतियो री।
कीट जडित मनिन्ह चारु मोती मानिक सुपार
झुके सिर सुचन्द्रिका जु उरझैं दृग गोरी॥
सोभा ससि जुगल वदन नख सिख सुखमा की सदन
लोभे रति काम कोटि अगन प्रति दोरी॥
वाजत रव विन मृदग नाचत मति अति सुगन्व
गावत नव सरस रग ललना चहुँ ओरी॥
राजत नृप राज सदन वन प्रमोद सघन कुञ्ज
लीला ललित करनि काम रूप सो धरोरी॥
मागत सिया अलि सुदान लुव्व मधुप इव सुजान
वसो सहित भामिनी सुकमल नैन मोरी॥

इसमे जल-विहार का वर्णन वडा ही रससिक्त है।

दम्पति रुख अति पाइकै चारु शीला हसि वोल।
चन्द्रकलादिक हेरितन करिय मकल दुई गोल॥
एक दिसि स्याम सव अलिनि युत एक दिसि सिय सग वाल।
लागे छीनन वारि कर अति सुप्रेम दोउ लाल॥
नाना भेद फुहार में छीचि राम सिय वाल।
मुखन लेह जल मेलि मुख वडी प्रेम छवि॥
छूटि अग अंग वसन छिपि योवन दृग हहरा जाल।
सहि न सकत प्रिय विकल मन लपटि लपटि उरझात त॥
विवस अक भुज मेलिकै मुख सो मुख हसि मेलि।
चचरीक जिमि जलज महँ करत विविध रस केलि॥

लाल अग वर स्वाद सुजागी
पिउ पिउ स्याम कहन सो लागी।

रच्छद करि गण्डन भुज भारे
सुरति केलि सखि गावहिं न्यारे ।।
जिमि कचन गिरि मेघ सुहाई
तिमि सुलाल पिया उर मे छिपाई ।।

जे० वदी १, सवत् १९२९

श्यामसखे की पदावली

गोस्वामी श्री श्याममखे के ४४५ पदो का यह वृहत् मग्रह कनक भवन अयोध्या से श्री लक्ष्मीशरण रामसनेही जी मे मेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द वम्बई वालो ने प्राप्त कर लखनऊ प्रिंटिग प्रेम से सन् १८३८ ई० मे छपवा कर प्रकाशित किया। युगल मरकार मीताराम के रूप रम एव लीला-विलाम के पदो का यह मग्रह अपने ढग का अकेला है। भापा मे कही-कही पजावीपन है और कही-कही भोजपुरी का पुट भी मिलता है। ध्यान देने की बात है कि श्यामसखे जी न केवल रसिक भक्त है, परन्तु एक सधे हुए गायक भी है। ममस्त राग और उनकी रागिनियो का इतना अच्छा भावपूर्ण उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। भापा मे वहाव है और कही-कही उर्दू फारसी के शब्द भी आये है, जो बहुत प्यारे लगते है। सम्पूर्ण रामलीला इसमे आ गई है और सीताराम के मिलन, झूलन, दरस परम और विरह का जैसा मनोहारी वर्णन श्यामसखे जी ने प्रस्तुत किया है और ऐसे भव्य रूप मे कि वह अन्यत्र मिलने का नही।

अस्तु, इस विशाल ग्रन्थ से कुछ उदाहरण देने का लोभ-सवरण करना कठिन है—

सिय पिय आजु सरस रस भीना।
सुफल मनोरथ भयो हमारो जगी जानकी ये बर दीन्हा।
दरसन हित लालच उर बाढी भई है बिकल लखि रूप नगीना।
श्याम सखे बिरहिन मन मोहन बर्साहि दृग सिय राम नवीना ।।

चलु देखु सखी तन सावर को।
सिर मौर धरे सिय को बनरो।
श्रुति कुण्डल डोल कपोलन को।
छवि नासा मोतिन की लहरो।
चित खैंचि गहे मिथिला पुर को।
तिरछी चितवन दृग हे कजरो।
बिसरे नहिं श्याम सखे जिय सो।
कर ककन सोह हिये गजरो ।।

सावन सुख आनन्द भयो है उमगि नीर सरि नटा।
दास महाराज युगल छवि चितवनि प्रेम अमिय रस सटा॥

युगल छवि आज वनी वाकी।
अरुण चरण फल सुखमा की॥
शरद रैन भइ इदु प्रकाशित अमृत मय छाकी।
सुकुल वरण सव अमन वमन है कमलनयन जाकी॥
वैठे सुघर रसीले रसिया निरषु अली झाकी।
घेरि लिये चहुदिशि से मनि गन जैसे चद्र चकोर ताकी।
वाजत ताल मृदग सितारा सुरमुनि गावत जश जाकी।
दास महाराज हृदय मुख छायो राम सिया दोउ फल पाकी॥

सजि साज समाज युगल रसिया।
वैठे कनक भवन मे शोभित दरसन करत नयन वसिया॥
भूषण वसन विचित्र अग मे क्रीट कनक मनि सिर लसिया।
कमलानन दृग जुल्फ अली सम मानो पीवत झुकि झुकि रस रसिया।
गान करत अवलोकि पिया सुख दास महाराज रसिक फसिया॥

सखि आये कुअर अलवेला।
देखु देखु छवि परम प्रकाशित यही नयनन कर मेला।
कैसो रूप अनूप है सजनी कोटि मदन मद हेला।
अवध छैल दोउ वीर वाकुरा तुरिहैं धनुष करि खेला।
दास महाराज निरखि किन लीजै दान अमर पद देला॥
सिया जी सैन दियो सखियन को लेहु ललन को घेरी।
काजर करि चुनरी पहिराई नाच नचाइ को तान दई मिर्दग तर ताल परी।
लखन लाल जी को चन्द्रकलादिक पकड लियो वरजोरी।
कमल नैन मुख निरखत सजनी हसि हसि वात करी गले पर वाह धरी॥
भूपन वसन रग से भीज्यो भीज गयो तन गोरी।
दास महाराज सुमन सुर वरसत रग मे रग करी गुमान से आप मरी॥
नैना रग से भरी॥

युगलोत्कंठ प्रकाशिका

जयपुर चन्देली के श्रीसीतारामशरण 'शुभशीला' जी

श्री राजकिशोरी वर शरण (परमानन्द जी) ने श्री रहस्यप्रमोद भवन जयपुर मदिर, अयोध्या से दूसरी वार सवत् १९९४ में प्रकाशित कराया। प्रथम सस्करण में यह पुस्तक श्री सीता-

रामशरण भगवान प्रसाद जी ने 'रसिक उरहार' नाम मे छपवाया था। वस्तुत इसमे 'विनयमाला' और 'रसिक उरहार' दोनो ही सम्मिलित हैं। 'युगलोत्कठ प्रकाशिका' मे आरभ मे दोहे है और बाद में गेय पद।

विषय—आरभ मे परिकरियो महित श्री स्वामिनी जी की वदना है। रस से भरे दोहे बडे ही भावमय हैं। सपूर्णग्रथ बहुत ही प्रभावोत्पादक है। लीला रस के वस्तुत आस्वादन एव अनुभव से ओतप्रोत है। विरह ऐसी तीव्रता वेदना और उसका ऐसा निश्चल वर्णन अन्यत्र नही मिल सकता। कृष्ण भक्त कवियो मे जो स्थान घनानद का है, रामभक्त कवियो मे वही स्थान जयपुर चदेली का है।

उदाहरण—

परिकरि युत श्री स्वामिनी, सुख विवर्धनी साथ।
हमको दीजे सुख सदा, अव गहि लीजे हाथ॥

पद पकज देखे विना, वृथा जन्म जग जात।
सीतावर जुत मिलहु अव, छिन पल कलप विहात॥

हे सीते नृप नन्दिनी, हे रघुराज कुमार।
तुम बिनु व्याकुल चित रहत, रही न नेकु सम्हार॥

असन बसन कुल कान तजि, सब से भई उदास।
विरह अग्नि बाढ़त भई, तापै पवन उसास॥

ताहू पर घृत परत है, टपकत नयनन नीर।
बुझत नही बाढत अधिक, को जानै यह पीर॥

गृह बाहर बन मे फिरू, कहू न चित ठहराय।
जह तह जिय घबरात है, अब दुख सहो न जाय॥

नैन मूदि कबहू रहौ, बैठी गृह एकत।
सूरति कौ अनुभव करौं, खोले फिर बिलपत॥

तापर फिर लीला रचित, चित अवलम्बन हेत।
प्रिय प्रीतम की काति वह, कछु सीतल कर देत॥

तदपि चित्त माने नही, बिरह ज्वाल के जोर।
घन बिजुली सम दर्श दो, श्यामल गौर किशोर॥

बदन माधुरी गर्ज रव, बचनामृत जुत पीर।
बिरह अग्नि बूझे जबहिं, मिलन वर्ष हो नीर॥

हे बिधु बदनी जानकी! हे सीतावर श्याम!
कब दिखाइहो बिधु बदन, पद पकज अभिराम॥

दृग चकोर मन भ्रमर है, रसना चातक नाम।
कब देखे प्रीतम प्रिया, सुख विलास के धाम॥

कबहु कि वह दिन होयगो, प्रिय प्रीतम के सग।
भाव सहित अवलोकिहौ, जिमि चकोर परसग॥

पद पकज की माधुरी, मन मधुकर है लीन।
मिलन बिना व्याकुल रहत, बिरह व्यथा तन छीन॥

हे श्री सीते स्वामिनी! रसना रटत सुनाम।
चातक सम गति हो रही, सुनिये करुणा धाम॥

दृगन छबीली छवि बसी, जल समुद्र जिमि मीन।
ताहि बिलग मति कीजिए, हो तुम परम प्रवीन॥

विथा होत जिमि मीन के, बिछुरे प्रीतम नीर।
वैसी गति मम देखि कै, कृपा करहु रघुवीर॥

देखत जग मे मधुरता, सुन्दरि सुन्दर रूप।
तन व्याकुल ह्वै जात बिनु, देखे रूप अनूप॥

रूप अनूप दिखाय के, कीजै नैन सनाथ।
अछत नाथ अस क्यो करो, देउ प्रिया को साथ॥

सुनि कोकिल की कुहुक मृदु, उठत हिये मे हूक।
सिसिक सिसिक कर मीजती क्षमा करो अब चूक॥

हम तो सब औगुन भरी,तुम हौ गुण की खानि।
गुनन आपने रीझिये, बिरदा वलि उर आनि॥

नटत मयूरी देखि कै, विरह सतावै मोय।
केकि कठ तन की सुदुति, लखि-भुज मन भ्रम होय॥

कब भ्रम तुम यह मेटिहौ हे नृप राज किशोर।
गलबाही दीन्हे लखै, गौर श्याम चित चोर॥

देखत नृप तनया जगत, प्राकृत राजकुमार।
मिलिहो हमसे कबहुं अस, जस लौकिक व्योहार॥

सब जग अपने मित्र युत, सुख भोगत दिन रैन।
हमको दुख दिन प्रति अधिक छिन पल कबहु न चैन॥

हे सीते करुणाअयन, जतन बन नहि एक।
केवल कृपा कटाक्ष को चातक की सी टेक॥

स्वाति-बूंद पिय युत मिलन मेरे जी की आग।
पूरण कबहू कीजियो, जवली घट मे स्वाम॥

और कृपा कर दीजियो, जव लग तन में प्रान।
प्राण नाथ जुत नाम तव, रटैं छोडि अभिमान॥

चातक रटि घटि जाव भल, घटै न मेरो नेह।
चरण कमल मकरद की दृढ भौरी करि लेह॥

विरह तपावै मोहि ज्यो वाढे, अधिक मनेह।
जैसे कुन्दन के तपै, निरमल होवै देह॥

काम क्रोध मद लोभ ये, जग मे करे सनेह।
तव सनेह के रिपु अहैं नेकु न परसे देह॥

अरुण प्रीति छवि घटाकी, अटा विलोकी जाय।
असुवन झर वरमन लगी, तन सव दई भिजाय॥

भई शिथिल नहि चल मक, सीतल स्वास समीर।
तन कपाय व्याकुल करी, वेगि मिलो रघुवीर॥

वहु विधि भूषण नग जडित, देखि चढत है पीर।
कब पहिरैहौ निज करन, सुन्दर श्याम सरीर॥

वसन अमौलिक देखि कै, मन न धरत है धीर।
प्रिय प्रीतम के योग यह, मणिन जडित है चीर॥

रुचि रुचि वसन सम्हार तन, कव पहिनैहो पीय।
कोमल पुहुपहु ते अधिक, तन सुन्दर कमनीय॥

अग सुगध वहु विधि धरे, मणिन पात्र रमणीय।
पिय प्यारी के उर लसैं, सुफल होय तव जीय॥

राज साज साहित्य जुत, सव परिकर लिय सग।
निसि दिन विहरेगे कवहु, महलनि कुज अभग॥

वन विनोद क्रीडा ललित, साझ सवेरे वाग।
कब देखेंगे नैन यह, जगिहै हमरो भाग॥

फूल वाटिका महल की बिहरत युगल किशोर।
कवहु कि यह छबि देखि हौं,मनहारी चित चोर॥

जल विहार सरयू सलिल, करत सखी जुत लाल।
कब देखें झीने बसन, चिपट रहे छवि जाल॥

कबहु परस्पर प्रीति बस, अरस परस शृगार।
करत देखिहौ प्राण पति, लहमनि कुज मझार॥

रचि सिगार दोऊ खडे, दै हित सो गलबाहि।
कोटि रतन तब वारिहैं, तन मन से बलि जाहि॥

कब देखौं वह माधुरी, जनक लाडिली सग।
प्रीतम हित बतिया करत, उर अति मोद उमग॥

सुरति विहार बहार की, बाते अलिन समाज।
सुनि सकोच दृग लाडिली, देखहि वदन सलाज॥

कबहु कि वह दिन होयगो, जनक लली के पास।
चेरी ह्वै नेरी रहौ, लैहौं अग सुवास॥

कब लखि हैं नख माधुरी, पद पकज दृग मोर।
जिन ससि को तरसत रहै, मुनि गन भये चकोर॥

सरद रैनि की चादनी, विहरत युगल किशोर।
नृत्य सहित दपति लखै, सखि मडलि चहु ओर॥

करै मान जब लाड़िली, प्रीति विवश तुम सग।
कब मनाय सिय स्वामिनी, आन बटाऊ रग॥

मुरक चलन तिरछी नजर, पिय तन चितवत नैन।
कब सुनिहौ निज कान सो प्यारे प्रीतम बैन॥

बहुरि मान को छोडि कै, प्रीतम उर उमगाय।
मिलत देखिहै नैन यह, जन्म सुफल हो जाय॥

राम अमित मुख स्वेद कन, प्यारी तन झलकत।
करिहौं कब पखा पवन, हरिहौ श्रम हुलसत॥

सैन कुज पुनि गवन करि, करिहो सखिन निहाल।
सो छवि कब हम देखिहौ, प्रीतम सग रसाल॥

मिल विलसत प्रीतम प्रिया, फसे रूप छवि जाल।
तन मन से अगन रमे, प्रेम छके रस चाल॥

बाते केलि कलान की, शील सकुचि दृग लाज।
कब देखोगी दृगन हम, रस बस रस के काज॥

रस माते रस पान कर, रस राते तब नैन।
रस छाके रसकेलि मै, नैन मते छवि मैन॥

नैनन लखि छकि है कबै, मैन छकी दृग मैन।
नैना पल लागै नही, मुख से बनै न वैन॥

कब हम देखौं लाडिली, छकी छवीली कात।
सिथिल वदन भूषण वसन, पिया केलि सुरतात॥

भूषण वसन सम्हारि है, सुन्दरि सकल सुदेश।
पलक पीक कज्जल अधर, यह छवि लखैं हमेश॥

हे करुणाकर जानकी, राम जानकी जान।
सब परिकर की जान तुम, हे मम जीवन प्रान॥

कब दिखाइहो महल सुख, पय पीवत रुचि सग।
श्री महराज किशोर युत, सयन समय की सग॥

अलिगन पान कराय के, सयन करत सुख दैन।
प्रीतम सग पौढ़ी महल, सखि छवि छकिहै नैन॥

लाल लाडिली छवि छके, जागे महलनि कुज।
कब यह छवि मैं देखिहौ, जगि है भाग सपुज॥

मिलन सुधि कीजे हो मोरी।
कसकत हिये वियोग तिहारे, रैन दिवस सुनि बोरी॥
छिन-पल-कल नहि परत सखी री, सिय स्वामिन विन मोरी।
सुभ शीला की जीवन धन है, मिलि मिथिलेश किशोरी॥

जगे आली पिया प्रेम रस भीने।
नयनन नेह खुमारी झूमति, प्रिया अस भुज दीन्हें॥
रास नृत्य छबि सुख के भोगी, दृगन मैन छवि लीन्हें॥
सुखमा अग अपारी झलकत, रतिपति की छवि छीनें।
सुभशीला सिय अलक सम्हारति, नेह शिथिल तन कीन्हें॥

प्रात समय आन सखी मधुरतान गावै।
प्यारी प्रीतम सुजान जगे दर्श पावै॥
रास श्रमित छबि निहारि वारि फेरि जावै।
तन मन की तपन मेटि उर में सुख ल्यावै॥
आरति सुनि श्रवन नयन लली लाल जागे।
घूर्मित लोचन विशाल प्रिया प्रेम पागे॥

विथिरित दोउ कच कपोल भूषण उरझाने।
नयनन छवि रति विशाल मोद मे समाने।
रास श्रमित अग शिथिल पुनि पुनि अलसावे।
प्रिया कध अस मेलि फिर फिर झुकि जावे।।
देखति शोभा अपार उर सुख उपजावैं।
अधरामृत पान करत सिय जू सकुचावैं।।
कहत वयन प्रिया सयन नयन से वतावैं।
टुक लाज करो समुझि वरो परिकरगण आवैं।।
शरद रैन उत्सव मे विविधि आज आये।
ते सव सुखमा विलास देखत छवि छाये।।
तिनकी तन नयन सयन करे उते झाको।
सुभ शीला ललित प्रेम दृष्टि इतै ताको।।

राम श्रमित भये लाल, रैन मैन जागे।
प्रिया केलि सुखमा मे लोचन अति पागे।।
थकित केलि श्रमित अग यद्यपि नहि हारे।
मयन ऐन जग करन सूर वीर मारे।।
परिकर गण विविध आज भाति भाति आये।
तिनके कछु वैन सुनत मन मे सकुचाये।।
प्रिया अस मेलि कध मसनद झुकि वैठे।
मानहु रति कामजीत विजय भवन पैठे।।
सहचरि गण सकल आये दर्श नैन पाये।
देखति छवि शिथिल अयन नयन में लगाये।।
नयन ललित लज्जित की सुखमा कवि को कहे।
जानत सोई रसिक अली जिनके उर मोद वहै।।
सरिता उर घुमडि वाहिर को आवत है।
नयनन के मध्य मनहु दृग जासी दर्सत है।।
दृगन नीर प्रेम छयो मोद मैन भाई है।
सुभशीला करि प्रणाम पास अलि आई है।।

कनक भवन राजत पिय प्यारी।
पहिरे ललित वसन सु वसन्ती, सिय पिय मोह भरा री।
परिकरि गण सव समय रूप है, वाग वसन्त फुलारी।
ललनन के तन चप कली से, लसत भूषणन डारी।।

मदन मनोरथ केलि अनेकन अलि नव गुज तमारी।
हास विलास मुकुन्द कली मम, दीडि मदन मनकारी॥
ललित तमाल वदन सिय मुखकर, करि कमलन गलबाही।
मनहु तमाल लता बेली द्रुम, लिपटहि नेह भराही॥

आली हरो चित स्याम सलौना।
अद्भुत रूप अनूप सकल विधि, कोसलेश सुत सुजन खिलौना॥
जिय अकुलाय लखे बिन वह छवि, पितु गुरु जन डर निरखि सकौ ना॥
हिय हुलसत प्रिय मीत मिलन को, अवध कुवर बिन कोइ को होना॥
सचराचर व्यापक सुखदाई, राम राम मम स्याम सलौना।
कृपाशील जस प्यारो छबीली, गुन बल भूल हुआ है न होना॥

वैष्णव-विनोद

श्री वैष्णवदास

काशी-निवासी बाबू कामेश्वर प्रसाद के सुपुत्र बाबू गया प्रसाद उपनाम वैष्णवदास के रचे हुए कुछ प्रेम-प्रधान पदो का सग्रह भारत जीवन प्रेस (काशी) से सन् १९०३ ई० मे छपा। इसमे राधाकृष्ण ओर सीताराम के प्रणय-विलास एव लीला-विहार के १०५ पद है, जो अत्यन्त भावपूर्ण एव मधुर है।

उदाहरण—

हिंडोला झूलै सिय रघुराई।
मनिन जडित सुन्दर सिंहासन रेसम डोर लगाई॥
कदम की डार डार की झूला सरजू तीर सुहाई।
चातक मोर पपीहा कुहके कीरहु यह धुनि लाई।
सीताराम कहहु मेरे प्यारे जाते बिपति नसाई॥
स्याम घटा नभ ऊपर छाई दामिनि चमक दिखाई।
नान्ही नान्ही बूद परत कचुकि पर पौन चलत पुरवाई॥
राम मलार अलापत सुन्दरि ढोल मृदग बजाई।
देव विमान चढे हरखित मन सुमन बृष्टि झरलाई॥
मेघ स्याम सम बदन राम को सोभा कहि नहि जाई।
वैष्णव दास पाइ आयसु को पुष्प माल पहिराई॥

सावन सुख आनन्द भयो है उमगि नीर सरि नटा।
दास महाराज युगल छवि चितवनि प्रेम अमिय रस सटा॥

युगल छवि आज वनी वाकी।
अरुण चरण फल सुखमा की॥
शरद रैन भइ इदु प्रकाशित अमृत मय छाकी।
सुकुल वरण सब अमन वसन है कमलनयन जाकी॥
बैठे सुघर रसीले रमिया निरखु अली झाकी।
घेरि लिये चहुदिशि से मनि गन जैसे चद्र चकोर ताकी।
वाजत ताल मृदग सितारा सुरमुनि गावत जश जाकी।
दास महाराज हृदय सुख छायो राम सिया दोउ फल पाकी॥

सजि साज समाज युगल रसिया।
बैठे कनक भवन मे शोभित दरसन करत नयन वसिया॥
भूषण वसन विचित्र अग में क्रीट कनक मनि सिर लसिया।
कमलानन दृग जुल्फ अली सम मानो पीवत झुकि झुकि रस रसिया।
गान करत अवलोकि पिया सुख दास महाराज रसिक फसिया॥

सखि आये कुअर अलवेला।
देखु देखु छवि परम प्रकाशित यही नयनन कर मेला।
कैसो रूप अनूप है सजनी कोटि मदन मद हेला।
अवध छैल दोउ बीर वाकुरा तुरिहैं धनुष करि खेला।
दास महाराज निरखि किन लीजै दान अमर पद देला॥
सिया जी सैन दियो सखियन को लेहु ललन को घेरी।
काजर करि चुनरी पहिराई नाच नचाइ को तान दई मिर्दग तर ताल परी।
लखन लाल जी को चन्द्रकलादिक पकड लियो वरजोरी।
कमल नैन मुख निरखत सजनी हसि हसि वात करी गले पर वाह धरी॥
भूषन वसन रग से भीज्यो भीज गयो तन गोरी।
दास महाराज सुमन सुर वरसत रग मे रग करी गुमान से आप मरी॥
नैना रग से भरी॥

युगलोत्कंठ प्रकाशिका

जयपुर चन्देली के श्रीसीतारामशरण 'शुभशीला' जी

श्री राजकिशोरी वर शरण (परमानन्द जी) ने श्री रहस्यप्रमोद भवन जयपुर मदिर, अयोध्या से दूसरी वार सवत् १९९४ मे प्रकाशित कराया। प्रथम सस्करण में यह पुस्तक श्री सीता-

रामशरण भगवान प्रसाद जी ने 'रसिक उरहार' नाम से छपवाया था। वस्तुत इसमे 'विनयमाला' और 'रसिक उरहार' दोनो ही सम्मिलित है। 'युगलोत्कठ प्रकाशिका' मे आरभ मे दोहे हैं और बाद मे गेय पद।

विषय—आरभ मे परिकरियो सहित श्री स्वामिनी जी की वदना है। रस से भरे दोहे बडे ही भावमय हैं। सपूर्णग्रथ बहुत ही प्रभावोत्पादक है। लीला रस के वस्तुत आस्वादन एव अनुभव से ओतप्रोत है। विरह ऐसी तीव्रता वेदना और उसका ऐसा निश्चल वर्णन अन्यत्र नही मिल सकता। कृष्ण भक्त कवियो मे जो स्थान घनानद का है, रामभक्त कवियो मे वही स्थान जयपुर चदेली का है।

उदाहरण—

परिकरि युत श्री स्वामिनी, सुख विवर्धनी साथ।
हमको दीजे सुख सदा, अब गहि लीजे हाथ॥

पद पकज देखे विना, वृथा जन्म जग जात।
सीतावर जुत मिलहु अव, छिन पल कलप विहात॥

हे सीते नृप नन्दिनी, हे रघुराज कुमार।
तुम विनु व्याकुल चित रहत, रही न नेकु सम्हार॥

असन वसन कुल कान तजि, सव से भई उदास।
विरह अग्नि वाढत भई, तापै पवन उसास॥

ताहू पर घृत परत है, टपकत नयनन नीर।
बुझत नही वाढत अधिक, को जानै यह पीर॥

गृह वाहर वन मे फिरू, कहू न चित ठहराय।
जह तह जिय घबरात है, अव दुख सहो न जाय॥

नैन मूदि कबहू रहौ, बैठी गृह एकत।
सूरति कौ अनुभव करौं, खोले फिर बिलपत॥

तापर फिर लीला रचित, चित अवलम्बन हेत।
प्रिय प्रीतम की काति वह, कछु सीतल कर देत॥

तदपि चित्त माने नही, बिरह ज्वाल के जोर।
घन बिजुली सम दर्श दो, श्यामल गौर किशोर॥

बदन माधुरी गर्ज रव, बचनामृत जुत पीर।
बिरह अग्नि बूझे जबहिं, मिलन वर्प हो नीर॥

हे बिधु बदनी जानकी! हे सीतावर श्याम!
कब दिखाइहो बिधु बदन, पद पकज अभिराम॥

दृग चकोर मन भ्रमर है, रसना चातक नाम।
कब देखें प्रीतम प्रिया, सुख विलास के धाम॥

कबहु कि वह दिन होयगो, प्रिय प्रीतम के सग।
भाव सहित अवलोकिहौं, जिमि चकोर परसग॥

पद पकज की माधुरी, मन मधुकर है लीन।
मिलन बिना व्याकुल रहत, विरह व्यथा तन छीन॥

हे श्री सीते स्वामिनी! रसना रटत सुनाम।
चातक सम गति हो रही, सुनिये करुणा धाम॥

दृगन छबीली छवि बसी, जल समुद्र जिमि मीन।
ताहि विलग मति कीजिए, हो तुम परम प्रवीन॥

बिथा होत जिमि मीन के, बिछुरे प्रीतम नीर।
वैसी गति मम देखि कै, कृपा करहु रघुवीर॥

देखत जग मे मधुरता, सुन्दरि सुन्दर रूप।
तन व्याकुल ह्वै जात बिनु, देखे रूप अनूप॥

रूप अनूप दिखाय के, कीजै नैन सनाथ।
अछत नाथ अस क्यो करो, देउ प्रिया को साथ॥

सुनि कोकिल की कुहुक मृदु, उठत हिये मे हूक।
सिसिक सिसिक कर मीजती क्षमा करो अब चूक॥

हम तो सब औगुन भरी, तुम हौ गुण की खानि।
गुनन आपने रीझिये, विरदा वलि उर आनि॥

नटत मयूरी देखि कै, विरह सतावै मोय।
केकि कठ तन की सुदुति, लखि-भुज मन भ्रम होय॥

कब भ्रम तुम यह मेटिहौ हे नृप राज किशोर।
गलबाही दीन्हे लखैं, गौर श्याम चित चोर॥

देखत नृप तनया जगत, प्राकृत राजकुमार।
मिलिहो हमसे कबहु अस, जस लौकिक व्योहार॥

सब जग अपने मित्र युत, सुख भोगत दिन रैन।
हमको दुख दिन प्रति अधिक छिन पल कबहु न चैन॥

हे सीते करुणाअयन, जतन आन नहि एक।
केवल कृपा कटाक्ष को चातक की सी टेक॥

स्वाति-बूंद पिय युत मिलन मेरे जी की आग।
पूरण कबहू कीजियो, जबलों घट में स्वास॥

और कृपा कर दीजियो, जब लग तन में प्रान।
प्राण नाथ जुत नाम तव, रटै छोड़ि अभिमान॥

चातक रटि घटि जाव भल, घटै न मेरो नेह।
चरण कमल मकरद को दृढ़ भौरो करि लेह॥

विरह तपावै मोहिं ज्यो वाढे, अधिक सनेह।
जैसे कुन्दन के तपै, निरमल होवै देह॥

काम क्रोध मद लोभ ये, जग मे करे सनेह।
तव सनेह के रिपु अहैं नेकु न परसे देह॥

अरुण प्रीति छवि घटाकी, अटा विलोकी जाय।
असुवन झर वरसन लगी, तन सब दई भिजाय॥

भई शिथिल नहिं चल सक, सीतल स्वास समीर।
तन कपाय व्याकुल करी, वेगि मिलो रघुवीर॥

बहु विधि भूपण नग जडित, देखि चढत है पीर।
कब पहिरैहौ निज करन, सुन्दर श्याम सरीर॥

बसन अमौलिक देखि कै, मन न घरत है धीर।
प्रिय प्रीतम के योग यह, मणिन जडित है चीर॥

रुचि रुचि वसन सम्हार तन, कब पहिनैहो पीय।
कोमल पुहुपहु ते अधिक, तन सुन्दर कमनीय॥

अग सुगध बहु विधि धरे, मणिन पात्र रमणीय।
पिय प्यारी के उर लसै, सुफल होय तव जीय॥

राज साज साहित्य जुत, सब परिकर लिय सग।
निसि दिन बिहरेंगे कबहु, महलनि कुज अभग॥

वन बिनोद क्रीडा ललित, साझ सवेरे बाग।
कब देखेंगे नैन यह, जगिहैं हमरो भाग॥

फूल वाटिका महल की विहरत युगल किशोर।
कबहु कि यह छबि देखि हौं,मनहारी चित चोर॥

जल विहार सरयू सलिल, करत सखी जुत लाल।
कब देखें झीने वसन, चिपट रहे छबि जाल॥

कबहु परस्पर प्रीति बस, अरस परस शृगार।
करत देखिहौ प्राण पति, लहमनि कुज मझार॥

रचि सिगार दोऊ खडे, दै हित सो गलबाहि।
कोटि रतन तब वारिहै, तन मन से बलि जाहि॥

कब देखौ वह माधुरी, जनक लाडिली सग।
प्रीतम हित बतिया करत, उर अति मोद उमग॥

सुरति विहार बहार की, बाते अलिन समाज।
सुनि सकोच दृग लाडिली, देखहि बदन सलाज॥

कबहु कि वह दिन होयगो, जनक लली के पास।
चेरी ह्वै नेरी रहौ, लैहौ अग सुवास॥

कब लखि हौ नख माधुरी, पद पकज दृग मोर।
जिन ससि को तरसत रहै, मुनि गन भये चकोर॥

सरद रैनि की चादनी, विहरत युगल किशोर।
नृत्य सहित दपति लखै, राखि मडलि चहु ओर॥

करै मान जब लाडिली, प्रीति विवश तुम सग।
कब मनाय सिय स्वामिनी, आन बटाऊ रग॥

मुरक चलन तिरछी नजर, पिय तन चितवत नैन।
कब सुनिहौ निज कान सो प्यारे प्रीतम बैन॥

बहुरि मान को छोडि कै, प्रीतम उर उमगाय।
मिलत देखिहै नैन यह, जन्म सुफल हो जाय॥

राम अमित मुख स्वेद कन, प्यारी तन झलकत।
करिहौ कब पखा पवन, हरिहौ श्रम हुलसत॥

सैन कुज पुनि गवन करि, करिहो सखिन निहाल।
सो छबि कब हम देखिहौ, प्रीतम सग रसाल॥

मिल बिलसत प्रीतम प्रिया, फसे रूप छवि जाल।
तन मन से अगन रमे, प्रेम छके रस चाल॥

बाते केलि कलान की, शील सकुचि दृग लाज।
कब देखोगी दृगन हम, रस बस रस के काज॥

रस माते रस पान कर, रस राते तव नैन।
रस छाके रमकेलि मै, नैन मते छवि मैन॥

नैनन लखि छकि हैं कवै, मैन छकी दृग मैन।
नैना पल लागें नही, मुख से वनै न वैन।।

कव हम देखौं लाडिली, छकी छवीली कात।
सिथिल वदन भूषण वसन, पिया केलि सुरतात।।

भूषण वसन सम्हारि हैं, सुन्दरि सकल सुदेश।
पलक पीक कज्जल अवर, यह छवि लखें हमेश।।

हे करुणाकर जानकी, राम जानकी जान।
सव परिकर की जान तुम, हे मम जीवन प्रान।।

कव दिखाइहो महल सुख, पय पीवत रुचि सग।
श्री महराज किशोर युत, सयन समय की सग।।

अलिगन पान कराय के, सयन करत सुख देन।
प्रीतम सग पौढी महल, मखि छवि छकिहैं नैन।।

लाल लाडिली छवि छके, जागे महलनि कुज।
कव यह छवि मैं देखिहौ, जगि है भाग सपुज।।

मिलन सुधि कीजे हो मोरी।
कसकत हिये वियोग तिहारे, रैन दिवस सुनि वोरी।।
छिन-पल-कल नहिं परत सखी री, सिय स्वामिन विन मोरी।
सुभ शीला की जीवन धन है, मिलि मिथिलेश किशोरी।।

जगे आली पिया प्रेम रस भीने।
नयनन नेह खुमारी झूमति, प्रिया अस भुज दीन्हे।।
रास नृत्य छबि सुख के भोगी, दृगन मैन छबि लीन्हें।।
सुखमा अग अपारी झलकत, रतिपति की छवि छीनें।
सुभशीला सिय अलक सम्हारति, नेह शिथिल तन कीन्हें।।

प्रात समय आन सखी मधुरतान गावै।
प्यारी प्रीतम सुजान जगे दर्श पावै।।
रास श्रमित छबि निहारि वारि फेरि जावै।
तन मन की तपन मेटि उर में सुख ल्यावै।।
आरति सुनि श्रवन नयन लली लाल जागे।
घूर्मित लोचन विशाल प्रिया प्रेम पागे।।

विथिरित दोउ कच कपोल भूषण उरझाने।
नयनन छवि रति विशाल मोद मे समाने।
रास श्रमित अग शिथिल पुनि पुनि अलसावे।
प्रिया कध अस मेलि फिर फिर झुकि जावे॥
देखति शोभा अपार उर सुख उपजावै।
अधरामृत पान करत सिय जू सकुचावैं॥
कहत बयन प्रिया सयन नयन से बतावै।
टुक लाज करो समुझि धरो परिकरगण आवैं॥
शरद रैन उत्सव मे विविधि आज आये।
ते सब सुखमा विलास देखत छबि छाये॥
तिनकी तन नयन सयन करें उते झाको।
सुभ शीला ललित प्रेम दृष्टि इतै ताको॥

राम श्रमित भये लाल, रैन मैन जागे।
प्रिया केलि सुखमा मे लोचन अति पागे॥
थकित केलि श्रमित अग यद्यपि नहिं हारे।
मयन ऐन जंग करन सूर वीर मारे॥
परिकर गण विविध आज भाति भाति आये।
तिनके कछु बैन सुनत मन में सकुचाये॥
प्रिया अस मेलि कंध मसनद झुकि बैठे।
मानहु रति कामजीत विजय भवन पैठे॥
सहचरि गण सकल आये दर्श नैन पाये।
देखति छवि शिथिल अयन नयन में लगाये॥
नयन ललित लज्जित की सुखमा कवि को कहे।
जानत सोई रसिक अली जिनके उर मोद बहै॥
सरिता उर घुमडि बाहिर को आवत हैं।
नयनन के मध्य मनहु दृग जासी दर्सत हैं॥
दृगन नीर प्रेम छयो मोद मैन भाई हैं।
सुभशीला करि प्रणाम पास अलि आई हैं॥

कनक भवन राजत पिय प्यारी।
पहिरे ललित वसन सु बसन्ती, सिय पिय मोह भरा री।
परिकरि गण सब समय रूप है, बाग बसन्त फुलारी।
ललनन के तन चप कली से, लसत भूपणन डारी॥

मदन मनोरथ केलि अनेकन अलि नव गुज तमारी।
हास विलास मुकुन्द कली सम, दौडि मदन मनकारी।।
ललित तमाल वदन सिय मुखकर, करि कमलन गलवाही।
मनहु तमाल लता वेली द्रुम, लिपटहि नेह भराही।।

आली हरो चित श्याम सलोना।
अद्भुत रूप अनूप सकल विधि, कोशलेश सुत सुजन खिलौना।।
जिय अकुलाय लखे विन वह छवि, पितु गुरु जन डर निरखि सकौ ना।।
हिय हुलसत प्रिय मीत मिलन को, अवध कुवर विन कोइ को हौना।।
सचराचर व्यापक सुखदाई, रोम रोम मम श्याम समौना।
कृपाशील जय प्यारो छवीलौ, गुन वल भूल हुआ हूँ न हौना।।

वैष्णव-विनोद

श्री वैष्णवदास

काशी-निवासी बाबू कामेश्वर प्रसाद के सुपुत्र बाबू गया प्रसाद उपनाम वैष्णवदास के रचे हुए कुछ प्रेम-प्रधान पदो का सग्रह भारत जीवन प्रेस (काशी) से सन् १९०३ ई० में छपा। इसमें राधाकृष्ण और सीताराम के प्रणय-विलास एव लीला-विहार के १०५ पद है, जो अत्यन्त भावपूर्ण एव मधुर हैं।

उदाहरण—

हिंडोला झूलै सिय रघुराई।
मनिन जडित सुन्दर सिंहासन रेसम डोर लगाई।।
कदम को डार डार को झूला सरजू तीर सुहाई।
चातक मोर पपीहा कुहकें कीरहु यह धुनि लाई।
सीताराम कहहु मेरे प्यारे जाते बिपति नसाई।।
स्याम घटा नभ ऊपर छाई दामिनि चमक दिखाई।
नान्ही नान्ही बूद परत कंचुकि पर पौन चलत पुरवाई।।
राम मलार अलापत सुन्दरि ढोल मृदग बजाई।
देव विमान चढे हरखित मन सुमन बृष्टि झरलाई।।
मेघ स्याम सम बदन राम को सोभा कहि नहि जाई।
वैष्णव दास पाइ आयसु को पुष्प माल पहिराई।।

बृहत् पद-विनोद

रसदेव कवि

लक्ष्मीनारायण प्रेस (मुरादाबाद) से छोटेलाल लक्ष्मीचन्द वम्बईवाले ने मुद्रित कराकर सन् १९०८ ई० में प्रकाशित किया। यह ग्रथ भी विशुद्ध काव्य की दृष्टि से सर्वथा आदरणीय है।

उदाहरण—

देख सखि सुभग छवि जानकी रवन की।
श्याम अभिराम तन काम तरु मनहु महि नील नीरद निरखि निखिल निज गवन की॥
क्रीट शिर ललित कल कलित कुडल जुगल वलित दिनकर मनहु अमित द्रुति श्रवन की।
पीत केसरि तिलक भाल भ्राजित विमल मनहु शशि वीच पथदेव गुरु गवन की॥
अलक आनन परी असित झलकत कुटिल मनहु शशि घेरि जुग राहु रचि भवन की॥
लसत उरमाल मणि पीत पट कटि कसे मनहु घनजोति घन मिलत रुख पवन की॥
वाहु आजान कुल कमल रघुवंश मणि चारु सर चाप करत कनि मृग ठवन की।
कनक नग जडित आसीन आसन रुचिर देखि रसदेव सतकाम मन भवन की॥

मजु सूरति मृदुल मोहिनी मन वसी।
क्रीट शिर पै ललित श्रव्रन कुडल कलित फलित शुभ भाल पै तिलक केसरि लसी॥
लसत पट पीत कटि कसत लट फसत मुख पियत जनु पन्नगी सुधा शशि मेघसी।
देखि अभिराम छविराम की जाम वसु मलत रसदेव सत काम के मुख मसी॥

देखु सखि आजु छवि जानकी जानकी।
वदन सोभा सदन कुद कलिकादन कदन लखि करत मति मदन के मान की॥
अग भूषन जडित सग पूषन तड़ित देव झूखन अडित विपुल फल दान की।
वास परजक कलखास रघुवश मणि दास रसदेव मोहि आस नहि आनकी॥

देखौ श्री रघुवीर की आखे।
श्याम सेत विच अरुन कज सम जनु बैठ्यौ बटोरि अलि पाखे॥
चितवनि चलनि पलनि पलकन की मीन मनोज खज मृग माखैं।
दीरघ जुगल कुटिल भृगुटी अहि जनु रसदेव लौटि रस चाखैं॥

देखु री छवि अविक वनी है।
गोल कपोल लोल कुडल कल वोल ठोल अनमोल जनी है।
भूपन विन दूपन पूपन जनु मजु मयूषन जडित कनी है॥
दशन दमक दरसत विद्रुमनि में जनु घन मे घनजोति घनी है।
मुख मयक पर लट लटकत जनु पियत सुधा रस सरस फनी है॥

दृग दीरघ सित स्याम पूतरी उपमा छवि कवि कौन गनी है।
जनु अलि युगल कमल दल ऊपर पर पोछत मकरन्द मनी है।
हरि मूरति मंजुल मनोज लखि मखि नख शिख रस देव मनी है।।

सिय की बेंदी अजब बनी री।
सुवरणा पर विरचि सचित रचि चित्र विचित्र कनी री।।
कीधौं शशि पूरणा विकसित नभ दूनी दाह घनी री।
कीधौं प्रातकाल रवि कोरथ पूरण जोति जनी री।।
कीधौं अरुन जलज के भीतर झालरि जलज तनी री।
कीधौं महि सुत के ग्रह साथे राजित साजि थनी री।।
कीधौं कम्पा मे सम्पा फसि की अहि छोड़ि मनी री।
छवि मनोज मजुल निरखत यह कवि रमन्देव मनी री।।

देखु री छवि राम लला की।
लटके लट भुजग मुख पर जनु पियत सुधारस चन्द्र कला की।।
कनक कीट कुडल कानन पर दिज दुति देखि दबी चपला की।
शोभा सदन वदन की देखत मदन कोटि रस देव भला की।।

छवि मन राम लला की खटकै।
तिलक विशाल भाल केशरि को घुघुबारी लट लटकै।।
पीत वसन की कछनी काछे आछे चखचित अतकै।
शोभा लखि रसदेव छकित भे मनसिज कोटि न भटकै।।

कहा लाल गुलाल लगाए लाल।
सुख सौतिन के सग मे रसाल।।
राति रहे किस घात में झूठी बात करत परभात काल।
छूटी अलक पलक अलसानी झलक रही छवि छलक आल।।
काजर अधर पीक पलकन पर जावक केसरि तिलक भाल।
भूलो वसन वसन कहा कीनो दसन दाग बर लागे गाल।।
बरबस झपटि लपटि काहू को उर उपटे विन गुनके माल।
आयो इत रसदेव सावरो लखि बानिक सब मे निहाल।।

झूलत रघुबर जनक दुलारी।
परम पुनीत पुलिन सरयू की प्रफुलित लता मुदित बन झारी।।
मणि गण जडित गडित पटुली युत खम्भ युगल मजुल अधिकारी।
राजत रसिक शिरोमणि दम्पति आभा अमित अनूपम भारी।।

ओनए नए नील नीरद नभ मन्द मधुर गरजत जलधारी।
दमकत दामिनि द्युति दशहू दिश चातक मोरवा कीर पुकारी॥
युवती यूथ जुरी जाहिर जग चतुरी जाय झुलावत सारी।
छवि रसदेव देखि दोउन की कोटि मदन तन मन धन वारी॥

झूलत लाल लली सग अलिया।
करत खडी सिगरी दिश बलिया॥
कचन कलित हिंडोल ललित कल कुज ब्रलित सरयू तट थलिया।
बरसत घन दरसत दाँमनि द्युति सरसत जल हरषत सरि चलिया॥
सीतल मीर समीर धीर वर गध गभीर खिली तरु कलिया।
लखि रसदेव उमग आनद को अवध शहर की गलिया गलिया॥

कारी कारी रे वदरिया कारी कारी लागै रे।
निज अधियारी सारी दामिनि उघारी वारी वारी रे उमिरिया वारी बारी पागै रे॥
मोरवा पुकारी हारी झिल्ली झनकारी भारी झारी रे डगरिया डारी डारी वागै रे।
अवध बिहारी रसदेव उरधारी ठारी थारी रे मुरतिया प्यारी प्यारी जागै रे॥

विनय-चालीसी

श्री रूपसरस जी

श्री सियाशरण जी महाराज मधुकरिया जी के आज्ञानुसार श्री राजकिशोरीवरशरण जी (परमानन्द जी) ने टीका कर के ओरियेंटल प्रेस (अयोध्या जी) मे ई० सन् १९३२ में छपवाया।

इसमे कुल ४० दोहे है। रूपलता जी का दासी भाव है। इसी भाव से भावित होकर आपने ये अनमोल दोहे लिखे हैं। भाषा बड़ी सुथरी और भावमयी है।

उदाहरण—

रघुवर प्यारी लाडली लाडलि प्यारे राम।
कनक भवन की कुज में विहरत है सुखधाम॥

गलवहिया कब देखिहौ इन नयनन सियराम।
कोटि चन्द्र छवि जगमगी लज्जित कोटिनकाम॥

रग रगीली लाडली रग रगीलो लाल।
रग रगीली अलिन मे कब देखौ सियलाल॥

हे सीते नृप नदिनी, हे प्रीतम चितचोर।
नवल वधू की वीटिका, लीजे नवल किशोर॥

हग बीरी रघुवर लई, सिय मुख पकज दीन।
सिया लीन कर कज मे, प्रीतम मुख धरि दीन॥
निरखि सहचरी युगल छवि, वार वार बलिहार।
करत निछावर विविध विधि, गज मोतिन के हार॥

झूलन विहार-संग्रहावली

श्री कृपानिवास जी

श्री रसिक निवास जी, श्री रसिक अली जी, श्री रामसखे जी, श्री रसभामिनी जी, श्री रसिक विहारिणी जी, श्री युगलप्रिया जी, श्री सरयू सखी जी आदि रसिकोपासको के झूलन सबधी पदो का यह सग्रह बम्बईवाले सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने डायमड जुबली प्रेस (कानपुर) से सन् १८९८ ई० मे छपवा कर प्रकाशित कराया। सग्रहकर्ता है टीकमगढ के श्री लछिमनदास भडारी। वे लिखते है कि 'श्री परम उपासक श्री रसिकाधिराज मत शिरोमणि श्री १०८ श्री गोमतीदास जी के आज्ञानुसार' उन्होने यह सग्रह प्रस्तुत किया। जो हो, यह सग्रह कई दृष्टियो से परम उपयोगी है, क्योकि एक ही स्थान पर एक ही विषय पर अनेक रसिकोपासको के भजनो का तुलनात्मक अध्ययन भाषा और भाव की दृष्टि से सहज ही सभाव्य है। कई स्थानो पर लगता है केवल परपरा का निर्वाह हो रहा है, परन्तु अधिकाश पद हृदय से निकले हुए भावो की भव्य अभिव्यजना मे सर्वथा समर्थ सिद्ध हुए है। ऐसा प्रतीत होता है। इन्होने सीताराम-विहार की दिव्य लीलाओ का साक्षात्कार किया था और आनन्द विभोर हो कर प्रेमावेश की मधुमयी रसदशा मे इन पदो का निर्माण किया था। अस्तु .

सावन आयो मन भावन को गरलावन मोहि दीजै।
पावस पाये प्रान पियारे प्यार अधिक सुख कीजै।
कृपा निवास श्री राम रसिक को अधरामृत रस पीजै॥

जनकपुर तीज सुहावन आई।
झूलत साजि सवारि सखा जन पाद्य मनोज बनाई॥
पावस मेघ झरै रसवारी झिमरिम झिमरिम झरलाई।
अरुन वसन तन लपट सुहाये उपमा समन बिहाई॥
चहु दिस पुज पुज बनि नागर रग रग छवि छाई।
जनु छवि अकुर प्रगट धरनि ते लतन वितान तनाई॥
उमग झुलावत मगल गावत राग मलार जमाई।
त्रिविधि पवन की बहन अलिन की गुज समुज सुहाई॥
विविधि सधार बढत साथनी वेसम सग सहाई।
रीझत जापर जनक लाडली निज कर देत बुलाई॥

लहरैं ललित लेत वै सघनि हास विनोद उम्हाई।
समै सुहावनि सावन तरुन ते हरित भूमि विगसाई॥

सिया वल्लभ लाल झूलत हो जहा रामराम सीता लाल।
लाल कंचन खभ सुदर ललित डाडीलाल।
लाल भूषन अग झलकत लसत चीर सुलाल।
लाल दोउ के वदन सोभा अधर वीरी लाल।
लाल सखिया लाल गावत गावति सव झुलावति लाल।
मोर हस चकोर कोयल भनत वानी लाल॥
लाल रीझत लाल ऊपर परस्पर सव लाल।
कृपा निवास सुलाल जो निरख नैन निहाल॥

ए दोउ झूलैं रग हिडोरैं।
दगरथ सुत अरु जनक नन्दनी चितवन मैं चितचोरैं॥
नान्ही नान्ही बूद पवन पुरवाई ये सव थोरैं थोरैं।
हरी भरी भूमि घटा झुकि आई सरयू लेत हिलोरैं॥
वानी विमल सखी सव गावैं अपने अपने ठोरैं।
नागरि नाम लिवावत पिय को हसत सिया मुख मोरैं॥
हय दल गय दल रथ दल पैदल कोट वन्यो चहु ओरैं।
उपवन माझ विहगम वोले कोयल मोर चकोरैं॥
बाजे वजन लगे चहु दिस सो मनो सघन घन घोरैं।
निरतत नटी नटी लघु मोहन ताता थेई तान जो तोरैं॥

हिंडोरैं झूलत सिया जू प्यारे।
परम मनोहर खभ कनके मानौ मदन सवारे॥
रतन जटित सुभ डाढी सुदरि छवि पटली मनि हारे।
तापै राजत राम जानकी लेत मधुर सुहुलारे॥
चितवन दोउ चित चोर परस्पर आनद रस विसतारे।
समै सुहावन सोभा परमित कोटि मैन रतिवारे॥
'रूपलता' सखि गहे झूलनो निरखत सुमति विसारे।
कवहुकि चेतन होय झुलावत रस छाकी मतवारे॥
वर्षत वारिध लगत सुहावन छूटत प्रीत फुहारे।
भीजत जे वड भाग्य सराहत प्यारी चर्न अधारे॥
जो सुख उमग्यो का कहि वरनौ चिनमय केलि विहारे।
कृपानिवास विलास विलोकत लोचन परम सुखारे॥

इक अली युगपट ग्रन्थ दै शिर मौर मौरी धराय।
त्रे व्याहता वन लगी ललना मोद हिय सरसाय॥

आदोल केलि निकुज यहि विधि झूले सिय रघुलाल।
पुनि चित्र वन मन मुदित गमने रूप निधि सुखजाल॥
कोटिन अलीगण सग शोभित रूप गुण की मूरि।
जिनको निरखि रति लाजत अपर उपमा कूरि॥

हिंडोरै झूलत सिय ठकुरानी।
श्रुत कीरत उर्मिला माडवी रूप शील गुन खानी॥
मचौ हिंडोला नाम लिवावति चतुर सखी मुसकानी।
सिय जू सकुच रही नहिं बोली अगअली मनमानी॥

सिय झूलत हिंडोरै पिय सग वनी।
सरजू तीर सोम वट छाही सग सखी नव नेह सनी॥
पहिरे वसन सुरग सुगधो भूषन जडित सुरग मनी।
गावत ताल रगीली तानन रस मालिन वलहारी मनी॥

झूलत सिय पिय आज हिंडोरै।
घन गरजत बिजली अत चमकत वरसत रिमझिम वोलत मोरै॥
ज्यो ज्यो प्रीतम रमक वढावत सिय डरपत पकरत पट छोरै।
रसमालिन विमलादि सखी सव नाचत थेइ थेइ तानन तोरै।

हिंडोरै झूलत सिय प्यारी॥
सरजू तीर हिंडोल कुज बिच सुरतरु को डारी॥
प्रीतम रमक बढावत गावत करि अलाप चारी।
डरपत लली दसन रस लागहिं हसत सखी सारी॥
बैठी पिय भरि अकलीन सिय बडे प्रमोद भारी।
रसमालिन यह रस बिनोद लखि रति पति वलहारी॥

हिंडोरै झूलत जुगल किशोर।
श्याम गौर मन हरन ललन दोउ अग अग अति चितचोर॥
भूपन बसन सरस रस छबि लख उमगत जोबन जोर।
चरवत पान परस्पर दोऊ निरखत दृग की कोर॥
हम हसि अली मुदित मन गावै झोका दे दुहु ओर।
रसमालिन छवि निरख दुहुन की वारिय काम करोर॥

हिंडोरे झूलत भर अनुराग।
सिय जू के भीजे सुरग चूनरी सुभगराम सिर पाग॥
गावत राग मलार परस्पर छवि छहरत वनबाग।
विश्वनाथ मुख निरखत हरखत सरसत सरस सुहाग॥

धीरे धीरे झूलो लाल सिया सुकुमारी।
रूप रसीली रस मय मूरति सखियन प्रान अधारी॥
चन्द वदन मृग सावक नैनी दसन अधर अरुनारी।
कपति तन श्रम विन्दु विराजत सरजू सखी बलिहारी॥
रग महल मध्य पिया प्यारी दोऊ झूलैं चहुंदिस सखि ठाडी गावत मलारें।
विद्रुम पटली राजै दामिनि की छवि लाजै श्याम अग घटा मे रस की फुहारैं॥
उड़त वसन सिरकेस छूट रहे ललित कपोलहि परहि न सम्हारैं।
सरजू स आजु स्वामिनी सुरग भरि नैन विलोक सखी तन मन वारैं॥

प्यारी सग झूलत पीतम प्यारो।
मृदु मुसक्यावत मोद वढावत नव जोवन मतवारो॥
रिमि झिमि रिम झिम मेहा वरसत गरजत बादर कारो।
सरजू सदी सिय पिय छवि निरखत जीवन प्रान हमारो॥

झूलत सिया राजिव नैन।
रतन जडित हिंडोरना सखि राम सुख के अैन॥
स्याम अग पर गौर झलकत दामनी घन गैन।
मैथिली रघुवीर सोभा निरख लाजत मैन॥

नाम पियको लेहु नारि ज्यो सखिन मन चैन।
श्री जानकी नहि लेत मुख तै देत लोचन मैन॥
श्री जानकी नहि लेत मुख तै देत लोचन सैन॥
परस्पर झूलत झुलावत वदन मधुरे बैन।
अवधि पुर निज केलि दम्पति अग्र आनन दैन॥

झूलत राम राजिव नैन।
जनकजा सन मुख विराजै तडित ज्यो घन गैन॥
हृदे झूलत मनहि फूलत रमहि पोखत मैन।
लाल के उर लागि राजिन निरख रेखा अैन॥
परसपर अनुराग दोऊ वदत मधुरे वैन।
जालर घन निरख वनिता अग्र उर सुख दैन॥

सियाराम पचीसी

मदारी लाल वैश्य (सहादतगज, पुराना चौतरा लखनऊ) द्वारा किए हुए इस सग्रह को सेठ छोटे लाल लक्ष्मीचन्द (बम्बई वाले) ने रामा प्रिंटिंग प्रेस (फैजाबाद) से अक्टूबर सन् १९०६ ई० में मुद्रित करा कर प्रकाशित किया। इसमे 'सिया सोने की अगूठी', 'राम सावरो (नीलम) नगीना है।' इसी भोग पर पच्चीस कवित्त-सवैये है जो बडे ही मनमोहक और गेय हैं। प्रतीत होता है, इस समस्या की पूर्ति स्वय श्री मदारी लाल ने की है और एक ही प्रसग पर ये पच्चीस कवित्त-सवैये बडे ही प्यारे लगते हैं। भाषा साफ सुथरी प्रवाहमयी और प्रभावोत्पादिनी है। स्वरूप का ध्यान मन को बरबस आकृष्ट कर लेता है।

उदाहरण—

इतै मृग अक मुख उतै मृगराज लक,
इतै गजराज गति उतै मद मीना है।
तै नैन खजनीन उतै खजनीत,
इतै उतै खजनीन हीना है॥
इतै प्रेम पूरन है उतै प्रेम पूरन है,
इतै उतै दोऊ लखि मेघा गति दीना है॥
लषन गगन वानी गिरा देखि गिरै सिया,
सोने की अगूठी राम नीलम नगीना है॥

नैना अनियारे मृग खञ्जन से न्यारे,
देव शोभा के पिटारे सुठि मानो जग मीना है।
कम्बु सो ग्रीव दत दाडिम लजाने,
नासिका सी कीर शब्द कोकिला प्रवीना है।
हरिहू सकाने कटि पेख भुजदण्ड मानो,
माधो बखाने मेष करिवर को छीना है।
मेरे मन आली सुन आपहू बिचारि सिया,
सोने की अगूठी राम सावरो नगीना है॥

ऐरी सुन आली आज देखे है कुवर द्वै,
आये फूल लेन तहा दरस आज कीना है।
आई जा घरी से सुधि भूलत ना एको छिन,
कैसे करू वीर मेरो चित्त चोरि लीना है॥
वाणी सकुचानी आली किमि कहै रूप,
गाती को छाती हुलसाती ज्यो बारि बीच मीना है।

मुदित मदारी कहै उपमा सब वारू सिया,
सोने की अगूठी राम नीलम नगीना है॥
कज से नयन रभा तरु से विशाल जघ,
नाल से उताल भुज दड लव लीना है॥
शुक्र तुड नासिका मरालन की गति छीना,
कोकिला की वाणी भई वाणी पर छीना है॥
केहरि सो कटि वृप कध सो सुभग,
कत्र काम फर फद मृग द्रग धृग दीना है॥
कहै रामलाल जोडी रुचि रुचि वनी सिया,
सोने की अगूठी राम नीलम नगीना है॥

भजन, रसमाल

श्री वेकटेश्वर प्रेस से छपा श्री हरिचरणदास जी के ग्रथ में सीताराम के शृगार विहार एव विविध लीलाओ के पद साधना और साहित्य दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। श्री हरिचरण दासजी ने ग्रथ के अन्त मे अपना परिचय दिया है—

राज्य है मझवली जग जाहिर सुखली तपा।
मौजे पैकवली पवहारी जी को धाम है॥
श्री स्वामी सीता आदि रामदास महराज।
जिन्ह के निशिवासर सियाराम ही सो काम है॥
तिनके लघु शिष्य हरिचरणदास पास नित।
कसवे गोपालपुर जीले सरनाम है॥
रानी हरियालि जी के मदिर महथ एह।
'भजन रस माल' कहि लही सुख आज है॥

सवत् १९४७ के भाद्रपद कृष्ण १० रविवार को श्री हरिचरणदास जी ने यह ग्रथ पूरा किया—

सवत् मुनि[७] श्रुति[४] अक[९] शशि[१],
कृष्ण भाद्रपद मास,
तिथि दिग[१०] रवि दिन रोहिणी,
किए चरण हरिदास॥

इसमें झूलन विवाह, सरयूतट विहार, होली, वाटिका विहार, जलविहार, कनक भवन-विहार के गेय पदो का खासा अच्छा सग्रह एक साथ मिल जाता है। सभी पदो पर राग-रागिनियो में नाम दिये हुए है।

झूलत झूलन अवध रंगीले।
पहिरे हरित वरान वर भूषण कीट मुकुट झमकीले।
कहि न सकत छवि शेष गणेशहु शारद की मति हीले॥
अति सुख साजि झुलावति सिय सखि सोभित तन पट नीले।
जन हरिचरण युगल जोरी यह मोरे हिय सो वसीले॥

देखु छवि झुलन की सखी त्रिण तोरि के।
श्याम तन राम घन सुभग दामिनि सिया झुलत दोउ सरजु तट हँसत मुख मोरि के।
मंजु मणिखंभ सु विचित्र पटुली जडित हरित वपु वसन नग लेत चित चोरि के।
देत अति झोंक नहि रुकत पीतम प्रिया कहत हरिचरण मोहि चितव दृग कोरि के॥

राम सिया के झुलावें सखि झुलना।
कटि अतलस के लहगा पहिरे सारी सुरंग रंग तुलना।
हलकत हार हुमेल तिलरिया सिर गेंदुर कर फुलना॥
कजरी गावैं तान सुनावैं श्री सरजू जिके कुलना।
जन हरि चरण रहस सावन के निसिदिन छवि एह भुलना॥

झूलत सिया संग प्राण पियारे।
रवि शत कोटि कीट द्युति निरखत वदन मयंक शरद छवि हारे।
कुंडल झलक अलक लटकन वर अलि अवली जनु करत जो हारे॥
भाल विशाल तिलक गोरोचन नैन मंजु सरसिज रतनारे।
नासा मणि सोभित अधरन पर गले बैजंती माल सँवारे॥
कटि किंकिनि पटपीत मनोहर कर कमलन धनु सायक धारे॥
मंद हसनि रति मार विमोहनि चितवनि चोरित हृदय हमारे॥
सावन घन घमंड चहुदिसि ते गरजत मेघ घटा अतिकारे।
जन हरिचरण झुलन झाँकी पर तन मन धन सखिया सब वारे॥

आजु सियावर झूलन झूले।
सावन अधिक सुहावन पावन छवि छावन सरि कूले॥
बकुल कदंब तमाल देवतरु वन प्रमोद सब फूले।
कोकिल नाद गान सहचरि को सुनि धुनि मुनि मन भूले॥
लालन साथ सखा सब बनि ठनि सिया सखी सम तूले।
दे गलबाह नाह प्यारी दोउ उमगि राजरस मूले॥
मणिमय खंभ डोर रेसम की हेम रचित सुख डोले।
जन हरिचरण विलोकत अनुदिन भुवन भाग जेहि खूले॥

आज राम ब्याह सुनि पुर नभ जै जैति धुनि साजि के विमान देव देखवे को आयो।
मणिन मैं विनार रच्यौ हरित वेणु पत्र खच्यो मानिक तह खम्ह सच्योअद्भुत छवि छायो।।
बैठे चारो कुमार कुल गुर दोउ श्रुति उचार रीति सहित दान मान गुनि जन गुन गायो।
मागे रुचि जाहि जोइ दीन्हो नृप ताहि मोइ लीन्हे कर चवर हरीचरण शरण पायो।।

राघो जी के उनीदे नैना।
लट पट पाग अलक मुख विथुरे वोलत कल वल वैना।
मोतिन भाल गले विच हलकै झलकै छवि दिन रैना।।
ठुमुकि ठुमुकि पगु धरत धरनि पर गति लखि लाजत मैना।
जन हरिचरण कमल मुख धोवित सो सुख शेष कहै ना।।

मोरे मन मे वसो नृप लाल लली।
इत रघुनाथ स्याम सरसीरुह उत सीता चपा कि कली।।
सोभित सखा सहित रघुनदन उत राजति सिया सग अली।
क्रीट मुकुट कुडल श्रुति सोहे सिया कि चन्द्रिका विंदु भली।।

सरद सोहाई निहारो निशि नीको।
केदली मंडप मध्य सिंहासन लषत भानु छवि फीको।
तेहि रजनी अवधेश कुवर वर सोभित सग लिए सीको।।
सुरभी छीर विलोकि विमल विधु वरषत पौस अमी को।
जन हरिचरण निरखि जोरी युग हरखि मोद अति जीको।।

आलि री आज चलो श्री अवध नगर नृप कुवर खेलै जह फाग।
पहिरे वसन वसती जामा पटुकन मोती लाग।।
कर पिचकारी निहारि नैन भरि सुफल करौ निज भाग।।
मणिमय मुकुट मनोहर माथे गाछे पाख सुकाग।
केशर खोर भाल श्रुति कुडल लखत मदन तन जाग।।
सुनि होरी गोरी सव वनि ठनि चलि अग साजि सुहाग।
जन हरिचरण फाग मरजू तट निरखत अति अनुराग।।

नचाये हरि फाग नृप खोरी।
मग सखा रिपु वदन भरत अरु लखन रग झोरी।
पकडि अली मिथिलेश लली के मोतिन लर तोरी।।
एह सुनि सिद्धि कुवरि सखि सुदरि प्रभु पटुका छोरी।
जन हरिचरण दोउ दल रसवस लखत जुगल जोरी।।

देखि के सुन्दर स्याम धाम नृप दशरथ को कोटि शतकाम मद सोभा को मटको।
कीट मुकुट कुडल वनमाल हार मुकुटन को किंकिनी ललाम दाम नूपुर पग लटको।
ऐसो निकाई हरिचरण हिय छाई आज मुख की लुनाई शशि कोटि छवि छटको।
धाई पुरनारी कुल रीति को विसारी वारी प्यारी पियनि रखत जग टूटे लाज फटको॥

रामप्रिया-विलास

भाव की रसमग्नता एव सम्बन्ध की अनन्यता का सुदर मधुर निदर्शन। राग रागिनियो पर ध्यान विशेष है और लक्ष्य है गेयता। परन्तु कुछ पद बडे ही सजीले और प्रभावपूर्ण है। भाषा टकसाली है, प्रवाहमयी।

राघो प्यारे आज खेले होरी किशोरी सग।
कुकुम अगर कपूर अरगजा मृगमद कीच मचोरी अविरा की धूर-उडावत गावत
धूम मची चहु ओरी॥
प्यारो परम प्रवीण प्यार सो पकरि मली मुख रोरी मानहु जलद अक गहि दामिनि
लरि शशिसो रग वृष्टि करोरी।
राम प्रिया दोउ निरखि परस्पर हसि झिझके मुख मोरी जनु खजन जुरि जुरत परस्पर
विज्जु छटा लखि भाजि चलो री॥

विजन गोलैहों पुष्प मालिनि मनैहो,
वस्त्र भूषण पन्हैहो नीकी पलक विछैहो मै।
वीरिहू लगैहों पग पकज दवैहो,
चारु चामर चलैहो दासी रावरी कहै हो मै॥
अनत न जैहो न तु दीनता सुनैहो निज रामप्रिया
सीस काहू और पैन नैहो मै।
राजन के राज महाराज राघवेन्द्र राम
आपकी कहाय अबकाहू की न ह्वै हो मै॥

मै दरश लोभानी कोऊ जतन बतावै कोय।
इश्क दशा कोऊ आशिक जानै जो रग रातो होय॥
अलख अगोचर सेज पिया की क्योकर मिलना होय।
रामप्रिया को रघुकुल भूषन राह देखैया होय॥

भक्त-प्रमोदिनी

अयोध्या-निवासी प० रामलोटन मिश्र रचित 'भक्त प्रमोदिनी' परम प्रेमाभक्ति के रस म पगे पदो का सग्रह है। आफताब प्रिंटिंग प्रेस (फैजाबाद) से १९२२ ई० में छपा।

दृगन विच वसि गयो राज कुमार।
जिया मानत नाही ए तरिसि रहे दोऊ नैन दरस विना कैसो करो दसरथ के लाल वै
तो रघुवन्शी दिलदार।।
अलक झलक घूघुर वाले चिकनारे कारे दृग रतनारे प्यारे कोटि काम वारी डोरो
लौटन के जीवन अधारे सुकुमारे वारे सन्तन प्राण अधार।।

प्रभू मैं वटिया जोहो तोर। अव रही आश एक तोर।
लागे अषाढ मेघ नभ छाये पिया मोर नही हाल पठाए।
पपिहा पिउ पिउ शोर मचाए कृपा करो दशरथ के छोर सावन मे सखि झूले हिडोला,
गावत गीत प्रेम रस वोरा सुनि सुनि देत विरह झकझोरा रघुपति हरी विपत्ति सव
मोर।

भादो मास रैन अधियारी गरजत घन वरसत अति वारी।
कोउ न सुने यह विथा हमारी देखो दयानिधि अपनी ओर।।
लागे कुआर शरद ऋतु आई चले पथिक सुन्दर मग पाई।
ऐहैं कव पिया गले लपटाई लौटन कहत दोउ कर जोर।।

रहव कैसे नगरी तोरी रे सावलिया।
दोहा प्रीति करी सुख लहन को इत उत दोउ वन जाय।
निठुराई प्रभु मत करो दीनी सुरत भुलाय।।
लगव केहि कगरी।

करम कुटिल की फेर पडी, चलत न कोई उपाय।
तुम चाहो पल मे वनै झषवो सव मिट जाय।
हीय भाग अगर हारे मैं सेवक तुम स्वामी हो सुनिये कोशल राज।
अव तो निवाहै वनेगी।
वाह गहे की लाज।
फिकिर मेरी सगरी तोरि रे सवलिया।
अवध नगर सरयू नदी सतन को दरवार।
सिय राम तहा वसत नित लौटन के रखवार।
अवध की डगरी वप्रव सावलिया।।

सीताराम-नखशिख-वर्णन

प्रेमसखी-कृत

सीता और राम के नख-शिख का यह वर्णन विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। शब्दो में चित्र खीचने की कला मे प्रेम सखी को अपूर्व सफलता मिली है। लीला विनोद का अन्तिम अश, जहा सखियो ने राम को लँहगा चोली पहना कर स्त्री-वेश मे सजाया है और सीता जी के पास गौने में आई नई बहू के रूप मे प्रस्तुत किया है वह दृश्य दर्शनीय है। कुल मिला कर इस ग्रथ को मात्र साहित्यिक दृष्टि से, रस की दृष्टि से, परम सग्रहणीय एव आदरणीय माना जायेगा।

कैधौं पारिजात के सुमन की ये पाँखुरी है जावक सरंग अनुराग रस भीनी है।
जग चतुराई की कुसलताई पाई नव सुखमा समूह को त्रिभाग विधि कीन्हीं है॥
पति को अतन जानि रति कज ढिग आनि पच बान बानन की गासी धरि दीन्ही है।
विधि हर मेरे दस भालन की भाग थली प्रेम सखी सिया पद आगुरी नवीनी है॥

है युग खम्भ ए कचन के पलना पग झूलन आए सिगार है।
प्रेम सखी मन डोरी तनी गति हसन की सी झुलावत मार है॥
गावती गीत अली बिछिया रघुनन्दन नेह नचावत हार है।
पीन सुढार बनी चिकनी ये विराजत जानुकि जानु उदार है॥

नीलम नीली कसी ससी है मध्य कचन के तन जाति केधौ सिंगार पाति साजी है।
आई स्याम ताई की निकाई सब सिमिटि कै जाहि देखि देखि रोम रोम पिय राजी है॥
झीनि दरसात है विशाल छवि सरसात रूप सुधासर मे सेवार सी विराजी है।
प्रेम सखी मेरी जान सुखमा समूह राजी गुन गन राजी धौ सिया की रोम राजी है॥

प्रेम सखी सुखमा सरतें उमडी छवि चारु तरग भली है।
प्रेम प्रभा ह्वै त्रिवा दरसै जिन पै परि डीठि हलीन चली है॥
देखे व नैनहिं जात कही पिय के चित की विश्राम थली है।
धारे मनोहर रूप अली परमादिकि धौ सिय की त्रिवली है॥

बोरी रग नील है किशोरी जू के गोरे गात छवि सरसात देखि कचुकी सुहाई है।
नगन जटित बूटी चारु जर तारिन की असित निसा मे ज्यो नखत छवि छाई है॥
रुचिर बनी है नेह सो पेन सनी है जामे सुखमा घनी है प्रेम सखी मन भाई है।
उरज नवीन तरु चारी है विहारी दृग मृग फादिवे को प्यारी जारी सी लगाई है॥

प्रेम वसुधा से सिय अधर सुधा से वैन ललित सुधा से प्रिय अधिक सुधा से है॥
सहज हसो है अनखो है न कदापि होत बिबा से अरुन है कमल मोद वासे है।
माधुरी अनूप जाने प्रीतम के मन नैन रहत निरतन जो पियत पिया से है।
देखि देखि प्रेम सखी वारने करत प्रान जनम अनेक के अखिल अघ नासे है॥

नैन अनिआरे तारे पुडरीक पान मारे सिय पूतरीन पै द्विरेफ गनवारे है।
कछु कजरारे सील सागर सुधा सुवारे वरुनी विशाल धारे जोर छोर वारे है॥
दीन पै सनेह वारे प्रीतम के प्रान प्यारे उपमा न पावत विरचि रचि हारे है।
मीन मृग खंजन बनाए विधि प्रेम सखी वारि वन व्योम बसै लज्जित विचारे है॥

वा अनियारी विलोकनि की छवि गाइवे को विधि की वुधिहीन है।
प्रेम सखी मिथिलेश सुता की कटाक्ष के कोर भए गुन तीन है॥
मीचु समान दशानन की सुर बेनु समानि सु पालत दीन है।
रूप सुधा की तरगिनी सो निशिद्योस जहा हरि को मन मीन है॥

अमल कपोल पर तिरे सो वदाने कौन देखै वनि आवत तरौनन समेत है।
ढके नील सारी सो किनारी जरतारी कोर अलकै वलित ह्वै अधिक छवि देत है॥
तरनि तनूजा विधु व्याल लघु लागे मोहि उपमा न दीन्ही प्रेम सखी एहि हेत है।
एई वड भागी जाहि सिय छवि प्रिय लागी परम अभागी जे अनत चित देत है॥

मेचक सघन सुकुमार है सेवार है ते मिया जू के मीम के विराज विसाल वार।
मोर पखवार तमवार मरकत तार पन्नग कुमार रचे कोटि कोटि करतार।
उपमा के हेत प्रेम सखी वुधिवान प्रभु करत रहत नित नए नए उपचार।
मोर पच्छ डारे त्वच पन्नग नवीन धारे मन मे न आवै तौ वनावै विधि वार वार॥

झीनी हू ते झीनी है नवीनी नित नित होत नील रग सारी प्यारी सुधा सो सुधारी है।
सब सुखकारी जापै मेघ माला वारि डारी दामिनी सी चहुवा किनारी जरतारी है॥
भागन की भाग ऐसी सुखमा सोहाग ऐसी सिया जू कृपा कै जाहि निज तन धारी है।
उपमा न आवै तौ वतावै कैसी प्रेम सखी देखि देखि होत वार वार वलिहारी है॥

राजिव नैन के नैनन की छवि जानत नैन विलोकि भये धनि।
तैसे विसाल वडी वरुनी दृग सुदरता सखि आई सबै वनि॥
प्रेम सखी जिनकी सुखमा जुग कोटि लो शेश न आपु सकै गनि।
मीन मृगा अरु खजन वापु रे दै उपमा वदनाम करी जनि॥

नाभी की निकाई जाति कौन पह गाई जातै उपजै विरचि जो पसारे जग जाल है।
रूप सुधा वापि सी विराजत गभीर वीर रोमन की राजी जापै सूक्ष्म से वाल है॥
त्रिवली निसेनी सी अधिक सुख देनी श्रेनी हसन की आवत विचित्र मनी माल है।
प्रेम सखी मेरी जान सुदृढ वनायो यह पादप सिगार को लल्ति आल वाल है॥

जघा जानु युगुल विलोकि रघुवीर जू की उपमा को विरंचि विरचि पछितात है।
कदली के खम्भ जे वनाए वहुतेरे ते तौ मानि लघु आपुको कम्पत पात पात है॥

मत्त गजराजन के कीन्हे सुडा दड फेर वापुरे ल्जाय के निकारि दए दात है।
विधि सो न आवै तो बतावै कैसे प्रेम सखी इनकी समान मोहि एई दरसात है ।।

प्रेम सखी तरु सबै फूलन के भारन मो लता वेली अरुझानी भूमि झुकि आई है।
विविधि वहत वात सीतल सुगन्ध मन्द कुहू कुहू बोलै कारी कोकिला सुहाई है ।।
अलिनी अलिन सग नलिनी निकुजनि मे मत्त मधुपान फिरै दशी दिशा धाई है।
जनक सुता के अश भुज दीन्हे रघुनाथ तिन वन वीथिन मे रमत सदाई है ।।
गोरे श्याम अग रति कोटिन अनग मग जाकी छवि देखि होत लज्जित विचारे है।
चद कैसो भाग भाग भृकुटी कमान ऐसी नासिका सुहाई नैन जोर छो' नारे है ।।
ओठ अरुणारे तैसे कुद मे दसन प्यारे ललित कपोलन पै कच घुघुरारे है।
अश भुज धारे दोऊ नील पीत पट धारे प्रेम सखी राम सिया जीवन हमारे है ।।

कचन की गुजरी विछिया तुम को लहगो अगिया पहिराइ हौ।
कचुकी साजु खवाइ विरी पहिराय चुरी अवतस वनाइहौ।।
माग सवारि कै प्रेम सखी शिर सेंदुर दै फिर अक लगाइहौ।
दै तिय को छवि सुन्दर जू हम लाडिली जू के अजूरि नचाइ हौ।।

जावक लगायो जल जात ऐसे पायन मे विछिया कलित ह्वै अधिक छवि छाई है।
घूमि रह्यो घेर वारो लहगो सवज रग नील जरतारी सारी कचुकी सुहाई है ।।
प्रेम सखी अग अग भूषण विविध साजि वहू बहू कहत वधूटी गहि ल्याई है।
सुभगा सखी सिया जू के तुरत हजूरि कियो नवल वधूटी एक सासुरे ते आई है ।।

फूल-बगला

श्रीमोदलताजी

श्री मोदलता जी द्वारा सपादित यह छोटा सा ग्रथ 'फूल बगला' भगवान राम और भगवती जानकी के फूल शृगार एव युगल विलास के पदो का एक सग्रह है। इस सग्रह में सब प्रकार की सरस रचनाएँ है।

सजि सुमन शृगार, दोऊ सोहैं भरे प्यार, छाई शोभा की बहार फुलबगला में।
दोउ गर भुज डोर, हेरैं दृग पट डारप्रेमी-जन-वलिहार-फुलबगला में ।।
मन्द मुसकैं निहार करैं हिया आरस परस-रस वर्षो अपार फुलबंगला मे।
झाकी बाकी मजेदार, गावे गुणी यत्र धार होत सुमन न्योछार फुलबगला में।
धन्य स्वामिनी हमार-धन्य राघो सरकार मोद नाचे जय जयकार फूलबगला में।

रंगे मोरे नयना युगल शोभा।
श्याम गौर मिलि अनुपम झांकी मनहु मेघ सग तडित दुरैना।
अरस-परस गलवाही दीन्हे लसत मनोहर मृदु सुमकैना।।
क्रीट चन्द्रिका नासा मणि नथ डोलत कुडल कर्ण फुलैना।
'मजुलता' नख-शिख स्वामिक देखत भाव वखान वनैना।।

विन देखे नयनवा न माने हो।
जव से लखी दृग माधुरी मूरति रूप सुधा रस चसकाने हो।
मुख सरोज मकरन्द पान करि जन मधुकर मन मस्ताने हो।।
जिमि शशि ओर चकोर विलोकत रूप सुधा रस चसकाने हो।
अहह सुजान राम प्रिय तुम विनु कौन मौन मन की जाने हो।।

नैनन की वलिहारी हो श्री प्रिया जी।
भाव भरे रस भरे है मनोहर मुद-प्रद अवध-विहारी हो।।
चितवनि चपल चतुर चित चोरत, मुरनि-ढुरनि अति प्यारी हो।
अजन विनही सोहावन वावनि, वर्षा वन सुखवारी हो।।
पगे प्रेम प्रीतम सुजान नित, नवल रसिक विहारी हो।
हेमलता उपमान वारि सव, अनमिप रही निहारी हो।।

ये दोऊ चन्द वसो उर मेरो।
दसरथ सुत श्री जनक नन्दिनी अरुण कमल कर कमलन फेरो।।
वैठे कनक सिंहासन ऊपर, आस पास ललना गण घेरो।
ललित भुजा दिये अस परसपर, झुकि रही केस कपोलन नेरो।।
चन्द्रावति सिर चौर डुलावनि, चन्द्रकाल तन हसि हसि हेरो।
राम सखे छवि कहि न पडत जव, पान पीक मुख झुकि-झुकि गेरो।।

श्याम अग वसन सुरग सोहै सग वधु नाचत तुरग चाल चलत चलाकी है।
ककन करन रस रग मणी माल उर भाल मे तिलक मजु मौर शिर ढाकी है।।
चन्दन मुख मन्द मन्द हसनि आनन्द भरी नैन अरविन्द छवि फन्द मनसा की है।
झाकी जेहि झाकी यह वाकी रही ताकी कह राम दुलहा की वर वाकी वनी झाकी है।।

वाणिद वरन वपु विज्जु सो वसन वन्यो वाण वाणा सन वत वाहु वीरता की है।
विविध विभूषन विशाल वनमाल वनी वाम मे विराजती त्यो वेटी वसुधा की है।।
विधु सो वदन वर वारिज विलोचन है विहसनि वडी वाधा विदरनि वाकी है।
वसै रस रंग के वनज ग्रीव ग्रीव बीच विश्व बीर राम की विमल वाकी झाकी है।।

जामा जर कस मौर विराजन पीन बगन मृदुलक छगीरी ।
कहत वचन गग्नि प्रेम विवश ह्वै वैजनाथ गुनि गव हग्पी री ।।

रघुवर रूप देखि मन भावत ।
सुन्दर श्याम सरोज वदन पर मदन अनेक देग्नि वलि जावत ।।
चदन खौरि मौर गिर ऊपर कुडल श्रवण अलक झलकावत ।
मणि माला छवि पदक ज्योति उर कटक पोन देग्नि सकुचावत ।।
पीत वसन कटि तडित विनिंदित चलनि मस्त मातग लजावत ।
पान खाति मुसक्याति माधुरी दृग चितवति उर कहर जनावत ।।
वैजनाथ मोहि सुधि नर हृत तन मन बसु याम राम गुण गावत ।।

राघो जी वना सलोना भाई ।
सुन्दर वदन मदन लखि लाजत उपमा किमि कहि जाई ।।
चदन खौरि मौर शिर शोभित अलक कपोलन छाई ।
विहसनि मधुर फेरि दृग चितवनि लखि चित लेत चोराई ।।
कुडल श्रवण ललित कठावलि कुजर मणि छवि छाई ।
पीत वसन अग लसनि मनोहर झाकत दृग न समाई ।।
कमल चरण पर अमल महा उर नखन मधुर अरुणाई ।
निरखि निरखि अग अग माधुरी वैजनाथ वलिजाई ।।

श्याम सुन्दर रघुनाथ वने की ।
छवि लखि मन न अघात री माई ।।
निरखत ललकि पलक नहिं लागत देह विवश होइ जात री माई ।
आठौ याम श्याम रग भीनी का मन कछू सुहात री माई ।
वैजनाथ भूली सव सुधि बुधि दृग माधुरि पगि जात री माई ।।

तेरी छवि ने हमारो मन लीन्हे ।
सुनिये जी राज कुमार सहज लाज कुलवती वाला गुरुजन लाज अपार ।
निरखत तव मुख चन्द्र माधुरी तन गति रहि न सभार ।
चद्र चकोर मोर घन चातक स्वाती वुद अधार ।।
यदि गति मे तरनारि जनकपुर मन करि लेव विचार ।
परत न चैन रैन दिन हमरे नयन वहत जल धार ।।
वैजनाथ रघुनदन तुमही जीवन प्राण अधार ।।

होरी आजु राम सिय फागु रचेरी ।
वन प्रमोद फूल फूल विटप सब दल भारन भरि जात लचेरी ।

गुल्म लता चहु ओर विविध विधि महि चित्रित मणि हेमखचेरी।
धवल धाम बहु बरण मनोहर कनक कोरि नग पीत गचेरी।
तामधि लाल लली राजत रसि मदन विलोकत छवि सकुचेरी।
नवल सखी अलबेलि प्रिया प्रिय राज कुवर लिये छैल जचेरी।
मोद उमगि उछाह भरे सब जयति जयति दुहु ओर मचेरी।
बीन मृदग ताल डफ बाजत नृत्यकार बहु भाति नचेरी।
बैजनाथ सुनि मोहित जग भयो सुर-नर-मुनि नहिं एक बचेरी॥

हिंडोरे झूलत सिय प्यारी।
रंगभवन मधि लाल झुलावत गावत गुण नारी।
रग के झूलन छविकारी॥
अली कली सो खिलो गीली निरखत छवि भारी।
रगके भूषण अग धारी रग गान करि बाव रगीली॥
नट तन बालनारी रगीली घटा सो घनकारी॥
गरजि घुमडि चपला चमकत सखि मोर शोर भारी रगीली झूलन सुखकारी।
बैजनाथ दोउ लाल झुलन की छवि पर बलिहारी॥

हिंडोरे माई झूलत युगल किशोर।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दनी अरस परस भुज जोर॥
शीश मुकुट मणि माल हलन की पलन चलन चित चोर।
सुखमा सर युग कमल नयन लखि कुडल जनु रवि भोर।
मन्द हसन तन लसन विभूषण बसन कसन जर कोर।
जनु घन तडित विलास विविधि लखि सखि दृग चकित मयोर॥
भालतिलक लखि अलक अलक को पलक सहत नहिं कोर।
ज्यो जस को तस ह्वै रस की वश हाय फस्यो मन मोर॥
नील पीत पट अद्भुत राजत श्याम वपुष ढिग मोर॥
वारो मैं बैजनाथ यहि छवि पर रति युत काम करोर॥

हिडोरे माई झूलत दशरथ लाल।
सोह बाम दिशि जनक नंदनी कनक लता ज्यो तमाल॥
शीश सुभग मणि मुकुट विराजत मोहत तिलक सुभाल।
बिथुरी अलक कपोलन राजत कुडल श्रवण विशाल।
पान खात मुसक्यात परस्पर चितवनि करत निहाल।
दै गल बाह लेत जब झोका उरझि जात मणि माल॥

श्याम गौर दोउ अग मनोहर पीत वमन छिक लाल।
बैजनाथ छवि लखि वलिहारी मखि गावत दै ताल॥

लाल विन कैसे मन धीर धरै।
विन देखे मुख श्याम की शोभा नैनन नीर झरै।
होइ प्रभात वदन कव देखौ जियरा कल न परै॥
बैजनाथ कोउ श्याम मिलावै उरकी तपनि हरै॥

मोहिं इस्क पीर गम्भीर और नहिं भावै।
विन देखे छवि रघुवीर धीर नहिं आवै।
तन श्याम सजल घन तडित पीत पट धारी।
मुख सदन वदन पर मदन कोटि वलिहारी।
शिर मुकुट पुरट मणि जटित तिलक द्युति जागै।
लखि ललक अलक की झलक पलक नहिं लागै।
श्रुति कुडल नैन विशाल कछुक कजरारो शुचि विद्रुम बिंब अधरपर वारी।
भुज भूषण सहित विशाल बान धनुधारी कटि कसे तूण पट रुचिर मदन छविहारी।
मुख चन्द मधुर मुसक्याति विरह शर मारे।
अब बैजनाथ वलि जाउ दरश दियो प्यारे॥

चित चाह लगी रघुनदन की।
कछु मोहिं न भावत री सखिया।
गति सूरति आश चकोर भई मुख चन्द अनूप जही लखिया।
छवि देखि पगी नव नेह जगी सब लाज भगी जग को रखिया।
अवगाहन ते बिलगात नही तन श्याम पयोनिधि ते अखिया।
तन कप उठै बुधि मोरि भई घन देखि यथा अहि को भखिया।
अब बैजनाथ नहिं छूटि सकै मन जाय फस्यो मधु को मखिया॥

राम सिय आजु बने परभात।
शीश मुकुट इत ललित चन्द्रिका कुडल श्रवण सुहात॥
चूनर सग बसन पीताम्बर शोभित श्यामल गात।
बैजनाथ छवि कहि न परत है रति शत मदन लजात॥

राम सिय सैन शाल अलसात।
आलस भरे उनीदे नैना झूमत झुकि झुकि जात॥
चन्द सरिस द्वउ मुख की शोभा कमल मनहु कुम्हिलात।
बैजनाथ छवि कहु लै बखानो लखि रति मदन लजात॥

हरषित दोउ यक सग रहेरी।
दशरथ सुत अरु जनक नन्दनी अरस परस पर वाह गहेरी।
को हर गौरि नेह इत साचो रूप सिन्धु रति काम वहेरी।
वैजनाथ द्वउ तन की सुखमा छवि सिंगार जनु प्रेम गहेरी॥

विगत निशा प्रातकाल जागे सखि लाल मघन व्योम तिमिर जाल अरुण प्रभा नाशी।
फूले वहु कमल ताल भागे वहु भ्रमर माल उडगण द्युति छीन हाल चकई पिय प्यासी॥
राजत मुख सेज भौन आलस वश सिया रौन उपमा गति मार कौन निरखत छवि दासी।
हुमसत पुनि मिलत पदक चिक्कन मृदु छूटि अलक विलुलित मुख चन्द झलक किवौं मदन फासी

धोवत मुख विमल वारि पोछत मृदु वसन वारि मगल मय भोग धारि अलिगण चहुपासी।
उवटन मजन सुकारि अशुक भूषण सवारि वारत धन प्राण नारि दरश आश प्यासी।
नील पीत श्याम गौर जरकस युत जलज छोर कुडल घन भानु मोर मुकुट प्रभा खासी।
वैजनाथ सहित क्षेम धारे इमि नेह नेम जनु सिंगार सहित प्रेम पावन सुखमा सी॥

हमारी दिशि हेरो प्यारे पीतम लाल।
तन हारी लखि रूप की रचना मन हारी तेरी चाल॥
मुख लखि हरष विवश दियो अवला तन मन धन सव काल।
चाहत निशि दिन रूप माधुरी चितवनि निरखि निहाल॥
मेहर प्याय कहर ना चहिये गहि भुज चहि प्रतिपाल।
वैजनाथ दृग प्यास दरश की छवि रघुनद विशाल॥

रगीले द्वउ राजत रग भरे।
श्याम गौर अभिराम मनोहर छवि मिलि होत हरे॥
दशरथ सुत अरु जनक नदनी असन वाह धरे।
मरकत फटिक तमाल की चदा धन जनु तडित अरे॥
जनु ह्वै रूप एक ह्वै वैठे हरि तिय गिति निदरे।
वैजनाथ निरखत नित अलिया निशि दिन पल न परे॥

तिहारी छवि चाहत नयन पिये।
चद चकोर मोर घन दामिनि जल ज्यो मीन जिये॥
श्रवण सुयश मुख गान चरित की चाहत रूप हिये।
वैजनाथ गति एक रावरी नहि कछु चाह विये॥
राम तेरी माधुरी प्यारी मो दृग लखि न अघाय।

चातक त्रिपित जल पाय॥
अवुज नयन वैन रस भीने जव हेरत मुसक्याय॥

यक टक रही दारु पुतरी ज्यो देग दशा त्रिमराय।
परत न चैन रैन दिन मोको कब उर मिलिये धाय॥
तिहारी छवि देखि सावरे मन मेरे नहि कल रे।
निशि वासर मोहि और न भावत कौन करी छल रे॥
चाहत पान माधुरी मुख की नयन रहि तपल रे।
बैजनाथ प्यारे लालन ऊपर वारि पिया जल रे॥

लखौरी आजु राजत सिय सग राम।
दिव्य कनक मणि जटित सिहासन आसन सुख को धाम।
शीश कीट इत ललित चद्रिका वदन उभय सुख धाम॥
कुडल वीर बुलाक अधर पर त्यो बेसरि दिशि वाम।
बेदो भाल तिलक मृग मद को कुसुम युगल गल दाम॥
बैजती वन माल पदिक पर चद हार अभिराम।
कनक वलय केयूर मुद्रिका भुज भूषण बहु नाम॥
नूपुर पग मजीर पीत पट तट चूनर रग श्याम।
पिय छबि नील जलद लखि लाजत तडित वरण सी वाम।
बैजनाथ यह देखि माधुरी वारो मे रति शत काम॥

श्रीरामविलास

ठाकुर मथुरा प्रसाद सिंह (चोगडवा, जिला बस्ती) का लिखा यह ४० पृष्ठो का ग्रथ दोहे-चौपाइयो मे 'रामचरित मानस' का लघु सस्करण कहा जा सकता है। इसमे सरल सुबोध दोहे-चौपाइयो मे राम का चरित्र अकित है। सवत् १९६४ की चैत्र रामनवमी को यह ग्रथ लिखना आरम्भ हुआ। राम की बारात का वर्णन बडा ही हृदयग्राही है। इस ग्रथ की सच मे बडी विशेषता इस बात मे है कि जनकपुर मे श्रीराम के विवाह के समय जानकी की सखियो के साथ जो हास-परिहास होता है, वह बडा ही सजीव और आकर्षक है। श्रीराम और श्री जानकी का नख-शिख वर्णन भी कम मनोहारी नही है।

श्री सम्वत उनइस सै, चौंसठि चइत सुमास।
राम जन्म तिथि राम गुण, वरणौं सहित हुलास॥
राम बरात समूह, पै कछु गिनती करत कवि।
डेढ कोटि गज जूह, तीस कोटि बर बाजि है॥
कोटि पचीस उदार, जगमगात है पालकी।
बहुरि भार बरदार, सात कोटि पच्चीस लख॥

श्री राम जी का नखशिख वर्णन

पदतल अरुण सुमृदुल अति, कोमल वारिज फीक।
अरु गुलाब नहिं बाल रवि, सुखमा केर थलीक॥

सकल सुचिन्ह विराजत नीका। दहिने पद ऊधर स्वमतीका॥
अष्ट कोन अरु रभा विराजे। हल मूसल अहिसर पट भ्राजें॥
वारिज स्यदन पवि जौ रूपा। सुर तरु अकुस ध्वजा अनूपा॥
मुकुट चक्र सिंहासन अहई। जम सुदड जमदड को दहई॥
छत्र चौर नर अरु जै माला। ये चौविस दहिने पद थाला॥
पुनि वायें पद रेखा वरणी। सरजू सरिता गोपद धरणी॥
कलसा केतु जम्वुफल लसई। अर्ध चन्द्र दर लखि जिय फसई॥
पुनि षटकोन और त्रेकोना। गदा जीवनरु विंदु सलोना॥

सक्ती सुधा सुकुड कल, त्रिवली झख ससि पूर।
वीन वसि धनु तून पुनि, हस चद्रिका रुर॥
ये अडतालिस चिन्ह नित, वसत रामपद माहिं।
मथुरा सुजनन के सदा, सुख सुभदायक आहिं॥

येइ येइ रेखा सियपद माही। दाहिन वाम भेद पै आही॥
सोहत काम कुर्म पद पृष्ठा। नूपुरादि भूषन छवि श्रीष्ठा॥
कल अंगुलिन अगुठन नख जोती। पकज दलाननि जनु मोती॥
दुहू पद जावक कलित सवारे। रचना देखि विरचि जू हारे॥
सोहत उभै कमल पद त्राना। लाल मदन के जीहू ममाना॥
लसत कडा युग गुल्फ जानु अति। जघ केदली तरु किमानुहति॥
केहरि कटि सम लक सुहाई। किंकिणि मजु रुचिर अविकाई॥
सुभग विराजति पीअरी धौती। निंदति सिसुरवि तडित की जौती॥

राजत नाभी सर त्रिवलि, सीढी रोम मे वाल।
उर मुक्तामणि माल जनु, उडि वहु आव मराल॥

हृदै पदिक कल भृगु पद रेखा। उर श्रीवत्स सुरुचिर अलेखा॥
दोउ भुज कलित विसाल सुहाई। अगदादि भूषन छवि छाई॥
कनक सुमणि पहुची करमाही। रेख विचित्र वरनि नहिं जाही॥
अगुलिनि अगुठन नख दुति रूरी। मुदरी लेइ चोरि चितरूरी॥
याही कर धनु वान विराजै। सुरन सुखद असुरन दुख साजै॥
लसत जनेव स्याम तन वाका। जनु घन पर दामिनि सुभ आका॥

जरद जडित अति मोहहि जामा। रतन निकन बहु लगत ललामा।।
पीत कन्हावरि काछा सोनी। छोरन माहि लागि मणि मोती।।

वृषभ कध सम कध कल, मजु कम्बु सम ग्रीव।
सरद इन्दु की मद हरण, आनन सुखमा सीव।
अधर अरुण रद औलि मृदु, हगनि हरन जन चित।
जनु विद्रुम सु विमान सुर, सभा सुमन वरसत्त।।

चिबुक सुहनु नासिका सुहाई। लसन बुलाक विचित्र बनाई।।
कल कपोल बरणौं केहि भाती। काम गेन ससि जोति लजाई।।
श्रवनन सुभग सुकुडल डोलहि। परसत गाल लेत मन मोलहि।।
सोहत जुगल नैन छवि पीना। लाजहि कज खज मृग मीना।।
अस छवि नहि त्रैलोक के बीचहि। चितवनि चारु सुधा जनु सीचहि।।
उर्भ भोह सोभा अधिकाई। मदन धनुष सम वरनि न जाई।।
भ्राजत तिलक विसाल सुभौली। केस निरखि लाजति अलि औली।।
विविधि सुगध अलक गह बोरी। वायस पर सम सुभग न थोरी।।

पियरी पाग विचित्र रचि, तेहि पर मणि में मौर।
अधिक सुहाई छवि निरखि, विधिहू की मति हौर।।
अनु जन युत रघुनदनहि, निरखि निरखि सब नारि।
मधुरी मूरति उरमिनी, प्रेम विवश भई झारि।।

जनकपुर में सखी के साथ हाव विलास

चवल चखन दरश अतुराई। सखिन समेत राम पह आई।।
लखि ननदोइन मय सुख कैसे। तलफत मीन नीर लहि जैसे।।
पुनि किमि भई मुदित सब नारी। जिमि चकोरि राकेस निहारी।।
तब प्रभु कैंकरधरि सिधि बाकी। करि भृकुटी मुख अचल ढाकी।।
बोली सुनियें राज कुमारा। बडे तसकर चित्त चोरन हारा।।

चित्त हमार चोराय कै, आयो सासु के तीर।
सिद्धि केर इमि वचन सुनि, बोले श्री रघुबीर।।
भामिनि उलटी बात जनि, कहु निज औगुन सोय।
मम आगमन सुजानि कै, तुमहि लुकाने जोय।।

बहुरि रसिक पति पद सिर नाई। कहौं कथा रसिकन सुखदाई।।
जे नेवत मिथिला पति केरी। आई राजकुमारि घनेरी।।
अति निरदूषन अग सु बसनू। भूषन सकल सजे जिस फसनू।।

सब के उर अभिलाष अभगा। बोलब हसब राम के सगा॥
जेहि परि जाकह ध्रुव अनुरागा। ताकह मिलत विलम्ब न लागा॥
तिनहू सकल सुनी यह बाता। सिद्धि सदन आये चहु भ्राता॥
आई बेगि निकर हरषाई। आदर सिद्धि कीन सचुपाई॥
रघुवर रूप निहारन लागी। नयन प्रेम जल चल सुख पागी॥
कोउ कल जघ सुदेखति धोती। कटि किंकिणि लखि प्रमुदित होती॥
कोउ नाभी उर बाहु निहारी। जामा लसत कन्हावरि डारी॥
अधर सुवीरी अरुण सुहाई। बाल दिनेश प्रभा जनु छाई॥
काम म्यान ते किधौं निकारी। सिकली कीन धरी तरवारी॥
चिबुक सुहनु थल सुदर गालू। कोउ देखति नासा छवि जालू॥
कोउ जोहति नयनन की शोभा। जिनहिं विलोकि मदन मन छोभा॥
सुधा गरल बारुनी समाना। श्याम सेत रतनार सुहाना॥
राम विलोचन जेहि दिगि करही। मरत जियत झुकि झुकि सो परही॥
भौह चाप जनु मनसिज केरा। चितवनि शायक तिव्र घनेरा॥
लागी जुवतिन के उर घाऊ। दरद करत अति सहि नहि जाऊ॥

देखति कोऊ ललाट की, सुखमा तिलक सुरूर।
कोउ अवलोकति अलकश्रुति, कुडल छवि रह पूर॥
श्री रघुनदन छैल नृप, चितवत जिन की ओर।
तेहि सुधि नहि घरवार की, जिमि मदान्ध जन भोर॥
रसिक शिरोमणि राम, नवल प्रीति अभिलाप अति।
जस जिनके उर जाम, रहा लालसा तवन रुचि॥
राउर मूरति नीर सम, हम सब के मन मीन।
किमि जीहैं विरही घनी, भाषी परम प्रवीन॥
मिरजे रहे वकि मनहि अस, जब गौनव ससुरारि।
करब कतल मिथिला तियन, प्रीति पड़गते मारि॥
वनिता जाति अवध्य हम, सब विधि राजकुमार।
सो तुम कानि न लेसहू, कीन्हेउ मन सुखसार॥

मारयो चम्मन विसिख विषवारे। भृकुटी चाप चढाय के प्यारे॥
जग वीड़ा कुल सीव प्रसगा। ये सब होहि क्षणक मह ध्वगा॥
लागि प्रीति जो क्रम मनवानी। सो नहि छूटे शारग पानी॥
जैसे जल लहि सनरजु गाठू। अरु जिमि नवै न उकठ कु काठू॥
तिमि कबहू छूटै नहि नेहा। भरवम जाय जाय बरु देहा॥

लाल लाल सग लाल वाल लखि मोम समूह मजावत।
मदार द्रुम सुमन सार महदार सुमन वरमावत॥
विहसि विहसि रस रसिक शिरोमनि होरि होरि कहि वावत।
चाहत जानि प्रसाद ममय कवि कोविद मुद मन भावत॥

होरी गोरी भई भोरी।
रघुनदन अरु जनक नदनी अनुशामन सव दोरी।
रग मरित वह वाय धाय धरि मवहि विहमि वरजोरी बोरी।
गान विधान नवीन धाहिनी प्रिय तर करमिलि जोरी।
कोविद कवि छवि वादन अद्भुत सुनि जय धुनि चहु ओरी गोरी॥

हिंडोरा झूलत राज किशोर।
गरजै गगन मेघ मधुरी धुनि दामिनि करत अजोर।
श्याम घटा वगु पाति विराजै पवन चलत झकझोर॥
वसी वेन सितार मारगी सम को सुर एक ठोर।
ढोल मृदग मजीरा महुरि धुन उपजत घनघोर॥
गावत सुर नर नारि सुहावन सावन उठत अडोर।
निरखत सुर वर वधू पुलकितन राम नयन की कोर॥
अति आनन्द उभय पुरवासी लखत राम की वोर।
कोविद राम सिया को झूलन कज मधुप मन मोर॥

झूलत उमग भरे पिय पिय सिय सग रे।
रतन जड़ित मैं वनो हिंडोला प्रमुदित रग करे॥
युगल षभ विचित्र सोहैं मोतिन लाल भरे।
हरित लतान वितान चारु तर केकी कूक करे।
कोविद कवि छबि निरखि हरखि हिय मुद आनद भरे॥

सैया सावन झूलन झूलो।
सेवन घन चाहत वन मित लखि सखि वनि रितु अनुकूलो॥
धीर समीर तीर सरजू को नीर सुरभि फुल फूलो॥
कोविद सुर तरु तरमनि झूलो।
गुनि गन गुन सम तूलो॥

भक्त मनरंजनी

प्रेम सखी-कृत

श्री प्रेमसखी की "भक्तमन रजनी" यथा नाम तथा गुण है। अनेकानेक राग-रागिनियो मे प्रेम के मधुर रस मे पगे पदो का यह सुदर सुवृहद् सग्रह वास्तव मे भक्तो के मन को प्रेमाह्लाद से परिप्लुत कर देने मे समर्थ है। सन् १९०१ ई० मे जैन प्रेस (लखनऊ) से सेठ छोटेलाल लक्ष्मीचन्द ने छपवा कर प्रकाशित किया।

चचल चपल चाल चलत सुहाई रे।
चचल अनोखी वाल चलत मधुर मद॥
लचक लचक जात कामिन लजाई रे।
चचल नयन खज भृकुटी कमान तान।
मुख की चमक चारु चन्द्रमा लजाई रे॥
रसिक विहारी रामचन्द्र को मिलन हेत।
धावत धरा के धाय नागर कुमारी रे॥
चमकि चमकि चख प्रेम को सुधारस।
मधुर मधुर रस पियत अघाई रे॥
प्रेम सखि देख प्रेम चन्द्रावलि बीर ऐसे।
सोलहो सिंगार कर राम को रिझाई रे॥

महारासोत्सव अर्थात् सीताराम रहस्य

यह श्री हनुमत्सहिता का अवधी गद्य मे अनुवाद श्री अम्बिका प्रसाद दैवज्ञ ('अवध मडलान्तर्गत जिला उन्नाव तहसील हमनगज औरासी ग्राम निवासी') का गद्य मे मिलनेवाला इस सप्रदाय का एक विलक्षण एव परमोपयोगी ग्रथ है। गद्य का नमूना हम नीचे दे रहे है। परन्तु, अनुवाद मे बीच-बीच मे कही कही सार रूप में दो एक दोहे भी आ गए है। भाषा लडखडाती हुई परन्तु सशक्त है और भावाभिव्यक्ति मे सफल। लखनऊ प्रिंटिग प्रेस मे सन् १९०४ ई० मे छपी।

कोई स्त्री अपने प्यारे को नमस्कार करती है कोई मद से अपने पियारे पर रिस करती है फिर ज्ञान भये प्रसन्न करे खातिर जैसे पतिव्रता लडाई को दूर करती है तैसे।

कोई सखी सकेत कुज के बीच मे जाय कै तहा नही देखती है तब अपने प्यारे सखा को बढी रिस से रिसवावती है।

कोई सखी कुजवन मे जायकै तहा अपने प्यारे को देखि कै विरह की आगि में जरती जो देह है ताको उत्कठा स्त्री की नाय झपिटि कै बुझावती है।

कोई स्त्री फूलो के मालो को गुहती है अपने प्यारे के लिए चरित्र गावती है कोई सखी फूलो की सेज सजाती है जैसे वस्त्रो की सेज बनावने वाली—

दोहा

माला फूलो के कोई गुहति चरित पिय गाय।
कोई सेज बनावती जिमि वस्त्रन की नाय॥

कोई स्त्री अपने प्यारे को छन भरि छाती मे नही छोडती है अपने प्राणन ते परम पियार रक्षा योग्य जैसे स्वाधीन भर्तिका अर्थात् अपने ही वश अपना स्वामी।

कोई स्त्री अपने पति की इच्छा करने वाली आनद मे जल्दी जाती भई कुज ते और कुज मे घुसती भई जैसे आनन्द मे अभिसारिका स्त्री (अभिसारिका उसका नाम जौनि एकात मे लाज छोडि कै) अपने पति के तीर जाती हैं। यथा हित्वा लज्जाभयेश्रिप्ठामवेनमदनेन या अभिसार- यतकात सा भवेदभिसारिकेति।

कोई मानिनी सखी का नर्मता करि कै वशि करि लेते भये भली यतन से प्रेम की हथूटी वाणी से ऐसी बाणी बोलते भये।

हाव भाव के प्रभाव के जानने वाली कोई सखी राघव जी के आगे मुस्क्याती है।

सखियों के नाम

उज्ज्वला काचनी चित्रा चित्ररेखा सुधामुखी हमी प्रशसा कमला विशदाक्षी सुदंशका।

चद्रानना चद्रकला माधुर्यशालिनी वरा कर्पूराकी वरारोहा ई सोरह १६ स्त्री रसोत्सुका है।

तौने कमल के पत्रो पर १६ सोरह सखी शोभती है मुनियो मे सरिप्ट है अगस्त्य जी तिनके नाम सुनहु।

शोभना शुभदा शाता सतोषा सुखदा सती चारुस्मिता चारुरूपा चावंगी चारुलोचना।

हेमा क्षेमा क्षेमदात्री धात्री धीरा धराई सखी वहु विधि की सेवा मे युक्त रात्रि मे श्री मैथिली रघुनदन जी को सेवती हैं।

क्षीरोद्भावा भद्ररूपा मद्रचारु मद्रदा भाववर्जिता विद्युल्लता पद्मनेत्रा पावनी हसगामिनी।

रमणीया प्रेमदात्री कुकुमागी रसोत्सुका यहा यतनी वारह मखी कमल के वाहर दलो पर बसती हैं।

महार्हा मालवी माल्या कामदा काममोहिनी रति क्षिती नतिवती प्रेमदा कुशला कला।

लीला यतनी वारह सखी उपदलन मे बसती है यई सब जनी श्री रामचन्द्र जी को सेवन करती है बडे प्रेम मे बूडती है आनन्द मे युक्त श्री राघव जी को देखती है।

फिरि आठ दल के बीच मे बहु विधि के सुहागो से भरी कुजो मे ठाढी सखिया नित्य ही राघव जी की सेवा करने मे युक्त दोहा।

फिरि बसुदल के बीच मे बहुविधि साजि सुहाग।
कचज मे ठाढ़ी नितहि हरि सेवन मन लाग॥

पहिले वेष कुंज मे नम्रता करिकै श्री सीताराम जी बैठने भये तहा विलासिनी नाम सखी मैथिली जी रघुनन्दन जी दूनौ जनेन को देखिकै।

जल्दी वस्त्र कुचुकी दुपट्टादि सीता जी को औ जामा दुशालादि राघव जी को औ गहन वुलाक कठादिको से और मालो करिकै भक्ति ते दूनौ जनो के अनूप रूप वनावती भई।

फिरि दूनौ सीताराम जी मालती कुज को जाते भये जहा (सागानद) नाम सखी रहती है तेहि की सेवा के मतगते प्रेम करिकै सीताराम जी दूनो जने परम आनन्द को प्राप्त भये।

फिरि श्री राघव जी सीता जी के सहित ('केलि कुज') के वीच मे जाते भये जहा नित्य ही (वृन्दासखी) नित्यानन्द मे वूडती है।

तहा आनन्द करिकै बिहरत है केलि के कुतूहल से काम केलि करिकै सीता जी राघव जी को प्रसन्न करती भई।

तव फिरि मन के रमावन वाला (सुखद) नामकुज को देखि कै दूनौ जने परम आनन्द मे प्राप्त भये जहा (नित्या) नाम सखी शोवती है।

फिरि हिंडोलक कुज मे वारम्वार घूमते है तहा (प्रेम प्रदर्शिनी) नाम सखी वसती है तौनि स्त्री श्री रघुनन्दन जी का मनोरथ पूरण करती भई।

सुन्दर डोलना कुज मे प्यारी सीता जी के सहित श्री राघव जी जाते भये जहा (वसत-रगिनी) नाम सखी परम आनन्द से भरी वसती है।

वसन्त ऋतु मे परम चित्र विचित्र फूलो करिकै लपेटित कोयल भवरो के झुडो से प्रसन्न कामदेव के वढावन वाला भोजन कुज मे मैथिली जी और सखियो करिकै सहित श्री राघव जी जाते भये तहा (सदानुमोदिनी) नाम सखी आनन्द ते भोजन छ रस के औ छप्पन ५६ प्रकार के भक्ष्य भोज्य चोष्य लेह्य तथा मालपुआ जलेवी लड्डू खाझा खुरमा खीरपिर कै भोजन भगे सेंवई मलाई पूरी वरा मुगारै मिथौरी मिही रोटी घी से भीजी इत्यादि भोजन कटहर तोरई परवर इत्यादि तरकारी अदरख आम अवरा इत्यादि अचार किलहा गलका करौदादि खटाई आम धनि-यादिको की चटनी इत्यादिको के वनाय कै श्री सीतारामचन्द्र जी को तृप्त करती भई।

शयन करने वाला चारु नाम कुज का भगवान राघव जी नर्म सेजो करिकै सहित देखिकै वडे आनन्द को प्राप्त भये।

जहा साक्षाल्लक्ष्मी वाली मदनमजरी नाम सखी स्थित ह्वै कै तहा सीता जी के सहित रामचन्द्र जी शयन करते भये तव शयन मे स्थित राघव जी को देखिकै प्रेम करिकै जगावती भई।

अष्टदल के उपकोनो मे वेली औ वृक्ष शोभित है माधवी चपा मल्लिका पुन्नागचमेली।

लौंग लतिका अवरा तुलसी परम चित्र विचित्रै सव सुगन्धो मे भरी सव फूलो से फूली है।

जिनके फूल वडे मीठे सवाद वाले पाता अमृत ते मीठे तिनकी सरणागत मे शोभित है जहा हसने में आनिंदित। गावती है नाचती है श्री सीता राम जी को देखती है हे अगस्त्य जी तिनके नाम सुनहु हृदय मे धारण करहु। वीणावती सखी वीणा का हाथे मे लीन्है औ सुगधिका स्त्री वशी का हाथे मे पकरे कविला सखी विलास करिकै सहित औ सोप सखी सव शोभावो मे भरी। सुख मे

सातों स्वरन भाव निषाद ऋषभ गाधार पर्ज मध्यम धैवत पचम ए स्वरन को धारण करिकै गुन के देने वाली सती ('खजनाक्षी')खजन की चाल के समान चचल आखो वाली रमोवा की मजरी रूपी खजरी का हाथ मे लिये। गान कला गीनो की कला जानने वाली सखी हाथ मे मीठे स्वर वाला मृदग लिये सारग लोचनी सखी वडे आनद करिकै मारगी का वजावती है। सुखदामिनी नाम सखी छुवने के सुख दनेवाली सुख के मडलो से जटित सब सखिया मव नवो रसो के जानने वाली श्री रघुनन्दन जी के राधिका(यह रूप कृदती 'राध गाध ममिद्धौ' धातु का है)सेवन मे लगी। सरिष्ठ बार कमल की गुजरियो के दानो मे जटित सखिया स्थित महाचित्र विचित्र मणियो से पवित्र मदिर में चद्रमा सूर्य अगिनि के करोरि तेज को ठगने वाल चितामणि के मन के मोहन करने वाले मे ॥ तहा मत्रो करि कै मल से रहित पवित्र सिहासन शोभित है सैकरन स्वर्णो से पूजनीय सुदरे नरम केवल ठगने मे प्राप्त होय कै गुरु की वाणी ते पार जाने मे स्वगम्य रूपवाले मे। सहित ओकार सब बीजो सब मत्रो से लपेटित जैसे मणियो के समूहो से युक्त ऐसे सिहासन के बीच में श्री रघुनन्दन जी शोभित है। तेहि मे पैठती भई कमल की पखुरियो के समान आखो वाली लवी लवी दूतो बाहें प्रसन्न मुखो वाली तपाये सोने के समान गहनो मे जडी जीनी सखी के जान की जीवन श्री रघुनन्दन पियारे है। आपस मे चित्रन के जानने वाले दूनी जने आलिगन करते भये हसने की वाणी से हृदयो मे स्नान करते है रहस का आनन्द और सब सुख कै आनद देने वाले घर्षणा ते रहित ऐसे रासेश्वर श्री राघव जी को नमस्कार है।

प्रभया रामचद्रस्य सीतायाश्चप्रभावत
सदा प्रकाशतेत्यर्थस्थूल परमपावन
यद्ध्यात्व निमिषार्धेनरसिका याति तत्पदम्।

भावना अष्टयाम

अथवा

श्री सीताराम मानसी पूजा

श्री सीतारामशरण रामरसरगमणि जी

[श्री सीतारामशरण रामरसरग मणिजी श्री अयोध्यावासी ने श्री सीताराम रसिक जनो के सुखार्थ रचना किया उसी को श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद जी के स्नेही श्री दुर्गा प्रसाद जी सवत् १९६१ में चन्द्रप्रभा प्रेस(काशी) मे छपवा कर श्री सीतारामानुरागियो के हेतु सुलभ किया।
गद्य मे मगला आरती से शयन तक की मानवी सेवा का वडा ही भव्य मनोहारी वर्णन।]

ध्यान

राजत रत्न सिंहासन मध्य सियायुत श्यामल राम सुजाना।
छवि सु लच्छन लाल लिए छवि जासु छपाकर कोटि समाना॥
श्री भरतौ भरतानुज चौर चलावत दक्षिण वाम विधाना।
मारुत मारुत लाल करें रसरगमणी कर यो उर ध्याना॥

वैदेही सहित सुर द्रुमतले हैमे महामण्डपे,
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने सस्थितम्।
अग्रे वाचयति प्रभजनसुते तत्त्व मुनीन्द्रै परम,
व्याख्यात भरतादिभि· परिवृत रामम्भजे श्यामलम्॥

तब श्री राम रस रग विहारी जू शयन करते भए।
वाम भाग श्री रसिक राज वल्लभा जी शयन करती भई।
श्री भक्ति भक्त दोनो दिव्य विग्रहो की चरण सेवा करने लगे।
तदुपरि श्री युगल के नयन पकजो को निद्रा से मुद्रित देखि सहित
समाज श्री भक्तिपरानुरक्ति जू
श्री युगल कृपाल जू को शोभा मन मे धरि मन्द पदो से
बाहिर निकसि के कपाट बन्द कर देती भई।
और सहित समाज शयनशाला के आवरण भवन मे विराज
कै झीने स्वर से विहाग राग मे श्री युगल यश गाने लगी।
तदनन्तर शयन करि कै स्वप्नावस्था मे श्री सीताराम चन्द्र जू
के समीप प्राप्त भई सेवानुरागी साधक भी श्री भक्ति
पद पकजो को साष्टाग प्रणाम करि,
उनके नीचे दक्षिण में शयन करि स्वप्न मे श्री सीतारामचन्द्र जू
के समीप प्राप्त भया और सुख सिंधु मे मग्न भया।

परिशिष्ट

[क]

महावाणी

रस शृगार अनूप हैं तुलवे को कोउ नाहि।
तुलवे को कोउ नाहि मोइ अधिकारी जग मे।
काचन कामिनि देखि हलाहल जानत तन मे।
यावत जग के भोग रोग मम त्यागेउ द्वन्दा।
पिय प्यारी रस सिन्धु मगन नित रहत अनन्दा।
नही अग्र अस सन्त के सर लायक जगमाहि रस॥

कृपानिवास श्री राम प्रिया की कृपा अगम सव सुगम हमारे।
नित्य निकुज विहार करो रति रग रगी रहो लाडिली गोरी॥
प्रीतम प्रान सुजान के सग दिये गलवाह वसो हिय मोरी।
श्री चन्द्रकलादि अली गुनआगरि नागरि रूप लखे तृन तोरी।
ईश मनाय अशीशे सबै कि वनी रहे नित्य किशोर किशोरी॥

सखिन बिच नृत्यत युगल किशोर।
विपिन प्रमोद सरोजा तट पर दिव्यभूमि चमकति चहु ओर।
चक्राकार रास मडल रचि राग रागिनी के कल शोर॥
चन्द्रकला विमलादि रगीली, वीणा मृदग लिये कर जोर।
चारु शीला सुभगा हेमा लिए, मुरली मुचग चिकरी जोर॥
चन्द्रा चन्द्रवती मिलि गावति, क्षेमा स्वरहि भरत रसवोर।
मदन कला करताल वजावत, सारगी नन्दा टकोर।
पिय शिर सुभग सुक्रीट विराजै, चन्द्रिका सीता के शिर रोर॥
चन्द्रहार प्यारी उर चमकत, पिय उर मोतिन माल उजोर।
कोटि कोटि रतिकाम विमोचन, नटवर वेप श्याम अरु गौर॥
रूप माधुरी कहि न परत है, अग अग छवि कै उठत हिलोर।
कर मे कर दोऊ मिलि धारे, नयनन शैन चलत दुहु ओर।
कवहे अधर रस पियत परस्पर, रस मतवारे दोउ चितचोर॥

प्यारी हाव 'पियाचित करषत, पिय के भाव प्यारी निज ओर।
दोउ रस सिन्धु मगन रस लम्पट, अग्रअली नहिं चाहत मोर॥

देखो सखि अति अनन्द रास रच्यो रामचन्द्र,
रजनी छवि छिटकि रही सरद चादनी॥
वहु सखि मडलाकार नृत्यगान स्वर सभार,
नृत्यत रघुनन्दन मिथिलेश नन्दनी॥
कंचन मणि लसत भूमि नृत्यत पद चपल घूमि।
नूपुर छननन छमक छमक छन्दनी॥
कमला विमलादि तान रागा अनुगादि गान।
करहिं राग रागिनी कला कलिन्दनी॥
चन्द्रकला वीणा मुचग धुनि मृदग मधुर।
अपर सखि सीतार तार तर तरगनी॥
ताधिग-धिग ताधिग-धिग, ताधिन्ता ताधिन्ता।
धिकिट धिकिट धिधिकिट धिधिकट प्रवन्वनी॥
उघटत सगीत राग, ताल मूर्छानदि ग्राम।
हाव भाव पानि मुरनि नैन खजनी॥
श्री रामचरण युत समाज मेरे हिय मे विराज।
यह विहार नित्त अखण्ड रसिक मन्दनी॥

सरद पून विमल चन्द विमल मही अनन्द कन्द।
रामचन्द्र रास रच्यो देखन सघी धाई॥
सरयू पूलिन विमल कूल फूले वहु रग फूल।
कमल चम्प केतकी कदम्व सुरभि छाई॥
बोलहि सारो मयूर कोकिला मराल कीर।
गुजहि अलि सकल राग रागिनी वनाई॥
किन्नरी अप्सरा गान मूर्छन स्वर ताल तान।
धरहि भूमि तरुन लतन नीर गगन जाई॥
वाजहिं मृदग जग मारगी तमूर।
चग वीण वेणु आदिक स्वर ताल गति सुहाई॥
युग युग सखि विच विच एक मध्य रामनिग्तत,
सगीत ताडवी मृगव गति अनेक लाई॥
गावहिं षट राग राम रागिनी स्वर ताल ग्राम।
सव धरि सखि रूप राम रास हेतु आई॥

जानकी रघुनन्दन मन भावनि भये रँन।
ब्रह्म श्री रामचरण सर्व जीव परमानन्द पाई।।

आज सखी लखु रास मडल मे नृत्यत हैं रग रग भरे।
वन अशोक सम भूमि खचित मणि रवि सम अमित प्रकाश करे।।
श्री रघुनन्दन जनक नन्दनी अभित मदन तवि अग धरे।
क्रीट मुकुट चन्द्रिका मनोहर भूषन अग अग नगन जरे।।
कुडल मकर हार मोतिन के बैजन्ती वनमाल गरे।
नासा मणि झूलत अधरन पर केसर चन्दन खौर करे।
मोतिन माग भरी वरवेनी कुटिल अलक जनु भ्रमर खरे।।
मणि ककन पहुची कर चूरी वाजू वद जगाऊ जरे।
नील पीत पट लसत दुहुन तन श्याम गौर मिलि लगत हरे।।
किंकिन मुखर अरुण कर पल्लव पग नूपुर झनकार करे।
थेइ थेइ करत भरत स्वर अलिगन निरतत पिया सग अनन्द भरे।।
वजत मृदग ढोलक सारगी झाझ मजीरा वीन वरे।।
जगु जगु सखिन बीच रघुनन्दन करसो कर धर लमत खरे।
कर मडल निरतत सखियन सग निरखि मदन बहु मूरछि परे।।
पूर रह्यो वन मडल सोरस अचर सचर चर अचर करे।
सुर मुनि अगम सुगम रसिकन को रस माला यह ध्यान धरे।।

रसिक दोऊ नूतन रग भरे।
बिपिन अशोक रास मडल विच जनक लली रघुलाल हरे।।
अमित रूप धरि करि कछु चेटक जुग जुग तिय मधि श्याम अरे।
क्रीट मुकुट की लटकि चन्द्रिका झुकनि मदन पद दूर करे।।
मोतिन हार जुगल उर राजत कुन्द मालती माल गरे।
पग नूपुर मजीर मधुर धुनि ककन किंकिनि मुखर तरे।।
मुरज मजीरा ढोल सारगी अरु मुरली के टेर करे।।
विविध ताल सगीत अलापत ततथेइ ततथेइ कहत खरे।।
कवहु मधुर मुस्काय के दम्पति निरखति छबि भुज अश धरे।।
कवहु सुरति करि ब्याह समय की फिरति भावरी रसिक वरे।
यह रस रास महा सुख सागर द्वादश योजन लो सवरे।।
रस माला भरि पूरि रही वन जग कोइ बुन्द प्रकाश करे।।

आज जनक दुलारी रस रगन भरी।
चम्पा के वरन वारी वसन सुरग वारी वदन मयक वारी रूप अगरी॥
अरुण अधर वारी बोलनि मधुर वारी तिरछी चितवनि सर मारति खरी।
वेसर सुपास वारी मुक्त मृनाल वारी उरज उतग वारी मदन जरी॥
मोतिन के हार वारी मध्य भाग छीन वारी।
जघन गभीर वारी भावन भरी।
गमन मराल वारी नूपुर झनकार वारी रसमाला उर वारी मोह्यो मनरी॥

सावरे सलोने जू झमकि झुकि आवेरे।
शरद की रैन पिया अधिक सोहावेरे॥
मद मुसुकाये प्यारी जू के गलवाह दिये उचे स्वर तान ले मधुर स्वर गावरे॥
रास मडल अली सग लली करवरि छम छम छननन नूपुर वजाव रे॥
कटि लचकनि ग्रीव मुरनि धुरनि नैन कुडल अलक मनि क्रीट झलकावरे।
नवल विहारी प्रिया लली सग रसवस अली सग लता कुज मन ललचाव रे॥

प्यारी जू के चद्रिका मे चन्दहु लजायो रे।
नीलतम घन उडगन चहु दिशि सोहैं जुग सुत नागिनी अमिय रस पायो रे।
भौंहन की टेढी तिरछी नैन की सान लखि वेसरि हुलनहु मे चितहुं चोरायो रे।
उरज उतशह, की कचुकी की चमकनि हारहू हमेलन की अलनि रमायो रे।
नवल बिहारी पिया स्वामिनी की निवी लखि मदन के रसवस कसमस छायो रे॥

कर धरि पिया नटे पिया मुख हेरि हेरि।
चहु दिशि अलिगन छमछम छमकत मद मुसुकनि मे मदन रस भेरि भेरि॥
फहरत वसन सुगवन छहरत मोती माल टूटत सखिन के टेरि टेरि॥
उरज गहत कर अधर चूमत जव पूछत रसीली वात अली मुख फेरि फेरि।
नवल विहारी प्रिया घूघट मिस निहुकत पिया रस लहत वाधत वन्द वेरि वेरि॥

सारद विधु चय विजित वरानन विधु कर निकर मुहासम्।
मदन चाप जित भृकुटि कुटिल तिल सुमन मुक्त धृत नागम्॥
चारु चिवुक दर ग्रीव मनोहर स्वधर विम्ब प्रतिभासम्।
मुकुर कपोल चिकुर चय चुम्वित नयन सरोज विलासम्॥
जनक सुता कर धृत परि नृत्यति ललित कठ कृत गानम्।
पद नूपुर रव रजिन दश दिग्गिउर्चा रत ताल प्रमाणम्॥
पश्य मुदा रघुनन्दन मतिशय चित्त चमत्कृत वेपम्।

जनक सुता रजन रतिपति मद गजन मगमशेपम्॥
'श्री रसिक' भणित सीतापति गीत ललित पदावलि नीतम्।
सज्जन श्रुति सुख प्रद मिद मद्भुत मचित ताल विनीतम्॥

युगल छवि देखे नयन गिगत।
जन सुपमा सर मध्य लमत दोऊ नील पीत जल जात॥
वदन किधौं छवि नगर वमत जह मम्मनि विविध लगात।
चोरि लेत चित को जव मृदु हमि कग्त परम्पर बात॥
कवहु बैठि चौसर खेलत दोउ हार जीत पक्षपात।
रूप भरी गुण भरी चतुराई मग सखिन की व्रात॥
विहरत कनक भवन गृह आगन कवहु अटन चढि जात।
देखत फिरत रसिक अरी तह तह जह जह प्रिय दोउ जात॥

सजीवन जीवन युगल किशोर।
रैन ऐन मद नैन चैन चय चखत चतुर चितचोर॥
हसत हसावत होश जोश विन वोस लेत रम वोर।
सुधि वुधि विशद विहाय छाय छवि होय रहे चन्द चकोर॥
आस पास महचरी सोहागिनि सिखर्वाह मदन मरोर।
श्री युगल अनन्य अली रसिया दोउ उरझि रहे निशि भोर॥

दृगन भरि छवि लखु सीय रघुवीर।
कनक भवन राजत प्रिया प्रियतम श्यामल गौर शरीर॥
अग अग नव रग रगे वर, लसत सुरगी चीर।
फूल छडी प्यारी कर राजत पिय कर शुचि धनुतीर॥
नजर वाग अनुराग लाग फल नटत मोर मनकीर।
नर देही सुमिरन वैदेही हेतु वदन मुनि धीर॥
हृदय पत्र लेखनी प्रीति करु तत्व मसी मुदनीर।
श्री जानकी वर दम्पती छबि सम्पति लिखले सखी तसवीर॥

सीया जू के दृग छवि नित नवीन।
अजन मिस रजन मन पिय लखि श्याम सु डेरा कीन॥
गौर अग अरुणाम्वर झीनहु कहि न सकत अति क्षीन।
छिन छिन छटा घटा रस बरसत चित्त चातक रसलीन॥
नित सयोग वियोग न सपनेहु निज मुद खुद लैलीन।
कृपा साध्य गुरु जुगल विहारिनि जानहिं रसिक प्रवीन॥

प्रिया जू के नेह भरे दोउ नैन।
अजन युत रजन मनरजन अलिगन के सुख दैन॥
खजन मोर मीन पकज दल दुरि वन कोउ जल सैन।
रती कहूँ मै अहौ रती भरि मैन कहै मम मैन॥
उमा रमा ब्रह्मानि आदि सब तौली सुमति तु लैन।
श्री मिथिलेश कुमारि प्यारि पिय उपमा तो कहु है न॥
जेहि दिशि हसि दरसत मरसत मुद वरनत बरनि व नैन।
जुगल विहारिनि जानत प्रीतम जे निरखत दिन रैन॥

किशोरी जू के अनुपम रममय बैन।
सुधा सुधाकर शुक पिक हू नहि कोकिल हू सम हैन॥
मन्द हसनि रद लसनि अधर छवि फसनि प्रिया प्रद चैन।
अग अग छवि फवि कवि दवि मति सारद वरनि सकैन॥
करत विहार अपार पिया सग कनक भवन सुख दैन।
श्री जुगल विहारिनि भरि उमग सखि मेवति है दिन रैन॥

मद छाकी छवीली गहि प्रीतम को रग वोरे री।
मद विहसि मुख मोरि फेरि दृग झक झोरनि चित चोरे री॥
छीनि लई करते पिचकारी मुख भाडत वर जोरे री।
रसिक अली राघव कर जोरत गहि रहि अक न छोरे री॥

रघुनन्दन खेलत होरी।
विपुल सखिन जुत जनक नन्दिनी वनेउ सखा हरि ओर।
फाग मची वहु वाजन गानन होत शोर चहु ओर॥
लसै सव सुन्दर जोरी।
कुम कुम की चमची सरयू तट लाल भई जल धार।
वर्पहि रग देवतिय नार्चहि काहु पट न मभार॥
अग सव रगन वोरी।
राम मखन ललकारि अग्र वढेउ एत सखियन करि जोर।
भरत शत्रुहन लखन लाल को धरि लाई निज ओर॥
करहि मन भावत मोरी।
भूपन वसन उतारि लीन्ह मव निज भूपन पहिराई।
श्री राम चरन सखि छोड दीन्ह तव मीय की जीत कहाई॥
भई जय जनक किशोरी॥

रथ चढ़ि चले सरयू तीर।
रसिकनी मिथिलेश नन्दिनी रसिक श्री रघुबीर॥
प्रथम मास अषाढ़ पावस बहत त्रिविध समीर।
उमड़ि घुमड़ि घमड घन धनि व्यापि रही गभीर॥
श्याम गौर सुरग अग सुपहिरि कुसुमी चीर।
जड़े भूषण नगन के छवि देखु मन करि धीर॥
हरित भूमि विभाग कचन जटित मनि गन हीर।
हरित द्रुम सघनावली खग मधुर बोलत कीर॥
सहचरी गन अमित चहु निशि गान तान सुधीर।
युगल प्रिया सु उतरि रथ ते पूजि मानस नीर॥

उमड़ि घुमड़ि आई बादर कारी।
दशरथ नदन जनक लली जू बैठे सखिन सग महल अटारी॥
कुसुमी बसन युगल तन राजत जगमगात भूषण उजियारी।
अलकैं बिथुरि रही मुख ऊपर मुकुट चद्रिका लटक सवारी॥
चद्रावती मृदग टकोरति चद्रा तानपूर करतारी।
चद्रकला जू बीन बजावति गावत उमग भरे पिय प्यारी॥
अधिक प्रवाह बढ़यो सरयू को भरे प्रमोद विलोकत वारी।
युगल प्रिया रसिकन के सपति अगम निरखि रति पति बलिहारी॥

रसिक दोऊ झूलत सरयू तीर।
रघुनन्दन अरु जनक नन्दिनी श्यामल गौर शरीर॥
राजत छवि मैं रतन हिंडोरा तापर बोलत कीर।
गावहिं छवि अवलोकि प्रेम भरि चहुदिशि सखिन की भीर॥
बाजत बीन मृदग उपग मृदग ताल अति धीर।
जुगलप्रिया अति सुख वर्षत जब लेत तान गभीर॥

किशोरी सग झूलत नवल किशोर।
दशरथ नन्दन जनक नन्दिनी सुन्दर श्यामल गौर॥
सरयू तीर सुखद प्रमोद बन विश्व भूमि शिरमौर।
ता मधि मणिमय रचित हिंडोरा लसत हेम मय डोर॥
चन्द्रकला सखि हरषि झुलावति विमला ढोरति चौर।
जुगल प्रिया यह मधुर केलि लखि सुधि बुधि सब भई भोर॥

झूलैं प्यारी झुलावैं प्यारो।
मधुर मधुर कर कज मंजु गहि रेशम रजु सुकुमारो।
नैनन निरखि नवेली विधु मुख मन्द हंसनि नृपवारो॥
उरझि रहे अग अग रग रस सुरझनि अगम निहारो।
श्री युगल अनन्य अली दोउ नेहिन ऊपर सर्वस वारो॥

पिय लागो सावन मास आस यह मेरी।
चलि झूलैं विमल हिंगोर गले भुज गेरी॥
भये हरित वरन वर भूमि सोहावन लागे।
फूलैं फलैं विपिन प्रमोद मोद मय वागैं॥
गुजत मधुकर करि शोर मोर मन रागैं।
भल समय सुखद अवलोकि निठुर पन त्यागैं॥
शुक चातक कोयल हस कोकिला टेरी।
सुनि प्राण प्रिया वर वैन नैन लखि प्यारी॥
गहि अक रग ज्यो सुघन मोद लहि भारी।
चलो मेरी जीवन जीवन सकल सुखकारी॥
श्री चन्द्र कलादिक सखी साज सवारी।

आयो सरयू वर तीर घटा घन घेरी।
विद्रुम नग मनि रचि हेम अनूपम झूला॥
तेहि वैठे सिय महवूव खूव अनुकूला।
सखि झुकि झुकि झमकि झुलाय पाय प्रिय दूला॥
नभ विबुध वधु वहु हरपि वरषि रही फूला।
सुख कन्द मन्द मुसुकाय सिया तन हेरी॥
पट पीत नील फहराय लपटि अरुझानी।
सुरझावत सिय पिय विहसि नही सुरझानी॥
दोउ नील पीत मिली हरित रग प्रगटानी।
सखि गावें हरे हरे गीत हेरि सुख मानी॥
प्रीतम तमाल तरु प्रीतिलता लपटेरी।
पिय लागो सावन मास आस यह मेरी॥

मव तजि होइहौं महल उपासी।
स्वर्ग मुक्ति वैकुन्ठ विसारी होय गुरु पद की दासी॥

सद्गुरु वचन महारस मानौ परौ न भ्रम की फासी।
सेज विहार रास रस लूटौ त्यागि वियोग उदासी॥
युगल विहार भावना करिहौ भटकौं न तीरथ काशी।
और ठौर उझकौं नहिं नयनन गम मिया छवि प्यासी॥
गुरु प्रसाद भई रसिक छाप अब नाहिन वटु सन्यासी।
भाव कुभाव धरें कोइ मन में कोइ करे उपहासी॥
लोक लाज कुल मान वडाई आश त्राम सब नाशी।
कृपानिवास कृपा करी सीय जू करिहौ युगल खवासी॥

करि सोरहो श्रृंगार पिया घर जाना ही होगा।
रति विछिया प्रेमा सुमहावर चमकत प्रभा अपार॥
धृत सनेह तदीय सु नूपुर मधु मदीय मदकार।
उरु पर साटी सोइ धारो कर मनसिज उदगार॥
मान किंकिनी कटि में सोहैं प्रणय उरस्थल हार।
कुच पर राग अनुराग कठमणि महाभाव नथ प्यार।
रुढ सिन्दूर अधिरुढ सु कज्जल सौभागिनी शुभकार॥
मोहन मोदन कर्णफूल धरु जो सोहाग विस्तार।
शीश फूल मादन मनमथ सम शीश उपर सुठिधार।
यामें नित्य विलास सहस्रधा केलि अपरम्पार।
रति स्थायी की यह सीमा प्रवल अमित रसदार॥
यहि विधि करि श्रृंगार मनोहर प्रीतम मन वसकार॥
व्यक्त यौवना तू अति सुन्दर गर्वीली गतिधार॥
रमकि झमकि के पिय सग मिलि के देहिं सुरति सुखस।र॥
तव तो सौभागिनी तू पिय के ह्वै जैहो गलेहार॥
तू वे वे तू ऐक्य होय के फिर नहिं द्वैत प्रचार।
यथा अम्बु निधि मिलि के सरिता ह्वै नहिं एकाकार॥
शिव शुक सनक शेष श्रुति हनुमत औ मुनि रसिक उदार।
यह उपासना रस समुद्र में मज्जत साक्ष सकार॥
बिनु निर्हेतुकी कृपा सीय की यामे नहिं अधिकार।
यह रसमोद बिना रस वेत्ता जानत नाहिं गवार॥

अनुक्रमणिका

न

प

ल

व

श

ह

क्ष

ज्ञ